RNI : UPHIN/2008/30136
ISSN : 0974-0002

वर्ष : 11 अंक : 21

कृतिका

जनवरी-जून 2018

साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी
एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक
अन्तर्राष्ट्रीय रेफ्रीड शोध पत्रिका

कृतिका वर्ष : 11 अंक : 21 जनवरी-जून 2018 कृतिका

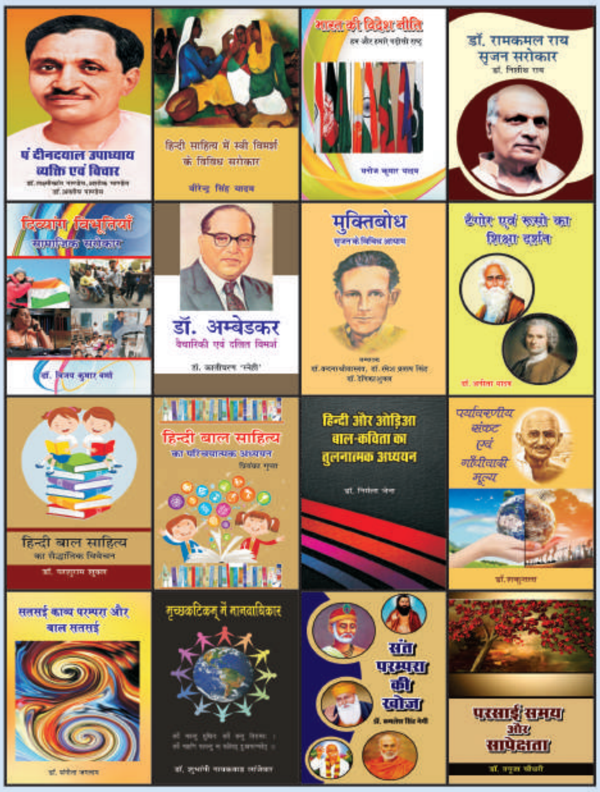

आराधना ब्रदर्स
प्रकाशक एवं वितरक
124/152-सी ब्लाक, गोविन्द नगर, कानपुर-208 006 (उ.प्र.)
दूरभाष : 09935007102, 07985242564, 0512-2651490
Email : aradhanabooks@rediffmail.com

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 11, अंक : 21, जनवरी–जून 2018

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 11 अंक : 21 जनवरी–जून 2018

प्रधान सम्पादक

मनोज कुमार

पूर्व सदस्य, उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, इलाहाबाद (उ. प्र.)

सम्पादक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

अध्यक्ष – हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ, 226 017 (उ. प्र.)

सम्पर्क – 09415924888, 07607782917

Email : dr.virendrayadav@gmail.com • Email : virendra_kritika@rediffmail.com
Email : kritika_orai@rediffmail.com
Webside : www.kritika.org.in

सह–सम्पादक

नीलम यादव

303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ – 226 017

प्रबन्धन

आराधना ब्रदर्स

(प्रकाशक एवं वितरक)

124 / 152– सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–208 006, उ.प्र.

दूरभाष – 09935007102

Email : aradhanabooks@rediffmail.com
Webside :www.kritika.org.in

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 11, अंक : 21, जनवरी–जून 2018

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 11 अंक : 21 जनवरी–जून 2018

सामान्य अंक	:	60.00 रुपये	
इस अंक की सहयोग राशि	:	400.00 रुपये	
यू. एस. 25 $		यूरो 40 $	
व्यक्तिगत सदस्यों के लिये			
वार्षिक सदस्यता	:	300 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	3000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	6500 रुपये	(डाक व्यय सहित)
संस्थाओं के लिये			
प्रति अंक	:	500 रुपये	(डाक व्यय सहित)
वार्षिक सदस्यता	:	1000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	5000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	10000 रुपये	(डाक व्यय सहित)

विषेष : सभी भुगतान नकद/आर.टी.जी.एस./बैंक ड्राफ्ट/चेक 'सम्पादक कृतिका' के नाम Payable at Lucknow भेजें। नकद जमा (R.T.G.S.) हेतु भारतीय स्टेट बैंक – मुख्य शाखा लखनऊ के A/C 30358537228 IFSC No. - SBIN0000125 में जमा कर सकते हैं। (नकद जमा हेतु बैंक कमीशन 50 रु. अतिरिक्त जमा करें।)

☞ विधिक वादों के लिये क्षेत्र, उरई न्यायालय के अधीन होंगे।

☞ कृतिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक मण्डल (कृतिका परिवार) की सहमति अनिवार्य नहीं है।

☞ शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिये सम्पादक मंडल की लिखित अनुमति अनिवार्य है। कृतिका के सम्पादन, प्रकाशन व प्रबंधन से जुड़े समस्त पद अवैतनिक हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, 15, आजाद नगर, उरई (जालौन) से मुद्रित करवाकर 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) से प्रकाशित।

सम्पादक–डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 11, अंक : 21, जनवरी–जून 2018

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 11 अंक : 21 जनवरी–जून 2018

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

नीलम यादव

303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.–226017
सम्पर्क – 07607782917, 09415924888
Email : dr.virendrayadav@gmail.com • Email : virendra_kritika@rediffmail.com
Email : kritika_orai@rediffmail.com • http://kritika-shodh.blogspot.com
www.kritika.org.in

प्रबन्धन

आराधना ब्रदर्स

(प्रकाशक एवं वितरक)

124 / 152– सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–208 006, उ.प्र.
दूरभाष – 09935007102
Email : aradhanabooks@rediffmail.com • Email : kritika_orai@rediffmail.com

क्षेत्रीय प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

डॉ. सुरेन्द्र कुमार सिंह
म.नं. नन्दन सदन ।। फ्लोर, शेरशाह रोड
शकरी गली, पो.आ. गुलजार बाग
पटना–822101 (बिहार)
सम्पर्क–09279211509, 09334626350
Email : drsurendra25@gmail.com

डॉ. सुरेश एफ. कानडे
प्लाट नं. 48, साईं बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी,
विजडम हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर,
गंगापुर रोड, नासिक 422013 (महाराष्ट्र)
सम्पर्क–09422768141
Email : sureshkande2009@rediffmail.com

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 11, अंक : 21, जनवरी–जून 2018

कृतिका : एक परिचय

शोध एवं अनुसंधान गतिविधियों के एकीकृत अध्ययन के लिये युवा शोधार्थियों, अध्येताओं को शोध के नवीन अवसरों को उपलब्ध कराने हेतु कृतिका शोध पत्रिका की परिकल्पना की गई। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका है। कृतिका का सम्पादक मण्डल देश एवं विदेश के विभिन्न राज्यों के विषय विशेषज्ञों की सहभागिता के आधार पर कार्य कर रहा है। मानविकी एवं समाज विज्ञान में शोध के नवीन अवसरों की भागीरथी प्रवाहित करने के उद्देश्य से सहकारिता के आधार पर इस शोध पत्रिका का प्रचार सम्पूर्ण भारत के साथ–साथ सात समुन्दर पार यू. एस. ए., लंदन, आस्ट्रेलिया, जापान, जर्मनी, मॉरीशस आदि के शोध निदेशक एवं शोधार्थियों का कृतिका में रचनात्मक सहयोग प्राप्त है।

कृतिका शोध पत्रिका का एक दूसरा उद्देश्य मानविकी एवं समाज विज्ञान के अलावा विषयों की सीमाओं से हटकर स्वतंत्र रूप से गहन एवं मौलिक शोध की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है ताकि शोध पत्र न केवल गम्भीर अध्येताओं के लिये उपयोगी हो; बल्कि यह जनसामान्य में नवीन जानकारी, शोध के प्रति उत्सुकता एवं जागरूकता का परिचायक भी सिद्ध हो। साथ ही यह व्यावहारिक धरातल पर उपयोगी भी हो। कृतिका में इन्हीं विचारों को दृष्टिगत रखते हुये साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान के विषयों के अलावा हम विज्ञान एवं अन्य विषयों के शोध पत्र भी आमंत्रित करते हैं। उत्तर आधुनिकता एवं भूमण्डलीकरण के इस दौर में वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर समय–समय पर कृतिका परिवार विषय–विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक भी निकालता है जिसकी सूचना कृतिका शोध पत्रिका में एवं अलग से पत्रों के माध्यम से शोध अध्येताओं एवं जिज्ञासु युवा रचनाकर्मियों को समय–समय पर दी जायेगी।

सामान्य निर्देश

रचनाकारों / शोध अध्येताओं से विनम्र अनुरोध :

- ☞ कृतिका साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान का एक अर्द्धवार्षिक शोधपरक अनुष्ठान है जो युवा अध्येताओं, शोधार्थियों एवं खोजकर्ताओं का अपना मंच है। अपने मौलिक एवं नवीन अन्वेषणात्मक रचनाओं के सहयोग से इसे सम्बल प्रदान करें।
- ☞ मानविकी एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित सभी विषयों की मौलिक रचनायें विषय विशेषज्ञों की सहमति से ही इसमें प्रकाशित की जाती हैं।
- ☞ कृतिका में प्रकाशित शोध पत्र देश एवं विदेश के विषय विशेषज्ञों के पास चयन के लिए प्रेषित किये जाते हैं। इसलिये शोध पत्र / आलेख लिखते समय संदर्भों का स्पष्ट उल्लेख करें, पुस्तक का संदर्भ, पत्र–पत्रिका का संदर्भ, प्रकाशन, वर्ष एवं संस्करण का उल्लेख आवश्यक है। शोध पत्र / आलेख की शब्द सीमा दो हजार शब्दों से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि शब्द सीमा अधिक है तो सम्पादक मण्डल को उसमें संशोधन, संक्षिप्तीकरण का अधिकार सुरक्षित रहेगा।
- ☞ कृपया अपनी शोध रचनाएं एवं आलेख प्रेषित करते समय अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त, छायाचित्र प्रेषित करें। रचना के शोध संक्षेप सार का उद्देश्य, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता एवम् उपयोगिता को अवश्य दर्शायें।
- ☞ कृतिका में पुस्तक समीक्षा के लिये चर्चित एवं महत्वपूर्ण पुस्तकों / पत्रिकाओं पर समीक्षात्मक आलेख आमंत्रित हैं। समीक्षात्मक आलेख के साथ पुस्तक / पत्रिका की दो प्रतियां रजिस्टर्ड डाक से प्रेषित करें।
- ☞ स्तरीय पुस्तक की समीक्षा के लिये समीक्ष्य पुस्तक की दो प्रतियों के साथ लेखक अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त एवं छायाचित्र तथा पुस्तक का संक्षेपण पंजीयन डाक से सम्पादक के पते से प्रेषित करें। समीक्षा की स्थिति में शोध पत्रिका का अंक सम्बन्धित लेखक के पते पर भेजा जायेगा।
- ☞ किसी भी दशा में शोध पत्र / आलेख की प्रति वापस (स्वीकृति / अस्वीकृति की स्थिति में) नहीं प्रेषित की जा सकती है। इसलिये कृपया एक प्रति अपने पास सुरक्षित अवश्य रखें।
- ☞ कृतिका एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका है। कृपया रचना प्रेषित करते समय यह भलीभाँति तय कर लें कि यह शोध पत्र / आलेख / रचना आपकी अपनी मौलिक कृति है। और कृतिका के मापदण्डों के अनुकूल है कि नहीं। कृतिका परिवार आपके नये अकादमिक सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत करेगा।
- ☞ रचनायें कम्प्यूटर से मुद्रित अथवा कृति देव 10 में 14 फान्ट साइज में MS-Word Software में टाइप करके ई–मेल करें या साथ में सीडी एवं रचना का प्रिन्ट अवश्य भेजें।

— संपादक कृतिका

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 11, अंक : 21, जनवरी–जून 2018

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 11 अंक : 21 जनवरी–जून 2018

अनुक्रमणिका

शीर्षक	लेखक	पृ.सं.
सम्पादकीय......		i-iii
ज्वलंत प्रश्न		
1. सशक्त समाज की प्रथम पहचान – सूचना का अधिकार	डॉ0 किशन यादव, माधुरी साहू	01
2. पर्यावरण संरक्षण एवं सतत् विकास	डॉ0 कुसुम यादव	04
3. सामुद्रिक पर्यावरण का वर्तमान में उपयोगिता	डॉ0 संजू	10
4. चाबहार की महत्ता व भारत	मनोज यादव	13
5. भारत में समावेशी विकास की दशा और दिशा	डॉ0 उत्तरा यादव	16
6. भारतीय बहुसंस्कृतिवाद और मीडिया	डॉ. सुरेश कानडे	38
शिक्षा का वर्तमान परिदृश्य और भविष्य की चुनौतियाँ		
7. नई सदी के भारत की शिक्षा : चुनौतियाँ एवं समाधान की दिशाएँ	डॉ0 उमारतन यादव	44
8. वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और समावेशी शिक्षा के बदलते परिदृश्य	डॉ0 सियाराम	50
9. प्राथमिक शिक्षा की जटिलताएँ	डॉ0 अनीता यादव	54
10. वैदिक शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षण संस्थाओं का समाज में योगदान	डॉ0 कुमार यशवन्त	57
11. सर्व शिक्षा अभियान का मूल्यांकन	अनिल कुमार	60
राष्ट्र निर्माण में अग्रज एवं अनुज पीढ़ी का योगदान		
12. राष्ट्र निर्माण में डॉ0 भीमराव रामजी आम्बेडकर का योगदान	डॉ0 कविता यादव	63
13. हिन्दू मुस्लिम एकता के सन्दर्भ में महात्मा गाँधी के विचार	डॉ0 ममता यादव	66

14. धर्म सम्प्रदाय और संस्कृति डॉ0 ज्योति वर्मा 69
15. वर्तमान सदी में अंतर्राष्ट्रीय राजनीति और भारत – एक मूल्यांकन डॉ0 भावना यादव 75

हाशिए का विमर्श

16. दिव्यांगजनों के लिए कार्यरत संस्थाओं का संक्षिप्त विवेचन डॉ0 विजय कुमार वर्मा 79
17. हिंदी साहित्य में दिव्यांग विमर्श का स्वरूप और महत्व वन्दना पाण्डेय 86

आधी दुनिया का समकालीन यथार्थ

18. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 2005 का हिन्दू महिलाओं पर प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन आभा मिश्रा 89
19. भारत में लोकपाल बनाम जन लोकपाल चिन्तन–चिन्ता के विविध विविध सरोकार डॉ0 गीता यादव 99

साहित्य : कल, आज और कल

20. अतीत एवं वर्तमान आइने में भाषा के बदलते परिदृश्य डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव 102
21. आधुनिक युग की भूमिका में – अन्धायुग डॉ0 अंजली साहू 108
22. ध्वनिवाद का क्रमिक विकास डॉ0 अनुभा बाजपेयी 112
23. महिला उपन्यासकारों का नारी मुक्ति आन्दोलन डॉ0 सुमन सिंह 117
24. राम की शक्ति पूजा में केन्द्रीय संवेदना का आत्मसंघर्ष और निराला सौरभ कुमार सिंह 123
25. मुक्तिबोध : एक साहित्यिक की डायरी में यथार्थ का निरूपण डॉ0 सविता मसीह 126
26. पं0 गंगाराम पाण्डेय के साहित्य का सांस्कृतिक अनुशीलन प्रीति पटेल 131
27. स्वाधीनता संग्राम और हिन्दी डॉ0 मार्तण्ड सिंह 134
28. विष्णु प्रभाकर का नाट्य साहित्य : सामाजिक चेतना का स्वरूप डॉ0 दमयन्ती देवी 137

भारत का समकालीन परिदृश्य : चिन्तन–चिन्ता के विविध सरोकार

29. फसल विविधीकरण का कृषकों की आय एवं उत्तर प्रदेश की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव : सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य डॉ0 नरेन्द्र प्रताप सिंह 140
30. समाज में परिवारों के मध्य अन्तर्पीढ़ी संघर्ष का समाजशास्त्रीय अध्ययन सुमन झा 145
31. योग का उपयोग डॉ0 निर्मल कौशिक 149
32. भारत में महिलायें और उनका राजनीतिक सशक्तिकरण (भारत के सन्दर्भ में) डॉ0 अभिलाष सिंह यादव 152
33. हिन्दी साहित्य और मूल्य परक शिक्षा डॉ0 विवेक सिंह 156
34. इटावा जिले में कृषित भूमि के वितरण एवं रूपांतरण प्रतिरूप का भौगोलिक विश्लेषण डॉ0 प्रेम प्रकाश राजपूत, डॉ0 निरूपमा 159

35.	वैदिक वाङ्मय में पुनर्जन्म एवं मोक्ष की अवधारणा	डॉ0 रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी	166
36.	कालीदास के साहित्य में लोककल्याण की भावना	डॉ0 आशारानी पाण्डेय	176
37.	''लोकहित में सौमनस्यता'' : वैदिक परिप्रेक्ष्य में	डॉ0 पूजा श्रीवास्तव	181
38.	समावेशी शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2006	श्रीमती रीमा शर्मा	185
39.	प्रयोगवाद और गिरिजा कुमार माथुर	डॉ0 शुभा बाजपेयी	188
40.	ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय स्त्री की स्थिति	सुरेन्द्र प्रताप सिंह खरे	192
41.	लोकतंत्र में महिलाओं का बदलता मुकाम	गौरी, योगेन्द्र सिंह	197
42.	स्वस्थ समाज हेतु हमें अपनी सोच के दायरे को विस्तृत करना होगा	अनीता यादव	202

पुस्तक समीक्षा

❖	स्वामी विवेकानन्द और सामाजिक परिवर्तन	डॉ0 प्रतिमा यादव	204
❖	स्वामी विवेकानन्द और धर्म दर्शन	डॉ0 भावना यादव	205
❖	स्वामी विवेकानन्द के विचार	डॉ0 विजय कुमार वर्मा	206
❖	स्वामी विवेकानन्द और मानवतावाद	डॉ0 उत्तरा यादव	207
❖	स्वामी विवेकानन्द और भारतीय समाज	डॉ0 अनुपमा यादव	208
❖	स्वामी विवेकानन्द : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ0 उमारतन यादव	209
❖	भारत का लोक सांस्कृतिक विमर्श	डॉ0 सुरेश एफ कानडे	210

सम्पादकीय....

आज का विश्व विकास, संवृद्धि, उदारीकरण, निजीकरण, परस्पर सह–अस्तित्व के साथ जन सहभागिता एवं वैश्वीकरण पर विशेष बल दे रहा है। ऐसे विचारों को सतही स्तर पर देखने पर लगता है कि दुनिया निरन्तर जिस मार्ग पर आगे बढ़ रही है, वही मार्ग सर्वश्रेष्ठ होने के साथ ही विश्व की सभी समस्याओं का उचित निदान भी है। लेकिन स्तरीय आधार पर जब चिन्तन करते हैं अथवा व्यवहारिक/क्रियान्वयन पक्ष पर गौर करते हैं तो विश्व स्तर पर मानव कल्याण हेतु जिन माडलों को स्वीकार किया गया या जिन्हें स्वीकार करने के लिए कहा जा रहा है, उन माडलों पर उंगली उठना स्वाभाविक है क्योंकि आज विश्व में भेदभाव एवं असमानता का जो स्तर है वह इतना अधिक व्यापक और जटिलताओं से भरा है कि उसका निदान वैश्वीकरण व उससे जुड़ी वर्तमान व्यवस्था से सम्भव नहीं लगता। वर्तमान विश्व में राष्ट्रों, समाजों, समुदायों एवं व्यक्तियों के बीच जो जटिलताएँ, अविश्वास पनप रहा है उससे हमारे साझा मूल्यों, आदर्शों एवं साझी विरासत को क्षति पहुँच रही है। इन मतभेद के विभिन्न स्तरों पर मानव समाज को चिन्तन करना होगा।

आज यह माना जा रहा है कि डिजिटल टेक्नोलॉजी हमारी हर समस्या का समाधान है। अब टेक्नोलॉजी हमारे जीवन के सभी पक्षों को निर्धारित करती है। लेकिन इस टेक्नोलॉजी निर्देशित ज्ञान ने विचार, नवाचार, कल्पना तथा सृजनात्मकता को गायब कर दिया है, यह कह सकते हैं कि अब इन्हें चुनौती मिल रही है। साथ ही इसने अनुकरण करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है और तर्क करने की क्षमता को समाप्तप्राय कर दिया है। डिजिटल मीडिया और सोशल मीडिया ने परिवार को भी विस्थापित कर दिया है, अर्थात प्राथमिक समाजीकरण जो पहले परिवार का दायित्व था, वह अब डिजिटल मीडिया करने लगा है, इसलिए अब इनके उत्पन्न विचारों/सूचनाओं को हम बिना संदेह के विश्वसनीय और प्रामाणिक मानने लगे हैं। परिणामस्वरूप बच्चे 'बंधक मस्तिष्क' और 'सीमित व्यक्तित्व' बनते जा रहे हैं। नील पोस्टमैन के अनुसार 'आज की पीढ़ी विचारहीन विचारों से भरी नकलची पीढ़ी है, उसके पास केवल फंड हैं/जुमले हैं, विचारधारात्मक चिंतन नहीं है, अर्थात उसमें चिंतनशील भाषा का अभाव है। कहा जा रहा है कि हम 'ज्ञानात्मक समाज' की ओर अग्रसर हैं, पर 'विचारशून्यता' के साथ क्या यह संभव है? मीडिया/डिजिटल टेक्नोलॉजी ने बच्चों को 'सीमित व्यक्तित्व' बनाया है; उन्हें एक तरफ तो ज्ञान और सूचना के विश्व से जोड़ दिया है, दूसरी तरफ परिवार और अनौपचारिक विश्व से अलग कर दिया है। सामाजिक संबंधों में व्यक्तिवादिता उभर रही है।

समाज के प्रारंभ में अंधविश्वास का चरण था जिसमें तर्कहीनता और अनुकरण की प्रवृत्ति थी। फिर वैज्ञानिक चरण आया जिसमें बुद्धिवाद, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, विश्लेषण और तर्क का रुझान प्रबल हुआ। ऐसा लगता है कि अब हम पुनः अनुकरण और तर्कहीनता की ओर जा रहे हैं। विडंबना यह है कि यह टेक्नोलॉजी–जनित तर्कहीनता है। उदाहरण के लिए डिजिटल डिवाइस पर धार्मिक वीडियो/संदेश आना। ऐसा करो/लाइक करो/जय.... लिखो, दस लोगों को यह संदेश भेजो.... तुरंत शुभ समाचार मिलेगा/ यह लाभ होगा और ऐसा नहीं करने पर अशुभ होगा आदि। आज भी धर्म का पालन व्यक्ति 'भय के मनोविज्ञान' से प्रेरित होकर करता है। संभवतः यही उत्तर–प्रत्यक्षवाद का चरण है जहाँ भावनाओं और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को मिश्रित रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। या कहें कि भावनाओं को वैज्ञानिक तरीके से खरीदा–बेचा जा रहा है।

हर साल की तरह इस साल भी दावोस में आयोजित होने वाले अरबपतियों के सालाना जलसे से पहले दुनिया भर में बढ़ती गैर–बराबरी पर चिंता प्रकट की गई। सबसे बड़ी विडंबना यह है कि हर साल चिंता प्रकट किए जाने के बावजूद आर्थिक विषमता की यह खाई लगातार चौड़ी होती जा रही है। देखा जाए तो इसकी असली वजह

यह है कि विकास का ढाँचा गरीबों के नहीं, अमीरो के अनुकूल है। उदारीकरण और भूमंडलीकरण के जिस मॉडल को गरीबी उन्मूलन का सशक्त हथियार बताया जा रहा था वह संपत्ति के न्यायपूर्ण बँटवारे में बिलकुल नाकाम साबित हुआ, क्योंकि वित्तीय पूँजी आधारित इस व्यवस्था का फायदा पहले से मजबूत तत्वों को ही हो रहा है। सबसे बड़ी विडंबना यह है कि दुनिया भर की सरकारों तथा अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा गरीबी और असमानता दूर करने के प्रयासों के बावजूद उदारीकरण और भूमंडलीकरण का मॉडल गरीबोन्मुख नहीं बन पा रहा है। हालांकि इन आर्थिक नीतियों के कारण विश्व अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर में तेजी आई और बड़े पैमाने पर संपदा व समृद्धि के कुछ ही हाथों में सिमट जाने से गैर–बराबरी बढ़ती जा रही है। नोबेल पुरस्कार विजेता जोसेफ स्टिग्लिट्ज ने अपनी पुस्तक 'प्राइस ऑफ इन्इक्वलिटी' में बताया है कि आय की असमानता जिस रफ्तार से बढ़ती है उससे कहीं ज्यादा रफ्तार से संपत्ति की असमानता बढ़ती है।

आज के दौर में जब बात–बात पर स्थितियाँ तनावपूर्ण बन जाती हों तो अमरीका का पश्चिम एशिया के प्रति उठाया गया कदम आग में घी डालने वाला है। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने दशकों से जारी अमेरिकी कूटनीति की दिशा को बदलते हुए यरुशलम को इजरायल की राजधानी घोषित कर दिया है। इस कारण पश्चिम एशिया में तनाव की एक नई पटकथा तैयार हो गई है, जबकि यह इलाका पहले से ही कम अशांत नहीं है। ट्रंप प्रशासन का यह फैसला आने वाले वर्षों में क्षेत्रीय राजनीति की दशा–दिशा पर भी दूरगामी असल डाल सकता है। अमेरिका के इस कदम पर मिली–जुली प्रतिक्रियाएँ आई हैं। इजरायली प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू ने कहा है कि यह एक ऐतिहासिक दिन है और इजरायल तहेदिल से राष्ट्रपति ट्रंप का आभारी है। वहीं, फलस्तीनी राष्ट्रपति महमूद अब्बास ने दोहराया है कि यरुशलम 'फलस्तीन की अखंड राजधानी था और है'। उन्होंने यह भी कहा कि 'इस तरह के निंदनीय व अस्वीकार्य कदमों से शांति स्थापना की कोशिशों को जान–बूझकर कमजोर किया जा रहा है और यह दशकों से चली आ रही मध्यस्थता के बाद शांति समझौते में अमेरिकी भूमिका से पीछे हटने की शुरुआत के घोषणा–पत्र जैसा है।' अमेरिकी हितों के खिलाफ पश्चिम एशिया के मुसलमानों को एकजुट होने का आह्वान करते हुए हमास ने भी ट्रंप पर 'खतरनाक आक्रामकता' का आरोप लगाया है।

आज पर्यावरणीय जन सुनवाइयों को एक प्रहसन में बदल दिया गया है यह भी किसी से छिपा नहीं है। इन उद्योगों में पर्यावरण विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार को बढ़ावा देकर किस प्रकार प्रदूषण नियंत्रक उपायों की अनदेखी की जाती है और किस प्रकार इलेक्ट्रोस्टेटिक को बंद रखा जाता है। यह भी कई बार उजागर हो चुका है। पर ये मामले जितनी तेजी से उठते हैं उससे कहीं अधिक तेजी से दबा दिए जाते हैं। इन क्षेत्रों में निवास करने वाले निरीह ग्रामवासियों (जिनमें आदिवासियों की संख्या अधिक है) की कमजोर लड़ाई कुछ ईमानदार और कुछ संदिग्ध प्रतिबद्धता वाले गैर–सरकारी संगठन लड़ रहे हैं, जिन्हें 'व्यवस्था–विरोधी' की संज्ञा देकर उद्योग समर्थक सरकारें प्रताड़ित भी करती रही हैं। विश्व आर्थिक मंच (वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम) के साथ मिलकर दसवीं एनवायरनमेंटल परफॉर्मेन्स इंडेक्स रिपोर्ट तैयार करने वाले येल और कोलंबिया विश्वविद्यालय के विशेषज्ञों के अनुसार, रिपोर्ट में चीन का 120वाँ स्थान और भारत का 177वाँ स्थान बढ़ते जनसंख्या–दबाव और तीव्र गति से विकास करने की लालसा के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की ओर हमारा ध्यानाकर्षण करता है। लेकिन इन विशेषज्ञों के अनुसार, ब्राजील का 69वाँ स्थान यह दर्शाता है कि यदि पर्यावरण संरक्षण और प्रदूषण नियंत्रण सरकारों के नीति निर्धारण और क्रियान्वयन की स्थायी और दीर्घ कालिक प्राथमिकताओं में सम्मिलित हों तो उसके सुपरिणाम मिलते ही हैं। इन विशेषज्ञों की राय विकास के उस वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था आधारित मॉडल पर प्रश्नचिह्न नहीं उठाती जो अंततः नवउपनिवेशवादी रणनीति का नवीनतम रूप है।

जिस विकास मॉडल को अधिकतर एशियाई देश अपना रहे हैं वह देशी और विदेशी उद्योगपतियों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन को बढ़ावा दे रहा है जिसके फलस्वरूप इन देशों का भैतिक और सामाजिक

पर्यावरण तेजी से नष्ट हो रहा है। पर्यावरण को होने वाली यह क्षति ऐसी नहीं है जिसकी भरपाई की जा सके। भूजल स्तर कई स्थानों पर चिंताजनक रूप से गिरा है। जंगलों की कटाई से हजारों साल में स्थिर होने वाला पारिस्थितिक संतुलन नष्ट हो गया है। वृक्षारोपण अपर्याप्त और अविचारित दोनों है, और इन दोषों को यदि नजरअंदाज कर दिया जाए तब भी इसके लाभदायक परिणाम वर्षों बाद ही मिल सकेंगे। एशियाई देशों में व्याप्त राजनीतिक और प्रशासनिक भ्रष्टाचार ने पर्यावरण–नियमों के साथ खिलवाड़ करने का रास्ता खोल दिया है। इस विकास के फलस्वरूप गिने–चुने लोगों के पास विपुल संपदा और संसाधनों का एकत्रीकरण हुआ है और बहुसंख्यक लोगों का जीवन बदतर हुआ है। यदि विकास का स्वरूप समावेशी होता तो पर्यावरण रक्षा और प्रदूषण नियंत्रण अपने आप प्राथमिकताओं के एजेंडे में सबसे ऊपर होते।

वक्त के साथ मौलिक अधिकारों को लेकर सामाजिक चेतना बढ़ी है। संविधान ही वह दस्तावेज है जिसमें वर्णित मौलिक अधिकारों के बल पर हम देश के हर कोने में अपनी हर प्रकार की स्वतंत्रता का आनंद उठाते हैं। किसी भी प्रकार का अन्याय होने पर यही मौलिक अधिकार हमारी ढाल बन जाते हैं। हर भारतीय खुद को सौभाग्यशाली समझता है कि उसे ऐसे मौलिक अधिकार मिले जिनसे वह अपने जीवन को बिना किसी डर के व्यतीत कर सकता है। हम सब मौलिक अधिकारों की बात तो बड़े जोर–शोर से करते हैं, लेकिन जब बात आती है देश के प्रति अपनी जिम्मेदारियों की, तो हम सब पीछे हटने और टालमटोली वाली हालत में आ जाते हैं। कर्तव्य के प्रति निष्क्रियता प्रत्येक स्तर पर देखी जा सकती है। चाहें यह राष्ट्र के प्रति हो या समाज के प्रति अथवा पारिवारिक दायित्व निभाने के प्रति। दरअसल आधुनिकता का सही अर्थ ग्रहण न कर पाने वाले अधिकार सम्पन्न लोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में 'यूज ऐंड थ्रों' का सिद्धांत अपना बैठे हैं। उन्हें रिश्ते भी घर में दैनिक जरूरत में इस्तेमाल होने वाली वस्तु लगने लगे हैं। यानी जो सामान पुराना अथवा काम लायक न रह जाए, उसकी मौजूदगी अपने इर्द–गिर्द अखरने लगी है। यह आत्मकेंद्रित मानसिकता का नतीजा है, जो न सिर्फ खतरनाक है, बल्कि आने वाले समय में हमारी नई पीढ़ियों की बुनियाद कमजोर कर सकती है।

कृतिका का यह अंक जीवन के इन्हीं विभिन्न पक्षों से संबद्ध विचारशीलता पर केंद्रित है। यह सार्थक प्रयास आप लोगों की प्रतिक्रियाओं एवं सुझावों पर निर्भर करेगा।

— सम्पादक मण्डल

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सशक्त समाज की प्रथम पहचान–सूचना का अधिकार

डॉ0 किशन यादव
विभागाध्यक्ष
राजनीतिक विज्ञान विभाग एवं शोध केन्द्र
बुदेलखण्ड महाविद्यालय
झाँसी, (उ.प्र.)

माधुरी साहू
शोधार्थी
राजनीति विज्ञान
बुदेलखण्ड महाविद्यालय
झाँसी, (उ.प्र.)

हम एक विश्व के सबसे विशाल लोकतांत्रिक देश के निवासी हैं। जहाँ देश की समस्त सम्प्रभुता जनता में निहित है। अर्थात् जनता ही देश की शासन व्यवस्था का निर्माण करती है तथा जनता ही विपरीत परिस्थितियों में निर्णायक की भूमिका भी निभाती है। चूँकि देश बहुत बड़ा है, बहुत तरह की विविधताऐं, परिस्थितियां, शासन–विधियाँ, अधिनियम यहाँ विद्यमान हैं। हजारों–सैकड़ों की संख्या में कानूनों, अधिनियमों, नियमावलियों का सफल संचालन स्वयं में ही जटिल प्रश्न है। अतः इस जटिल समस्या के सामाधान के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम–2005 अस्तित्व में आया। यह 14 जून 2005 से लागू किया गया। इस प्रकार आजादी के 56 वर्षों बाद शासन प्रशासन की मनमानी भरे अंधकार में प्रकाश की एक किरण दिखाई दी। यही एक किरण लोगों के आगे बढ़ाने के लिए रास्ता बन गई। परिणाम यह हुआ कि शासन/प्रशासन का सिंहासन डगमगाने लगा और तरह–तरह की बहाने–बाजियों, टाल–मटोली का नया दौर शुरू होने लगा।

परन्तु इन सब से भारतीय जनमानस घबराया नहीं हालांकि अब तक सूचना मांगने के लिए सैकडों लोग मारे–पीटे गये, शासन–प्रशासन की भूल–भूलैय्या में भटकायें गये, कई लोगों की तो इंतजार करते–करते जान तक चली गई। वास्तव में सूचना कितना बड़ा अधिकार है और इससे क्या– क्या किया जा सकता है, यह सच्चाई जनता के सामने आने लगी लेकिन राह में जितनी बाधाऐं होंगी, सफलता का आंनद भी उतना ही चमकदार होगा। ऐसी विषम परिस्थितियों में कुछ साहसी लोगों की कर्मठता तथा जनसहभागिता के द्वारा सूचना का अधिकार धीरे–धीरे ही सही, वास्तविकता की ओर अग्रसर है। कहने का तात्पर्य है कि सूचना का अधिकार एक ऐसा कानून बने जिसे शासन–प्रशासन में पारदर्शिता बढ़े, जिम्मेदारी तय हो तथा भ्रष्टाचार एवं लूट पर लगाम लगाई जा सके। पहले जनता केवल वोट देने तक ही सीमित थी, परन्तु आर0टी0आई0 के आने के बाद अब शासन–प्रशासन स्वीकार करने लगा है कि देश की जनता ही सर्वेसर्वा हैं। आर0टी0आई0 शासनिक–प्रशासनिक व्यवस्था के प्रति जनता का विश्वास अर्जित करने का बेहतरीन साधन है।

आर0टी0आई0 एक ऐसा हथियार है, जिसका प्रयोग हम दैनिक जीवन से जुड़ी रोजमर्रा की समस्याओं को सुलझाने के लिए कर सकते है। इसके लिए हमें सबसे पहले आर0टी0आई0 से जुड़ी बारीकियों को ध्यानपूर्वक समझना होगा– हमारे देश में भ्ष्टाचार की समाप्ति शासन–प्रशासन में पारदर्शिता लाने, प्रशासनिक अधिकारियों तथा विभागों को जिम्मेदारी पूर्ण बनाने हेतु 2005 में एक अधिकार लाया गया, जिसे 'सूचना का अधिकार अधिनियम–2005 नाम दिया गया। इस अधिकार का प्रयोग करके देश का कोई भी नागरिक किसी भी सरकारी विभाग से कोई भी आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकता है। जैसे– किसी क्षेत्र में सड़क निर्माण हेतु सरकारी विभाग ने कितने पैसे खर्च किये ? कहाँ खर्च किये ? किसी प्राथमिक विद्यालय में कितने शिक्षक कार्यरत है ?पड़ोस की राशन की दुकान में कब और कितना राशन आया ?आदि । इस प्रकार के कई सवाल जो आम जन–जीवन से जुड़े है, इनकी जानकारी आर0टी0आई0 के तहत प्राप्त की जा सकती है।

आर0टी0आई0 भ्ष्टाचार के खिलाफ उठाया गया एक बहुत बड़ा कदम है। सभी सरकारी विभाग, प्रधानमंत्री,

राष्ट्रपति, मुख्यमंत्री, कम्पनियां, बैंक, स्कूल, कॉलेज, हास्पिटल पुलिस, बिजली कम्पनियां आदि इस अधिनियम के अन्तर्गत आते हैं। सरकार की सुरक्षा से सम्बन्धित जानकारी या गोपनीय जानकारी को इसकी परिधि से बाहर रखा गया है। साथ ही जम्मू–कश्मीर राज्य में यह अधिनियम लागू नहीं है।

– हर सरकारी विभाग में एक जन सूचना अधिकारी होता है। आप अपने आवेदन–पत्र उसके पास जमा करवाकर सम्बन्धित विषय की जानकारी या सूचना प्राप्त कर सकते है।
– आवेदन पत्र इंटरनेट से डाउनलोड कर के या सफेद कागज पर आवेदन लिख कर भी जन सूचना अधिकारी के पास सूचना प्राप्ति हेतु आवेदन किया जा सकता है।
– आवेदन पत्र के साथ 10 रू0 शुल्क भी जमा करना होता है। यह शुल्क गरीबी रेखा के नीचे वाले लोगों से नही लिया जाता।
– आवेदन किसी भी भाषा–हिन्दी, अंग्रेजी या स्थानीय भाषा में किया जा सकता है।
– आवेदन पत्र डालने के 30 दिन के अन्दर आपको जवाब मिल जायेगा। यदि ऐसा नहीं होता है तो आप कोर्ट में भी अपील कर सकते है।

यह तो रही आर0टी0आई0 सम्बन्धी सामान्य जानकारी। परन्तु इस अधिनियम द्वारा सूचना प्राप्त करना इतना सीधा व सरल नहीं है, जैसा कि प्रतीत हो रहा है। इस अधिनियम में विद्यमान कमियों के कारण कई जगह यह हास्यास्पद बनकर रह गया है। जानने का अधिकार सभी को है, परन्तु हम इस अधिकार का प्रयोग भली प्रकार नहीं कर पा रहे है, जिसके पीछे निम्न कारण उत्तरदायी है :–

1– आवेदकों को सूचना का अधिकार के तहत आवेदन जमा करवाने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ता हैं।
2– जन सूचना अधिकारियों के पास पहले ही काम का अत्यन्त बोझ है। इन अधिकारियों को अपने दैनिक कार्यों के साथ–साथ आर0टी0आई0 का काम भी देखना पड़ता है। इसी दोहरे बोझ की वजह से भी आर0टी0आई0 प्रभावित हो रहा है।
3– आर0टी0आई0 के तहत आवेदनों का ढेर लगता जा रहा है, परन्तु कर्मचारियों की संख्या बढ़ाने हेतु प्रशासन का उदासीन रवैया अत्यन्त गम्भीर और सोचनीय है।
4– सूचना आयोग में भी अदालतों की तरह केसों का ढेर हो गया है। केस की सुनवाई जल्दी न होने के कारण आवेदक उदासीन हो जाता है और सूचना आयोगों में भी न तो पर्याप्त संख्या में आयुक्त है, न ही उन्हें आवश्यक सुविधाऐं प्राप्त है।
5– आर0टी0आई0 का प्रसार ज्यादातर एन0जी0ओ0 करते है या फिर कुछ समाजसेवी कार्यकर्ताओं द्वारा ही किया जा रहा है। सरकार अपनी ओर से इस कानून के प्रचार की जिम्मेदारी नहीं निभा रहीं न ही सम्बन्धित कर्मचारियों को उचित प्रशिक्षण दिये जाने की व्यवस्था है।
6– सूचना आयोगों में कभी–कभी कानून का कढ़ाई से पालन नहीं होने के मामले आम समस्या है। सरकारी अफसर अपनी मनमानी करते रहते है। छोटे–छोटे मामलों में तो सूचनाऐं मिल भी जाती है, परन्तु बड़ी योजनाओं या फिर किसी भृष्टाचार सम्बन्धी मामलों में सरकारी अधिकारी भी चुप्पी साथ लेते है।
7– जानकारी के अभाव या अज्ञानता के कारण कई लोग आर0टी0आई0 का उपयोग लोगों को ब्लैकमेल करने में भी करते है, या सरकारी अधिकारियों को परेशान करने के उद्देश्य से भी करते है। ऐसी असामाजिक तत्वों पर अंकुश लगाने को भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

कहने का तात्पर्य है कि इन सब कमियों के बावजूद भी भारत की जनता आर0टी0आई के प्रति यदि अपना विश्वास दिखा रही है तो इसका मुख्य कारण है कि हमारे पास इसे छोड़कर कोई दूसरा सरल व प्रभावी साधन

उपलब्ध नहीं है जो हमारी समस्याओं का सटीक समाधान खोज सके। अतः देश की जनता को चाहिए कि आर0टी0आई0 का खुले दिल से उपयोग बढ़ाये साथ ही केन्द्रीय व राज्य सूचना आयोगों और शासन की जिम्मेदारियों के प्रति स्वयं भी जागरूक बने। गाँधी जी ने इस सम्बन्ध में कहा भी कि – ''यदि हम अपने कर्तव्यों को पूरा करते जाये ंतो अधिकार हमें स्वतः ही प्राप्त हो जायेंगे।''

इस विधेयक के रूप में हम शासन की प्रक्रियाओं और व्यवस्थाओं में नये युग का उदय देखते है। यह कार्यकुशलता और पारदर्शिता का ऐसा युग है, जो यह सुनिश्चित करेगा कि समाज के सभी वर्गों, लिंग, समुदायों को विकास की मुख्यधारा में शामिल किया जा सके। ऐसा युग जो भ्ष्टाचार को कम करे, मनमाने शासन पर अंकुश लगाये। शासन की समस्त प्रक्रियाऐं जन–परिचित हो और सभी को इसका लाभ मिल सके। सूचना तक पहुॅचने के लिए विधेयक ऐसी व्यवस्था प्रस्तुत करे जो साधारण, सरल, समयबद्ध और कम खर्चीली हो। सूचना देने में असफल रहने तथा सूचना प्राप्ति में किसी तरह का अवरोध पैदा करने वालों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था हो। इस प्रकार सबसे बड़ी जिम्मेदारी तो उन लोगों पर होगी जो सूचना की मांग करेगें और उन पर भी जो सूचना देंगे और इस अधिनियम का सफल संचालन करेंगे।

सूचना अधिकार अधिनियम को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है कि यदि प्रथम सूचना दाता प्रथम स्तर पर ही सूचना उपलब्ध करा दे तो इस अधिनियम का महत्व और बढ़ जायेगा। प्रथम स्तर पर ही पारदर्शिता सबसे बेहतर विकल्प सिद्ध हो सकती है। साथ ही सबसे निचले स्तर पर भी प्रचार–प्रसार की आवश्यकता है। गाँवों में शिविर लगाये जायें, प्रचार–प्रसार बढ़ाया जाये, शिक्षा के माध्यम से, नुक्कड़ नाटाकों के माध्यम से भी प्रचार को बढ़ावा दिया जाये। सामाजिक क्षेत्र में भी आर0टी0आई0 की महत्ता बढ़े, इसके लिए सामाजिक कार्यकर्ताओं, बुद्विजीवी वर्ग, महिलाओं, विशेष तौर पर युवा वर्ग को जागरूक किये जाने की आवश्यकता है। सूचना आंदोलन एक ऐसा आंदोलन है, जो समाज में सक्रिय भूमिका निभाकर एक जन क्रांति ला सकता है। देश हमारा है, सरकार हमारी है, अतः अपने देश की उन्नति एंव विकास की जिम्मेदारी भी तो हमारी ही है।

वर्तमान युग में कहावत है कि – ''सूचना अर्थात् ज्ञान, ज्ञान अर्थात् शक्ति, शक्ति से ताप्पर्य धन और धन अर्थात् सम्पूर्णता'' और यह सम्पूर्णता अर्थात् सूचना की शक्ति ऐसी शक्ति है जो न केवल अज्ञानता वरन् सम्पूर्ण ब्रहमाण्ड पर शासन करने योग्य है। चूँकि विकसित देश सूचना के मामले में धनी है इसलिए वे विकसित है, उन्नत है और विकासशील देश चूँकि सूचना के विषय में पिछड़े हैं, इसलिए विकासशील है और निर्धन हैं । इस प्रकार सूचना की शक्ति स्वतः ही वर्णित हो जाती है। यह देश मुट्ठीभर नौकरशाहों, भ्षटाचारियों और शासकों का नहीं है, वरन् सवा करोड़ नागरिकों और आने वाली पीढ़ियों का भी है। आज हमें अपने लिए तथा आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए खड़े होना ही पड़ेगा। 'सूचना' की ताकत पहचाननी होगी तथा इस ताकत से कुशासन, लूट, भ्रष्टाचार तथा अन्याय को जड़ से उखाड़ फेंकना होगा। ताकि भारत को विश्व स्तर पर वास्तविक रूप में ''विश्व की सबसे बड़ी लोकतांत्रिक व्यवस्था'' के रूप में पहचान व सम्मान मिल सके। मेरे इस लेख का यही उद्देश्य भी है और संदेश भी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अरोड़ा ललित कुमार, राइट टू इन्फार्मेश एक्ट–2005
2. जैन पी0के0, सूचना का अधिकार, मेरठ।
3. यशोदा, राइट टू इन्फार्मेशन एक्ट–2005 ए प्रीमियर, टाटा पब्लिशिंग टाटा मैक्गरा हिल्स पब्लिशिंग
4. लक्ष्मीकांतः लोक प्रशासन, टाटा मैक्गरा हिल्स, दिल्ली
5. www.rti.in
6. दैनिक जागरण समाचार पत्र

❑❑

पर्यावरण संरक्षण एवं सतत् विकास

डॉ. कुसुम यादव
एसोसियेट प्रोफेसर
चौधरी चरण सिंह पी जी कालेज हेवरा, इटावा

वर्तमान में चारों ओर कोहराम मचा हुआ है। कि पर्यावरण असंतुलित हो रहा है यदि यह इसी गति से बिगड़ता रहा तो सम्पूर्ण मानव जीवन संकट में पड़ जायेगा। अतः यह जानना आवश्यक है कि पर्यावरण क्या है और इसे कैसे संरक्षित किया जाय।

पृथ्वी का वह भाग, जिसमें जीवधरी रहते है जीवमण्डल (जैवमण्डल) कहलाता है। जैवमण्डल क्षेत्र पृथ्वी से लगभग 16 किलोमीटर ऊँचाई तक फैला है। इसमें जमीन, वायु, जल एवं पेड़–पौधे तथा समस्त जीवजन्तु रहते हैं। सामान्य तौर पर हमारी सम्पूर्ण पृथ्वी एवं उस पर उपस्थित प्रत्येक वस्तु हमारा पर्यावरण है। परिभाषिक तौर पर पर्यावरण शब्द जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित वाली समस्त भौतिक एवं जीवीय परिस्थितियों का योग है।

प्रकृति में पर्यावरण के स्वपोषण एवं स्वनियमन की क्रियाएं अनवरत चलती रहती है जिसके कारण प्रकृति का अस्तित्व बना रहता है किन्तु स्वार्थी मानव प्राकृतिक तत्वों का उपयोग करते समय भूल जाता है कि उसके बाद आने वाली पीढी को भी इनकी आवश्यकता होगी तथा इनके अन्धाधुन्ध दोहन से पर्यावरण विकृति हो जाएगा।

मानव बड़ा स्वार्थी होता है। ज बवह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जाने अंजाने में प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण विनाश करता है, जिसके कारण उसे भविष्य में अनेक परेशानियां व दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं। जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभाव आगामी पीढ़ी को भुगतना पड़ता है। उदाहरण स्वरूप प्राकृतिक वनस्पति को अविवेकपूर्ण ढ़ंग से काटने से प्रतिवर्ष बाढ़ों का प्रकोप, जल स्तर में कमी, वायु मण्डल में शुष्कता तथा मिट्टी का कटाव प्रारम्भ हो जाता है। मिट्टी के कटाव द्वारा इसके पोषक तत्व बहकर नदी, नालों में एकत्रित हो जाते है और सम्पूर्ण भू प्रदेश अनुत्पादक तथा बंजर में परिवर्तित हो जाता है, जिसके कारण फसलों का उतपादन कम हो जाता है। मनुष्य द्वारा निरन्तर एक ही क्षेत्र में कृषि करते रहने से मिट्टी के पोषक तत्व धीरे–धीरे समाप्त हो जाते है, जिसके कारण उत्पादन प्रति हेक्टेयर गिर जाता है। देश के खनिज संशाधनो का अविवेकपूर्ण उपयोग करते रहने से शीघ्र समाप्त हो जाते है। इनके समाप्त हो जाने पर अन्य राष्ट्रों पर निर्भर रहना पड़ता है। इस प्रकार खनिजों की दृष्टि से देश निर्धन हो जाता है।

समाज के सामाजिक, आर्थिक विकास के लिए प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन तथा उपयोग अवश्य होना चाहिए किन्तु जहां तक सम्भव हो सके, पर्यावरण की गुणवत्ता, परिस्थितिकीय संतुलन तथा पारिस्थितक स्थिरता को बनाये रखने का भरपूर प्रयास किया जाना चाहिए।

संरक्षणात्मक उपागम के दो प्रमुख आधार है –

1. प्राकृतिक संशोधनो के विदोहन एवं उपयोग के समय मनुष्यों के कार्यों द्वारा पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों को कम करना तथा ऊर्जा में बदलना है जिससे समस्त मानव समूह एवं जीव–जन्तु जगत को भोजन के रूप में पोषक तत्व मिलते है।
2. पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित तथा प्रदूषण रहित प्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा प्राकृतिक पर्यावरणीय पारिस्थितक तंन्त्रो की उत्पादकता को अधिकतम करना।

जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ कृषि फसलों में उत्पादन में वृद्धि हेतु अधिक भूमि की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी फलतः वनों की कटाई आरम्भ हो गई। जिससे सामान्य समस्या जटिल होने लगी।

मानवीय क्रियाकलापों के कारण प्रकृति के वे घटक, जिनसे जीवन का उद्भव एवं विकास होता था, यथा–जल, मृदा, वायु एवं भूमि आदि प्रदूषित हो गई प्रदूषण के कारण अनेकानेक प्रजातियां लुप्त होती चली जा रही है। जिससे पर्यावरण असंतुलित हो रहा है। रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के प्रयोग से मृदा अम्लीय होती जा रही है। अतः पर्यावरण के जैविक व अजैविक दोनों घटको का संरक्षण अनिवार्य हो गया है।

मानव, जीव जन्तु पर्यावरण में रहकर प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए उसे असंन्तुलित बनाये रख सकते है। मानव अपने आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक उत्थान एवं प्रगति करता है और पर्यावरण के घटक प्राकृतिक अवस्था में रहते है जिससे प्राकृतिक सन्तुलन बना रहता है।

मानव ने प्राकृतिक संशाधनों का उपयोग बड़ी बेरहमी से किया है। जिससे पर्यावरण प्रदूषण फैलता गया परिणामतः भयंकर बीमारियां, सूखा, बाढ़ शीत आलावृष्टि, चक्रवात, समुद्री तूफान, रेगिस्तान विस्तार, भूमि कटाव, अतिवृष्टि आदि समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं अतः इसके संरक्षण पर ध्यान केन्द्रित अति आवश्यक है।

पर्यावरण संरक्षण से तात्पर्य विभिन्न प्राकृतिक संशाधनों के संरक्षण के साथ–साथ पृथ्वी के आस्तित्व को बनाये रखने के विभिन्न उपाय करना है अर्थात् प्रकृति एवं मानव के मध्य दोस्ती का सम्बन्ध ही पर्यावरण संरक्षण है। प्रकृति के प्रेम पूर्ण व्यवहार से ही संरक्षण की मानसिकता का जन्म होता है। पर्यावरण का संरक्षण मानव समाज एवं प्रकृति के बीच के सम्बन्धों को अनुकूलतम बनाने के लिए आवश्यक है। इस प्रकार की अनुकूलता के लक्ष्य को प्राकृतिक संशोधनों के विवेकपूर्ण उपयोग तथा नवीनीकरण द्वारा पर्यावरण को संरक्षित एवं विकसित करके प्राप्त किया जा सकता है इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण से तात्पर्य प्राकृतिक संशाधनो का ऐसा विवेकपूर्ण प्रयोग हो जिसमें नवीनीकरण बाधित न हो, उनका अधिकतम उपयोग हो साथ ही दूसरे कारण कुप्रभावित न हो।

पर्यावरण संरक्षण के लक्ष्य (एम्स ऑफ इनवायरमेंट कन्जरवेशन) पर्यावरण संरक्षण के लक्ष्य से आशय है कि मानव विनाश रहित विकास करे। प्रकृति का विवके पूर्ण प्रयोग पर्यावरण संरक्षण का महत्त्वपूर्ण अंक है। विश्व विकास रिपोर्ट (वर्ल्ड डेवपलमेन्ट रिपोर्ट 1992) में पर्यावरण प्रबन्धन एवं विकास के लिए निम्नलिखित दो आधार बताएं है –

1. ऐसी नीति का निर्धारण जो उत्पादन एवं पर्यावरण में धनात्मक सहसम्बन्ध स्थापित कर अनुचित और असफल नीतियों में सुधार, संशाधन और तकनीकि में संतुलन और लाभदायक आय में विकास का मार्ग प्रसस्त करे।
2. लक्ष्य निर्धारण नीति। इसमें पर्यावरण के दो प्रमुख आधार है –
   1. परिलक्ष्णात्मक उपागम 2. संरक्षाणत्मक उपागम

वन संरक्षण (Forest conservation) – वन पर्यावरण को संतुलित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। अतः इनका संरक्षण आवश्यक है इनके संरक्षण हेतु निम्न उपाय किए जाने चाहिए –

1. वनों की अप्रत्याशित कटाई पर रोक लगाई जाए। यदि आवश्यक हो तो विवेकपूर्ण तरीके से वनो की कटाई की जाए। उन्ही वृक्षों को काटा जाए, जिनमें बीमारी लग गई है।
2. नवीन क्षेत्रों में लगातार वृक्ष लगाए जाए यहां ध्यान देने की बात है कि यहां जिस जाति के वृक्षो के लिए अनुकूल माहौल हो वही उस जाति के वृक्ष लगाएं जाएं, यदि किसी पेड़ काटा जाए, तो वहां उसी जाति के लगभग 10 वृक्षों को लगाया जाएं।
3. मानव स्थानान्तरित कृषि द्वारा बड़े पैमाने पर वनों को नष्ट करता है, अतः स्थानान्तरित कृषि पर प्रतिबन्ध लगाया जाए।
4. वनों की विभिन्न रोगों से रक्षा की जाए इस हेतु विभिन्न कीटनाशक दवाइयों का छिड़काव किया जा सकता है। जो पेड़ रोगी हो उन्हें काट देने चाहिए ताकि अन्य पेड़ों में रोग न लगे।
5. वनों की अप्रत्याशित चरवाहों पर प्रतिबन्ध लगाया जाए। वनों से पशुओं को चराने के बजाए घास बोने की अनुमति हो।

6. वनों को दावाग्नि से बचाया जाए यदि कोई व्यक्ति वनों में बीड़ी या सिगरेट पीता पाया जाए तो ऐसे लोगों के लिए कठोर दण्ड का प्रावधान हो।

आज विश्व के प्रायः सभी देश की सरकारे वृक्षों के संरक्षण की ओर विशेष ध्यान दे रही है। विश्व के प्रायः सभी देशों में वर्ष के किसी दिन अथवा सप्ताह में वृक्षारोपण उत्सव मनाया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, फिलीपीन्स और कम्बोडियो में इस दिन (Arber day), जापान में (Green week) इजराइल में (New years day of tree) आइसलैण्ड में (Student assorestation day) तथा भारत में (Van mahotsav) कहते है। वर्तमान में पर्यावरण संतुलन, वन्य प्राणी संरक्षण, भूमि के कटाव व प्रदूषण की विकटता से सुरक्षा पाने एवं प्राकृतिक संस्थानों को सुरक्षित करने में वनों की महत्ता को समझकर सन् 1960 के पश्चात् से ही तेजी वनों के संरक्षण का नारा बुलन्द किया जाने लगा हैं। यही कारण है कि चीन व भारत जैसे घने बसे देश संयुक्त राज्य अमेरिका व कनाडा जैसे विशाल व विकसित देश ब्राजील व अर्जेन्टीना जैसे विरल जनसंख्या के देश एवं साम्यवादी देश आदि सभी देशों में तेजी से राष्ट्रीय अभ्यारणों के क्षेत्र में एवं संख्या में वृद्धि की जा रही है। मैदानी भागों में 33 प्रतिशत तथा पर्वतीय भागों में 60 प्रतिशत वनों का विस्तार होना चाहिए।

भारत में वन संरक्षण हेतु चिपको आन्दोलन, खेजहड़ी आन्दोलन, तिलाड़ी आन्दोलन एम्पिको आन्दोलन, रूखभाइला आन्दोलन, मैत्री आन्दोलन प्रमुख है।

भारत पर्यावरण प्रबंधन एवं संरक्षण हेतु उपाय –

1. केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड – यह बोर्ड वन पर्यावरण मंत्रालय के अन्तर्गत एक स्वायत्त संस्था है। जल (प्रदूषण नियंत्रण व रोकथाम) अधिनियम, 1974 के प्रावधानों के अन्तर्गत इसकी स्थापना 1974 में की गई। यह राज्य नियंत्रण समितियों की गतिविधियों को समन्वित करता है। इसके साथ–साथ पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम तथा नियंत्रण से संबन्धित सभी मामलों पर केन्द्र सरकार सलाह देता है।

अत्यधिक प्रदूषण वाले उद्योगों के 17 वर्षों की पहचान कर ली गई है – सीमेंन्ट, ताप बिजली संयत्र, शराब बनाने वाले कारखाने, चीनी, उर्वरक, समन्वित लोहा व इस्पात तेल शोधन शालाएँ, लुग्दी एवं कागज उद्योग, पेट्रो रसायन उद्योग, कीटनाशक, चर्मशोधन शालाएं, बुनियादी औषधि एवं भजष निर्माण उद्योग, रंजक और इसके मध्यवर्तियों का निर्माण उद्योग, कास्टिक सोडा तथा जस्ता, तांबा और ऐल्मीनियम प्रणावन उद्योग

राष्ट्रीय वनारोपण एवं विकास बोर्ड – इसके सात केन्द्रीय क्षेत्र हैं – जो विभिन्न विश्वविद्यालय तथा राष्ट्रीय स्तर के संस्थानों में स्थित हैं। ये केन्द्र बोर्ड को नवीन तकनीकि तथा अनुसंधान परिणामों के प्रचार प्रसार में सहायता करते हैं।

1. राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना
2. परिस्थितिकी कार्य बल योजना
3. राष्ट्रीय वना रोपण कार्यक्रम
4. समन्वित वन सुरक्षा योजना
5. राष्ट्रीय वन जीवनकार्य योजना
6. खतरनाक पदार्थों का प्रबन्धन योजना
7. रेगिस्तान को रोकने के लिए राष्ट्रीय कार्य योजना

भारत में पर्यावरण की संवैधानिक स्थिति एवं पर्यावरण संरक्षण के प्रयास भारत में पर्यावरण संरक्षण हेतु अनेक कानून बनाए गए। हमारे देश में सर्वप्रथम 1873 ई. में द नार्थ इण्डियन के नाल एण्ड ड्रनेज एक्ट,1881 में आब्सट्रक्सन ऑफ फेयर वेज एक्ट,1897 में इंण्डियन फिशरीज एक्ट, 1919 में विष अधिनियम, 1923 में इण्डियन बॉयलर्स एंक्ट, 1917 में डिस्ट्रिक्टव एण्ड पेस्ट एक्ट, 1927 में वन अधिनियम, 1946 में बिहार वेस्ट लैण्ड एक्ट पारित किये गये।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान में पर्यावरण के संरक्षण के विभिन्न उपबंधों को स्थान दिया गया। सन् 1946 के संविधान के 42 वें संविधान संशोधन विधेयक द्वारा स्पष्ट किया गया कि राज्य पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्द्धन का प्रयास करेगा और साथ ही वनों एवं वन्य जीव जन्तुओं की सुरक्षा की व्यवस्था करेगा। संविधान के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा एवं वन्य जीवों के जीवन की सुरक्षा भी विहित है। साथ ही प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह सभी जीवित प्राणियों के प्रति दया का भाव रखे।

भारत के संविधान में पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षण के संबंध में 1976 में संविधान के 42 वें अनुच्छेद में राज्य एवं नागरिकों को राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अंतर्गत अधिकार प्रदान किये गये हैं। ये अधिकार संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में निम्न प्रकार से वर्णित है –

अनुच्छेद 47 – यह अनुच्छेद राज्य को मादक पदार्थों एवं हानिकारक औषधियों के उपयोग को कुछ अपवादो के साथ रोकने का निर्देश देता है।

अनुच्छेद 48क – यह अनुच्छेद कहता है कि राज्य देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा उसमें संवर्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 51क – भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा कि –

वह प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करे।

जीव व प्राणियों के प्रति दया करे।

भारत सरकार द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिये बनाये गये नीति अधिनियमों में प्रमुख निम्नलिखित है –

1. वन्य जीवन (सुरक्षा) अधिनियम, 1972
2. जल (प्रदूषण, निवारण और नियंत्रण) अधिनियम 1974
   संशोधित जल निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम, 1988
3. वायु (प्रदूषण, निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981
   संशोधित वायु प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम,1988
4. वन संरक्षण अधिनियम,1980, राष्ट्रीय वनस्पति अधिनियम, 1980
5. पर्यावरण (सुरक्षा) अधिनियम,1986 भारतीय वन नीति 1952, भारतीय संशोधित वन नीति,1988
6. राष्ट्रीय पर्यावरण प्राधिकरण अधिनियम,1995

सतत् विकास – सतत् विकास एक ऐसी अवधारणा है, जो हमें संशाधनों के उपयोग की नयी नीति का रास्ता दिखाती है। इस नीति के अन्तर्गत

1. संसाधनों के उपयोग में कमी करना
2. संसाधनों का पुनर्प्रयोग करना तथा
3. नव्यकरणीय संसाधनों का अधिक प्रयोग करना आता है

विश्व पर्यावरण एवं आयोग के अनुसार – सतत् विकास परिवर्तन की ऐसी प्रक्रिया है जिसमें संसाधनों का दोहन, निवेश की दिशा, प्रौद्योगिकी का विकास और संस्थागत परिवर्तनों के मध्य ताल–मेल होनी चाहिए ताकि मानवीय आवश्यकताओं और अपेक्षाओं को पूरा करने की वर्तमान और भावी क्षमताओं में वृद्धि हो सके।

सतत् पारिस्थितिक विकास – ऐसा विकास जो वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भविष्य की पीढ़ियों में भी इन आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता रखे। इस अवधारणा के माध्यम से वर्तमान के साथ–साथ भविष्य की पर्यावरणीय समस्याओं को संकलित करने का प्रयास किया जाता है। मानव ने भौतिकवादी सुख–सुविधाओं के कारण अपने भविष्य को पर्यावरणीय व्याधियों से अन्धकारमय बना दिया है। अतः यह आवश्यक है कि विकसित व विकासशील देशों में आर्थिक व सामाजिक विकास के उद्योगों को सतत् परिप्रेक्ष्य में निर्धारित किया जाए। सतत्

विकास का रास्ता भौतिक अर्थों में सैद्धान्तिक रूप मे बंधे सामाजिक तथा राजनैतिक स्थितियों में भी अपनाया जा सकता है किन्तु भौतिक सततता तब तक प्राप्त नहीं की जा सकती जब तक कि विकास की नीतियों में स्रोतों की उपलब्धता तथा कीमत और लाभ के समान बंटवारे के परिवर्तनों पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता।

सतत् विकास की योजना के तत्व – पर्यावरणीय विकृति को देखते हुए यह आवश्यक है कि विश्व के देश अपनी वर्तमान विनाशकारी विकास प्रक्रिया के स्थान पर संधारित विकास के मार्ग को अपनायें। सतत् विकास पर आधारित पर्यावरण एवं विकास की नीतियों में निम्नलिखित आवश्यक उद्देश्य समाहित होंगे।

1. वृद्धि की पुनरावृत्ति
2. बुद्धि की गुणवत्ता में बदलाव
3. भोजन, पानी, ऊर्जा, एवं स्वच्छता की मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति।
4. जनसंख्या के संधारणीय स्तर की सुनिश्चितता।
5. सम्पन्न के आधार पर संरक्षण एवं विस्तार।
6. तकनीकी की पुनर्वस्थित तथा आपदा प्रबंन्धन
7. निर्णय निर्धारण में पर्यावरण तथा अर्थशास्त्र का संविलयन।

सतत् विकास हेतु निम्नांकित पर्यावरणीय विकास की प्राथमिकताएं होनी चाहिए –

1. जैव विविधता का संरक्षण।
2. सतत् (टिकाऊ) ऊर्जा श्रोतों का विकास।
3. स्वच्छ प्रौद्योगिकी का विकास तथा वर्तमान प्रौद्योगिकी में सुधार।
4. कृषि एवं पशुपालन का संतुलित विकास।
5. खनिज संशाधनों के उत्खनन एवं उपयोग का नियमन
6. महानगरीकरण का नियमन तथा आदर्श नगरीय अधिवासों का निर्माण।
7. पर्यावरणीय शिक्षा, शोध, प्रशिक्षण तथा नवचेतना को विश्वव्यापी बनाना।
8. उद्योगों के विकास हेतु प्रोद्योगिकी विकल्पों की व्यवस्था।
9. राजनैतिक सद्भावना का विकास।
10. भौतिकवादी जीवन पद्धति के विकल्प की खोज।
11. जनसंख्या सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण।

– सतत् विकास समाधान नेटवर्क ने यह देखने के लिए कि विभिन्न देश 15 साल तक चलने वाले इस अधिनियम के पहले दिन 1 जनवरी सन् 2016 को कहाँ पर खड़े थे। 149 सदस्य देशों के सतत् विकास कार्य सम्पादन की वर्तमान स्थिति के आंकड़े संग्रह करके सूचकांक तैयार किया एवं रैकिंग प्रदान की।
– ये लक्ष्य सतत् विकास के तीन आयामों–आर्थिक विकास, सामाजिक समावेशन और पर्यावरणीय से जुड़े हैं।
– इस सूचकांक से विभिन्न देशों को जल्द उठाये जाने वाले कदमों की प्राथमिकता की पहचान करने तथा लक्ष्य प्राप्त करने के मार्ग तलाशने में मदद मिलेगी।
– 149 देशों में जो देश सतत् विकास में आगे है उनका सूचकांक भी उतना ही अधिक होगा।
– इन देशों में पहले स्थान पर स्वीडन 84.5 अंक, दूसरे स्थान पर नार्वे 83.9 तीसरे स्थान पर डेनमार्क 82.3 अंक चौथे स्थान पर फिनलैंड 81 अंक तथा पांचवे स्थान पर स्वीटजरलैण्ड 80.9 अंक है। अग्रणी होने के बावजूद भी इन देशों का सूचकांक 100 अंकों से कम है अर्थात् इन देशों को भी सतत् विकास की दिशा में बहुत कुछ करना है।
– यूरोप के अन्य देश भी सतत विकास सूचकांक में प्रथम 50 स्थान पर है तथा इनका सूचकांक 65 से अधिक है।

- सूचकांक में अमेरिका 25 वें तथा रूस 47 वें स्थान पर है।
- नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, नीदरलैण्ड, स्विटजरलैण्ड, ब्रिटेन, तथा जर्मनी आदि यूरोप के देश 1995 से ही मानव विकास सूचकांक की रैकिंग में प्रथम पक्ति में अपना स्थान बनाये हुए है। इसलिए वे सतत विकास में भी आगे बढ़े हुए है।
- सतत् विकास में149 देशों में सबसे नीचे अफ्रीका के सेन्ट्रल अफ्रीका रिपब्लिक, लाइबेरिया, कांगो डेमोक्रेटिक रिपब्लिक, नाइजर और चाड ये पाँच देश है। इनका सूचकांक 30 अंक से नीचे है।
- सतत् विकास में भारत 48.4 अंको के साथ रैकिंग क्रम में 110 वे स्थान पर है। भारत उपमहाद्वीप के अन्य देशों की रैकिंग इस प्रकार है – भूटान – 82, श्रीलंका–97, नेपाल–103, भारत–110, पाकिस्तान–115, बंग्लादेश – 118 तथा अफगानिस्तान – 139। भूटान एशिया के मुकाबले अन्य देशों से बेहतर स्थिति में है।
- उभरती अर्थव्यवस्था वाले ब्रिक्स के 5 देशो का सतत् विकास सूचकांक इस प्रकार है – रूस–47, ब्राजील–52, चीन–76 और दक्षिण अफ्रिका –99। इस प्रकार ब्रिक्स देशों में भारत सबसे निचले स्तर पर है।

ये सूचकांक और रैकिंग सतत् विकास लक्ष्य कार्यक्रम की स्थिति इंगित करते है। सतत विकास लक्ष्यों की प्रगति की समय–समय पर समीक्षा की जाती रहेगी तथा प्रगति रैकिंग जारी की जायेगी।

वर्ष 2000 में प्रस्तुत 2001–15 के सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों के प्रारम्भ में भी भारत की सूचकांक रैकिंग इसी प्रकार नीची थी तथा 2015 में भी विभिन्न देशों की तुलना में भारत की रैकिंग नीची रही किन्तु यदि सहस्राब्दि विकास लक्ष्य की 15 सालों में प्रगति को देखे तो भारत की उपलब्धियां उत्साहवर्धक रही है।

निष्कर्ष – यद्यपि पर्यावरण संरक्षण हेतु विभिन्न अधिनियम बनाये गये तथा विभिन्न सम्मेलन व संगोष्ठियां हुई है। फिर भी बहुत संतोषप्रद परिणाम नहीं हमले है। अतः प्रत्येक जन मानस का यह कर्तव्य है कि वह जाने कि प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरण संरक्षण के लिए उत्तरदायी है। अतः पर्यावरण संरक्षण हेतु निम्न तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक है।

1. घरों में ऐसे ईधनों को जलाया जाए जो धुंआ रहित हो अर्थात् परंमपरागत ईधन के स्थान पर सौर ऊर्जा बायोगैस आदि वैकल्पिक स्रोतों को प्रयोग में लाना चाहिए।

निष्कर्ष – जो देश सतत् विकास के लक्ष्यों को पूरा करने के निकट है वे बड़ी अर्थव्यवस्थाएँ नहीं है बल्कि तुलनात्मक रूप से छोटे विकसित देश है गरीब और विकासशील देश संसाधनों की कमी के कारण लक्ष्यों को पूर्ण करने में संतोषजनक प्रयास नहीं कर पा रहे है। सतत् विकास लक्ष्य में सहस्राब्दि विकास लक्ष्य की संरचना आठ लक्ष्यों में प्रथम लक्ष्य अत्यन्त गरीबी एवं भुखमरी उन्मूलन की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुयी। 1991 से 2015 की 25 साल की अवधि में एक डालर प्रतिदिन से कम आमदनी वाले गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले अर्थात् 1.25 डालर प्रतिदिन से कम आमदनी वाले व्यक्तियों की संख्या आधी की जानी थी 1991 में 47% व्यक्ति गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे थे उनकी संख्या तथा प्रतिशत 2011–12 में घटकर 21.9 रह गई थी इस प्रकार गरीबी में कमी का लक्ष्य 2011–12 में प्राप्त कर लिया गया। इसी प्रकार 3 साल से कम आयु वाले कुपोषित बच्चों की संख्या में 50 प्रतिशत कमी लायी गई।

सहस्राब्दि विकास लक्ष्य सूचकांक में 1 से 50 तक के रैकिंग उत्साहजनक मानी जाती है तथा 100 से नीचे की रैकिंग निराशाजनक मानी जाती है। भारत की समग्र रैकिंग 33 थी, जो यह इंगित करती है कि कुल मिलाकर सहस्राब्दि विकास लक्ष्य प्राप्त करने की प्रगति उत्साहवर्द्धक रही है।

❑❑

lkefæd i;koj.k dk orleku e mi;kfxrk

Mk- l t

एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास)

jktdh; egkfo|ky; vdcjiqj] dkuiqj nsgkr

प्रसिद्ध विद्वान मैकाइवर ने लिखा है कि – मनुष्य एक पर्यावरण में जन्म लेता है। उसमें बढ़ता है और प्रौढ़ होता है। उसका सम्पूर्ण शरीर और उसके जीवन की रचना आदि सब कुछ पर्यावरण की उत्पत्ति है। हमारे शरीर की सभी क्षमताएँ पर्यावरण से संबंधित है। मानव अपनी विभिन्न क्रियाओं द्वारा अपनी सुख सुविधाओं के लिए आधुनिक औधोगिक वातावरण का सृजन करके अपने विकास का मापदण्ड प्रस्तुत कर रहा है। विश्व में पर्यावरण क्रान्ति संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा स्टॉकहोम में सन् 1972 में आयोजित मानव पर्यावरण विषय पर किए गए सम्मेलन की संस्तुति से संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम शुरू किया गया। भारत सरकार ने 1972 में राष्ट्रीय पर्यावरण समिति का गठन किया।

01 नवम्बर 1981 में विश्व पर्यावरण नीति निर्धारित की गई। पर्यावरण की सुरक्षा की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करने के लिए विश्वभर में 05 जून को पर्यावरण दिवस मनाया जाता है। 'जल ही जीवन है' भूमण्डल के लगभग 71 प्रतिशत भाग पर महासागरों का विस्तार है। सभी महाद्वीप महासागरों से घिरे हुए हैं और समस्त महासागरीय क्षेत्र एक मिली–जुली इकाई हैं। महासागरीय पर्यावरण में निम्नवत् विशेषताएँ है –

1. महासागरीय जल में उत्पन्न धाराएं तापमान को परिवर्तित करती है।
2. महासागरीय जल में लवणता (35 प्रतिशत) होती है। इसमें सोडियम क्लोरादड, मैग्नीशियम और कैल्शियम लवण होते है।
3. महासागरीय जल में स्थलजात (बजरी, रेत, दोमट) तथा सागरीय निक्षेप (पंक) आदि मिलते हैं।
4. महासागरीय जल गतिशील होता है जिससे लहरें, धाराएं औ ज्वार–भाटे की उत्पत्ति होती है।
5. महासागरीय जल में पौधे और जन्तुओं की अनेक नस्ले पाई जाती है। जिसमें प्रोटोजोआ से लेकर स्तनपायी जीव तक होते है।
6. महासागरीय तटीय पेटी में खाडियाँ, अन्तरीप, लघु निवेशिका, ज्वारनद मुख, जलसंयोती, कंटक आदि, आकृतियाँ कमलती है।

ekuo d fy, egklkxjh; i;koj.k dk mi;kx &

1. महासागर जलवायु को प्रभावित करते है। तापमान समकारी प्रभाव रखते है। वर्षा के मुख्य स्रोत होते हैं।
2. महासागर अर्न्तराष्ट्रीय परिवहन के साधन है।
3. मत्स्य कार्य द्वारा महासागरों में खाद्य सामग्री प्राप्त होती है।
4. महासागर विशाल ऊर्जा के भण्डार है। लहरों और ज्वार–भाटे से जलशक्ति उत्पादित होती है।
5. महासागरों से खनिज पदार्थ एवं रासायनिक पदार्थों की प्राप्ति होती है।
6. महासागर मनोरंजन के साधन है।

egklkxjh; i;koj.k dk ekuo d fy, egÙo &

महासागरीय पर्यावरण मानव के लिए निम्नवत् रुपों में महत्त्वपूर्ण है –

1-egklkxj ,o Hkfe o"kk & जल मानव की पहली और अनिवार्य आवश्यकता है। मानव की इस आवश्यकता की पूर्ति का आदिस्रोत समुद्र ही है। हमारे धरातल पर होने वाली वर्षा महासागरों से भाप के रुप है। महासागरों से भाप के रुप में उठा हुआ जल धरती की प्यास बुझाता है, लोगों की तृष्णा को दूर करता है। पशु–पक्षियों को अमरत्व प्रदान करता है। तथा अनेक प्रकार की वनस्पति एवं फूल–पतियों को मुखरित करता है।

परोक्ष रुप से संसार की गति का कारण समुद्र ही है। वर्षा के विचार से धरातल के जलाशय नदी, तालाब, झीलें आदि नगण्य हैं, क्योंकि सब सूखकर वाष्प के रूप में बदल भी जाऐं तो उनसे होने वाली वर्षा पृथ्वी की औसत वार्षिक वर्षा का पन्द्रहवा भाग ही होगा। अतः धरातल पर जल वितरण का एकमात्र साधन समुद्र ही है।

egklkxj vkj rki ldyu – महासागर से धरातल पर जल ही प्राप्त नहीं होता वरन् वह धरातल को बहुत अधिक गर्म और शीतल होने से भी बचाते है, इस प्रकार समुद्र धरातल पर तापमान का संतुलन बनाए रखते है, अतः इस रूप में महासागरों का महत्व और भी अधिक है, यदि महासागर तापमान संतुलन में योग न दे तो ध रातल के कुछ भाग इतने अधिक शीतल हो उठेगे कि वहाँ किसी भी प्रकार का जीवन असमीव हो जाएगा, समुद्र तापमान के संतुलन में योग न दे तो धरातल के कुछ भाग इतने अधिक शीतल हो उठेगे कि वहाँ किसी भी प्रकार का जीवन असीव हो जाएगा, समुद्र तापमान के संतुलन को दो प्रकार से पूरा करते है, समुद्र का जल स्थल की अपेक्षा धीरे–धीरे गर्म और धीरे–धीरे ठण्डा होता है, समुद्र का जल चंचल है, जिससे समुद्र में लहरें ओर धाराऐं उत्पन्न हो जाती है। गर्म धाराऐं उष्ट कटिबंध के उष्ण जल को शीत कटिबंधों की ओर बहा ले जाती है और ठण्डी धाराऐं शीत कटिबंध के शीतल जल को उष्ट कटिबंधों की ओर ले जाती है। अतः समुद्र ग्रीष्म् ऋतु में स्थल की अपेक्षा ठण्डें और जाड़ों में गर्म रहते है, इसके अतिरिक्त समुद्र से चलने वाली हवाऐं स्थल के तापमान को सम करने में सहायक होती है।

egklkxj ,o eRL; Hk.Mkj & समुद्र मनुष्य को भोजन प्रदान करते हैं, समुद्रों से प्राप्त मछलियाँ लोगों के लिए उत्तम भोजन है। प्रारम्भ से ही मानव समुद्र द्वारा प्रदत्त इस भोजन का आहार करता आया है आज भी मछली संसार के अधिकतम लोगों का मुख्य आहार है ऐसा अनुमान है कि प्रतिवर्ष लगभग 5 प्रतिशत मछलियाँ हिन्द महासागर 47 प्रतिशत अन्ध महासागर और 48 प्रतिशत प्रशान्त महासागर से पकड़ी जाती है, मानव लगभग 200 करोड पॉण्ड की मछलियॉ भक्षण करता है।

egklkxj [kfut Hk.Mkj & समुद्र का खारा जल अनेक रासायनिक तत्त्वों का घोल है समुद्र के जल में घुले हुए खनिज पदार्थों में कम या खनिज पदार्थों में कम या अधिक मात्रा में प्रायः अधिकांश तत्व विद्यमान मिलते हैं, यदि एक घन मील समुद्री जल की छानबीन की जाए तो उसमें अकेला खाने का नमक डेढ अरब टन मिल सकता है मैग्नीशियम लवण इतनी अधिक मात्रा में मिलती है कि वर्षो तक सारे संसार के उपभोग में आता रहे, आयोडीन की मात्रा 5 हजार मन मिलने से फोड़े फुंसी और कटने पर लाखों मनुष्यों का काम निकल सकता है ताँबा तो इतना निकाले कि उसका पतला तार बना लेने पर हम पृथ्वी के चारों ओर लपेट सकते हैं, इसके अतिरिक्त लोहा, सोना–चाँदी भी मिल सकते है। यद्यपि इनकी मात्रा जब की कुल 3.5 प्रतिशत होती है।

egklkxj 'kfDr d lkr & शक्ति के स्रोत के रुप में महासागरों महत्व अतुल्य है। महासागरों से 1. खनिज तेल, 2. गैस, 3. जवार–भाटा ऊर्जा प्राप्त होती है।

[kfut ry & विश्व के खनिज तेलों का लगभग 20 प्रतिशत तेल अपघटीय समुद्री क्षेत्रों से निकाला जाता है। विश्व में सबसे पहले ग्रेट ब्रिटेन के उत्तर पूर्वी तट से पूर्व में उममर 'सागर से खनिज तेल निकालने के प्रयास किये गये। भारत में मुम्बई हाई से खनिज तेल निकाला जाता है। ऐसा अनुमान है समुद्र में 900 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में तेल मुक्त अवसादी शैलें पाई जाती है। तेल के साथ–साथ भारी मात्रा में प्राकृतिक गैस भी उपलब्ध है। खनिज तेल उत्तर सागर, फारस की खाड़ी, मैक्सिको की खाड़ी, मुम्बई हाई कैलिफोनिया के तट पर अपतटीय समुद्रों से निकाला जाता है।

ikÑfrd xl & अनेक समुद्री भागों में तेल के साथ–साथ स्वतंत्र रुप से प्राकृतिक गैस भी मिलती है। ग्रेट ब्रिटेन के उत्तर–पूर्वी तट के निकट उत्तर सागर में हैवेटलेमन वाइकिंग, वेस्टसोल क्षेत्रों में प्राकृतिक गैस निकाली जाती है। भारत में अरब सागर क्षेत्र में प्राकृतिक गैस निकाली जाती है।

Tokj&HkkVk Åtk & महासागरीय क्षेत्र ज्वार–भाटा ऊर्जा का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। महासागरीय जल के ऊपर उठने और नीचे गिरने के कारण शक्ति प्राप्त की जाती है। भारत में तमिलनाडु के समुदी तट पर तथा खम्भात

की खाड़ी के तट पर ज्वार शक्ति बनाई जाती है।

egklkxj&vUrjk"Vªh; O;kikj & आधुनिक सभ्यता का विकास अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा सम्भव है। आज के युग में कोई भी देश स्वावलम्बी नहीं है। प्रत्येक देश एक–दूसरे पर निर्भर है। आज विभिन्न देशों के बीच यह आत्मनिर्भरता और विकसित व्यापारिक सम्बन्ध समुद्री मार्गों के विकास से ही सम्भव हुए है। आज आवागमन के साधनों में कोई ऐसा साधन नहीं है जो समुद्री मार्गों की तुलना कर सके। विश्व का 80 प्रतिशत अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार समुद्रो द्वारा ही सम्पन्न होता है। क्योंकि समुद्री यातायात में अनेक सुविधाएँ उपलब्ध है। क्योंकि 1. समुद्री मार्ग स्वतन्त्र राजपथ है। इनसे दूरस्थ स्थानों पर यात्रा की जा सकती है। 2. इन पर केसी भी प्रकार का खर्च नहीं किया जाता है। 3. यह कर अदि से मुक्त है 4. यह परिवहन का सबसे सस्ता साधन है।

egklkxj vkj tyfo|qr & शक्ति के साधनों में जलशक्ति सबसे महत्वपूर्ण है। कोयला और खनिज तेल समाप्य साधन है। परन्तु समुद्रों के रुप में जलशक्ति कभी भी समाप्त नहीं हो सकती है। समुद्र जलशक्ति के अक्षय भण्डार है। यही नहीं शक्ति के अन्य साधनों की तुलना में जलशक्ति सबसे सस्ती और सरलता से उपलब्ध की जा सकती है, समुद्रों द्वारा जल शक्ति ज्वार–भाटा, जगगति और उसके तापमान में भिन्नता होने से प्राप्त होती है।

वैज्ञानिका का ऐसा अनुमान है कि संसार के भिन्न–भिन्न समुद्रों में आने वालों ज्वार से लगभग बीस अरब अश्वशक्ति उत्पन्न की जा सकती है। आजकल अमेरीका, फ्रांस आदि देशों में शक्ति का प्रयोग किया जाने लगा है। भारत में केरल राज्य एवं लक्षदीप में भी समुद्री ज्वार भाटे से उत्पन्न करने का एक बिजली घर बनाया जा रहा है।

egklkxj ,oa LokLF; ij LFky & समुद्र धरातल की जलवायु पर समान प्रभाव डालता है इसलिए समुद्र तट पर बसे नगर स्वास्थ्य की दृष्टि से सर्वोत्तम स्थान होते है वहाँ न गर्मी अधिक पड़ती है न जाड़े में अधिक ठण्ड, समुद्र तट पर रहने वाले लोग चुस्त, प्रसन्नचित और स्वस्थ हैं, खेलकूद, नौका बिहार, तैरने तथा अनेक दूसरे मनोरंजन के लिए भी समुद्र अद्वितीय स्थान है।

इसके अतिरिक्त समुद्री पर्यावरण से अन्य कई लाभ नहीं है समुद्र के गर्भ में हमें कई प्रकार के मूगे और मोती भी मिलते है इन्हें लोग आभूषणों के रूप में प्रयोग करते है आज संसार में मूंगे और मोती की मांग इतनी अधिक बढ़ गई है कि उसको पूरा करने के लिए कई देश नकली मोती और मूंगे को तैयार करने लगे है मूंगा और मोतियों के अलावा कई तरह के स्पेज, शंख, सीप एवं कोड़ियाँ आदि भी समुद्र के तल से प्राप्त होती हैं। यही नहीं समुद्री मछलियों से तेल भी निकाला जाता है, जो बड़ा ही स्वास्थ्यप्रद होता है यहीं कारण हैं कि कई देशों में कॉडलीवर ऑयल शार्क लीवर ऑयल, हेललीबेट लीवर ऑयल आदि बनाने का धंधा खूब पनपा है।

समुद्र से प्राप्त होने वाली घास भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जानवरों और जल जीवों के लिए यह उत्तम भोजन बनाती है, इस घास का प्रयोग रंग, चटाइयाँ और औषधि के रूप में होता है।

lanHkZ xzUFk

1. योगेश कुमार शर्मा – पर्यावरण, मानव संसाधन और विकास पाइन्टर पब्लिशर्स जयपुर।
2. 'जलवायु परिवर्तन' ए जनर्नल ऑफ एशिया फॉर डेमोक्रेसी एण्ड डेवलपमेट।
3. प्रतियोगिता दर्पण फरवरी 2012।
4. दैनिक समाचार पत्र अमर उजाला।
5. क्रानिकल – विशेषांक
6. पी.डी.शर्मा – पारिस्थिकी एवं पर्यावरण, रस्तोगी पाब्लिकेशन मेरठ।
7. विभिन्न पत्र– पत्रिकाएँ।
8. समसामयिकी महासागर – अक्टूबर 2014

❑❑

चाबहार की महत्ता व भारत

मनोज कुमार
प्रवक्ता–नागरिकशास्त्र
राम पाल त्रिवेदी इण्टर कॉलेज गोसाईगंज, लखनऊ
एवं
पूर्व सदस्य उत्तर प्रदेश मा0 शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, इलाहाबाद

कोई दसेक साल पहले की घटना है। भारत बतौर उपहार अफगानिस्तान को अनाज भेजना चाह रहा था। चूंकि हमारी अफगानिस्तान के साथ कोई सीधी सीमा नहीं जुड़ती, इसलिए अनाज पाकिस्तान के रास्ते भेजने की कोशिश की गई। मगर तब हमारे इस पड़ोसी देश ने अपनी जमीन के इस्तेमाल की इजाजत नहीं दी। एक रास्ता ईरान होकर भी था, मगर इसमें परिवहन लागत तीन गुना तक बढ़ जाती। लिहाजा अनाज को बिस्कुट बनाकर हवाई जहाज से अफगानिस्तान भेजा गया। मगर आज आलम यह है कि पाकिस्तान के किसी सहयोग के बिना ही 1.1 लाख टन गेहूं की पहली खेप अफगानिस्तान पहुंच चुकी है। यह किसी बड़ी उपलब्धि से कम नहीं, और इसका वाहक चाबहार बंदरगाह है। उद्घाटन समारोह में भारत और अफगानिस्तान, दोनों देशों के मंत्री भी मौजूद थे। यह देखकर लगा कि बंदरगाह विहीन देश अफगानिस्तान और अपने पश्चिम में पाकिस्तान से घिरा भारत अब चाबहार के माध्यम से आपस में जुड़ रहे हैं। जाहिर है, अफगानिस्तान की विभिन्न आर्थिक व सामाजिक परियोजानाओं में भारत ने करीब दो अरब डॉलर का जो निवेश किया है, उसमें अब काफी तेजी आ सकेगी।

ईरान इस बंदरगाह के व्यापारिक इस्तेमाल से जहां मजबूत आर्थिक शक्ति बनेगा, वहीं चीन द्वारा पाकिस्तान के तट पर विकसित ग्वादर बंदरगाह के लिए चुनौती भी। मध्य एशिया और पश्चिम एशिया की कूटनीति में सऊदी अरब के नेतृत्व वाले सुन्नी गठबंधन को लगातार चुनौती दे रहा ईरान इस समय किसी को भी आँख दिखाने की स्थिति में है। सीरिया, यमन, लेबनान में अपने सफल हस्तक्षेप के बाद ईरान ने दुनिया को यह संदेश दिया है कि पश्चिम एशिया और मध्य–पूर्व एशिया में उसे कमजोर आंकना ठीक नहीं है। चाबहार होकर भारत को अफगानिस्तान जाने का एक रास्ता मिला है। वहीं अफगानिस्तान का व्यापार भी दुनिया के बाकी हिस्सों से बढ़ेगा। लेकिन सबसे ज्यादा लाभार्थी ईरान होगा। भविष्य में ईरान इसे उत्तर–दक्षिण परिवहन गलियारे से जोड़ेगा जो यूरोप तक जाता है। ईरान की भविष्य की योजना चीन के 'वन बेल्ट वन रोड' के लिए चुनौती है। ईरान दुनिया को यह बताने में कामयाब रहा है कि ओमान की खाड़ी और हिंदी महासागर के मध्य एशिया और यूरोप तक पहुँचने का एक महत्वपूर्ण रास्ता ईरान है। चाबहार चीन के अलावा अमेरिका के लिए भी एक संदेश है। क्योंकि ईरान से खराब संबंध ने अमेरिका को पाकिस्तान पर निर्भर बना दिया। आज भी अमेरिका अफगानिस्तान में नाटो सैनिकों तक सैन्य साजो–सामा पहुंचाने के लिए कराची बंदरगाह पर निर्भर है। अमेरिका की इसी कमजोरी का लाभ पाकिस्तान ने अक्सर उठाया है।

चाबहार के पहले चरण के उद्घाटन ने चीन व पाकिस्तान की चिंता बढ़ाई है। भारत को अफगानिस्तान तक पहुंचने का आसान रास्ता मिल गया है। पाकिस्तान का आरोप है कि भारत चाबहार के रास्ते अफगानिस्तान पहुंच पाकिस्तान को घेरेगा। भारत पाकिस्तान को दोनों सीमाओं पर घेरने की योजना में है। पाकिस्तान और चीन दोनों मजबूरी में चाबहार में घुसपैठ करना चाहते हैं।

चाबहार चीन के लिए कहीं बड़ा धक्का है। एक समय उसने ईरान पर दबाव बनाने की कोशिश की थी कि चूंकि भारत वहाँ सीधे नहीं पहुँच सकता, इसलिए ईरान को चाहिए कि चाबहार उसे सौंप दे। वह ग्वादर व चाबहार,

दोनों बंदरगाहों को संभालने के मंसूबे पाले हुए था। मगर लगता है कि भारत के पश्चिम दोस्तों ने हकीकत समझ ली कि ऐसा होने से चीन तेजी से आगे बढ़ जाएगा। पहले भी ऐसा हो चुका था, जब म्यांमार से एक पाइपलाइन पर भारत विचार कर रहा था, पर म्यांमार पर संयुक्त राष्ट्र के प्रतिबंध के चलते भारत ने देर कर दी और चीन ने वह परियोजना हथिया ली। जबकि परियोजना के गैस क्षेत्रों में 30 फीसदी हिस्सा भारत का था। उधर ईरान संतुलन साधने की रणनीति पर है। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ईरान के प्रति लगातार सख्त हो रहे हैं। सऊदी अरब के दबाव में अमेरिका ने ईरान से हुए परमाणु करार से स्वयं को अलग कर लिया है। यही कारण है कि चाबहार खोलने का मतलब यह नहीं है कि ईरान भारत के प्रति खासा उदार हो गया है। ईरान भारत से अपने संबंधों को व्यावहारिकता के आधार पर तय करेगा। ईरान की व्यावहारिक कूटनीति ने उसे इराक, सीरिया और लेबनान में मजबूत किया। कतर जैसा सुन्नी देश सऊदी अरब से विद्रोह कर ईरान से संबंध बढ़ाने को तरजीह दे रहा है।

भारत, आस्ट्रेलिया, जापान और अमेरिका के चतुर्भुज गठबंधन पर ईरान की नजर है। ईरान खुले पर तौर पर भारत–अमेरिका की बढ़ती नजदीकियों पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दे रहा है, लेकिन व्यवहार में वह भारत को समय–समय पर झटका देने में संकोच नहीं करता। ईरान ने फरजाद बी गैस क्षेत्र से गैस निकालने का अधिकार भारतीय कंपनी ओएनजीसी– विदेश को देने के बजाय एक रूसी कंपनी को दे दिया। कूटनीति के अफगानिस्तान से लेकर मध्य एशिया तक के व्यापारिक रास्ते भारत के लिए ईरान ही खोल सकता है। पाकिस्तान भारत के लिए अफगानिस्तान का रास्ता आज भी खोलने को तैयार नहीं है। ऐसे में भारत के लिए चाबहार के अलावा कोई और दूसरा रास्ता नहीं है। भारत को यह सावधानी बरतनी होगी कि यहां चीन और पाकिस्तान घुसपैठ करने को तैयार हैं। अगर मध्य एशिया और पश्चिम एशिया में भारत को अपने महत्व को बनाए रखना है तो ईरान से संबंध मधुर रखने ही होंगे। सऊदी अरब के तमाम अहसानों के बावजूद पाकिस्तान ईरान से संबंध खराब करने को तैयार नहीं है। पाकिस्तान ईरान के महत्व को समझता है। पाकिस्तान की एक बड़ी सीमा ईरान से लगती है। पाकिस्तान अच्छी तरह जानता है कि इस समय अफगान–तालिबान के कमांडरों की ईरान में काफी घुसपैठ है। अफगान–तालिबान के नेता ईरान के संपर्क में है। इसका खुलासा अमेरिकी मीडिया ने भी किया है।

चीन की चिंता अलग है। चीन–पाकिस्तान आर्थिक कॉरिडोर का एक बड़ा हिस्सा पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रांत में है, जिसकी सीमा ईरान के साथ लगती है। ग्वादर बंदरगाह भी बलूचिस्तान में स्थित है। ईरान से खराब संबंध सीधे चीनी निवेश को प्रभावित करेगा। बलूच विद्रोही पहले ही चीन–पाकिस्तान अर्थिक कॉरिडोर का विरोध कर रहे हैं। यही कारण है कि पाकिस्तान आतंकवाद के खिलाफ सऊदी अरब के नेतृत्व में बने 41 देशों के संयुक्त सैन्य गठबंधन में शामिल होने के बावजूद ईरान से अपने संबंधों को मधुर बनाए हुए है। इस गठबंधन में सीरिया, ईरान और इराक नहीं हैं। ईरान इस गठबंधन का घोर विरोधी है।

अफगानिस्तान भी ईरान की बढ़ती ताकत को समझ रहा है। अफगानिस्तान को पता है कि ईरान शुरू से ही उसके आंतरिक मामलों में दखल देता रहा है। क्वेटा–कंधार–अश्काबाद आर्थिक गलियारा जो पाकिस्तान से अफगानिस्तान के रास्ते तुर्कमेनिस्तान जाता है, वह इस गलियारे पर कब्जा करने की कोशिश पाकिस्तान ने भी की, लेकिन ईरान ने उसे सफल नहीं होने दिया। ईरान समय–समय पर इस गलियारे पर नियंत्रण के लिए स्थानीय अफगान आबादी, तालिबन और अन्य गुटों को आर्थिक और सैन्य मदद देता रहा है। अफगानिस्तान में इस समय ईरान फिर सक्रिय है। हाल ही में पश्चिमी मीडिया में इस तरह की खबरें आई हैं। खबरों के मुताबिक अफगान–तालिबान के लड़ाके ईरानी सेना से प्रशिक्षण ले रहे हैं। वे क्वेटा से सीधे ईरान की सीमा में जाते हैं। उन्हें आर्थिक मदद भी मिलती है। अफगानिस्तान के फरह में नाटो सेना और तालिबान की लड़ाई में मारे गए तालिबानी लड़ाकों के बीच कुछ ईरानी सैनिकों के शव भी मिले। खबरों के मुताबिक अफगानिस्तान के हेलमंड, कंधार, हेरात प्रांतों में ईरानी सैनिक सीधे हस्तक्षेप कर रहे हैं। इसके बावजूद अफगानिस्तान के राष्ट्रपति अशरफ घनी ईरान से

अच्छे संबंधों की वकालत कर रहे हैं, क्योंकि अफगानिस्तान को बाहरी दुनिया से व्यापारिक पहुंच के लिए चाबहार बंदरगाह की जरूरत है। अफगान–पाक संबंध इस कदर खराब है कि पाकिस्तान अफगान सीमा की बाड़बंदी में लग गया है।

चाबहार महज भारत और अफगानिस्तान को जोड़ने का जरिया नहीं है, इसके कई अन्य सुखद नतीजे भी सामने आएंगे। यह मध्य एशिया व उत्तर एशिया की तरफ जाने वाले रास्तों के लिए एक 'डेडिकेटेड पोर्ट' बन सकता है। इससे परिवहन लागत में तो कमी आएगी ही, समय में भी 15–20 दिनों का अंतर आएगा। एक समय में चाबहार एशिया में अमेरिका का सबसे महत्वपूर्ण बंदरगाह माना जाता था। इसे लेकर हमारा भी कोई समझौता हो सकता है, उस समय शायद ही यह ख्याल आया हो। ईरान, अफगानिस्तान, आर्मेनिया, अजरबैजान, रूस, मध्य एशिया व यूरोप के साथ हमारा एक पुराना समझौता 'नॉर्थ–साउथ ट्रांसपोर्ट कॉरिडोर' (उत्तर–दक्षिण परिवहन गलियारा) है, पर इसमें बंदर अब्बास बंदरगाह की बात थी। जबकि बंदर अब्बास काफी भीड़–भाड़ वाला बंदरगाह है। ग्वादर बंदरगाह से चाबहार की दूरी 80 किलोमीटर के आसपास है। ऐसे में, वह ऐसा बंदरगाह बन सकता है, जो भारत की परिवाहन राह आसान कर दे। अब जरूरत इस बात की है कि भारत, अफगानिस्तान और ईरान के बीच कस्टम अथवा आव्रजन संबंधी जटिलताओं को सरल बना दिया जाए इस बंदरगाह का असली व पूरा लाभ हम तभी उठा सकेंगे। इस लिहाज से एक–दूसरे देशों की ट्रान्जिट प्रक्रियाओं को समझना व इसके लिए प्रशिक्षण प्रक्रिया का अपनाया जाना बहुत जरूरी है।

सन्दर्भ संकेत

1. दैनिक हिन्दुस्तान समाचार पत्र
2. दैनिक जनसत्ता समाचार पत्र
3. सहारा दैनिक समाचार पत्र
4. दैनिक नवभारत टाइम्स

❑❑

एक संवेदनशील रचनाकार, कुशल शब्द शिल्पी और समकालीन साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर, समाजसेवी एवं साहित्यकार के रूप में चर्चित सहृदय, व्यवहार में मृदुल तथा लेखन में क्रियाशील, भाषा विज्ञान के मर्मज्ञ सक्रिय विद्वान तथा मन से साहित्यकार डॉ0 रामकमल राय अपने लेखन में मर्यादित सामाजिक संस्कृति के साथ–साथ राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति सजगता के निर्माण की प्रेरणा अपनी रचनाओं के माध्यम से संप्रेषित करते नजर आते हैं। अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक संस्थाओं के अध्यक्ष रह चुके डॉ0 रामकमल राय लेखन की जिजीविषा से सक्रिय रूप से जुड़े रहे। जिसे बनाए रखने के लिए अपने जीवन में अन्तिम समय तक आप सतत, जीवंत एवं सृजनशील रहे। डॉ0 राय की अभिरुचि अनुसंधात्मक के साथ सदैव वैज्ञानिक एवं खोजपूर्ण रही है। चिंतन, मनन में सजग एवं सूक्ष्म दृष्टि रखने वाले डॉ0 रामकमल जी ने सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित ज्वलंत एवं शोध परक लेख अपनी पुस्तकों एवं समसामयिक पत्रिकाओं में लिखे हैं।

- कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

भारत में समावेशी विकास की दशा और दिशा

डॉ0 उत्तरा यादव
एसोसिएट प्रॉफेसर–समाजशास्त्र विभाग
महिला पी. जी. कालेज, लखनऊ

आजकल समावेशी विकास समाचार पत्रों में एक प्रमुख शब्द बना हुआ है, हालांकि इसकी प्रसिद्धि केवल अखबारों की वजह से न होकर, बल्कि नीति निर्माताओं द्वारा इस पर दिए जा रहे जोर के कारण हैं। पूरा राजनीतिक वर्ग भी इस पर ध्यान न दे रहा हैं, जिसका अंदाजा हम आम आदमी और सबका साथ, सबका विकास जैसे प्रभावित करने वाले स्लोगनों से लगा सकते है।

भारत में समावेशी विकास की अवधारणा कोई नही है। प्राचीन धर्म ग्रन्थों का यदि अवलोकरन करें, तो उनमें भी सभी लोगों को साथ लेकर चलने का भाव निहित है। 'सर्वे भवन्तु सुखिना', में भी सबको साथ लेकर चलने का ही भाव निहित है, लेकिन नब्बे के दशक से उदारीकरण की प्रक्रिया के प्रारम्भ होने से यह शब्द नए रूप में प्रचलन में आया, क्योंकि उदारीकरण के दौर में वैश्विक अर्थव्यवस्थओं को भी आपस में निकट से जुड़ने का मौका मिला और अब यह अवधारणा देश और प्रान्त से बाहर निकलकर वैश्विक सन्दर्भ में भी प्रसंगिक बन गई है। सरकार द्वारा घोषित कल्याणकारी योजनाओं मे इस समावेशी विकास पर विशेष बल दिया गया और 12वीं पंचवर्षीय योजना 2012–17 का तो सारा जोर एक प्रकार से त्वरित, समावेशी और सतत् विकास के लद्वय हासिल करने पर है, ताकि 8 फीसद की विकास दर हासिल की जा सके।

क्या है समावेशी विकास?

समान अवसरों के साथ विकास करना ही समावेशी विकास है। दूसरे शब्दों में ऐसा विकास जो न केवल नए आर्थिक अवसरों को पैदा करे, बल्कि समाज के सभी वर्गो के लिए सृजित ऐसे अवसरों की समान पहुँच को सुनिश्चित भी करे, हम उस विकास को समावेशी विकास कह सकते हैं। जब यह समाज के सभी सदस्यों की इसमें भागीदारी और योगदान को सुनिश्चित करता है। विकास की इस प्रक्रिया का आधार समानता है। जिसमें लोगों की परिस्थितियों को ध्यान में नही रखा जाता है। यह भी उल्लेखनीय है कि समावेशी विकास में जनसंख्या के सभी वर्गो के लिए बुनियादी सुविधाओं यानी आवास, भेजन, पेयजल, शिक्षा, कौशल, विकास, स्वास्थ्य के साथ–साथ एक गरिमामय जीवन जीने के लिए आजीविका के साधनों की सुपुर्दगी भी करना है, परन्तु ऐसा करते समय पर्यावरण संरक्षण पर भी हमें पूरी तरह ध्यान देना होगा, क्योंकि पर्यावरण की कीमत पर किया गया विकास न तो टिकाऊ होता है और न समावेशी ही वस्तुपरक दृष्टि से समावेशी विकास उस स्थिति को इंगित करता है। जहां सकल घरेलू उत्पाद की उच्च संवृद्धि दर प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद की उच्च संवृद्धि दर में परिलच्छित हो तथा आय एवं धन वितरण की असमानताओं की कमी आए।

आजादी के 70 वर्ष बीत जाने के बाद भी देश की एक चौथाई से अधिक आबादी अभी भी गरीब है और उसे जीवन की मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी स्थिति में भारत में समावेशी विकास की अवधारणा सही मायने में जमीनी धरातल पर नही उतर पाई हैं। ऐसा भी नही है कि इन छह दशकों में सरकार द्वारा इस दिशा में प्रयास नहीं किये गये, केन्द्र तथा राज्य स्तर पर लोगों की गरीबी दूर करने हेतु अनेक कार्यक्रम बने, परन्तु उचित अनुश्रवण के अभाव में इन कार्यक्रमों से आशानुरूप परिणाम नहीं मिले और कहीं तो ये कार्यक्रम पूरी तरह भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ गए। यही नहीं, जो योजनाएं केन्द्र तथा राज्यों के संयुक्त वित्त–पोषण से संचालित की जानी थीं, वे भी कई राज्यों की आर्थिक स्थिति ठीक न होने या फिर निहित राजनीतिक स्वार्थो की वजह से कार्यान्वित नही

की जा सकीं।

समावेशी विकास ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों के संतुलित विकास पर निर्भर करता है। इसे समावेशी विकास की पहली शर्त के रूप में भी देखा जा सकता है। वर्तमान में हालांकि मनरेगा जैसी और भी कई रोजगारपरक याजनाएं प्रभावी हैं और कुछ हद तक लोगों को सहायता भी मिली है, परन्तु इस आजीविका का स्थाई साधन नहीं कहा जा सकता, जबकि ग्रामीणों के लिए एक स्थायी तथा दीर्घकालिक रोजगार की जरूरत है। अब तक का अनुभव यही है कि ग्रामीण क्षेत्रों में सिवाय कृषि के अलावा रोजगार के अन्य वैकल्पिक साधनों का सृजन ही नही हो सका, भले ही विगत तीन दशकों में रोजगार सृजन की कई योजनाएं क्यों न चलाई गई हों। इसके अलावा गांवों में ढांचागत विकास भी उपेक्षित रहा, फलतःगांवों से बड़ी संख्या में लोगों का पलायन होता रहा और शहरों की ओर लोग उन्मुख होते रहे। इससे शहरों में मलिन बस्तियों की संख्या बढ़ती गई तथा अधिकांश शहर जनसंख्या के बढ़ते दबाव को वहन कर पाने में असमर्थ ही हैं। यह कैसी विडम्बना है कि भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ कहीं जाने वाली कृषि अर्थव्यवस्था निरन्तर कमजोर होती गई और वीरान होते गए, तो दूसरी ओर शहरों में बेतरतीब शहरीकरण को बल मिला और शहरों में आधारभूत सुविधाएं चरमरा गई, यही नहीं रोजी–रोटी के अभाव में शहरों में अपराधों की बाढ़ आ गई है।

वास्तविकता यह है कि भारत का कोई राज्य ऐसा नही है जहां कृषि क्षेत्र से इतर वैकल्पिक रोजगार के साधन पर्याप्त संख्या में उपलबध हों, परन्तु मूल प्रश्न उन अवसरों के दोहन का है, जो सरकार को कृषि में अभिनव प्रयोगों के साथ उत्पादन में बढोतरी सहित नकदी फसलों पर भी ध्यान केन्द्रित करना होगा। यहां पंचायतीराज संस्थाओं के साथ जिला स्तर पर कार्यरत् कृषि अनुसंधान संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है जोकि किसानों से सम्पर्क कर कृषि उपज बढ़ाने की दिशा में पहल करें तथा उनके समक्ष आने वाली दिक्कतों का समाधान भी खोजे तभी 'कृषि' विकास का इंजन बन सकती है। कृषि के बाद सम्बद्ध राज्य में मौजूद घरेलू तथा कुटीर उद्योगों के साथ पर्यटन पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। सरकार को आर्थिक सुधारों के साथ–साथ कल्याणकारी योजनाओं जैसे मनरेगा, सब्सिडी का नकद अन्तरण आदि पर भी समान रूप से ध्यान देना होगा।

भारत की विकास दर, जो वर्ष 2012–13 में पांच फीसद है, पिछले दस वर्षो में सबसे कम है वर्ष 2013–14 की स्थिति भी कोई बहुत अच्छी नही है, भारतीय रिजर्व बैंक ने विकास दर की सम्भावना को घटाकर 5.5 कर दिया है। वर्ष 2002 – 03 में विकास दर चार फीसद थी, लेकिन उस समय भयंकर सूखे की वजह से ऐसा हुआ था, लेकिन इस बार ऐसी कोई बात नहीं है। समावेशी विकास हेतु श्रम बहुल विनिर्माण क्षेत्र को बढ़ावा देना ही होगा। यदि विकास दर 8–9 फीसद प्रतिवर्ष चाहतें हैं, तो विनिर्माण क्षेत्र को 14–15 फीसद प्रतिवर्ष की दर से सतत् आधार पर विकास करना होगा। जपान, कोरिया तथा चीन में विनिर्माण क्षेत्र की स्थिति देखें, तो यह संघ के संघटक रूप में भारत की तलना में काफी अच्छी है।

चीन में जहां यह 42 फीसद, दक्षिण कोरिया में 30 फीसद तो भारत में मात्र 16 फीसद है। कुछ समय पहले घोषित राष्ट्रीय विनिर्माण नीति एनएमपी का उद्देश्य भारत में विनिर्माण क्षेत्र की हिस्सेदारी को 2021–22 तक 16 फीसद से बढ़ाकर 25 फीसद करना और अतिरिक्त 100 मिलियन रोजगार के अवसर प्रदान करना है, इस हेतु भारत के प्राचीनतम श्रम कानून में जो विश्व में सबसे ज्यादा सख्त हैं, संशोधन करना होगा, ताकि वे कामगारों की सुरक्षा के उनकी रोजी–रोटी को भी बचा सके पूर्वी, पश्चिमी तथा दक्षिण क्षेत्रों के समर्पित माल ढुलाई गलियारा डेडिकेटेड फ्रेट कोरिडोर्स का त्वरित कार्यान्वयन करना होगा। स्मरण रहे कि इसमें दक्षता विकास के जरिए जॉब प्रशिक्षण की व्यवस्था है।

विकास की प्रक्रिया में अर्थव्यवस्था

विकास की प्रक्रिया में अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्र (प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक), देश के सभी अंचल (भौगोलिक क्षेत्र) एवं समाज के सभी वर्ग (अमीर तथा गरीब, ग्रामीण तथा शहरी पुरुष–महिला, सभी जातियॅा एवं

संप्रदाय) शामिल हों, तो ऐसा विकास समावेशी विकास कहलाता है।

भारत में विकास समावेशी है अथवा नहीं, इसे निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर समझा जा सकता है–

- भारत में शहरी क्षेत्रों में शीर्ष (top) 10 प्रतिशत लोगों की मासिक प्रतिव्यक्ति खर्च (MPCE) निम्न (bottom) 10 प्रतिशत लोगों के मासिक प्रतिव्यक्ति खर्च से 10 गुना से भी अधिक है। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में भी यह ऑकड़ा 5 गुना से अधिक है। साथ–ही–साथ, यह आकड़ा प्रतिवर्ष बढ़ता ही जा रहा है।
- भारत के शीर्ष 20 प्रतिशत लोगों की आय निम्नतम 20 प्रतिशत लोगों की आय से लगभग 10 गुना से अधिक है।
- भारत की शीर्ष 1 प्रतिशत जनसंख्या के पास भारत की कुल संपत्ति का लगभग 53 प्रतिशत है तथा शीर्ष 10 प्रतिशत जनसंख्या के पास भारत की कुल संपत्ति का लगभग 76 प्रतिशत है।
- भारत में कृषि क्षेत्र में लगभग 50 प्रतिशत जनसंख्या संलग्न है सेवा क्षेत्र का GDP में योगदान लगभग 55 प्रतिशत है।

उपर्युक्त ऑकड़ों से स्पष्ट होता है कि भारत में क्षेत्रीय एवं वर्गीय स्तर पर भारी विषमताएँ व्याप्त हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि भारत में विकास की प्रक्रिया समावेशी नहीं है।

किसी भी देश के आर्थिक–सामाजिक विकास के लिये समावेशी विकास वांछनीय होता है। समावेशी विकास के अभाव में निम्नलिखित प्रभाव देखने को मिलते हैं–

- यदि विकास समावेशी नहीं होता है तो यह संधारणीय नहीं बन पाता है एवं धीरे–धीरे अर्थव्यवस्था का पतन होने लगता है।
- आय के असंतुलित वितरण से धन का संकेद्रण कुल लोगों के पास हो जायेगा, परिणामस्वरूप मांग में कमी आएगी जो GDP की वृद्धि दर को कम कर देगी।
- गैर समावेशी विकास से विभिन्न भागों की विषमता में वृद्धि होती है जिससे वंचित वर्ग विकास की मुख्य धारा में नही आ पाते हैं।
- समावेशी विकास का अभाव समाज के कुछ वर्गो एवं देश के भौगोलिक क्षेत्रों में असंतोष उत्पन्न करता है जिसके परिणामस्वरूप सांप्रदायिकता, क्षेत्रवाद जैसी विघटनकारी प्रवृत्तियों का जन्म होता है।

इस प्रकार समावेशी विकास न केवल आर्थिक आवश्यकता है बल्कि समाजिक एवं नैतिक अनिवार्यता भी। समावेशी विकास के अभाव में कोई भी देश लंबे समय तक अपना विकास नहीं कर पाता है।

समावेशी भारत पृष्ठभूमि

समावेशी भारत, एक प्रयास है राष्ट्रीय न्यास (National Trust) का, देश के बौद्धिक एवं विकासात्मक दिव्यांगताओं से प्रभावित व्यक्तियों को समाज की विभिन्न गतिविधियों में समविष्ट कर एक समावेशी भारत के निर्माण करने का। समावेश (Inclusion) शब्द का अर्थ विभिन्न संदर्भो तथा विभिन्न व्यक्तियों के लिये अलग–अलग हो सकता है किन्तु समावेशी भारत पहल का मुख्य लक्ष्य है बौद्धिक एवं विकासात्मक विकलांगताओं से प्रभावित दिव्यांगजन को समाज की सभी गतिविधियों में पूर्ण हिस्सेदार बनाकर उन्हें आत्मनिर्भरता के साथ एक गरिमापूर्ण जीवन जीने का अवसर प्रदान करना।

इसका अर्थ है कि ये सभी दिव्यांगजन पूर्ण अधिकारों के साथ समाज की प्रत्येक गतिविधि में समान रूप से भाग ले सकें। अन्य व्यक्तियों के समान ये दिव्यांगजन भी अपने सामर्थ्य एवं विशिष्टताओं के आधार पर अपनी पहचान बना सकें। इस अभियान के माध्यम से हम ऐसे समाज की ओर अग्रसर होगें जहॉ विकलांगता से प्रभावित एवं विकलांगतारहित व्यक्ति समान रूप से समाज में रहकर उसकी प्रत्येक गतिविधि का हिस्सा बन सकेंगे।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वर्ष 2006 में जारी घोषणा पत्र (UNCRPD) के लक्ष्यों के अनुसार यह अभियान विकासात्मक एवं बौद्धिक दिव्यांगताओं से प्रभावित व्यक्तियों की विद्यालयों, महाविद्यालयों, समाज तथा कार्यालयों में बराबर की भागीदारी के लक्ष्य को रेखांकित करता है।

समावेशीकरण के बढ़ने से न सिर्फ हमारे दिव्यांगजनों में अपनेपन की भवना का विकास होगा और उनका बल्कि समाविष्ट होकर हमारा समाज अधिक मजबूत एवं सुखद हो सकेगा।

राष्ट्रीय न्यास का उद्देश्य ऑटिज्म, सेरेब्रल पॉल्सी, बौद्धिक एवं बहुविकलांग दिव्यांगजनों के भौतिक, आर्थिक और समाजिक–सांस्कृतिक सशक्तीकरण के लिए काम करना एवं ऐसे वातावरण को बनाना जहाँ बौद्धिक दिव्यांगजनों एवं उनके परिवार के लोगों को सम्मान मिले एवं वे समान रूप से भाग ले सकें।

राष्ट्रीय न्यास का उद्देश्य ऑटिज्म, सेरेब्रल पॉल्सी, बौद्धिक दिव्यांगता तथा बहुविकलांगता के व्यक्तियों के लिये कार्य कर रहा है। दिव्यांगजन सशक्तीकरण विभाग, सामाजिक न्याय व अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन स्थापित इस स्वायत्त संस्था का उद्देश्य है कि मानसिक, विकासात्मक तथा बौद्धिक दिव्यांगताओं से प्रभावित व्यक्तियों की वर्जना न करते हुये समाज समान रूप से उन्हें अंतर्निहित करें।

समावेश : विधिक जनादेश

यू.एन.सी.आर.पी.डी.	सतत विकास लक्ष्य	विकलांग व्यक्ति अधिकार अधिनियम 2016
अनुच्छेद 19 : स्वतंत्र रूप से रहना और समुदाय में शामिल होना।	लक्ष्य 4 : समावेशी और न्यायसंगत गुणवत्ता शिक्षा सुनिश्चित करना और सभी के लिए आजीवन सीखने के अवसरों को बढ़ावा देना।	अनुच्छेद 5: समुदाय में रहने का अधिकार ।
अनुच्छेद 24 : शिक्षा की पहली पसंद के रूप में समावेशी व्यवस्था।	लक्ष्य 8 : रिंतर, समावेशी और सतत आर्थिक विकास, पूर्ण और उत्पादक रोजगार और सभी के लिए उचित कार्य को बढ़ावा देना।	अनुच्छेद 16, 17, 18 सभी शैक्षणिक संस्थानों द्वारा समावेशी शिक्षा प्रदान करना।
अनुच्छेद 30 : सांस्कृतिक जीवन, मनोरंजन, अवकाश और खेल में भागीदारी ।	लक्ष्य 11 : समावेशी, सुरक्षित, लचीला एवं टिकाऊ शहरों और बस्तियों को बनाना।	अनुच्छेद 19 और 20 : समावेशी रोजगार नीतियां, भेदभावरहित रोजगार।
	लक्ष्य 16 : स्थायी विकास, सुलभ न्याय व्यवस्था हेतु शांतिपूर्ण और समावेशी समाजों को बढ़ावा देना एवं सभी स्तरों पर प्रभावी, जवाबदेह और समावेशी संस्थानों को बनाना।	अनुच्छेद 29 और 30 : दिव्यांगजनों के लिए सांस्कृतिक जीवन, मनोरंजक गतिविधियों और खेल गतिविधियोंमें भाग लेने का अधिकार।

समावेशी विकास और शिक्षा

समावेशी शिक्षा के मायने और तरीके

आजादी के बाद से भारत में हुए शैक्षिक व्यवस्था का विकास इस बात की पुष्टि करता है कि भारतीय शिक्षा

ने विभिन्न क्षेत्रीय विविधताओं और भिन्न सीमाओं के बावजूद भी समावेशी शिक्षा के लिए उपकरण के रूप में कार्य किया है। समावेशी शिक्षा से हमारा तात्पर्य वैसी शिक्षा प्रणाली से है जिसमें सभी शिक्षार्थियों को बिना किसी भेद भाव के सीखने सिखाने के समान अवसर मिले, परन्तु आज भी यह समावेशी शिक्षा उस मुकाम पर नही पहुॅची है, जहॉ इसे पहुॅचना चाहिए।

वस्तुतः समावेशी शिक्षा की परिकल्पना इस संकल्पना पर आधारित है कि सभी बच्चों के विद्यालयी शिक्षा में समावेशन व उसकी प्रक्रियाओं की व्यापक समझ की इस कदर आवश्यकता है कि उन्हें क्षेत्रीय, सांस्कृतिक, सामाजिक परिवेश और विस्तृत सामाजिक–आर्थिक एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं दोनों में ही संदर्भित करके समझा जाए। क्योंकि भारतीय संविधान में समता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय एवं व्यक्ति की गरिमा को प्राप्य मूल्यों के रूप में निरूपित किया गया है, जिसका इशारा समावेशी शिक्षा की तरफ ही है।

हमारा संविधान जाति, वर्ग, धर्म, आय एवं लैंगिक आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद का निषेध करता है, और इस प्रकार एक समावेशी समाज की स्थापना का आदर्श प्रस्तुत करता है, जिसके परिप्रेक्ष्य में बच्चे को समाजिक, जातिगत, आर्थिक, वर्गीय, लैंगिक, शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से भिन्न देखे जाने के बजाय एक स्वतंत्र अधिगमकर्ता के रूप में देखे जाने की आवश्यकता है, जिससे लोकतांतिक स्कूल में बच्चे के समुचित समावेशन हेतु समावेशी शिक्षा के वातावरण का सृजन किया जा सके। इस दृष्टि से जब हम समावेशी शिक्षा को देखते है तो यह पाते है कि समावेशी शिक्षा का महत्व एवं आवश्यकता निम्न है।

समावेशी शिक्षा का महत्व एवं आवश्यकता–

- समावेशी शिक्षा प्रत्येक बच्चे के लिए उच्च और उचित उम्मीदों के साथ, उसकी व्यक्तिगत शक्तियों का विकास करती है।
- समावेशी शिक्षा अन्य छात्रों को अपनी उम्र के साथ कक्षा के जीवन में भाग लेने और व्यक्तिगत लक्ष्यों पर काम करने हेतु अभिप्रेरित करती है।
- समावेशी शिक्षा बच्चों को उनके शिक्षा के क्षेत्र में और उनके स्थानीय स्कूलों की गतिविधियों में उनके माता–पिता को भी शामिल करने की वकालत करती है।
- समावेशी शिक्षा सम्मान और अपनेपन की स्कूल संस्कृति के साथ–साथ व्यक्तिगत मतभेदों को स्वीकार करने के लिए भी अवसर प्रदान करती है।
- समावेशी शिक्षा अन्य बच्चों, अपने स्वयं के व्यक्तिगत आवश्यकताओं और क्षमताओं के साथ प्रत्येक का एक व्यापक विविधता के साथ दोस्ती का विकास करने की क्षमता विकसित करती है।

इस प्रकार कुल मिलाकर यह समावेशी शिक्षा समाज के सभी बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने की बात का समर्थन करती है। यह सही मायने में सर्व शिक्षा जैसे शब्दों का ही रूपान्तरित रूप है जिसके कई उद्देश्यों में से एक उद्देश्य है विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा'। लेकिन दुर्भाग्यवश हम सब इसके विस्तृत अर्थ को पूर्ण तरीके से समझने की कोशिश न करते हुए, इस समावेशी शिक्षा का अर्थ प्रमुखता से केवल विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा' से ही लगाते हैं, जोकि सर्वथा ही अनुचित जान पड़ता है, क्योंकि समावेशी शिक्षा का एक उद्देश्य तो विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा' से हो सकता है, लेकिन इसका संपूर्ण उद्देश्य 'विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा' कदापि भी नही हो सकता है।

विद्यालयी शिक्षा और उसके परिसर में समावेशी शिक्षा के कुछ तरीके निम्न हो सकते है–

- स्कूल के वातावरण में सुधार : स्कूल का वातावरण किसी भी प्रकार की शिक्षा में बड़ा ही योगदान रखता है। यह कई चीजों की शिक्षा बच्चों को बिना सिखाए भी दे देता है। अतः समावेशी शिक्षा हेतु सर्वप्रथम उचित तथा मनमोहक स्कूल भवन का प्रबंध जरूरी है। इसके अलावा स्कूलों में आवश्यक साज–सामान तथा शैक्षिक

सहायताओं का भी समुचित प्रबन्ध जरूरी है। बिना इसके विद्यालय में समावेशी माहौल बनाना थोड़ा कठिन होगा।

- दाखिले की नीति में परिवर्तन : रामलाल जी पेशे से किसान है, वे अपने बेटे महेन्द्र (उम्र आठ साल) के साथ दिल्ली के एक स्कूल में नामांकन के लिए जाते है। सामान्य विद्यालय उसे नामांकन से इंकार कर देते हैं ओर उसे अंधे बालकों के लिए संचालित विशेष स्कूल में जाने की सलाह देते हैं, क्योंकि वह चीजों को स्पष्ट रूप से नहीं देख पाता है। अगले दिन रामलाल जब अपने बेटे महेन्द्र के साथ अंधे बालकों के लिए संचालित विशेष स्कूल में नामांकन हेतु जाते हैं, तो वह विद्यालय भी उसके नामांकन से इंकार कर देता है, क्योंकि वह आंशिक रूप से देख सकता था । यह समस्या केवल रामलाल की ही नही वरन् उन करोड़ों माता–पिता की है, जिनके बच्चे महेन्द्र की तरह हैं।

  समाज से इस तरह की कुरीतियों को हटाने और समावेशी शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों को आम जन तक पहुँचाने हेतु विद्यालय के दाखिले की नीति में भी परिवर्तन किया जाना चाहिए। हालाँकि कुछ कानून इसकी वकालत करते हुए दिखाई दे भी रहें हैं, लेकिन धरातल पर इसकी वास्तविकता में संदेह प्रतीत होता है।

- रूचिपूर्ण एवं विभिन्न पाठ्यक्रम का निर्धारण : किसी विद्वान ने सच ही कहा है कि ''बच्चों को शिक्षित करने का सबसे असरदार ढ़ंग है कि उन्हें प्यारी चीजों के बीच खेलने दिया जाए।'' अतः सभी विद्यालयी बच्चों में समावेशी शिक्षा की ज्योति जलाने हेतु इस बात की भी नितांत आवश्यकता है कि उन्हें रूचियों के अनुसार संगठित किया जाये और पाठ्यक्रम का निर्माण उनकी अभिवृत्तियों, मनोवृत्तियों, आकांक्षाओं तथा क्षमताओं के अनुकूल किया जाए। इसके संबंध में विभिन्न शिक्षा आयोगों के सुझावों को भी प्रमुखता से लेने की आवश्यकता है जो इस बात पर जोर देता है कि पाठ्यक्रम में विभिन्नता हो तथा वह पर्याप्त लचीला हो ताकि उसे छात्रों की आवश्यकताओ, क्षमताओ तथा रूचियों के अनुकूल किया जा सके, छात्रों में विभिन्न योग्यताओं, क्षमताओं का विकास हो सके, पाठ्यक्रम का संबंध सामाजिक जीवन से हो, छात्रों को कार्य करने तथा समय का सदुपयोग करने की शिक्षा प्राप्त हो सके।

- प्रायोगिक विधियों का प्रयोग : शिक्षा को लेकर स्वतंत्र भारत के लगभग सभी शिक्षा आयोगों ने शिक्षण में प्रायोगिक विधियों के अधिकाधिक प्रयोग की सिफारिश की है, परन्तु इसका वास्तविक प्रयोग न के बराबर हुआ है। इसके जर्बरदस्त परिणाम इस रूप में सामने आ रहे हैं कि दिन–ब–दिन विद्यालयों का स्तर गिरता ही जा रहा है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि समावेशी शिक्षा हेतु शिक्षकों को इसकी नवीन विधियों का ज्ञान करवाया जाए तथा उनके प्रयोग पर बल दिया जाये।

  समावेशी शिक्षा के लिए विद्यालय के शिक्षकों को समय–समय पर विशेष प्रशिक्षण–विद्यालयों में भी भेजें जाने की नितांत आवश्यकता है।

- स्कूलों का सामुदायिक जीवन का केन्द्र बनाया जाए : समावेशी शिक्षा हेतु यह प्रयास भी किया जाना चाहिए कि स्कूलों को सामुदायिक जीवन का केन्द्र बनाया जाए ताकि वहाँ छात्र की सामुदायिक जीवन की भावना को बल मिलें जिससे वे सफल एवं योग्यतम सामाजिक जीवन यापन कर सकें। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु समय–समय पर विद्यालयों में वाद–विवाद, खेल–कूद तथा देशाटन जैसे मनोरंजक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।

- विद्यालयी शिक्षा में नई तकनीक का प्रयोग : समावेशी शिक्षा के सफल क्रियान्वयन व प्रचार–प्रसार हेतु शिक्षा में नई तकनीक को भी तरजीह दने की अति आवश्यकता है। इनमें शिक्षाप्रद फिल्में, टी0वी0 कार्यक्रम, व्याख्यान, बी0सी0आर0 और कम्प्यूटर जैसे उपकरणों को प्राथमिकता के आधार पर विद्यालय में उपलब्धता और प्रयोग में लाए जाने के क्रांति की आवश्यकता है। इससे भी विद्यालय में समावेशी शिक्षा को लागू करने

में मदद मिलगी।

- मार्गदर्शन एवं समुपदेशन की व्यवस्था : भारतीय विद्यालयों में समावेशी शिक्षा के पूर्णतया लागू न होने के कई कारणों में से एक कारण विद्यालय में मार्गदर्शन एवं समुपदेशन की व्यवस्था का न होना भी है। इसके अभाव में विद्यालय में समावेशी वातावरण का निर्माण नही हो पाता है। अतः समावेशी शिक्षा देने की तरीकों में यह भी होना चाहिए कि विद्यालय में पढ़ने वाले छात्रों और उनके अभिभावकों हेतु आदि से अंत तक सुप्रशिक्षित, योग्य एवं अनुभवी स्व्यक्तियों द्वारा मार्गदर्शन एवं परामर्श प्रदान करने की व्यवस्था होनी चाहिए।

अस्तु समावेशी शिक्षा का उद्देश्य सभी छात्रों के ज्ञान, कौशल, में आत्मनिर्भर बनाते हुए उन्हें भारतीय समुदायों और कार्यस्थलों में योगदान करने के लिए तैयार करना होना चाहिए, किन्तु भारतीय स्कूलों की विविध पृष्ठभूमि और क्षमताओं के साथ छात्रों को शिक्षा की मुख्यधारा में जोड़ने के रूप में समावेशी शिक्षा केन्द्रीय उद्देश्य अधिक चुनौतीपूर्ण हो जाता है, लेकिन हम इन चुनौतियों का मुकाबला शिक्षकों के सहयोग, माता–पिता के प्रयास, और समुदाय से मिलकर करने हेतु प्रयत्नशील हैं।

समावेशी शिक्षा

विकलांग व्यक्तियों के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जारी घोषणा पत्र एवं बालशिक्षा के अधिकारों के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन द्वारा प्रत्येक बालक तथा युवा को अपने बौद्धिक एवं सामाजिक विकास की पूर्ण क्षमताओं को प्राप्त करने के अधिकार को रेखांकित किया है। विद्यालय वह सामाजिक वातावरण प्रदान करते हैं जहॉ बालक तथा नवयुवक अपने साथियों के साथ मिलकर अनेकों चीजें सीखते हैं। अतः बालकों एवं नवयुवकों के बौद्धिक विकास के लिये समावेशी शिक्षा एक अनिवार्यता है। यूएनसीआरपीडी का अनुच्छेद 24 स्पष्ट रूप से शिक्षा के लिए पहली पसंद के रूप में समावेशी तंत्र को रेखांकित करता है। यह शिक्षा के प्रति विकलांग बच्चों के अधिकार को दोहराता है एवं इसके अलावा नियमित शिक्षा प्रणाली में पूर्ण समावेश का लक्ष्य स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है। नियमित प्रणाली में समावेश को शामिल करने के लिए, राज्य सरकारें आवश्यक समर्थन प्रदान करने के लिए बाध्य हैं।

अनुच्छेद 24 में यह भी कहा गया है कि शिक्षा प्रणाली सभी स्तरों पर समावेशी होनी चाहिए। यह विकलांग बच्चों और विकलांग वयस्कों को प्रोत्साहित करता है, जो बचपन में उन अवसरों का लाभ नहीं ले पाये थे। विकलांग बच्चों को गुणवत्ता युक्त और मुफ्त प्राथमिक शिक्षा में शामिल होना चाहिए। एक समावेशी प्रणाली को उचित आवास प्रदान करना चाहिए इसके साथ–साथ निरंतर प्रभावी व्यक्तिगत सहायता जो सभी छात्रों की जरूरतों को पूरा करें।

राष्ट्रीय न्यास के समावेशी शिक्षा के सम्बन्ध में लक्ष्य

1. बौद्धिक और विकासात्मक दिव्यांग बच्चों और वयस्कों के लिए स्कूलों और कालेजों को समावेशी बनाने के लिए बड़े पैमाने पर जागरूकता संबंधी पहल।
2. भारत सरकार के मानव संसाधन विभाग, राज्य सरकारों, कारपोरेट संस्थानों एवं जन हितैषी संस्थाओं के भौतिक ढांचे को चलित उपकरण, सहायक उपकरण, सुलभ जानकारी आदि द्वारा सुगम्य एवं समावेशी बनाना।

समावेशी शिक्षा का परिचय

समेकित शिक्षा का अर्थ – अपने परिवेश में रहते हुए सभी प्रार के विकलांग बच्चों को प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ना समेकित शिक्षा है। समेकित शिक्षा से तात्पर्य प्रचलित शैक्षणिक पद्धति में सामान्य बच्चों के साथ उस वर्ग को जोड़ने से है जो किसी तरह की अक्षमक अथवा विकलांगता के कारण प्रचलित पद्धति के अनुकूल नहीं पढ़ सके या वंचित रह गये। प्रत्येक बालक देश का आने वाला भविष्य है समेकित शिक्षा आज

विश्व पटल पर एक चर्चा का विषय है। समेकित शिक्षा के प्रत्यय का जन्म अथवा सभी विकलांग बच्चों के लिए शिक्षा इस विश्वास का परिणाम है कि शिक्षा मानव का एक मूल अधिकार है और यह व्यक्ति को ही नही बल्कि सम्पूर्ण समाज को एक आधार प्रदान करती है। सभी अधिगमकर्ता शिक्षा का अधिकार रखते हैं चाहेंउनकी वैयक्तिक विशेषताएँ अथवा कठिनाइयाँ कुछ भी क्यों ना हों। समेकित शिक्षा उन समूहों पर विशेषतः ध्यान केन्द्रित करती है जो पूर्व में किन्ही भी कारणों से शैक्षिक अवसरों से वंचित रह गये हों। इन समूहों में वे बच्चें आते है जो गरीबी में रहते हैं, भाषायी अल्पसंख्यता के घेरे में हैं, कुछ सामाजिक बन्धनों में जकड़ी लड़कियाँ, दूरदराज के क्षेत्रों में रहने वाले, किसी अयोग्यता का शिकार या जिन्हें विशेष शैक्षिक सुविधाओं की आवश्यकता रहती है। इसके बाद की श्रेणी में आने वाले बालक शिक्षा एवं समाज दोनों की ही दृष्टि से सीमान्त समूह के सदस्य माने जाते हैं। सामान्यतः इस प्रकार के बच्चे बहिष्कार, भेद–भाव, मुख्य धारा से अलग–अलग संगी साथियों आदि, प्रवृत्तियों के शिकार होते देखे गये हैं। इस प्रकार के बच्चों को अलग कक्षाओं एवं स्कूलों में रखा जाता है। यहाँ तक कि उन्हें किसी भी प्रकार की शिक्षा से ही वंचित कर दिया जाता है स्टीफन तथा ब्लैकहर्ट के अनुसार – ''शिक्षा की मुख्य धारा का अर्थ बाधित (पूर्ण रूप से अपंग नहीं) बालकों की सामान्य कक्षाओं में शिक्षण व्यवस्था करना है। यह समान अवसर मनोवैज्ञानिक सोच पर आधारित है जो व्यक्तिगत योजना के द्वारा उपयुक्त सामाजिक मानकीकरण और अधिगम को बढ़ावा देती है।''

दूसरे शब्दों में, समेकित शिक्षा का अर्थ सभी बच्चों एवं युवकों को बिना किसी भेद–भाव के स्कूलों, कालेजों एवं विश्वविद्यालयों में उचित नेटवर्क की सुविधा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना है। यहाँ हमें ऐसे बच्चों की आवश्यकताओं एवं योग्यताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा प्रणाली,शिक्षा संगठन अथक पाठ्यक्रम में बदलाव लाना होगा। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि जो बालक साथ–साथ पढ़ते हैं वे साथ–साथ रहना भी सीखते हैं। इस प्रकार की सोच इस प्रकार के बच्चों में समरसता का संचार करेगी। इस प्रकार के परिवेश में उत्तम शिक्षा प्रदान करना चुनौतीपूर्ण कार्य अवश्य हो सकता है लेकिन कम महत्वपूर्ण नहीं। क्योंकि यदि हम मानवीय संसाधनों की अनदेखी करते हैं तो ऐसी स्थिति में आर्थिक व अन्य संसाधन भी कोई महत्व नहीं रखेंगें।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के बच्चों की क्षमताओं एवं कमियों का आकलन किया जाये और इस बात का विश्लेषण किया जाये कि क्या समेकित शिक्षा–प्रणाली अपनायी जा सकती है अथवा नहीं । यदि नहीं, तो क्यों? और यदि अपनायी जा सकती है जो प्रत्येक बालक के हित को सामने रखते हुए ऐसे कौन से उपाय एवं तरीके अपनाने होंगे जो इस प्रणाली को प्रभावी बना सकें। समेकित एक ऐसा विषय है प्रत्येक के महत्व का है चाहे वह समाज हो, कक्षा अध्यापक हो, स्कूल प्रबन्धक हो, स्टाफ हो, स्थानीय प्रशासनिक क्षेत्र से सम्बन्धित हो, सामान्य बालकों के अभिभावक हो अथवा अयोग्य बालकों के अभिभावक हों।

भारत में समावेशी शिक्षा की रूपरेखा –

समावेशी शिक्षा केवल एक दृष्टिकोण ही नहीं बल्कि एक माध्यम भी हैं, विशेषकर उन लोगों के लिए जिनमें कुछ सीखने की ललक होती है और जो तमाम अवरोधों के बावजूद आगे बढ़ना चाहते है। यह इस बात को दर्शाता है कि सभी युवा चाहे वो सक्षम हो या विकलांग उन्हें सीखने योग्य बनाया जाए। इसके लिए एक समान स्कूल पूर्व व्यवस्था, स्कूलों और सामुदायिक शिक्षा व्यवस्था तक सबकी पहुँच सुनिश्चित करना बेहद जरूरी है। प्रशिक्षुओं की जरूरतों को पूरा करन के लिए यह प्रक्रिया सिर्फ लचीली शिक्षा प्रणाली में ही सम्भव है। समावेशी शिक्षा प्रणाली है जिसमें मूल्यों, ज्ञान प्रणालियों और संस्कृतियों में प्रक्रियाओं और संरचनाओं के सभी स्तरों पर समावेशी नीतियों और प्रथाओं के माध्यम से सभी नागरिक अधिकारों को प्राप्त किया जाता है। स्कूल शिक्षा (एनसीईआरटी,2005) राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ने रूपरेखा, सामग्री, प्रस्तुति और लेन–देन की रणनीतियों में उचित संशोधन करने के लिए शिक्षकों को तैयार करने और अनुकूल मूल्यांकन प्रक्रिया सीखने के विकास के लिए विशेष शैक्षिक आवश्यकताआं

के साथ शिक्षार्थियों के लिए समावेशी स्कूलों की सिफारिश की है। समावेशी शिक्षा की यह व्याख्या चुनौती देती है। समावेशी विद्यालयों की स्थापना के लिए, जहॉ पर सब एक दूसरे को स्वीकार करें, एक दूसरे का समर्थन करें और एक दूसरे का सहयोग करें। यहीं नहीं, पाठ्यक्रम में स्कूल समुदाय के सदस्यों को भी शामिल किया जाना चाहिए जहॉ पर सबकी जरूरतों को पूरा किया जा सके।

एक ऐसी पारस्परिक पाठशाला जहॉ वयस्कों द्वारा विद्यार्थियों को शिक्षण की गतिविधियों से सम्बन्धित निर्णय लिये जाते है, और इन गतिविधियों से छा़त्रों को सीखने का अवसर मिलता है। अक्सर इसका उद्देश्य अध्यापक और विद्यार्थियों के बीच की कड़ी को जोड़ना है। इस तरह की पाठशाला की धारणा छा़त्रों के ज्ञान रूपी भण्डार को समृद्ध करना है। दूसरी ओर, समावेशी कक्षाओं में ऐसा माहौल है जिससे बच्चों में स्कूली शिक्षा क अलावा अन्य गतिविधियों से जुड़ने का मौका मिले और समाज में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें। इससे जुड़े शिक्षक न केवल छात्रों को आधारभूत शिक्षा मूहैय्या कराएं बल्कि लीक से हटकर इन्हें विषयक निर्देशों, सभी भाषाओं का ज्ञान, आलोचनात्मक दृष्टिकोण से रूबरू कराने, अपनी समस्याओ का निपटाना करने और प्रमाणिक आकलन का अवसर दें। स्कूलों की पहचान वैश्विक समुदाय के युवा नागरिकों को तैयार करने के सामाजिक अनुभव के प्रमुख आयामों में होनी चाहिए। स्कूलों का दायित्व मिश्रित और परस्पर विरोधी होती है। यही कारण है कि समावेशी शिक्षा के लिए चल रहें किसी आन्दोलन में स्थानीय समुदाय की भगीदारी आवश्यक होती है। सीखने वालों की विभिन्नता अपने आप में सीखने का विपुल संसाधन होती है।

सभी समुदायों में सीखने के मौके होत हैं, जरूरत बस शिक्षा फैलाने में उनके बहतर इस्तेमाल की होती है। समावेशन एक बहुत ही अच्छा दर्शन है। वस्तुतः सभी पेशेवर डिग्री को लेकर सहमत दिखते हैं, लेकिनशिक्षा प्रदान करने के उनका तरीका स्कूल दर स्कूल और सच कहें तो शिक्षक दर शिक्षक बदलता रहता है। वन प्लान फिट्स ऑल जैसा कोई हल सम्भव नहीं हो सकता है। फिर भी शिक्षा की कुछ निश्चित रणनीतियॉ हैं जो सामान्य शिक्षा वर्गो के सभी छात्रों की अद्वितीय शैक्षिक, सामाजिक और अनुदेशात्मक जरूरतें पूरी करती हैं।ये रणनीतियॉ जरूरी होती है ताकि समावेशन सैंद्धान्तिक और मूल्यों से भरी प्रक्रिया से होते हुए कक्षा अभ्यास तक में झलके। समावेशन को विभिन्नता के लिए प्रावधान बनाना चाहिए। समावेशन की सफलता शिक्षक के हाथ में निहित होती है जो शैक्षिक बदलाव और स्कूली वातावरण की सर्वश्रेष्ठ कुॅजी है। शिक्षक ही तय नीतियों को लागू करने में अग्रणीय भूमिका निभाते हैं। इसके लिए सोच में बदलाव की जरूरत है। जहॉ शिक्षा से जुड़े सभी सदस्यों को उनमें मतभेद के बावजूद मूल्यवान बनाना होगा। शिक्षकों को इस विश्वास की गांठ बॉध लेनी होगी कि सभी छात्र सीख सकते हैं और विभिन्न पृष्ठभूमि वाले छात्रों की सफलता के लिए योजना बनानी होगी। यह जरूरी है कि शिक्षक कक्षा में विभिन्न योग्यता वाले छात्रों को स्वीकारें, उन्हें पहचाने और उनका उत्साह बढ़ाएँ। दूसरे शब्दों में कहें तो शिक्षकों को चाहिए कि विभिन्नता को स्वीकारते हुए कक्षा में बच्चों को सिखाने के मामले में जिसकी जैसी जरूरत उनको वैसी शिक्षा के सिद्वान्त को बढावा दें एक समावेशी कक्षा में प्रभावी शिक्षण के माध्यम से अलग पृष्ठभूमि और जरूरतों के साथ शिक्षण रणनीतियों की मॉग को समायोजित कर सकते हैं।

एक समावेशी समायोजन में समूह और विश्वास की महान भावना आती है क्योंकि भिन्न आयु के बच्चें सहयोग के वातावरण में आगे बढ़ते है न कि प्रतिस्पर्धा की भवना से। इससे पता चलता है कि उचित संसाधनों और अनुभवों के साथ सावधानी से बनाई गई योजना सभी बच्चों के लिए जरूरी है। मुख्य धारा के स्कूलों में भरोसे के वातावरण को बढ़ाने और परस्पर सम्बन्धों को बढ़ावा देने के लिए रणनीतियों की शिक्षा देना बेहद लाभकारी साबित होता है।

समावेशी शिक्षा : समय की मॉग

''ऐसा समाज, जिसमें बच्चों और युवाओं की शिक्षा की दृष्टि नहीं है और वह इसके लिए तैयार भी नही है तो वह खत्म हो जाने को अभिशप्त है।''

शिक्षा हर बच्चे का अधिकार है और इसी के बूते वह जीवन की चुनौतियों से जूझने में समर्थ होता है। निःशक्त बच्चों को इसकी जरूरत और भी ज्यादा है, ताकि वे अपनी विविध प्रतिभाओं को शिक्षा के बल पर प्रतिपूरित करते हुए अपना जीवन खुशनुमा उत्पादक और उपयोगी बना सके। औपचारिक शिक्षा के अलावा निःशक्त बच्चों को दूसरे कई मुद्दों जैसे–समाज का नजरिया, रोजगार के अवसरों की अनुपलब्धता और स्वास्थ्य जैसी समस्याओं से भी जूझना पड़ता है। ये मुद्दे देश–विदेश सहित संयुक्त राष्ट्र के मंचों पर भी समय–समय पर उठाए जाते रहे हैं। इसे व्यापक तौर पर महसूस किया गया है कि निःशक्त बच्चों और वयस्कों को मुख्यधारा में लाने के लिए अभी काफी कुछ किया जाना बाकी है।

भारत का संविधान यह सुनिश्चित करता है कि प्राथमिक शिक्षा हर बच्चें का मौलिक अधिकार है शिक्षा पर बनी हमारी राष्ट्रीय नीति के अनुसार हमारी राष्ट्रीय अवधारणा मे शिक्षा अनिवार्य रूप से सबके लिए है। यह संवेदनशीलता और अवधारणाओं को परिष्कृत करती है, जिसकी राष्ट्रीय समभाव बनाने, वैज्ञानिक अभिरुचियाँ विकसित करने और मन और आत्मा की मुक्ति में बड़ी भूमिका है। देश के सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय ने निःशक्त जनों के लिए भी एक राष्ट्रीय नीति तैयार की है। इस नीति से यह स्पष्ट होता है कि निःशक्त लोग भी हमारे मूल्यवान मानव संसाधन हैं और इसके तहत ऐसा माहौल तैयार किया जाए ताकि उन्हें समान अवसर उपलब्ध हो उनके अधिकारों की रक्षा हो और समाज और समुदाय में उनकी सम्पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित की जा सके। इस नीति में स्वाभाविक रूप से निःशक्त बच्चे भी शमिल हैं।

निःशक्त बच्चों के लिए विभिन्न प्रकार के स्कूली विकल्प उपलबध हैं।

अनौपचारिक शिक्षा के तहत राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय संस्थान में दाखिले और इन्दिरा गॉधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के माध्यम से दूरस्थ शिक्षण आदि शिक्षण के व्यवहारिक माध्यम हो सकते है।

उन बच्चों की घर की घर पर ही शिक्षा, जिनका दाखिला स्कूल में तो हुआ है, लेकिन वे विविध कारणों जैसे–चलने में या स्वयं के काम करने में असमर्थ होने के कारण नियमित रूप से विद्यालय नहीं जा पाते हैं। कुछ विकसित देशों में परिवार ऐसे बच्चों को घर पर ही पढ़ाने का विकल्प चुनते हैं, लेकिन भारत में अधिकांशतः ऐसा प्रचलन में नही है। समावेशी शिक्षा प्राथमिक तौर पर स्कूली संस्कृति, नीतियों और व्यवहारों का नाम है।, जो स्थान विशेष के विविधतापूर्ण छात्रों से सीधी जुड़ी है। इसकी दृष्टि में व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान प्राथमिकता नहीं है बल्कि यह शिक्षण की प्रक्रिया को मजबूती देने और बदलाव को स्वीकार करने में सक्षम बनाती है। समावेशी शिक्षा छात्राों को भागीदारी की निरन्तरता में सशक्त बनाने का अभियान है, जिसमें निःशक्त बच्चे भी शमिल हैं। इस प्रक्रिया में विविध स्तरों पर काम किया जाना शामिल है जिसमें निःशक्त बच्चों के शिक्षण के लिए विद्यालय की कक्षा के शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया में सुधार शामिल है।

समावेशी शिक्षा के लिए पहल और योजनाएँ

भारत सरकार ने आपरेशन ब्लैकबोर्ड जैसे कई कार्यक्रमों का सूत्रपात किया है, लेकिन उनमें से अधिकांश आधारभूत संरचना, बालिका शिक्षा और अनुसूचित जाति/जनजाति छात्रों की शिक्षा पर ज्यादा केन्द्रित हैं। कुछ कार्यक्रम जैसे निःशक्त बच्चों के लिए समन्वित शिक्षा और जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम जैसे कार्यक्रमों की भी शुरूआत की गई है, जिसमें कम सफलता मिली।

भारत ने 30 मार्च, 2007 को यूएन कन्वेशन ऑन द राइट्स ऑफ पर्सन्स विद् डिसएबिलिटी (यूएनसीआरपीडी) पर हस्ताक्षर किया था । यह हस्ताक्षर के लिए उसी दिन जारी भी हुआ था भारत एक अक्टूबर, 2007 को कन्वेशन को अपना समर्थन दिया और निःशक्त बच्चों सहित सभी को समान अवसर देने का संकल्प दुहराया। कन्वेशन के आर्टकिल 24 के अनुसार सरकार ने कानून में संशोधन के लिए कई कदम उठाए हैं ताकि यूएनसीआरपीडी के प्रावधानों के अनुसार निःशक्त लोगों के अधिकारों में सन्तुलन बनाया जा सके । सामाजिक न्याय और अधिकार

मन्त्रालय द्वारा निःशक्त मामलों का एक नया विभाग बना दिया गया है ताकि निःशक्त लोगों की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित कर उनका समाधान निकाला जा सके। विभाग वर्तमान योजनाओं पर ध्यान देने, नयी योजनाओं का सूत्रपात और तकनीकी अनुसन्धान में भी मदद करता है। हालांकि इनके क्रियान्वयन में भी कई चुनौतियां है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय की प्रमुख योजना सर्वशिक्षा अभियान ने यह लक्ष्य सुनिश्चित किया है कि छह से चौदह साल तक के निःशक्त सभी बच्चों की आठ साल तक प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा सुनिश्चित की जा सके।

निःशक्त बच्चों के लिए समन्वित शिक्षा योजना के तहत 4 से 14 वर्ष के बीच के बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान है। भारत में बड़ी संख्या में गैर – सरकारी संगठन निःशक्तता के खिलाफ काम कर रहे हैं और सरकार ने इन गैर–सरकारी संगठनों के माध्यम से ढांचागत सुविधाओं के क्रियान्वयन और शैक्षिक कार्यक्रम में नवाचार के साथ समावेशी शिक्षा को जोड़ा है। सरकारी विद्यालयों के अलावा कुछ निजी विद्यालय भी समावेशी शिक्षा को स्वैच्छिक तरीके से बढ़ावा दे रहे, लेकिन ऐसा शहरों में ही देखा जाता है। नेशनल ट्रस्ट भी निःशक्त लोगों को मूलभूत सहायता और छात्रवृत्ति प्रदान करता है। समावेशी शिक्षा की आधारभूत परिकल्पना यही है कि समन्वित समूह के लोगों, चाहें वे सामान्य हों या निःशक्त, सभी को समान अवसर दिए जाएं ताकि वे अपनी–अपनी समस्याओं के साथ बिना किसी कठिनाई के अध्ययन कर सकें।

समावेशी शिक्षा के प्राथमिक लक्ष्य – समावेशी शिक्षा के प्राथमिक लक्ष्य निम्न हैं–

- बच्चों को बिना किसी भेद–भाव के सर्वश्रेष्ठ दिया जाए।
- बच्चों को समुचित और समृद्ध माहौल मिले।
- बच्चों में क्षमताएँ विकसित करने में मदद दी जाएं। ताकि वह आत्मनिर्भर बन सकें।
- बच्चों में समाज के प्रति समारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता दी जाए।

आवश्यक घटक – कक्षा में समावेशी शिक्षा के क्रियान्वयन में शिक्षक प्रशिक्षण और विद्यालयी नेतृत्व आवश्यक घटक है। यह आवश्यक है कि शिक्षकों को निःशक्त बच्चों की विशिष्ट जरूरतों के प्रति संवेदनशील बनाया जाए और उन्हें निःशक्तता को पहचानने के प्रति सशक्त बनाया जाए। इसके लिए स्कूली पाठ्क्रम मे प्रभावी शैक्षिक सेवाओं, सहायक उपकरणों, उम्र के अनुकूल कक्षाएं, बाधा मुक्तमाहौल, पड़ोस में स्कूल की उपलब्धता और भागीदारी, व्यावसायिक प्रशिक्षण, खेल और सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रावधान शामिल किए जायेंगे। निःशक्त बच्चों के अर्थपूर्ण समावेशन के लिए शिक्षकों को चाहिए कि वे कक्षाओं की परिस्थितियों के अनुरूप उचित कदम उठाएं।

चुनौतियाँ – कुछ प्रमुख चुनौतियाँ इस प्रकार हैं :–

- मनोवृत्ति की बाधाएँ।
- विद्यालय और कार्यस्थल पर प्रणाली में बदलाव का न होना और प्रशिक्षित मानव संसाधन की कमी, नीतियों और कानूनों का निष्प्रभावी क्रियान्वयन ।
- असंवेदनशीलता और जागरूकता का अभाव।
- सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक और भाषाई विविधता के कारण कार्यक्रम विकास अवरोध।
- फण्ड की कमी, चिन्हित करने के तरीकां का अभाव और आंकड़ों के संग्रहण का अभाव।
- बाधा–मुक्त विद्यालय भवन बनाने में मात्रात्मक और गुणवत्तापूर्ण विकास की निगरानी और आंकलन का अभाव ।

हालांकि इस दिशा में सरकार ही प्राथमिक कर्ता है, फिर भी कई गैर –सरकारी संगठन और निजी संस्था समावेशी शिक्षा के प्रसार में महत्वपूर्ण भमिकाएँ निभा रहें हैं। देश में कई संस्थान हैं, जिन्होंने समन्वित और समावेशी

शिक्षा को सफलतापूर्वक कियान्वित करके दिखया है।

समावेशी शिक्षा की धीमी गति का कारण वस्तुतः कई किस्मों की कठिनाइयों का होना है। इसके लिए केन्द्र और राज्य सरकारों को ज्यादा सुस्पष्ट विचार सामने लाने की आवश्यकता है। यह यात्रा आसान नही है। लेकिन यह इस बात का प्रकटीकरण है कि निःशक्त बच्चों को न सिर्फ समाज की मुख्यधारा में लाने की जरूरत है, बल्कि उन्हें समानता और गौरवपूर्ण जीवन जीने के लायक बनाना भी सम्भव है।

सभी विद्यालयों के निहितार्थ सुझाव – समावेशी शिक्षा के प्रभावी तरीके से क्रियान्वित करने के लिए निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखा जाना जरूरी है–

- विशेष जरूरतों वाले बच्चों के लिए समुचित परिवहन सुविधाएँ और समर्थ बनाने वाला महौल।
- माता–पिता जिज्ञासु, शिक्षक, निर्णय लेने वाले और वकील की भूमिका में हों।
- अंतरक्रियात्मक और मनोरंजक कक्षाएँ।
- शैक्षिक भार कम करने के लिए लचीले पाठ्यक्रम का विकास।
- लैंगि क और सामाजिक विभेदों का उन्मूलन।
- समुचित शिक्षण और अध्ययन सामग्री का विकास।
- विद्यालय–पूर्व और प्राथमिक शिक्षा में अंतर्संबन्ध स्थापित करना।
- प्रचुर संसाधनों का प्रावधान।

सफल समावेशन के लाभ – सफल समावेशन के निम्न लाभ है :–

- विद्यार्थी एक–दूसरे की विशिष्ट ताकतों और क्षमताओं को प्रोत्साहन देना सीखते हैं।
- छात्रों को एक–दूसरे की सहायता करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।
- निःशक्त छात्र प्राकृतिक सहयोगी और प्रोत्साहन पूर्ण वातावरण में मित्रता को प्रेषित करना सीखते हैं। सामान्य छात्रों को निःशक्त छात्रों के लिए सकारात्मक अभिवृत्ति विकसित करने का अवसर मिलता है। आत्मप्रवाह और उपलब्धि की भावना स्वतः उभर आती है।
- छात्र एक–दूसरे से सर्वाधिक अच्छे तरीके से सामाजिक व्यवहारों को सीखते है।

संक्षेप में, आगे का रास्ता नीति नियंताओं और प्रमुख एजेन्सी के लिए समूह में काम के साथ बहुविध तरीके अपनाने, समावेशीकरण सुनिश्चित करने, विद्यालयों में दाखिला बढ़ाने, सहायक उपकरणों, जैसे'– वाचाल संगणक, परीक्षओं में छूट, परीक्षा प्रणाली में सुधार, प्रशिक्षकों का प्रशिक्षण, कानून की मजबूती और भरपूर संसाधनों की उपलब्धता से होकर ही जाता है इन सभी को क्रियान्वित करते हुए, समावेशी शिक्षा हालॉकि कठिन है, लेकिन इसे सम्भव बनाया जा सकता है। लिया एफ बुस्कॉग्लिया के अनुसार – हम कई बार स्पर्श की शक्ति, एक मुस्कान, एक सुन्दर शब्द सुनने वाले कान, एक ईमानदार शुभेच्छा अथवा देखभाल की छोटी कोशिशों का कम आंकलन करते है, जबकि इन सबमें जीवन को बदलने की क्षमताएँ है।

समावेशी विद्यालयी वातवरण – भारत में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा से जुड़े प्रावधानों की प्रवृत्ति यह दर्शाती है कि 1970 से पहले प्रमुख नीतियों का झुकाव 'पृथक्करण' या अलग किए जाने की ओर था। 1980 के दशक में मिशनरियों ने सहानुभूति के आधार पर शारीरिक व मानसिक रूप से चुनौती वाले बच्चों के लिए अलग से विद्यालय शुरू किए। इसके बाद अलग से कार्यशालाओं, मॉडल स्कूलों, केन्द्रीय ब्रेल प्रेसों की शुरूआत हुई। 1990 के दशक मे 'सलमांका' में हुए विश्व सम्मेलन के बाद इंक्ल्यूसन शिक्षा के क्षेत्र मे जादुई शब्द बन गया। भारत सरकार द्वारा निःशक्त जन विधेयक–1995 लाया गया, जिसके द्वारा समान अधिकार, अधिकार संरक्षण और पूर्ण सहभागिता के अन्तर्गत सम्मिलित शिक्षा (समन्वित) को समाज के सामान्य स्कूलों में क्रियान्वित करने का प्रावध

ान दिया गया।

जीवन को आगे बढ़ाने के लिए परिवर्ततन अनिवार्य है और इस परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम है, शिक्षा। शिक्षा सामाजिक ढॉचे में ऊर्ध्वमुखी गतिशीलता को प्रोत्साहित कर समाज के विभन्न भागों के बीच के अन्तर को कम करने में सहायता करती है। भारत में शिक्षा से जुड़ी नीतियों में कई महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं। ये सभी बदलाव बच्चों के लिए बेहतर प्रावधानों एवं व्यवहारों के रूप में प्रकट हुए है जैसे कि 'इंक्ल्युसिव शिक्षा'।

''पृथक्करण या अलगाव न तो शारीरिक और मानसिक रूप से चुनौती वाले विद्यार्थियों के लिए अच्छा है और नही सामान्य विद्यार्थियों के लिए। सामाजिक आवश्यकता यह है कि विद्यार्थियों को अन्य दूसरे विद्यार्थियों के साथ इंक्ल्यूसिव स्कूलों में पढ़ाया जाना चाहिए। ये स्कूल प्रभावपूर्ण एवं सशक्त शिक्षा शास्त्रीय व्यवहार वाले होते हैं।''

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2000 और पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2005 ने भी 'इंक्ल्युसिव शिक्षा' पर विस्तार से प्रकाश डाला है और इसे एक महत्वूपर्ण राष्ट्रीय आवश्यकता के रूप में देखा हैं। शिक्षा मानक यूके आफिस, 2003 ने 'इंक्ल्यूजन' को – ''मुख्यधारा के विद्यालयों में विशेष आवश्यकता प्राप्त बच्चो को उनके अन्य सहपाठियों के साथ शिक्षा प्रदान करने की प्रक्रिया'' माना है।

इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण प्रश्न इस प्रकार है :–

- क्या सभी स्कूल विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को दाखिला देने की असलियत में रूचि प्रकट करते हैं अथवा मात्र 'आदेश' के पालन की औपचारिकता दिखते है?
- क्या स्कूलों का वातावरण (भौतिक एवं भावनात्मक) ऐसे बच्चें को स्वीकार करने के लिए पूरी तरह से तैयार है।
- क्या विशेष आवश्यकता वाले बच्चे 'इंक्ल्यूसिव शैक्षिक वातावरण में स्वयं को पूरी तरह से सहज सुरक्षित महसूस करते है।''
- क्या शिक्षकों ने भावनात्मक तौर पर उन्हें स्वीकार करने की चेष्टा की है?
- क्या शिक्षकों ने सामान्य विद्यार्थियों के साथ–साथ उन्हें पढ़ाने की विशेष तकनीकों का प्रशिक्षण लिया है?
- क्या विद्यालय के प्रत्येक सदस्य में उनके प्रति संवेदनशीलता, सकारात्मक दृष्टिकोण व व्यवहार करने की प्रवृत्ति का विकास हो पाया है?
- क्या कक्षा व विद्यालय परिसर में उपलब्ध खेल एवं अन्य उपकरण विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की जरूरतों को सम्बोधित करते है?
- क्या विद्यालय के अकादमिक स्टाफ के अलावा दूसरे कर्मचारियों का रवैया इन बच्चों के प्रति सकारात्मक है?
- क्या सामान्य विद्यार्थियों के अभिभावकों में भी इन बच्चों की जरूरतों और इंक्ल्युजन के प्रति जागरूकता है?
- क्या व्यवस्थागत तन्त्र (शिक्षण तकनीक, कक्षागत वातावरण, सहायक शिक्षण सामग्री, आकल प्रक्रिया) स्वयं को इंक्ल्युजन के लिए तैयार कर पाया है?

उद्देश्य – निम्नलिखित उद्देश्य प्रमुख है –

- विद्यालयी व्यवस्था में जैंडर और विकलांगता को आपसी सम्बन्ध और विभेद को समझााना।
- विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के सन्दर्भ में लड़कियों और विशेषकर पैरों से अशक्त लड़कियों की शारीरिक तथा भावनात्मक जरूरतों को समझना।
- अपेक्षित वातावरण स्थापित करने के लिए उचित मॉडल का चुनाव करना।
- पेशेवर मानवीय सेवाओं विशेष शिक्षा, वाक् चिकित्सा (स्पीच थैरेपी), शारीरिक चिकित्सा, रिक्रिएशन थैरेपी और व्यवसायिक पुनर्वास आदि के बारे में सीखने – समझने के लिए तत्परता विकसित करना।

निष्कर्ष, अनुशंशाएँ एवं संस्तुतियाँ – समावेशी शिक्षा एवं सफलता हेतु निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना होगा –

(1) बुनियादी ढॉचागत सुविधाएँ – यह आवश्यक है कि विद्यालयी इमारत के रंग–रूप, कक्षाओं का आकार–प्रकार, शौचालयों के प्रावधान पर ध्यान दिया जाय। रोनाल्ड मैके नाम आर्कीटेक्ट ने ऐसे बच्चों के लिए यूनिवर्सल डिलाइन की अनुशंसा की है। विद्यालय भवन को यूनिवर्सल डिजाइन के आधार पर बनाने से तात्पर्य है–भिन्न–भिन्न क्षमता वाले बालकों के लिए सुविधा, उपयोग में लचीलापन, कम से कम शारीरिक प्रयास और अंततः सौंदर्यानुभूति भी। दरवाजों की चौड़ाई अधिक हों, रैंप का प्रावधान हो, ऊपर – नीचे के स्तर कम हों, जो है भी वे अलग रंग के नजर आएँ, चॉक बोर्ड तक जाने की सुविधा हो, खिडकियों तक आसान पहुँच हो, उचित प्रकाश हो, विपरीत रंगों का इस्तेमाल हो, शौचालयों तक पहुँच सहज व सरल हो, कमोड की व्यवस्था आवश्यकतानुसार हो और स्वच्छता का भी नियमित प्रावधान हो। नुकीली सतहों, असमतल सतहों, चुँधियाने वाले प्रकाश व्यवस्था से बचा जाए।

(2) विद्यालयी पूर्व कार्यक्रम – विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शुरूआती अवस्था में ही पहचान बहुत महत्वपूर्ण है, ताकि जिंदगी में चुनौतियों का सामना करने योग्य बनाया जा सके। अतः इस विषय पर संवेदनशीलता तथा अभिभावकों, माता–पिता एवं अन्य प्रशिक्षण व्यवस्था आवश्यक है। 'नेशनल सैंपल सर्वे ऑर्गनाईजेशन' 2001 के अनुसार ग्रामीण परिवारों के 8.4 प्रतिशत एवं शहरी परिवारों के 6.1 प्रतिशत परिवारों में कम से कम एक विकलांग व्यक्ति मौजूद है। अतः प्रारंभिक बाल्यवस्था शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत ऑगनवाड़ी कार्यकर्ताओं संस्थानागत अधिकारियों का प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। संसाधनों का प्रावधान एवं बच्चों के अपने वातावरण को पहचानने, उसमें सहभागिता दर्ज करने की जरूरत है। इस स्तर पर चिकित्सा संबंधी सुविधाओं का भी प्रावधान संभव करवाया जाए।

(3) दृष्टिकोण परिवर्तन – चुनौतीपूर्ण बच्चों को सामान्य विद्यालयों में शामिल किए जाने से संबंधित चाहें कितने भी प्रावधान क्यों न बना लिए जाएँ, यदि अध्यापकों एवं विद्यालय में मौजूद अन्य कर्मचारियों का दृष्टिकोण उनके प्रति समारात्मक नहीं है, तो इन प्रावधानों की उपस्थिति किसी भी संदर्भ में मायने नहीं रखती। अतः आवश्यक है कि विद्यालयी व्यवस्था में मौजूद प्रत्येक व्यक्ति प्रशासनिक अधिकारी, विद्यालय प्रमुख, सीखने – सिखाने की प्रक्रिया से जुड़े व्यक्ति, लिपिक, प्रयोगशाला सहायक, सफाई कर्मचारी, चौकीदार, विद्यालय के बाहर मध्यावकाश में खान–पान की वस्तुएँ बेचने वाले व्यक्ति सभी के दृष्टिकोण का सकारात्मक होना अनिवार्य है।

(4) विशेष प्रावधान – नामांकन के पश्चात् आवश्यकता है विशेष प्रावधानों की, ऐसे प्रावधान जो उन्हें यह तो एहसास कराएँ ही कि वे बहुत महत्वपूर्ण हैं, साथ ही आने–जाने, पठन–पाठन सामग्री से जुड़ी सुविधाओं को भी प्रदान करें।

(Intrgrated Education for Disabled Children, IEDC) द्वारा निम्नलिखित प्रावधान दिए जाने की बात कही गई है–

- पुस्तकों व स्टेशनरी के लिए रू0 400.00 प्रति सत्र।
- वर्दी इत्यादि पर रू0 200.00 प्रति सत्र।
- आने–जाने के लिए रू0 50.00 प्रति माह।
- नेत्रहीन विद्यार्थी के संबंध में पढ़ने वले पाठक साथी के लिए रू0 50.00 प्रतिमाह।
- यह सुविधा कक्षा–5 के बाद आरम्भ होती है।
- शरीर के निचले हिस्से से गम्भीर विकलांगता की स्थिति में प्रतिदिन साथ आने वाले व्यक्ति के लिए रू0 70.00 प्रति माह का प्रावधान है।
- यदि किसी विशेष उपकरण की आवश्यकता है तो रू0 2000.00 का 5 वर्ष की अवधि में एक बार प्रावधान है। अतः जरूरी है कि प्रशिक्षण कार्यक्रमों के द्वारा यह सुनिश्चित किया जाए कि सभी अध्यापक इन प्रावधानों,

सुविधाओं और नियमों के बारे में जाने और उनका पूरा–पूरा लाभ लाभार्थियों तक पहुँचाने की भावना विकसित करें।

(5) शिक्षण पद्धतियॉ – यह भी सत्य है कि विविधिता वाले समूह को कैसे पढ़ाया जाए, इस बारे में स्पष्ट तौर पर सर्वश्रेष्ठ पद्धतियॉ हमारे पास नहीं हैं, तथपि यह भी एक सार्वभौमिक सत्य है कि प्रभावशाली शिक्षक अध यापन प्रक्रिया के दौरान शिक्षार्थी की आवश्यकताओं के अनुसार अपनी शिक्षण पद्धतियों एवं शिक्षण व्यवहार में आशानुकूल परिवर्तन ले आते हैं।

अतः प्रशिक्षण कार्यक्रमों–पूर्व सेवा एवं अंत सेवा द्वारा विविधतापूर्ण समूह को संबोधित करने वाली युवतियों के संदर्भ में शिक्षकों की क्षमता विकसित की जाए सर्वप्रथम तो इस प्रकार का दृष्टिकोण विकसित किया जाना जरूरी है कि भले ही पाठ्यचर्या एक समान हैं, पर विद्यार्थियों के समूह विशेष के लिए शिक्षण व्यवहार तथा अनुभव देने की पद्धतियॉ भिन्न–भिन्न हो सकती हैं।

कुछ शिक्षक इस तरह का तर्क देते है कि कक्षाओं में मौजूद बहुत सी बातें उन्हें शिक्षण व्यवहार को अपेक्षित एवं वांछिनीय रूप से बदलने की प्रक्रिया में आड़ें आती है। स्थिति चाहे जैसी भी हो, सकारात्मक दृष्टिकोण रखनेवाले अध्यापक कुछ इस तरह की रणनीतियॉ अपना लेते हैं, जो प्रत्येक स्थिति में विद्यार्थी के लिए मददगार सिद्ध होती है। जैसे –समूह शिक्षण, साथी शिक्षण, बोलने की गति को धीमा करना, स्पष्ट उच्चारण बोलते समय विशेष रूप से उन विद्यार्थियों की ओर देखना जो कमजोर श्रवण शक्ति वाले हैं या फिर इस प्रकार की कई और जरूरत रखते हैं। कक्षा प्रबंधन की तकनीकों में मामूली –सा भी फेरबदल करके कक्षा को इंक्ल्युसिव कक्ष बनाया जा सकता है।

(6) चुनौतीपूर्ण बच्चों की भूमिका – यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि चुनौतीपूर्ण विशेष आवश्यकता वाले बच्चे गतिविधि विशेष में ही भाग ले सकते हैं। इस बात को एक चुनाती के रूप में स्वीकार करना चाहिए कि उन्हें सभी गतिविधियों में कैसे सम्मिलित किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर – बागवानी में वे खुदाई–गुढ़ाई अगर नही कर सकते तो उन्हें योजना संबंधी कार्य सौंप देना चाहिए। वे योजनाएँ बनाएँगे कि कौन –सी पौध लगाई जाए और कौन से बीज खरीदे जाएँ? निगरानी का काम भी उन्हें दिया जा सकता है।

(7) शैक्षिक जरूरतें और ह्यूमन राईट मॉडल – यह सभी मनुष्य कुछ निश्चित अधिकारों के साथ जन्म लेते हैं। उसमें कुछ विशेष आवश्यकता वाले बच्चे भी शामिल होते हैं। इन सबके अधिकारों को केवल इस आध ाार पर हनन नहीं किया जा सकता कि वे विकलांग/अशक्त हैं अपितु उन्हें पोषित करना मौजूदा स्कूली व्यवस्था का दायित्व है।

निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखकर ही इंक्ल्युसिव शिक्षा की धारणा को पुख्ता बनाया जा सकता है–

- सुलभता।
- तर्क–संगत समायोजन।
- निजी और सार्वजनिक स्वतंत्रताएँ।
- समानता और गैर विभेदीकरण।
- विविधता।
- समान भागीदारी और समावेश।
- पूर्वाग्रह रहित दृष्टिकोण।
- सभी प्रारंभिक शिक्षा व देखभाल कार्यक्रम।
- प्रवेश प्रक्रिया, स्क्रीनिंग, पहचान, अभिभावकों से व्यवहार, चुनाव और मूल्यांकन द्वारा प्राइवेट स्कूलों को शामिल करते हुए उत्पन्न की जाने वाली बाधाओं की समीक्षा।

- इंक्ल्युसिव वातावरण में कार्य करने के लिए अध्यापकों की क्षमता का निर्माण।
- स्कूल के विद्यार्थियों के लिए अनुकूल लचीला पाठ्यचर्या का निर्माण। इन विद्यार्थियों में वे विद्याार्थी शामिल हैं जो संज्ञानात्मक व गैर–संज्ञानात्मक दोंनों ही क्षेत्रों में विकलांग/कमजोर हैं।
- सभी शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों को इंक्लूसिव कक्षा के लिए आवश्यक शिक्षाशास्त्रीय कौशल के विकास हेतु तैयार करना।
- विशेष स्कूलों को इंक्ल्युसिव स्कूलों के सहयोग उपलब्ध कराने हेतु संसाधन केन्द्र की भॉति तैयार करना/विकसित करना।
- कक्षा अध्यापक को कक्षा के सभी विद्यार्थियों के प्रति जिम्मेदार बनाना।
- इंक्ल्युसिव दर्शन पर आधारित कार्यक्रमों की योजना बनाने व लागू करने के लिए स्कूलों के प्रधानाचार्यो सहित सभी प्रशासनिक अधिकारियों में दृष्टिकोण व कौशल विकसित करना।
- बच्चों में स्वावलबंन, स्वतंत्र जीवन कौशल, समीक्षात्मक चिंतन, निर्णय लेने की क्षमता, समस्या का समाधान करने तथा इनसे जुड़ी बातों को संबोधित करने की क्षमता को विकसित करना ।
- सीखने वाले की विविधता को स्वीकारना, कमजोर श्रवण शक्ति वाले बच्चों के लिए संकेत भाषा व कमजोर दृष्टि वाले बच्चों के लिए ब्रेल को सिखाने/बताने के माध्यम शामिल करने चाहिए। इसी के साथ एक वैकल्पिक विषय/तृतीय भाषा के रूप में संकेत भाष, ब्रेल, फिंगर ब्रेल के सीखने को सभी विद्यार्थियों के लिए प्रस्तुत करना चाहिए।
- इंक्ल्यूसिव वातावरण में शिक्षा को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए सभी शिक्षक कार्यक्रमो को पुनर्संरचित करना।
- एक इंक्ल्युसिव समाज की आवधारणा व बहुलता के प्रति सम्मान पैदा करने के लिए यह जरूरी है कि शिक्षक, शिक्षा कार्यक्रमों व पाठ्यचर्या ढॉचों में मानवाधिकारों की शिक्षा के तत्व को शामिल किया जाए।
- किसी भी विकलांग बच्चे से प्रवेश, परीक्षा छात्रवृत्ति जैसी सहायता सेवाओं को पाने के लिए सर्टीफिकेट के बारे में नही पूछा जाएग।

इंक्ल्युसिव शिक्षा में संभावना मौजूद है कि वह उस इंक्ल्यूसिव समाज की नींव बन सके, जिसमें अलग कहे जाने वाले लोगों को समान रूप से स्वीकार्य सम्मान व महत्ता दी जाती हो। विद्यालय इस इच्छित व कठिन प्रक्रिया को शुरू करने का प्रथम अवसर है। यह कठिन इसलिए है, क्योंकि यह अभिभावकों, अध्यापकों एवं अन्य बच्चों की आंशकाओं एवं डर से भरा हुआ है।

समेकित शिक्षा की आवश्यकता – समेकित शिक्षा की आवश्यकता निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट की जा सकती है :–

1. सभी बालक एवं युवा चाहें वह किसी भी जाति, धर्म, सम्प्रदाय, योग्य, अयोग्य से सम्बन्ध रखते हों उन्हें सफल अधिगमकर्ता, आत्म–विश्वासी, उत्तरदायी नागरिक, समाज में सार्थक योगदान प्रदान करने के रूप में अपनी क्षमताओं का विकास करने के अवसर प्रदान किये जाने चाहिए।
2. यह वह स्थान है जहॉ किसी भी प्रकार के भेद–भाव की गुजाइंश नहीं है, प्रत्येक का अपना विशेष महत्व है और इस नाते संगी–साथियों, स्कूल व समाज को उसके व्यक्तित्व का सम्मान करना चाहिए तथा उसकी शैक्षिक आकांक्षाओं की पूर्ति करनी चाहिए।
3. शिक्षक वर्ग को भी यह विश्वास दिलाना चाहिए कि वे बच्चों के साथ किसी प्रकार का विभेद नही करेंगे तथा स्कूल में सौहार्द का वातावरण बनायेंगे तथा ऐसे बालकों की सहायता के लिये सदैव तत्पर रहेंगे।
4. समेकित शिक्षा प्रत्येक बालक को मुख्य धारा में लाने हेतु प्रतिबद्ध है, और इस दृष्टि से सभी बालकों को

आगे बढ़ने के समान अवसर उपलबध कराये जायेगें।

5. बच्चों, युवा एवं प्रौढ़ों को मुख्य धारा से विलग कर उन्हें अलग स्कूल में रखना हमारी ऋणात्मक सोच का परिचायक है। इस प्रवृत्ति पर अबिलम्ब अंकुश लगाने की आवश्यकता है तथा यह स्वयं में मानवाधिकार से भी जुड़ा प्रश्न है।

6. हमें यह आभास कराना होगा कि सभी मानव प्राणियों को एक दूसरे की आवश्यकता पड़ती है और इस दृष्टिकोण को साकार करने में समेकित शिक्षा मॉडल प्रभावी भूमिका निभा सकता है।

7. यह तथ्य सर्वविदित है कि विविधता सभी प्रकार की जीवन्त प्रणालियों में शक्ति का संचार करती है जो समेकित शिक्षा का एक अंग है।

8. अभिभावकों एवं माता–पिता को समेकित शिक्षा का प्रत्यय स्पष्ट करना जिससे वे अभी तक अनभिज्ञ है।

9. समेकित शिक्षा के माध्यम से सम्पूर्ण शिक्षा–प्रणाली को एक नया कलेवर प्रदान करना ताकि हम शिक्षा की दृष्टि से स्वयं पटल पर स्थापित कर सके।

10. विशिष्ट शिक्षा में मानसिक जटिलता मुख्य है। अपंग बालक अपने आपको दूसरे बालकों की अपेक्षा तुच्छ तथा हीन समझते हैं जिसके कारण उनके साथ पृथकता से व्यवहार किया जा रहा है, समावेशी शिक्षा–व्यवस्था में, अपंगों को सामान्य बालकों के साथ मानसिक रूप से प्रगति करने का अवसर प्रदान किया जाता है। प्रत्येक बालक सोचता है कि वह किसी भी प्रकार से किसी अन्य बच्चे से तुच्छ रहा है। इस प्रकार समावेशी शिक्षा पद्धति बालकों की सामान्य मानसिक प्रगति को अग्रसर करती है।

11. अपंग बालकों में कुछ सामाजिक गुण बहुत संगत होते है। जब वे सामान्य बालकों के साथ शिक्षा पाते है। अपंग बालक अधिक संख्या में सामान्य बालकों का संग पाते हैं तथा एकीकरणता के कारण वे सामाजिक गुणों को अन्य बालकों के साथ ग्रहण करते हैं। उनमें सामाजिक, नैतिक गुण प्रेम, सहानुभूति, आपसी सहयोग आदि गुणो का विकास होता है। विशिष्ट शिक्षा–व्यवस्था में छात्र केवल विशिष्ट ध्यान ही नही परन्तु विस्तार में शिक्षण तथा सामाजिक स्पर्धा की भावना विकसित होती है।

समावेशी शिक्षा की विशेषताएँ (महत्व) – समावेशी शिक्षा की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैः–

1. इसमें सभी बालक साथ–साथ सामान्य कक्षा में शिक्षा ग्रहण करते हैं। अपंग बालकों को कुछ अधिक सहायता प्रदान की जाती है। इस प्रकार समावेशी शिक्षा अपंग बालकों के पृथक्ककरण के विरोधी व्यावहारिक समाधान है।

2. समावेशी शिक्षा का विकल्प नहीं हैं। समावेशी शिक्षा तो विशिष्ट शिक्षा का पूरक है।

3. इस शिक्षा का ऐसा प्रारूप दिया गया है जिसमें अपंग बालक को समान शिक्षा के अवसर प्राप्त हो तथा वे समाज में अन्य लोगों की भांति आत्मनिर्भर होकर अपना जीवनयापन कर सकें।

4. यह अपंग बालकों को कम प्रतिबन्धित तथा अधिक प्रभावी वातावरण उपलब्ध कराती है जिससे वे सामान्य बालकों के समान जीवनयापन कर सकें।

5. यह समाज में अपंग तथा सामान्य बालकों के मध्य स्वस्थ सामाजिक वातावरण तथा सम्बन्ध बनाने में समाज के प्रत्येक स्तर पर सहायक है। समाज में एक–दूसरे के मध्य दूरी कम तथा आपसी सहयोग की भावना को प्रदान करती है।

6. यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत शारीरिक रूप से बाधित बालक भी सामान्य बालकों के समान महत्वपूर्ण समझे जाते है।

7. यह अपंग बालकों को उनके व्यक्तिगत अधिकारों के रूप में स्वीकार करती है।

8. अपंग बालकों के जीवनयापन के स्तर को ऊँचा उठाने तथा उनके नागरिक अधिकार को यह शिक्षा सुनिश्चित करती है।
9. शारीरिक अपंग बालकों को समावेशी शिक्षा–व्यवस्था विशिष्ट शिक्षण के मध्य, अपंग बालकों के द्वारा मानसिक समस्याओं का सामना करने से छुटकारा दिलाती है।
10. समावेशी शिक्षा अध्यापकों, शिक्षाविदों तथा माता–पिताओं के सामूहिक प्रयास पर आधारित है।
11. समावेशी शिक्ष–शिक्षण की समानता तथा अवसर जो अपंगों को अब तक नहीं दिये गये उनकी मूल रूप से शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक आयाम है।
12. समावेशी शिक्षा आर्थिक दृष्टि से व्यक्ति पर बोझ नहीं डालती। इस प्रकार यह मितव्ययी है।
13. समावेशी शिक्षा एकीकरण की प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाती है।
14. समावेशी शिक्षा विशिष्ट शिक्षा का एक नवीन प्रगतिशील स्वरूप है।
15. समावेशी शिक्षा में जीवन के सभी क्षेत्रों में सभी प्रकार के बालकों को एक समान देखा जाता है।
16. समावेशी शिक्षा का आधार अधिकांशतः मनोवैज्ञानिक है।
17. समावेशी शिक्षा समानता के सिद्धान्त पर आधारित है।
18. समावेशी शिक्षा समान्य शिक्षा के कुछ विशिष्ट प्रयोजन उपलब्ध कराती है।
19. समावेशी शिक्षा के माध्यम से चयनित स्थानापन्न किया जा सकता है।
20. समावेशी शिक्षा के अर्न्तगत विभिन्न विद्वानों, विशेषज्ञों शिक्षाविदों, मनोवैज्ञानिकों, चिकित्सकों को आमन्त्रित कर उनके बहुमूल्य विचारों से इस दिशा में अपेक्षित परिणाम प्राप्त किये जा सकते है।

समेकित शिक्षा के सिद्धान्त –

समेकित शिक्षा उस स्थिति में सम्पन्न होती है जब योग्य एवं अयोग्य दोनों प्रकार के बालक एक साथ उसी कक्षा में अध्ययन करते हैं। शेष कार्यो ने यह सिद्ध कर दिया है कि ऐसी स्थिति में अच्छी चीजें देखने को मिलती है। मात्र दोनों को एक साथ बैठा देने से अच्छे परिणाम प्राप्त नही होते है। अच्छे परिणाम तभी प्राप्त होते हैं जब दोनों में सक्रिय भागेदारी होती हैं, योजना बनाते हैं, सहयोग करते हैं तथ प्रतिबद्धता जाहिर करते हैं।

समेकित शिक्षा की गुणवत्ता निम्न सिद्धान्तों पर आधारित हैः–

(1) सभी बच्चे एक समान – समेकित शिक्षा इस सरल सिद्धन्त पर आधारित है कि सभी बच्चे तथा परिवार एक समान हैं तथा सभी को समान अनुभव एवं अवसर प्राप्त होने चाहिये। समेकित शिक्षा अयोग्य बच्चों के हितार्थ है जो इनमें कम है या अधिक, स्पष्ट या छिपी हुई। यह दोस्ती करने, समूह बनाने आदि से सम्बन्धित है जिसमें वे सब सुविधायें मिलें जो प्रत्येक को मिलती हैं।

(2) सीखने के अलग–अलग तरीके – समेकित का सम्बन्ध उस सहायता से है जो बच्चों को सार्थक तरीके से सीखने एवं विभिन्न कार्यो में भाग लेने में मदद करती है। कभी–कभी दोस्तों तथा शिक्षकों द्वारा प्रदान की गई सहायता बहुत अधिक सहायक सिद्ध होती है। दूसरे अवसरों पर विशेष तौर पर तैयार की गई सहायक सामग्री एवं तकनीकी भी लाभप्रद होती है। सार रूप में हम कह सकते है कि बालक को अधिक से अधिक सहायता प्रदान करने का प्रयास करना चाहिए।

(3) प्रत्येक बालक का अधिकार – समेकित शिक्षा बालक का अधिकार है किसी प्रकार का उपकार नहीं। इस बालक अपने हमउम्र साथियों के साथ चाहें वे समर्थ हो या असमर्थ, सामान्य शिक्षा पाठ्यक्रम के प्रति उतनी ही पात्रता रखते हैं जितना कि अन्य कोई। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसे बालकों को मुख्य धारा से अलग करके नहीं देखा जा सकता ।

(4) व्यक्तिगत विभिन्नता पर आधारित – कुछ छात्र अन्य छात्रों की तलना में अधिकांश गुणों की दृष्टि से सर्वथा भिन्न होते हैं जिनका शिक्षा के प्रति विशेष झुकाव व रूचि होती है। ऐसे छात्रों की आवश्यकताएँ विशिष्ट शिक्षा के माध्यम से पूरी करनी चाहिए। अतः ऐसे छात्रों की पहचान की जानी चाहिए जो इस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता अनुभव करते हैं ताकि उन्हें दी जाने वाली शिक्षा का उपयुक्त स्वरूप निश्चित किया जा सके। साथ ही, ऐसे छात्रों की समय–समय पर व्यक्तिगत कठिनाइयों, समस्याओं एवं प्रगति का भी आंकलन करते रहना चाहिये।

(5) सहज, सजीव एवं सौहार्दपूर्ण वातावरण – जहाँ तक सम्भव हो सके इस प्रकार के बालकों के लिये इस प्रकार के वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिये जो सहज, सजीव एवं आनन्ददायक हो। इस प्रकार की व्यवस्था की जानी चाहिए। इन बालकों को स्वस्थ वातावरण प्रदान किया जा सके तथा सभी बालक मिल–जुलकर सौहार्दपूर्ण वातावरण में शिक्षा ग्रहण कर सकें। साथ ही अध्यापकों को भी इनके साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करना चाहिये तथा इनकी व्यक्तिगत समस्याओं में रूचि लेकर उन्हें आत्मीयता के धरातल पर सुलझाना चाहिये।

(6) सहज, सजीव एवं सौहार्दपूर्ण वातावरण – इस प्रकार के बालकों को शिक्षा प्रदान करने में विद्यालय को विशिष्ट प्रकार की कार्य–प्रणाली अपनानी चाहिये। परम्परागत रूप से विद्यालय जो सामान्य कार्य–प्रणाली अपनाता चला आ रहा है, हो सकता हैवह कार्यप्रणाली इन बालकों की दृष्टि से सार्थक सिद्ध न हो। अतः स्कूल प्रबन्धन व सम्बन्धित लोगों को इस तत्य का बारीकी से अध्ययन कर विद्यालय की कार्य–प्रणाली में उन महत्वपूर्ण नीतियों एवं प्रणालियों का समावेश करना चाहिये जो इनके शिक्षा ग्रहण करने के मार्ग को सहज रूप से प्रशस्त कर सके।

(7) अध्यापकों एवं अभिभावकों की भूमिका – इस प्रकार की शिक्षा में अध्यापकों की भूमिका एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अध्यापकों एवं अभिभावकों के सहयोग के बिना इस प्रकार के बालको की शिक्षा को प्रभावी स्वरूप प्रदान नही किया जा सकता। इस दृष्टि से एक ओर अध्यापकों को जहाँ ऐसे बच्चों के साथ विनम्रतापूर्वक, स्नेहपूर्ण, अपनत्व भरे व्यवहार का परिचय देना चाहिए तथा उनकी आवश्यकताओं को गम्भीरतापूर्वक लेकर यथासम्भव समाधान खोजना चाहिये वहीं दूसरी ओर अभिभावकों को भी ऐसे बच्चों के साथ किसी प्रकार का भेदभाव, दुर्व्यवहार या अपेक्षा का भाव प्रदर्शित नहीं करना चाहिये तथा यथासम्भव उन्हें प्रसन्नचित एवं आत्मविश्वासी बनाये रखने के प्रयास करने चाहिए।

समेकित शिक्षा को प्रभावी बनाने हेतु सुझाव – समेकित शिक्षा को प्रभावी बनाने की दृष्टि से निम्नांकित कदम उइाये जाने चाहिए :–

- समेकित शिक्षा का प्रारम्भ एक ही छत के नीचे सामान्य बालकों तथा असमर्थ बालकों हेतु विभिन्न कार्यक्रम आयोजित कर करना चाहिए।
- स्कूली प्रोग्राम को इस प्रकार आयोजित किया जाना चाहिए जिससे दोनों प्रकार के बालक उनमें आसानी से भाग ले सके।
- योजना बनाते समय दूसरे विषय–विशेषज्ञों को भी आमंत्रित किया जाना चाहिए।
- इस सम्बन्ध में एक व्यापक समिति का निर्माण किया जाना चाहिए जो समेकित शिक्षा के हर पहलू पर ध्यान दें।
- प्राचर्यो, अध्यापकों एवं अभिभावकों की एक समन्वय समिति का निर्माण किया जाना चाहिए जो मिल–जुलकर इस दिशा मे कार्य करें।
- राज्य स्तर पर विद्धत्जनों का एक नेटवर्क तैयार किया जाना चाहिये जो इस क्षेत्र से जुड़ें अनुसन्धान कार्यो को व्यावहारिक रूप प्रदान कर सकें।

- बच्चों के भावनात्मक विकास हेतु तथा उनके व्यवहार में गुणात्मक सुधार हेतु अभिनव प्रयास किये जाने चाहिए।
- सामाजिक समर्थन जुटाने की दृष्टि से मनोरंजक क्लब, समूह आदि की व्यवस्था की जानीचाहिए।
- स्कूल छोड़ देने के बाद भी शैक्षिक जगत से जुड़ी संस्थाओं को बालक के बारे में नियमित सम्पर्क साधते रहना चाहिये ताकि उसकी जीवन प्रगति के बारे में आश्वस्त रहा जा सके।
- शैक्षिक संस्थाओं को योजनाओं के निर्माण एवं कार्यान्वयन के समय नियम, कानूनों का पूरा–पूरा ध्यान रखना चाहिये ताकि ऐसे बालकों के हितों पर कोई ऑच न आ पाए।
- ऐसे बालकों के अभिभावकों को स्वयं आगे आकार अपने बच्चे की सुविधाओं एवं प्रगति से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।
- छात्रों को स्वयं भी आगे आकर इस योजना को सफल बनाने में दृढ़ता, प्रेरणा, सहयोग, रूचि, व पहल का परिचय देना चाहिए।
- बच्चे की प्रगति के बारे में विचार–विमर्श करने की दृष्टि से शिक्षकों एवं अभिभावकों में नियमित अन्तःक्रिया सम्पन्न होती रहनी चहिए।
- सभी बच्चों के अभिभावकों को एक साथ आमन्त्रित कर कुछ सामान्य योजनाओं पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करना चाहिए तथा उन्हें विश्वास में लेना चाहिए कि स्कूल उनके बच्चों की सेवा हेतु प्रतिबद्ध है।
- समय–समय पर समाज के प्रबुद्ध वर्ग को आमन्त्रित कर समेकित शिक्षा को सफल बनाने की दृष्टि से उनसे ठोस सुझाव प्राप्त किये जाने चाहिए।

समेकित शिक्षा को उन्नत बनाने हेतु नीतियॉ – 21 मार्च, 2005 को तत्कालीन मानव संसाधन मन्त्री श्री अर्जुन सिंह ने असमर्थ बालकों एवं युवाओं हेतु एक व्यापक कार्य–योजना संसद में रखी। तभी से यह मंत्रालय विषय–विशेषज्ञों, असमर्थ अधिकार समूह, अभिभावक समूह, सरकारी निकायों आदि से राय–मशवरा तथा सम्बन्ध बनाये हुए है। इस सम्बन्ध में एन0सी0पी0ई0डी0पी0 ने मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता में स्थित क्षेत्रीय परामर्शदाताओं से जिसमें Staholders , Professionals, activists सभी सम्मिलित थे, उनसे इस कार्य योजना के सम्बन्ध में क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय सहमति प्राप्त करने के उद्देश्य से राय ली गई। मंत्रालय ने पुनःसंशोधित कार्य योजना पर भी लोगों के सुझाव आमन्त्रित किये। Eatly childhood care Education के महत्व को स्वीकार करते हुए जीवन के प्रथम पॉच वर्षो को कौशल विकास एवं अधिगम की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया। मानव संसाधन विकास मंत्रालय का महिला एवं बाल विकास एवं विभाग अपने कार्यक्रमों के माध्यम से इस क्षेत्र पर विशेष ध्यान देगा। जैसा कि देश माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण की दिशा में कदम रख रहा है, असक्षम युवा वर्ग की आवश्यकताओं को इस कार्यक्रम का हिस्सा बनाया जायेगा। इस स्तर पर परामर्श एवं संसाधनों की उपलब्धता पर भी ध्यान दिया जायेगा, विशेषकर उन लोगों के लिये जो व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं। उच्च एवं तकनीक स्तर पर कालजों तथा विश्वविद्यालयों को 3 प्रतिशत आरक्षण पर विशेष ध्यान देने को कहा जायेगा। असमर्थ प्रकोष्ठ, असमर्थ अध्ययन केन्द्र खोले जायेंगे। इस सम्बन्ध में माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा का कार्यभार सौंपा जायेगा। सरकार समेकित शिक्षा क्षेत्र से जुड़े सभी लोगों से भारतीय सन्दर्भ में इस प्रकार की शिक्षा–व्यवस्था लागू करने हेतु एक आम राय भी सुनिश्चित करने के प्रयास करेगी। यह समूह एच0आर0डी0 मंत्रालय को इस सम्बन्ध में मानक स्थापित करने में मदद करेगा। ताकि इस शिक्षा व्यवस्था को प्रभावी ढ़ंग से लागू किया जा सके। इस दृष्टि से इस योजना के प्रत्येक पहलू पर गम्भीरता से विचार–विमर्श किया जायेगा। इस सम्बन्ध में प्राप्त सिफाारिशों को इस कार्य योजना को आगे बढ़ाने में सम्बल बनाया जायेगा। साथ ही इस सन्दर्भ में विशेष स्कूलों का भी एक बार पुनः अध्ययन किया जायेगा जो इस योजना का एक अंग होगी। इस योजना के कियान्वयन एवं लागू करने का सम्पूर्ण दायित्व

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार पर होगा। साथ ही एम0एच0आर0डी0 का माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग से सम्बन्धित सह–सचिव समयबद्ध तरीके से प्रोग्राम गतिविधियों पर जानकारी लेते रहेंगें।

समेकित शिक्षा के सन्दर्भ में विश्वस्तरीय प्रयास – 20वीं शताब्दी के अन्त तथा 21वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस दिशा में कार्य करने प्रारम्भ हुए। सन् 1989 में United Nstions Convention में बालक के अधिकार के सन्दर्भ में समेकित शिक्षा का अधिकार प्रदान किया गया । इस सन्दर्भ में कुछ अन्य कदम भी उठाये गये, जैसे–1990 में सभी के लिए शिक्षा ई0एफ0ए0 विषय पर विश्व सम्मेलन, डाकर (सेनेगल) में 2000 में विश्व शिक्षा सम्मेलन Organisation for Economic Co-operation and Development (OECD) पेरिस (1999) आदि ने इस प्रकार की शिक्षा को मुख्य धारा में सम्मिलित करने पर जोर दिया। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य नाम भी उल्लेखनीय है, जैसे – Councilfor Disabled Children, Alliance foer Inclusive education, Centre for Studies on IE, Desability Equality in education, Enabling Education Newtwork Community working rowords Inclusive Education आदि । इनके अतिरिक्त कुछ विश्वविद्यालय भी है जो Inclusive Education के लिये कार्य कर रहे हैं जैसे – लन्दन विश्वविद्यालय, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, बिरमिघंम विश्वविद्यालय, मेनचेस्टर विश्वविद्यालय आदि।

एन0जी0ओ0 की भूमिका – भारत में 1950 के आसपास से ही एन0जी0ओ0 ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी प्रारम्भ कर दी थी, तब ऐसे बच्चों के लिये विशिष्ट स्कूल खुलने प्रारम्भ हो गये थे। इस प्रकार के संगठन अधिकतर शहरी इलाकों में विकसित होने लगे । सरकार ने भी इनके योगदान एवं महत्व को स्वीकार करते हुए इन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करना प्रारम्भ कर दी थी। भारत में 1970 तथा 1980 के वर्षों में इन एनजीओज़ की संख्या में चमत्कारिक रूप से वृद्धि हुई। अन्तर्राष्ट्रीय विकास संस्थाओं जैसे – NORAD, SIDA, DANID। व अन्य एनजीओज़ को प्रोत्साहित किया ताकि वे असमर्थ लोगों तक पहुँचने के कुछ अभिनव तरीके खोज सकें। एनजीओज़ को सहायता प्रदान करने में यूनीसेफ ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

कुछ एनजीओज़ ने असमर्थ बालकों को शिक्षा प्रदान करने हेतु कुछ नवीन प्रयोग किये गए जैसे Nationsl Association for Blind ने बहुत से राज्यों में काम किया जिनमें तमिलनाडु में 'रामकृष्ण विद्यालय' आदि। इसी प्रकार मुम्बई, कोलकाता, दिल्ली, मैसूर आदि जगहों पर भी ऐसे बच्चों के लिये उल्लेखनीय कार्य हुए। मानसिक मंदित बालकों के लिये देलही में 'समाधान' संस्था ने बहुत से कार्यक्रम किये बैंगलूर में 'सज्जन राव विद्या समिति' ने इस प्रकार के बच्चों के लिये पहली समेकित स्कूल खोली। साथ ही राज्य एवं केन्द्र सरकार के सहयोग से इस दिशा में एक सी0बी0आर0 नेटवर्क भी प्रभावी ढ़ंग से कार्य कर रहा है। विस्तृत योजना के तहत सरकार सभी स्तरों पर इन एन0जी0ओज़ की भूमिका को प्रोत्साहित कर रही है। यह माना जाता है कि एनजीओज़ में वह क्षमता है जो शैक्षिक योजनाओं को लागू करने में एवं उन्हें सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है। वर्तमान में इन एनजीओज़ की भूमिका निरौपचारिक शैक्षिक कार्यक्रमों को चलाने तक ही सीमित है। इस दिशा में प्रयास यह किये जाने चाहिये कि ये संगठन सरकारी संगठनों के समानान्तर चलकर बड़े स्तर पर भी अपना शिक्षा के क्षेत्र में सार्थक योगदान दें।

जनपदीय प्रयास – समेकित शिक्षा कार्यक्रम के अर्न्तगत जनपद में आयोजित की जाने वाली मुख्य गतिविधियॉं निम्नलिखित हैं–

(1) विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों (सी0डब्लू0एस0एन0) का चिन्हाकंन (विकलांगतावार)।
(2) परिषदीय विद्यालयों में (सी0डब्लू0एस0एन0) का नामंकन।
(3) मेडिकल एसेसमेंट कैम्प।
(4) मेजरमेंट एवं डिस्ट्रीब्यूशन कैम्प।

(5) उपस्कर एवं उपकरणों का क्रय।

(6) प्री–इंटीग्रेशन कैम्प।

(7) इटीनेंट / रिसोर्स टीचर्स द्वारा (सी0डब्लू0एस0एन0) को शैक्षिक सपोर्ट।

(8) रिसोर्स सेंटर ।

(9) रैम्प्स निर्माण।

(10) ब्रेल पाठ्य–पुस्तकों का मुद्रण एवं वितरण।

(11) एकेडमिक, स्पोर्टस् एवं कल्चरल मीट।

(12) विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के लिए टी0एल0एम0 का निर्माण।

(13) शिक्षक प्रशिक्षण।

(14) पैरेंट काउंसलिंग।

निष्कर्ष – निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि समेकित शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचनी चाहिए, प्रत्येक व्यक्ति का सम्मान एवं शिक्षा सुनिश्चित होनी चाहिये। समेकित शिक्षा छात्रों की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए सभी को आनन्द की अनुभूति करायेगी तथा उन्हें लक्ष्य प्राप्ति में सहयोग देगी। दुनिया के सभी बच्चे एवं युवा अपनी क्षमताओं एवं कमियों के आलोक में, अपनी आशाओं एवं आकांक्षाओं के साथ शिक्षा को प्रापत करने का अधिकार रखते हैं। हमारी ऐसी शिक्षा व्यवस्था नहीं है कि वह कुछ लोगों के अधिकार क्षेत्र का ही विषय है, कुछ लोगों की पहुॅच तक ही सीमित हो, कुछ लोगों की बपौती बनकर रह गई हो बल्कि यह वह शिक्षा–प्रणाली है जो सभी बच्चों की आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को ढालने का साहस रखती है। यह कार्य जटिल एवं चुनातीपूर्ण अवश्य है लेकिन असम्भव नही। किसी ने सही कहा है, ''अगर इच्छा है तो रास्ते स्वयं बनते चले जाते हैं'' (Education is not a parental Wealth. It should be within the reach of every child. Also, if there is a will, there i a way.)।

❑❑

डॉ0 राम कमल राय तत्कालीन समय (सन् 1978 ई0–सन 2003 ई0) के साहित्य शिरोमणि थे। इस समय में डॉ0 राम कमल के अति नजदीक रहने वाले परम सनेही मित्र एवं सहयोगियों प्रो0 सत्य प्रकाश मिश्र, गिरिराज किशोर, परमानन्द श्रीवास्तव, सूर्य प्रसाद दीक्षित, विश्वनाथ त्रिपाठी, भारत भारद्वाज, लक्ष्मी कान्त वर्मा, राजमल बोरा, अवधेश प्रधान, हरिनारायण राज, जय प्रकाश धूमकेतु, जैसे दिग्गज साहित्यकारों का सानिध्य उनको मिला।

- कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख / लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

Hkkjrh; cg|lL–frokn vk|j ehfM;k

M,- l|j|'k dkuM|
एसोसिएट प्रोफेसर एवं हिंदी विभागाध्यक्ष
एस.एम.आर.के.–बी.के.–ए.के. महिला महाविद्यालय, नाशिक, महाराष्ट्र (भारत)

भारतीय समाज और संस्कृति का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। प्राचीनता के साथ–साथ इसमें निरंतर परिवर्तन होते रहे है और होते रहेंगे।इसके परिणामस्वरूप समाज और संस्कृति में भी सदैव परिवर्तन हुए हैं। यही कारण है कि आधुनिक भारतीय समाज और प्राचीन भारतीय समाज पूरी तरह से भिन्न है।विश्व में भारत एक ऐसा देश है जहाँ अनेक प्रकार की विविधताएँ पायी जाती हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत उत्तर से दक्षिण 3214 कि.मी. और पूर्व से पश्चिम 2933 कि.मी. (लगभग) तक फैला है। जिसमे किसी क्षेत्र की जलवायु ठंडी तो किसी क्षेत्र में गर्म है, कहीं पहाड़ियाँ हैं तो कहीं रेगिस्तान हैं। इतना ही नहीं प्रजातीय दृष्टि से भी भारत विभिन्न प्रजातियों का अजायब घर है। भाषा की दृष्टि से भी भारत बहुभाषी देश है। भारत में लगभग 179 भाषाएँ तथा 544 स्थानीय बोलियाँ प्रचलित है। विभिन्न धर्मों के अनुयायी यहाँ विद्यमान हैं।वैदिक धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म, इसाई धर्म, पारसी धर्म आदि अनेक धर्मों के लोग यहाँ रहते हैं। इतना ही नहीं बल्कि विभिन्न धर्म भी छोटे–छोटे सम्प्रदायों में विभाजित हैं। एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय से अपने आपको अलग या ऊँचा–नीचा समझते हैं।

भारत की इस विविधता के परिणाम स्वरूप भौगोलिक, धार्मिक, भाषाई तथा प्रजातीय विविधता के कारण भारतीय संस्कृति में भी विविधता विद्यमान है। विभिन्न क्षेत्रों के लोगों में अलग–अलग रीति–रिवाज, जाति–पाति, खान–पान, उत्सव–त्यौहार, प्रदर्शन कला, वास्तुकला, स्थापत्य कला, मूर्तिकला, नृत्यकला, साहित्य, संगीत एवं सर्व ललित कलाएँ (नाटक आदि) विद्यमान हैं। कहने का आशय यह है कि भौतिक और सांस्कृतिक परिवेश की भिन्नता के कारण भारतीय जन समूह अनेक छोटी–छोटी इकाईयों में विभाजित है। प्रत्येक मानवीय समूह की अपनी धार्मिक मान्यताएं हैं, प्रथाएं परम्पराएं हैं, रीति–रिवाज एवं रूढ़ियाँ हैं। प्रत्येक मानवीय समूह की अपनी विलक्षण विशेषताएँ हैं। इस प्रकार भारत की सांस्कृतिक विविधता और सभ्यता राष्ट्रीय प्रगति की दृष्टि से विभिन्न संस्कृतियों के मध्य एकता का होना ही 'बहुसंस्कृतिवाद' है।

आधुनिक युग विज्ञान का युग है। आज विज्ञान मानवीय समाज का अभिन्न अंग बन गया है, जो मानवीय जीवन को सभी क्षेत्रों में प्रभावित कर रहा है। आज हमारे रहन–सहन, खान–पान, आचार–विचार, रीति–रिवाज, तीज–त्यौहार आदि सभी विज्ञान से प्रभावित हैं। विज्ञान के विकास से दुनिया की दूरियाँ घट गयी है। सारी दुनिया एक विश्व ग्राम में बदल गयी है। इस बदलाव में मीडिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। विज्ञान के विकास की पहुँच जमीन से लेकर आसमान तक ही नहीं समुद्र और अंतरिक्ष तक हो गयी है। इतना ही नहीं सौर मंडल के ग्रहों पर भी कब्जे का प्रयास जारी है। कृषि, उद्योग, यातायात, चिकित्सा तथा संचार के क्षेत्र में विज्ञान ने नई ऊँचाईयाँ प्राप्त की है। इस वैज्ञानिक शोध, विकास तथा उपलब्धियों को दुनिया के विभिन्न देशों तथा समाज के ज्ञान–विज्ञान एवं संकृति को प्रचारित–प्रसारित करने का महत्वपूर्ण कार्य मीडिया ने किया है। यह किसी भी देश की उन्नति से आंका जा सकता है। भारतीय संकृति अपने मूल्यों और विशेषताओं के कारण चर्चित रही है परन्तु आज बहुसांस्कृतिकवाद के कारण इसमें निरंतर परिवर्तन हो रहे हैं। इस परिवर्तन का मुख्य कारण मीडिया का प्रभाव है। यह प्रिंट मिडिया भी हो सकता है और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी हो सकता है। मीडिया के माध्यम से आज जहाँ ज्ञान विज्ञान की जानकारी दी जा रही है वहीं बहुसंस्कृतियों की जानकारियाँ भी दी जा रही हैं। भूमंडलीकरण एवं उपभोक्तावाद के कारण मीडिया ऐसी संस्कृति परोस रहा है जो पूरे विश्व को प्रभावित कर रहा है। जिसके

परिणामस्वरूप सामाजिक सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों का निरंतर पतन हो रहा है तथा एक कृत्रिम संस्कृति का उगम हो रहा है। जिसमें मानवीय समवेदनाएँ नष्ट होती नजर आ रही है।

अतः यह कहा जा सकता है कि, भारत की विविध संस्कृतियाँ प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। भारतीय संस्कृति कर्म प्रधान संस्कृति है। इतना ही नहीं इसे मोहन जोदड़ो और मेसोपोटोमिया की सभ्यता के समकालीन माना जाता है। भारतीय संस्कृति ने अनादि काल से क्रूर आक्रमणों को झेला है फिर भी आज तक जीवित है। इतना ही नहीं इसने पूरे विश्व पर अपनी छाप आज भी विद्यमान रखी है जबकि मीडिया क्रान्ति से विश्व की सृष्टि और सांस्कृतिक विरासत कुछ हद तक खतरे में है। मीडिया को अपने प्रयोग में परिवर्तन लाने होंगे, उसे अपने रास्ते और रुख बदलने होंगे, नजरिये और नई नजर पैदा करनी होगी। उसे जन सांस्कृति अथवा बहुसंस्कृतियों की शक्तियों से जुड़ना होगा। मीडिया को सत्याग्रही और मानवतावादी संस्कृति का पोषक बनना पड़ेगा तभी मीडिया बहुसंस्कृतिवाद या विश्व संस्कृति का रक्षक और संरक्षक बन सकेगा।

भारतीय समाज और संस्कृति का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। प्राचीनता के साथ–साथ इसमें निरंतर परिवर्तन आये हैं। समाज और संस्कृति में सदैव परिवर्तन होते रहें हैं और होते रहेंगे। यही कारण है कि भारतीय समाज प्राचीन भारतीय समाज से भिन्न है। समकालीन परिवर्तन भारतीय समाज के लिए एक महत्व पूर्ण घटना है। भारतीय समाज के अंदर जितने परिवर्तन विगत अनेक शताब्दियों में हुए हैं उससे कहीं अधिक व्यापक परिवर्तन स्वाधीनता के बाद हुए हैं। प्राचीन विश्वास तथा परम्पराओं के स्थान पर नये विश्वास तथा परम्पराओं का विकास हो रहा है। जन्म पर आधारित संस्तरण समाप्त हो रहा है। इसका स्थान स्तरीकरण की प्रणाली ले रही है।जातीय निर्योग्यताएँ धीरे–धीरे समाप्त हो रही हैं और उनके स्थान पर वर्ग व्यवस्था का विकास हो रहा है। संयुक्त परिवारों के स्थान पर आधुनिक केन्द्रीय या एकाकी परिवारों का निर्माण हो रहा है। सामजिक सम्बन्ध जो कभी अभौतिक संस्कृति द्वारा संचलित होते थे अब धीरे–धीरे टूट रहे हैं। भौतिक संस्कृति का उत्तरोत्तर विकास हो रहा है। विज्ञान की प्रगति से विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करने वाले समुदाय एक दूसरे के निकट आ गये हैं। सामुदायिक संगठनों के स्थान पर राष्ट्रीय संगठनों का विकास हो रहा है। सामुदायिक हितों के स्थान पर राष्ट्रीय हित की भावना का विकास हो रहा है। वैज्ञानिक उपलब्धियों के फलस्वरूप सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन बहुसंस्कृतिवाद का स्वरूप धारण करने लगा है। उपरोक्त सभी परिवर्तन की गति में तीव्रता लाने का कार्य मीडिया ने किया है।

भूमण्डलीकरण एवं उदारीकरण के इस युग में समाज में विविध संस्कृतियों की अस्मिता का प्रश्न भी अधिक प्रखर होते नजर आता है। विविध समाज अपनी संस्कृति बनाये रखने के साथ–साथ अन्य संस्कृतियों को भी अपनाने लगे हैं। इसलिए भी कभी–कभी संस्कृतियों के अस्मिता का प्रश्न अधिक व्यापक होने लगे हैं। सामाजिक स्थलांतरण के कारण यह सब होता नजर आता है। इस सन्दर्भ में मशहूर फिल्म अभिनेता राजकपूर जी पर फिल्माया गया गीत –"मेरा जूता है जापानी, ये पतलून इन्लिशस्तानी, सर पर लाल टोपी रुसी, फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी" जो 1955 में गाया गया था वह आज के भूमण्डलीकरण के स्वरूप को एवं बहुसंस्कृतिवाद को दर्शाता है। इतना ही नहीं 65 वर्ष बाद भी भूमण्डलीकरण एवं उदारीकरण के जड़ों को दर्शाता है। परदेशी वस्तुओं एवं वित्त को खुले दिल से स्वीकार करने वाला जागतिक समाज स्वयं की स्वदेशी सांस्कृतिक अस्मिता का जतन करने का भी प्रयत्न कर रहा है। अपना गाँव, अपना वतन छोडकर स्थलांतरित होने वाले समाज की स्थिति इसी प्रकार की है। केवल परकीय वस्तु ही नहीं बल्कि भूमि, कायदा, रीती–रिवाज भी अपनाने लगते हैं। फिर भी अपनी संस्कृति और अस्मिता का जतन करने का निरंतर प्रयत्न करते हैं। ऐसी परिस्थिति दुनिया के सभी बड़े शहरों में देखने व सुनने को मिलती है। इस प्रकार के समाज को 'यजमान समाज'(होस्ट सोसायटीज) कहना उचित होगा। भारत में मुंबई, कोलकाता, चेन्नई। दिल्ली आदि तथा अमेरिका, यूरोप के बड़े शहर एवं सिंगापुर जैसा छोटा देश जिनमें इस प्रकार के 'यजमान समाज' दिखाई देते हैं। इन सब में बहुसंस्कृतिवाद के दर्शन होते हैं। इस बहुसंस्कृतिवाद के कुछ महत्वपूर्ण कारक या आयाम निम्नलिखित हैं।

cg|lL–frokn d egRoi.k dkjd ;k vk;ke

(Factors of Multiculturalism)

बहुसंस्कृतिवाद की प्रक्रिया का विकास सभी कालों में विद्यमान रहा है। आरम्भ में इसकी गति बहुत धीमी थी, किन्तु वर्तमान समय में अनेक कारकों के परिणाम स्वरूप इसकी गति में महत्वपूर्ण तीव्रता आई है। इनमे प्रमुख निम्नलिखित हैं।

¼1½ çk|kfxdh dk fodkl **¼Technological Development½** & वैज्ञानिक जानकारी का उपयोग जब व्यवहार में किया जाता है तो उसे प्रौद्योगिकी कहते हैं। प्रौद्योगिकी की सहायता से मनुष्य ने प्रकृति के उपर अपना नियन्त्रण स्थापित किया है। भारत में उन्नति के फलस्वरूप यंत्रीकरण में बढ़ोत्तरी हुई है। उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रो में मानवीय शक्ति का स्थान मशीनों ने ले लिया है। प्रौद्योगिकी के कारण औद्योगिक व्यवस्था का विकास हुआ है। जिसके फलस्वरूप पुराने सामाजिक सांस्कृतिक मूल्य प्रभावित हो रहे हैं और व्यवसाय के के प्रति नये मूल्यों का विकास हो रहा है। भारत प्रौद्योगिकी के विकास का सर्वाधिक प्रभाव परिवार,धर्म,तथा राज्य आदि संस्थाओं पर पड़ रहा है।

¼2½ vkfFkd fodkl **¼Economical Development½** & भारत में आर्थिक विकास के फलस्वरूप सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया बड़ी तीव्र गति से प्रभावित हुई है। यातायात के साधनों का विकास, आमदनी में वृद्धि, रोजगार के अवसर, शिक्षा के अवसर आदि ऐसे कारक हैं जिन्होंने परम्परागत सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों और सम्बन्धों के आधार को बदल दिया है। व्यवसाय के आधार पर समाज में सबको समान समझा जाने लगा है। उच्चता का एकमात्र मापदंड व्यवसाय सम्बन्धी सफलता को माना जाने लगा है। जिसके परिणाम स्वरूप समाज में 'बहुसंस्कृतिवाद' एकात्मता का स्वरूप लेने लगी है।

¼3½ lL–frdj.k **¼Sanskritization½** & बहुसंस्कृतिवाद के परिणाम स्वरूप समाज में अनेक परिवर्तन हुए हैं। निम्न समझी जानेवाली जातियां उच्च जातियों के संस्कारों, प्रथाओं और परम्पराओं का अनुकरण कर रही है। इतना ही नहीं इन प्रथा परम्पराओं के वैज्ञानिक कारणों को भी समझने का प्रयत्न कर रही है। इसीलिए संस्कृतिकरण का अभिप्राय केवल नई प्रथाओं और परम्पराओं तथा आदतों को अपनाना ही नहीं है बल्कि उन विचारों और मूल्यों को दर्शाना भी है जो किसी सामजिक संस्कृति को प्रभावित करते हैं। इनका समर्थन और विरोध भी 'बहुसंस्कृतिवाद' को जन्म देता है।

¼4½ if'pehdj.k **¼Westernization½** & पाश्चात्य देशो के साथ सम्पर्क के कारण पूरी दुनिया के लोग अपनी विचारधारा, वेश–भूषा तथा रीती–रिवाजों को त्याग रहे हैं और पश्चिमी विचारधारा व संस्कृति को अपना रहे हैं। जिसके फलस्वरूप भारतीय समाज एवं संस्कृति के अंदर अनेक परिवर्तन हुए हैं। नई प्रौद्योगिकी, ज्ञान, विश्वास तथा संचार क्रान्ति के कारण सांस्कृतिक एकीकरण हुआ है, जो 'बहुसंस्कृतिवाद' ही है।

¼5½ uxjhdj.k **¼Urbanization½** & औद्योगिक विकास के कारण नगरों का निरंतर विकास हो रहा है। इसलिए ग्रामीण जनता रोजगार के लिए नगरों, महानगरों और विदेशों में रोजगार के लिए स्थलांतरित हो रही है। इसके विपरीत नगरीय आचार–विचार, रहन–सहन अथवा संस्कृति का ग्रामीण जीवन व संस्कृति पर प्रभाव पड़ रहा है। वैयक्तिकीकरण, सामाजिक गतिशीलता, जीवन के प्रति नया दृष्टि कोण, नये मूल्य एवं प्रतिस्पर्धा के कारण संस्कृति का समर्थन व विरोध दृष्टिगोचर हो रहा है। जिसे हम आधुनिक संस्कृति भी कह रहे हैं। यह आधुनिक संस्कृति अपने मिली–जुली संस्कृतियों का ही रूप है जिसे हम 'बहुसंस्कृतिवाद' भी कह सकते हैं।

¼6½ ykdrU=h; pruk dk fodkl **¼Development of Democratic will½** & स्वतंत्रता के पश्चात भारत में प्रजातंत्र की स्थापना हुई। जिसके फलस्वरूप भारत में लोकतन्त्रीय चेतना का विकास हुआ। प्रत्येक जाति, धर्म, सम्प्रदाय, वर्ग के सदस्यों को समानता का अधिकार प्राप्त हुआ। परिणाम स्वरूप समानता की भावना

का विकास हुआ है। धर्म निरपेक्ष भावना का विकास हुआ है। भारत में स्थित सभी धर्मों को समानता से देखा जाता है। इस व्यवस्था के कारण सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं। जैसे हिदू विवाह अधिनियम, स्त्री शिक्षा अधिनियम, जाति सम्बन्धी अधिनियम आदि के कारण सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं। जिससे पिछड़े वर्गों का उत्थान हुआ है।

¼7½ ;krk;kr vkSj lapkj ek/;eksa dk fodkl ¼Development Of Transport & Communication½ & आधुनिक युग में यातायात और संचार माध्यमों का सर्वाधिक विकास हुआ है। संचार माध्यमों में मीडिया ने संचार के नये–नये और प्रगत माध्यम समाज को दिए हैं। जिसके फलस्वरूप समाज में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। यातायात और संचार माध्यमों के विकास से विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों का पारस्परिक सम्पर्क बढ़ गया है। जिससे विविध संस्कृतियों का अनुकरण, प्रचार एवं बाजारीकरण तीव्र गति से हो रहा है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय जीवन और संस्कृति में अनेक प्रकार की विविधता विद्यमान है यह भी प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या भारतीय या अन्य संस्कृतियों का संश्लेषण सम्भव है? यह भारत की विविधता पर नजर डालें तो लगता है कि संश्लेषण का कार्य कठिन है। किन्तु यथार्थ में सांस्कृतिक संश्लेषण सम्भव है और होता आया है। यही 'बहुसांस्कृतिकवाद' आज जिसे हम भारतीय संस्कृति या 'बहुसांस्कृतिकवाद' कहते हैं उसके विकास में विभिन्न भौगोलिक क्षेत्र, जातियों, धर्मों, सम्प्रदायों का योगदान है। आर्य, अनार्य, ग्रीक, हूण, पारसी आदि सभी बहुसांस्कृतिक तत्व यहाँ विद्यमान है। संक्षेप में संश्लेषण ही भारतीय संस्कृति की वह शक्ति है जिसने इतिहास के उतार–चढ़ाव को झेला है। भारत में अनेक धर्मों व सम्प्रदायों का विकास हुआ है। समय–समय पर विभिन्न प्रजातियों और संस्कृतियों का आगमन हुआ किन्तु काल के प्रभाव के साथ सभी भारतीय संस्कृति में समा गयी। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही संस्कृति का संश्लेषण होता आया है। आज भी संश्लेषण की यह प्रकिया विद्यमान है। जिसने 'बहुसांस्कृतिकवाद' का रूप ले लिया है।

ehfM;k ¼Media½ & मीडिया शब्द संचार माध्यमों के लिए प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार जनसंचार प्रचलित शब्द है। जैसे–समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन, इंटरनेट आदि। यद्यपि इंटरनेट जैसे नये माध्यमों के उद्‌भव और तीव्र विकास के कारण मीडिया के पारम्परिक के सवरुप में परिवर्तन आया है। नये माध्यम जन माध्यम बन रहे हैं। नए प्रौद्योगिकी के प्रभाव से सामजिक सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया में निरंतर परिवर्तन आ रहा है। मीडिया के प्रचार के कारण सामाजिक इच्छाओं, आकांक्षाओं, आदतों और मानवीय व्यवहारों को बदल दिया है। जिससे सामजिक सांस्कृतिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। मीडिया एक बड़े उद्योग के रूप में उभरा है। जिसने बाजार को अपने कब्जे में ले लिया है। आर्थिक क्षेत्र में मीडिया की सार्थकता निरंतर बढ़ रही है। मीडिया के इस बहुआयामी भूमिका के कारण इसके नियमन और सैद्धांतिकरण के सदैव प्रयत्न होते रहे हैं। आज समाज से सम्बन्धित कोई भी विषय ऐसा नहीं है जिसमे मीडिया का हस्तक्षेप नहीं है। इसलिए मीडिया की सामाजिक, सांस्कृतिक प्रासंगिकता और समाज के साथ उसके सम्बन्धों को लेकर हमारे मन में अनेक प्रश्न निर्माण होते हैं जैसे – निष्पक्षता, हिंसा, जीवन मूल्य, सेक्स, देहवाद, विज्ञापनों का अतिरेक, उपभोक्तावाद आदि। ये सभी प्रश्न भारतीय समाज को ही नहीं बल्कि पूरे विश्व के समाज को प्रभावित कर रहे हैं।

मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ माना जाता है। किसी भी लोकतान्त्रिक देश में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की स्थिति की जांच भी मीडिया की स्वतंत्रता के आधार पर ही की जाती है। वैसे भी मीडिया के सरोकारों का दायरा बहुत विस्तृत है। मीडिया के सरोकारों व उद्देश्यों की चर्चा सर्वत्र की जाती है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि मीडिया की भूमिका समाज को सूचना देना, शिक्षित करना और मनोरंजन करना (To inform] To Educate and To Entertain) है। इसमें मीडिया के सभी पक्ष समाहित है। लेकिन इन तीनों की विवेचना समय के साथ आवश्यक है। इससे ही मीडिया को समझने में मदद मिल सकेगी। मीडिया जब स्वार्थ से प्रेरित होगा

तो जनसरोकारों पर इसका प्रभाव पड़ेगा। ये सरोकार सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण में परिवर्तन लाते हैं।

मनोरंजन के क्षेत्र में मीडिया ने सभी पारम्परिक एवं सांस्कृतिक साधनों को विस्थापित कर दिया है। भूमंडलीकरण एवं उदारीकरण के इस दौर में आर्थिक सुधारों के साथ ही अधिक सूचना, अधिक मनोरंजन, अधिक संगीत और अधिक फिल्में इन सबकी मांग अचानक बढ़ गयी है। सैटेलाईट के आगमन के कारण सैकड़ों चौनल टी.आर.पी. की दौड़ में शामिल हो चुके हैं। जिनका मुख्य उद्देश्य केवल नफा कमाना है। चौनलों और कार्यक्रमों की विभिन्नता ने दर्शकों की पसंद को बदल दिया है, उसमें श्रेणियां बनने लगी हैं। उदारीकरण और मीडिया ने पूरे विश्व में अपना रंग दिखाया है। शॉपिंग मॉल्स, मल्टीप्लेक्स, बहुराष्ट्रीय कम्पनियां, क्रेडिटकार्ड व आसान ऋण सुविधाओं के कारण लोगों की जीवन शैली बदल गयी है इतना ही नहीं प्रवृत्तियां व आकांक्षायें भी बदल गयी है। अर्थात सांस्कृतिक सपाटिकरण हो रहा है। इसके अलावा भारत में अब तक वर्जित माने जाने वाले विषयों को भी मीडिया ने छेड़ा है। सेक्स और विवाहेत्तर सम्बन्धो पर चौट शो आयोजित होने लगे हैं। पारम्परिक जीवन शैली के बदलाव को प्रेरित करने वाले कार्यक्रमों की तादात बढने लगी है। भ्रमण, बाहरी खान–पान, फैशन और दिखावा मीडिया की विषय वस्तु का मुख्य भाग बन गया है। फैशन डिजाइन और मॉडलों को प्रदर्शित करनेवाले कार्यक्रमों व दर्शकों की संख्या बढ़ रही है और जनता से जुड़े प्रश्नों व मुदों को गौण समझा जाने लगा है। मनोरंजन एवं लाभ को प्राथमिता दी जा रही है। चमक–दमक और ब्रांड को लोकप्रिय बनाकर मीडिया सांस्कृतिक विरासतों को व्यवसाय के माध्यम से बाजार का रूप दे रहा है। रियलिटी शो, गेम शो, इंडियन आयडियल ,कौन बनेगा करोडपति जैसे अनगिनत शोज आज प्रसारित हो रहे हैं। इन कार्यक्रमों के माध्यम से सामजिक भावनाओं और आकांक्षाओं से खेल कर मुनाफा कमाया जा रहा है। इस मुनाफे को विज्ञापन उद्योग निरंतर बढ़ा रहा है। विज्ञापन उद्योग भ्रामक यथार्थ को दर्शाकर समाज और संस्कृति को प्रभावित कर रहा है। दर्शकों में उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों के विकास की दृष्टि से टेलीविजन धारावाहिकों का निर्माण भारत में मनोरंजन जगत की अभूतपूर्व घटना है। यह आर्थिक से ज्यादा सांस्कृतिक है। वर्तमान भारतीय टेलीविजन के मुख्य धारावाहिकों की सामान्य विशेषताओं को देखा जाय तो सुंदर कपड़ों, गहनों से लकदक महिलाएं, भावनाओं के प्रतिरूपण में पात्रों के स्लोमोशन भंगिमाएं, अवैध सम्बन्धों का विरोध एवं समर्थन, शोक या उत्सव का सजावटी प्रदर्शन, देवी–देवताओं की पूजा, यज्ञ, हवन का अतियथार्थ रूप देखने को मिलता है। जिसके कारण धर्म भीरू महिलाएं व पुरुष इसका अंधानुकरण करते नजर आते हैं। भारतीय सांस्कृति से जुड़े कुछ तीज–त्यौहार, उत्सवों ने आज बाजार का रूप ले लिया है। जैसे – करवा–चौथ,नवरात्री होली, गणेशोत्सव, दुर्गा पूजा, लोहड़ी पोंगल, क्रिसमस आदि।

भारत में आधुनिक मीडिया ने सामजिक, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक चेतना का विकास किया है। परन्तु सामजिक रूढ़ियों अंधविश्वासों, धार्मिक कट्टरता, ज्योतिष, भविष्यवाणीयां, भूत–प्रेतों की सत्य कथा, पाप–पुण्य, पुनर्जन्म, धर्मगुरुओं के प्रवचन व उपदेश, तंत्र–मन्त्र, व्रत और भाग्यफल आदि सभी आज के मीडिया के अभिन्न अंग हैं। इन सबका उपयोग रूढ़ियों और अंधविश्वासों के प्रसार के लिए हो रहा है। इससे यह पता चलता है कि मीडिया के लिए अभिव्यक्ति स्वतंत्रता का अर्थ लोगों को मूर्ख बनाने की छूट है। तर्क यह है कि धार्मिक विश्वास और आस्था लोगों की भावनाओं जुड़ा मुद्दा है। इसलिए यह बहस नहीं हो सकती। लेकिन यह मुद्दा बाजार में अधिकतम मुनाफा कमाने के लिए उपयोग किया जा रहा है। इस सन्दर्भ में कार्ल मार्क्स ने कहा है – "विज्ञान जब तक पूंजीवाद के अधिपत्य से मुक्त नहीं होगा, तब तक मानव के दमन और शोषण का यंत्र बना रहेगा।" मीडिया केवल उपभोक्ता पर ही दुष्प्रभाव नहीं डाल रहा है बल्कि हामरी अभिव्यक्ति की काल्पनिकता और लाक्षणिकता को भी दुष्प्रभावित कर रहा है। उसने सब कुछ अपने उपभोक्तावादी निर्दयी भुजपाश में समेट लिया है। यहाँ वही सफल है जो सर्वाधिक लोकप्रिय और बिकाऊ है।

वर्तमान समय में भारत में में ही नहीं सम्पूर्ण विश्व मीडिया हिंसा, अपराध, भ्रष्टाचार, हिंसा,, आतंकवाद और

राजनितिक सूचनाओं का जखीरा बन गया है। जिसमें कला, साहित्य, संस्कृति को जगह नहीं रह गयी है। राजनितिक हलचलों का भ्रष्ट अराजक और दोगले चरित्रों को तलाशने और उभारने में पूरी ताकत से विश्व मीडिया जुड़ा हुआ है। लेकिन इससे दुनिया को क्या मिलेगा? समाज क्या सीखेगा? अपनी हिंसात्मक और वारदाती सूचनाओं के कारण विश्व मिडिया सिर्फ क्रूर और निर्दयीही नहीं बल्कि अविश्वसनीय और असंवेदनशील भी हो गया है।यद्यपि वर्तमान समय में मीडिया भूमंडलीकरण और वसुधैव – कुटुम्बकम के निर्माण में एक हद तक आधारभूत भूमिका भी निभा रहा है परन्तु सभ्यता और संस्कृति के संवर्धन के लिया इतना पर्याप्त नहीं है।

fu"d"kr & यह कहा जा सकता है कि, मीडिया क्रान्ति से विश्व की सृष्टि और संस्कृति कुछ हद तक खतरे में है। अतः उसे अपने रास्ते और रुख बदलने होंगे, नजरिये पर नजर पैदा करनी होगी। उसे मानव संस्कृति का या बहुसांस्कृतिकवाद की शक्तियों से जुड़ना होगा। उसे सत्याग्रही और बहुसांस्कृतिकवाद का पोषक बनना होगा,तभी मीडिया बहुसांस्कृतिकवाद का रक्षक और संरक्षक बन सकेगा।

lUnHk lidr

1. हिंदी साहित्य कोष भाग–1 सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. कृतिका अर्धवार्षिकी – जनवरी–दिसम्बर (संयुक्तांक 11–12)
3. भारत में सामजिक स्तरीकरण–परशुराम शुक्ल
4. सामाजिक परिवर्तन एवं नियंत्रण – ज्योति वर्मा
5. मीडिया के साजिक सरोकार – कालू राम परिहार
6. विश्व मीडिया – डॉ. विष्णु पंकज
7. बहुवचन (त्रैमासिक) जुलाई–सितम्बर 2013
7. बहुवचन (त्रैमासिक) मीडिया विशेषांक – अप्रैल–जून 2016
7. मीडिया विमर्श (Indian Media&Vision–2020) जून 2015

❑❑

अपने जीवन रूपी तिनके की उड़ान को डॉ0 राय पाठकों के समक्ष बड़ी बेबाकी से रखते हैं। लगता नहीं कि वे मात्र अपनी जीवन–गाथा सुना रहे हों। हर उड़ान के पीछे एक मंतव्य, हर कथा के पीछे एक सधी दृष्टि, हर कार्य के पीछे एक आशावादी दृष्टिकोण, हर आशावादी दृष्टिकोण के साथ एक सकारात्मक सोच डॉ0 रामकमल राय को हिन्दी साहित्य का अजातशत्रु बनाती है। कुछ न छिपाने, सब कुछ दिखाने का नाम ही सृजन नहीं है। अपने अनुभवों, कार्यों, सोच आदि का समन्वित स्वरूप ही सृजन है। पारिवारिक रूप से समृद्ध होते हुए भी पारिवारिक चिन्ताओं से संघर्शरत एवं सामाजिक विसंगतियों से लड़ते हुए डॉ0 रामकमल राय की लम्बी अनुभव–यात्रा उन्हें 'उस विराट ऊंचाई पर ले जाती है, जहाँ से उनके न चाहते हुए भी वे समूचे समाज को दिखायी देते हैं।

- कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

नई सदी के भारत की शिक्षा : चुनौतियाँ एवं समाधान की दिशाएँ

डॉ0 उमारतन यादव
एसोसिएट प्रोफेसर–अर्थशास्त्र,विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय (झाँसी)

नई सहस्राब्दि के आधुनिक भूमण्डलीकरण युग में किसी भी राष्ट्र के लिए उसके भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का अत्यन्त महत्व है। बस्तुतः भौतिक एवं मानवीय संसाधन ही किसी राष्ट्र को अग्रणीय बनाने में सक्षम हैं। कोई भी राष्ट्र तभी उन्नति कर सकता है, जब उस राष्ट्र के सभी नागरिकों को विकास में सर्वोत्तम अवसर प्राप्त हों तथा वे उनका लाभ उठाने में समर्थ हों। वस्तुतः मानव जाति के विकास का आधार शिक्षा प्रणाली ही है। प्रत्येक मनुष्य के अन्दर कुछ जन्मजात शक्तियाँ निहित होती हैं, जिनके प्रस्फुटन से ही व्यक्तित्व का विकास होता है। विकास के आधुनिक युग में राष्ट्र की बौद्धिक सम्पदा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का अधिकतम विकास करके उसके ज्ञान बोध व कौशल में वृद्धि की जा सकती है। शिक्षा एक ओर जहाँ व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करके उसकी व्यक्तिगत उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है, वहीं दूसरी ओर वह उसे समाज का एक महत्वपूर्ण व उत्तरदायी सदस्य तथा राष्ट्र का एक सुयोग्य, कर्त्तव्यनिष्ठ व सजग नागरिक भी बनाती है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि उदीयमान भारत स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद योजनाबद्ध व्यूहरचना कर विविध क्षेत्रों में विकास पथ पर तेजी से आगे बढ़ रहा है, प्रत्येक क्षेत्र में नये–नये कीर्तिमान स्थापित करता हुआ विश्व के विकसित राष्ट्रों की पंक्ति में खड़ा होने जा रहा है और पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि उसका यह स्वप्न भी पूर्ण हो जायेगा जिसका श्रेय अन्य कारकों के साथ–साथ शिक्षा को भी जाता है। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल से लेकर आधुनिक भारतीय आर्यभाषा काल तक अर्थात् वैदिक काल से आज तक के आज तक के समस्त ग्रन्थ इसी तथ्य की ओर इंगित कर रहे हैं कि मानव में अपार शक्ति, अटूट साहस, उच्चतम विवेक विद्यमान है। ऐसे होने पर भी आज शिक्षा क्षेत्र में वह उदासीन क्यों है? शिक्षक, विद्यार्थी, समाज व शासक वर्ग क्यों अपनी प्राचीन जीवन मूल्यों एवं वैदिक परम्पराओं को भूल बैठा है ?जिसके कारण आज शिक्षा की पूर्व परम्पराएँ टूटती जा रही हैं और मानव निष्क्रिय बनकर हाथ पर हाथ रखे हुए उन्हें देख रहा है। आखिर कब तक वह किंकर्तव्यविमूढ़ बना देखता रहेगा ?

यदि यह कहा जाय कि शिक्षा किसी राष्ट्र के चहुमुखी विकास की आधारशिला है तो अतिशयोक्ति नहीं होगीं क्योंकि शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र में किसी भी क्षेत्र में आगे बढ़ने की क्षमता पैदा होती है। जिसके बल पर वह निरन्तर आगे बढ़कर नित्य नये–नये आयाम खोजता एवं प्राप्त करता है। शिक्षा के विकास की दिशा निर्धारित करने में शिक्षक अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है अथवा यदि यह कहा जाये कि शिक्षा रूपी भवन उसी के ऊपर खड़ा होता है तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी और यह महत्वपूर्ण पक्ष है। मानव जीवन के उत्थान एवं विकास के लिए शिक्षा ही सबसे उपयुक्त एवं सशक्त साधन है; जो हमारे समाज, राष्ट्र एवं संस्कृति को परिवर्द्धित एवं परिष्कृत करती है। शिक्षा मानवीय मूल्यों का निर्माण कर जगत के समस्त प्राणियों एवं वनस्पतियों में मानव की श्रेष्ठ ही नही बनाती वरन् उसे सबके संरक्षक एवं स्वामित्व का भार भी प्रदान करती है, और इन्ही नैतिक गुणों से युक्त मानव ही वास्तविक मनुष्य है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है–मनुष्य में मनुष्यता का विकास हो,

शिक्षार्थी आत्म निर्भर बने, उसके चरित्र का निर्माण हो और अन्ततः जीवन यात्रा पूरी करके वह मोक्ष को प्राप्त करें, लेकिन वर्तमान शिक्षा प्रणाली से इनमें से एक भी उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो रही है। शिक्षा केवल उदरपूर्ति एवं ध नार्जन का साधन रह गयी है। यही कारण है कि छात्रों का दिन–प्रतिदिन नैतिक पतन हो रहा है। आज गुरूजनों का आदर करना तो बहुत ही दकियानूसी बात हो गयी है।

स्वतत्रंता प्राप्ति के पश्चात् भारत ने धीमी किन्तु सतत् विकास यात्रा पूरी की है। स्वतत्रंता के समय देश लगभग निरक्षर हो गया था। साक्षरों की संख्या उंगलियों में गिनने लायक थी, कहने का तात्पर्य है कि देश की औसत साक्षरता न्यून ही थीं। ब्रिटिश शासन ने अपना हित साधने के लिये भारतीयों को साक्षर बनाया था ताकि वे उनके कार्यो में सहयोग कर सके। भारत सरकार ने इस ओर काफी ध्यान दिया। इक्कीसवीं सदी का भारत शिक्षित युवा के रूप में विश्व के सामने उभर कर आया है। जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का दूसरा देश भारत है। युवा शक्ति के बल पर आज देश ने हर क्षेत्र में प्रगति की है। औद्योगिक क्रांति ने शिक्षा व्यस्था को जिस प्रकार बदला था। सूचना क्रांति कमोबेश उसी भूमिका को नये रूप में निभाने को तैयार है। इसके आगामी प्रभाव को लेकर चर्चा समीचीन होगी। सन 1857 ई0 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की स्थापना के बाद उच्च शिक्षा के संस्थागत रूप के लगभग 161 पूरे हो गये हैं। आज भारत ,चीन और अमेरिका के बाद विश्व की तीसरी बड़ी शिक्षा व्यवस्था है। लेकिन उपलब्धियों के नाम पर पूरे समाज विज्ञानों में किसी सर्वमान्य मौलिक सिद्वांत का विकास नहीं हुआ है। फिर उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को लेकर होने वाला समूचा विमर्श क्या सिर्फ कर्मकांड की औपचारिकता या अथवा इसके पीछे कोई सुनियोजित चिंतन है। ऐसे में महान शिक्षा शास्त्री मार्टिन कारनाय का स्मरण समीचिन होगा। कारनाय ''सांस्कृतिक साम्राज्यवाद'' में कहते हैं; ''उच्च शिक्षा का उददेश्य सृजन, रचना और आविष्कार का परिवेश औेर ऐसे मस्तिष्क को तैयार करना, जो समालोचना तथा परीक्षण के योग्य हो।[1] पर इस नई सदी में हमें हम शैक्षिक संस्कृति के संक्रमण से गुजर रहे हैं। सभ्यता के एक स्तर से सर्वथा भिन्न सभ्यता के दूसरे स्तर ने सक्रंमण से मानव जीवन की सम्पूर्ण दिनचर्या ही बदल दी है। विज्ञान तकनीकी एवं आधुनिकीकरण की चकाचौंध से प्रभावित सूचनाओं के तथाकथित इस युग ने जानकारियाँ एवं उनके स्रोतों को बढ़ाकर विश्व को एक छोटे से गाँवों में तो समेटा ही है, लोगों का अपने कौशल गुण क्षमता तथा बुद्धि को विकसित करने पर मजबूर भी कर दिया है।

शिक्षक वर्ग समाज का प्रबुद्ध वर्ग होता है जो भूत,वर्तमान तथा भविष्य के विभिन्न विषयों पर चिन्तन करता रहता है। पर आज का शिक्षक केवल वेतनभोगी होकर रह गया है। बुनियादी शिक्षा की स्थिति तो और अधिक खस्ता हाल हो गयी है। प्राथमिक शिक्षा केवल मिड–डे–मील तक सीमित रह गयी । सरकारी पाठयक्रम आज के युगानुरूप नहीं है। व्यवसायिक शिक्षा का बाजारीकरण हो गया है। कम्प्यूटर शिक्षा सिर्फ कागजों पर सिमट गयी है। कम वेतन में अन्य शिक्षित लोगों ने शिक्षा को पूर्ण व्यावसायिक धंधे का रूप तो दे दिया लेकिन वास्तविक संस्कारवान शिक्षा के नाम पर शिक्षा मंहगी होती चली गई है। सरकारी सहायताओं को भ्रष्ट तरीकों से लूटने का धंधा भी पनपने लगा है–इतना ही नहीं सरकारी विद्यालयों के अध्यापकों द्वारा अधिकाधिक तनखाएँ प्राप्त करने के उपरान्त भी ट्यूशन पढ़ाने के नाम पर अधिक धन कमाने की होड़ ने सरकारी विद्यालयों में शिक्षा के नाम पर भ्रष्टाचार को ही बढ़ावा मिला और अध्यापक मात्र धन अर्जित करने की मशीन मात्र बन गये।

स्वयं ज्ञानी और शिक्षित बनने की होड़ में ग्राहक रूपी छात्रों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। क्या ये सभी छात्र ज्ञान–शिक्षा संस्कारों को ही ग्रहण करने के लिए लालायित है? यह सवाल बढ़ती बेरोजगारी में विशेष ध्यान देने योग्य हैं। अधिकांश छात्र सिर्फ सरकारी नौकरी प्राप्त करने मात्र को ही शिक्षा प्रमाण पत्र को सुलभ साधन समझते हैं। साधन सुलभ अभिभावक भी अपने बच्चों को सिर्फ किसी प्रकार प्रमाणपत्रों के दम पर सिर्फ सरकार नौकरी दिलवाने को हर प्रकार का रास्ता अपनाने से भी नहीं हिचकते, चाहे वह कैसा भी भ्रष्ट रास्ता क्यों न हों।

संवादों का विचार के और समाज की उन्नति में कितना महत्वपूर्ण स्थान है,इसका उदाहरण है कि आज पश्चिमी सभ्यता की उन्नति और उसकी श्रेष्ठता का मूल, उनका चिंतन, कभी सुकरात के संवादों से ही निकला था। यह अलग बात है कि इस संवाद की कीमत उन्होंने अपनी जान दे कर चुकाई। संवाद संबंधों ही नही लोकतांत्रिक चेतना और जीवंतता को भी जन्म देता है। भारतीय शिक्षा संस्थाओं में भेदभाव और प्रोटोकाल के पालन पर अतिशय ध्यान देने के बारे में शिक्षा शास्त्री प्रो0 कृष्ण कुमार लिखते हैं ''इस संकीर्ण मनोवृति के कारण शिक्षक एक समुदाय की तरह काम करने की संभावना से वंचित रह जाते हैं। उनके भिन्न कक्षायी अनुभव व्यक्तिगत रह जाते हैं और स्कूल ...कॉलेज एक जीवित संस्था की तरह काम करने के स्थान पर एक ढॉचा रह जाते हैं, जिसमें बच्चों की दैनिक आवागमन की रस्म नियमित रूप से संपन्न होती है।[2]

भेदभाव का व्यवहार अस्थायी शिक्षकों की इंसानी गरिमा का क्षरण करता है। शोषण धीरे–धीरे जीवन में एक स्वीकार्य तथ्य की तरह चलन का अंग बन जाता है। यह चलन केवल पीडित के ही नहीं बल्कि समूचे तंत्र को मानवीय संवेदनाओं से वंचित कर देता है। जार्ज आरवेल के शब्दों मे कहें तो अपनी श्रेष्ठता औरसीनियारिटी की रक्षा के लिए कुछ लोग पूरे तंत्र को ही ऐसा सूअरबाड़ा बना देते हैं । इस बात का अहसास किए बगैर कि उनकी बादशाहत वास्तव में एक सूअर की बादशाहत है, जहाँ कीचड़ की कालिमा ही कालिमा है,स्वतंत्रता और इंसानियत का उजाला नदारद है। महान शिक्षाशास्त्री पाउले फेंरे शिक्षा व्यवस्था में उत्पीड़न की प्रकिया पर कहते हैं कि ''अमानवीयकरण की प्रक्रिया बर्बरता को सहन करने वाले व्यक्ति के साथ ही नहीं बल्कि जुल्म करने वाले व्यक्ति की इंसानियत का क्षरण करता है।[3] स्पष्ट रूप सें श्रेणीकरण के कारण प्राध्यापकीय सम्बन्ध लोकत्रांत्रिक नहीं बल्कि सांमती और कई बार गुलामी प्रथा का आभास देते हैं, संविधान की मूल भावना और मानवाधिकारों का खुल्लमखुल्ला उल्लंघन करते हुए। आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि भारत उन देशों में है जहाँ उच्च शिक्षा के डिग्री कालेजों में डेस कोड राष्टीय बहस का विषय है, मानो कॉलेज स्वतंत्र विमर्श के स्थान के बजाय सैन्य छावनी है। यह बहस उन्नत समाजों में कभी की समाप्त हो चुकी है। यही भारत में ज्वलंत विषय है, शायद यहाँ अगली बहस का विषय होगा कि पृथ्वी गोल है अथवा चौकोर ? स्वत्रंत्रता, विवेक और मानवीय तर्क का कार्यसंस्कृति में अभाव उच्च शिक्षा में संख्या को जन्म दे सकता है किसी नई सोच को नहीं। नई सोच संवाद से पैदा होती, स्वतंत्र चेतना से उभरती है।

आधुनिक परिपेक्ष्य में शिक्षा की प्रमुख समस्या के रूप में सभी बच्चों को आधारभूत प्राथमिक शिक्षा का न मिलना है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम को व्यवहारिक रूप में परिणित करने में अनेक दुष्वारियाँ सामने आ रही हैं। जो वर्तमान परिदृश्य है उसमें न तो पर्याप्त विद्यालय हैं और न ही पर्याप्त शिक्षक हैं। अनेक स्कूल ऐसे हैं जिनकी इमारतें पक्की नहीं हैं न बैठने के पर्याप्त इंतजाम हैं और न ही पीने के पानी और शौचालयों आदि की ही व्यवस्था है। प्रशिक्षित एवं योग्य अध्यापकों की कमी शिक्षा के विकास में बाधक है। जो शिक्षक बच्चों को बढ़ायेंगे वे कितनी गुणवत्तापरक शिक्षा उन्हें दे सकेंगे क्योंकि हमारे यहाँ ऐसी संस्थाओं का अभाव है जो अध्यापकों को पूर्ण प्रशिक्षित कर उन्हें इतना पारंगत बना सकें कि वे गुणवत्तापरक शिक्षा दे सकें। ऐसे में बड़े पैमानें पर शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था न हो पाने के कारण गुणवत्तापरक शिक्षा पर सवालिया निशान लग जायेगा और अप्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा पढ़ाये बच्चों का भविष्य क्या होगा, यह अनुमान लगाया जा सकता है। दोषपूर्ण पाठ्यक्रम शिक्षा व्यवस्था की एक अन्य प्रमुख समस्या है क्योंकि पाठ्यक्रम अरुचिकर एवं दोषपूर्ण है। यह छात्रों को रचनात्मक विकास में सहायता नहीं देता है। शिक्षा केवल रटना ही है, व्यवहारिक जीवन के साथ उसका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। पाठ्य विषयों का चयन विद्यार्थियों से आयु वर्ग तथा बौद्धिक स्तर के अनुकूल नहीं है। पाठ्य विषयों की बहुलता है मानो विद्यार्थी में सब प्रकार का ज्ञान ठूँस–ठूँस कर भरने की उतावलापन है। प्रदत्त शिक्षा के प्रयोग की न आवश्यकता समझी जाती है और न ही उसके लिए अवसर है। वर्तमान समय में विभिन्न शिक्षा संस्थान जो मोटी

फीस लेकर शिक्षा दे रहे हैं। जहाँ उच्च एवं मध्यम वर्ग के बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। वे केवल बच्चों को परीक्षायें पास करने की कला सिखा रहे हैं अतः ये विद्यालय बच्चों में ज्ञान के प्रति वास्तविक समझ एवं सृजनात्मकता को विकसित करने में अक्षम सिद्ध हो रहे हैं।

माध्यमिक शिक्षा देश के विकास की रीढ़ है। वर्तमान समय में पाठ्यक्रम प्रशासन अध्यापक प्रशिक्षण एवं अनुदान सम्बन्धी समस्याएँ माध्यमिक शिक्षा के प्रसार में बाधक हैं। माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं में व्याप्त अध्यापक गुटबन्दी जिससे शिक्षण कार्य प्रभावित होता है, प्रमुख समस्या है। इसके कारण विद्यालयों में शैक्षिक वातावरण का अभाव एवं विद्यार्थियों में शिक्षा के प्रति अरुचि जागृत होती है एवं शिक्षकों के प्रति भी असम्मान की भावना जागृत होती है। माध्यमिक शिक्षा विद्यार्थी की रुचि के आधार पर उसका वर्गीकरण करने में अक्षम सिद्ध हो रही है जिस कारण बालक उस शिक्षा को विश्वविद्यालय स्तर पर ग्रहण करने लगता है जिसमें उसकी बिल्कुल भी रुचि नहीं होती है अतः शिक्षा उसकी जीवकोपार्जन की समस्या को हल करने में सहायक सिद्ध नहीं होती है। माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त उच्च शिक्षा की समस्या वर्तमान समय में प्रमुख रूप से विद्यमान है। उच्च शिक्षा के विकास हेतु डिग्री कालेज तो बहुत खोले गये हैं लेकिन वे केवल डिग्री देने का माध्यम बन गये हैं क्योंकि इन कालेजों का प्रशासन ऐसे व्यक्तियों के हाथों में है जो या तो नेता हैं या व्यापारी हैं जिसका शिक्षा की गुणवत्ता से कोई लेना–देना नहीं है उनके लिए शिक्षा तो केवल एक व्यवसाय है। अतः उनको छात्रों की शैक्षिक सामाजिक आर्थिक समस्याओं से कोई लेना–देना नहीं है। इस प्रकार के विद्यालय शिक्षक भी ऐसे रखते हैं जो कम पैसे में उनके विद्यालय में पढ़ा सकें या केवल डिग्री देकर विद्यालय की मान्यता को बरकरार रख सकें। स्पष्ट है कि शिक्षा की ऐसी व्यवस्था छात्र असंतोष को बढ़ावा देती है जिसका खामियाजा समाज को चोरी, डकैती आदि घटनाओं के रूप में भुगतना पड़ता है।

वर्तमान समय में हजारों की संख्या में तकनीकी एवं प्रबंधन संस्थान खोले जा रहे हैं क्योंकि भारत को आर्थिक प्रगति हेतु इंजीनियरों एवं पेशेवर प्रबंधकों की आवश्यकता है किन्तु इन क्षेत्रों की प्रमुख समस्या गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अभाव एवं नियोजन (Planning) की है। इससे तकनीकी की एक शाखा में बहुत अधिक व्यक्ति शिक्षित हो गये एवं अन्य क्षेत्रों में बहुत ही कम लोग शिक्षित हो पाये हैं। परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में बेरोजगारी फैल गई। पिछले वर्षों में छाई आर्थिक मन्दी ने इन क्षेत्रों में गंभीर समस्या का रूप धारण कर लिया था। वर्तमान समय की तकनीकी शिक्षा में भी उचित नियोजन, प्रासंगिक पाठ्य पुस्तकों, शिक्षकों तथा कार्यशालाओं के साधनों का अभाव समस्या के रूप में विद्यमान है।

वर्तमान के मौजूदा परिवेश की बात की जाए तो छात्र, शिक्षक तथा अभिभावाक का दृष्टिकोण बिल्कुल ही बदल चुका है। शिक्षा में ह्रास के लिए यद्यपि हमारा समग्र समाज एवं सरकार पूर्णरूपेण उत्तरदायी है। परन्तु शिक्षा के ह्रास में शिक्षक की भूमिका अग्रणी ही मानी जायेगी। आज ऐसे अध्यापकों की कमी नहीं है। जो सत्र मे आने वाले अधिकांश कार्य दिवसों में किसी न किसी प्रकार के अवकाश का उपभोग करते हैं ट्यूशन करने में आंशिक रूप से भी नैतिकता का पुट नहीं मिलता। कुछ शिक्षक अवकाश लेकर ट्यूशन ही नहीं पढ़ाते हैं, वरन् वे कालेज के समय में ही घरों पर ट्यूशन पढाने पाले शिक्षको की संख्या इतनी अधिक हो जाती है कि कालेज के समय में लगने वाली कक्षायें बौनी पड़ जाती है। सुचारू रूप से सत्र के कार्य दिवसों में कक्षायें न लगने के लिए प्रेक्टिकल तक, उच्च प्राप्तांक दिलाने का पूर्ण आश्वासन आरम्भ में ही दे देते हैं तथा वे ही उन छात्रों को समय–समय पर यह भी सलाह देते रहते हैं कि कालेज की नियमित कक्षाओं के स्थान पर विभिन्न विषयों की ट्यूशन घर पर ही पढकर वे अच्छे प्राप्तांक पा सकते हैं।

कतिपय शिक्षक ऐसे भी हैं जो पूरे वर्ष में कुछेक एक बार से अधिक कक्षाओं में नहीं जाते। कुछ ऐसे भी शिक्षक हैं जो कई वर्षों से लगातार न कालेज ही आते हैं तथा वर्षों से उन्होंने कक्षा में नहीं पढ़ाया है। अपनी किसी न किसी तिकड़म से वेतन को प्राप्त करते रहते है। यदि कभी वेतन मिलने में कोई व्यवधान भी आता है तो कोर्ट

कचहरी की शरण लेकर बिना काम किये ही अपनी पूरा तथाकथित सर्विस का वेतन प्राप्त कर लेते है। इस प्रकार कोर्ट कचहरी की शरण लेकर वेतन भोगियें की संख्या यदि इसी गति से बढ़ती रही तो वह दिन दूर नहीं है जब शत–प्रतिशत शिक्षक बिना अध्यापन किये ही कोर्ट कचहरी के माध्यम से ही वेतन लेना पसन्द करेगें।

अब वह समय आ गया है जब मानव को अपनी अन्तरात्मा का परीक्षण करना ही होगा। वह जहाँ भी हो, चाहें वह डाक्टर हो, इन्जीनियर हो, राजनीतिज्ञ हो, वकील हो, शिक्षक हो, विद्यार्थी हो, पूँजीपति हो, व्यापारी हो, नौकर हो, किसान हो अथवा मजदूर हो उसे इस टूटती हुई शिक्षा को पुनः सुस्थिर करना ही होगा। देश का भविष्य इन्हीं सभी के कन्धों से कन्धा मिलाने एवं एक जुट होने पर ही उज्ज्वल हो पायेगा। शिक्षा जगत में व्याप्त अव्यवस्था, भ्रष्टाचार एवं भेद–भाव को मिटाना होगा। छात्र–छात्राओं को नैतिक मूल्यों से अवगत कराना होगा। यद्यपि इस कार्य में सर्वाधिक भूमिका प्राचार्य एवं शिक्षक की ही रहेगी तथापि समाज एवं सरकार को भी अपना कर्तव्य एवं धर्म का पालन करना ही होगा।

किसी भी देश की शिक्षा व्यवस्था में उच्च शिक्षा का स्थान सर्वप्रमुख होता है क्योंकि उच्च शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जो किसी राष्ट्र के शासन, प्रशासन, समाज तथा राजनीति एवं न्याय का निर्धारण करती है। उच्च शिक्षा को विशेष रूप से महत्व दिया जाता है क्योंकि उच्चकोटि के वैज्ञानिक, नेता, साहित्यकार, तथा दार्शनिक विश्वविद्यालयों के प्रांगण से ही उत्पन्न होते हैं। ज्ञान के क्षेत्र को विस्तृत बनाने के लिये विश्वविद्यालय महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। माध्यमिक शिक्षा की समाप्ति के उपरान्त शिक्षार्थी के भावी जीवन के स्वरूप का निर्धारण काफी सीमा तक उच्च शिक्षा के स्तर पर ही निर्भर करता है।

यह ध्रुव एवं अटूट सत्य है कि शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक की भूमिका धुरी के समान है। यदि शिक्षा जगत में शिक्षक निश्पक्ष, उदार, कर्मठ, जागरूक एवं अपने विशय में निश्णात है तो उसका विद्यार्थी भी कुन्दन के समान ही सिद्ध होगा। माता–पिता जिसय प्रकार अपने पुत्र की उन्नति में अपना जीवन धन्य समझते है उसी प्रकार गुरू भी अपने शिश्य के उत्कर्श में अपना गौरव समझें तभी शिक्षक बनने की सार्थकता है अन्यथा उसे पद मुक्त हो जाना ही श्रेयस्कर रहेगा। अब निश्चित ही वह दिन अति सन्निकट है जबकि निष्क्रिय एवं पक्षपाती शिक्षक का काला मुख करके उनके ही शिष्य उन्हें महाविद्यालय से बाहर कर देंगे।

साक्षरता एक राष्ट्र के विकास का आधार है। आज जहाँ दुनिया के बेहतरीन प्रशिक्षित मानव संसाधन भारत में हैं वहीं दुनिया के सबसे अधिक अशिक्षित लोग भी भारत में पाये जाते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में इस अन्तर का कम होना अति अनिवार्य है। आज की कई गाँव ऐसे हैं जहाँ दूर–दूर तक विद्यालय नहीं है। अतः ऐसे गाँवों का सर्वे कर विद्यालय बनाये जाएँ। विद्यालय तथा आवासीय क्षेत्रों में दूरी गुणवत्ता युक्त शिक्षा प्राप्ति में बाधक है इसके लिए दूरस्थ क्षेत्रों में विद्यालय खोले जाएँ तथा ऐसे क्षेत्रों में सरकार द्वारा उचित परिवहन साधनों की व्यवस्था उपलब्ध करवानी चाहिए। लेकिन केवल स्कूल बना देना ही पर्याप्त नहीं होगा बल्कि बच्चों को स्कूलों तक लाना भी शिक्षा के अधिकार अधिनियम की सफलता के लिए अति आवश्यक है। लोगों को शिक्षा का महत्व समझाना एवं इसकी अनिवार्यता का एहसास दिलाना भी अत्यन्त आवश्यक है। अभी भी कुछ पिछड़े क्षेत्रों में लोगों की धारणा है कि लड़की को पढ़ाने का अर्थ उसका चरित्र बिगाड़ना है। इन सभी रूढ़िवादी विचारों को दूर करना भी शिक्षा के विकास के लिए अत्यन्त जरूरी है। भारत के बहुत से बच्चे आर्थिक कारणों से भी शिक्षा ग्रहण नहीं करते। उनके अनुसार 'जो समय हम स्कूल में व्यर्थ गँवायेंगे। उस समय में हम खेतों तथा कारखानों में काम करके कमा सकते हैं। अतः इन कारणों की गंभीरता को जानकर इनके निदान हेतु प्रयास किये जाने चाहिए।

शिक्षा के स्तर को ऊपर उठाने के लिए इन समस्याओं का निराकरण करना अति आवश्यक है। इन समस्याओं के निराकरण के सुझाव निम्न है– शिक्षा की निश्चित नीति, शिक्षा के प्रशासन में सुधार, पाठ्यक्रम में सुधार, प्रशिक्षित अध्यापको की पूर्ति, विद्यालय भवनों का निर्माण, सरकार का शिक्षा पर पूर्ण ध्यान, सहायक सेवाये (जैसे– निःशुल्क

मध्यान्तर भोजन, निःशुल्क पाठ्य पुस्तक, लेखन साम्रगी, ड्रेस का वितरण आदि), परीक्षा प्रणाली में सुधार आदि। शिक्षा, शिक्षक और समाज जैसे – तीन पक्ष किसी भी राष्ट्र के विकास हेतु अपनी अहम भूमिका निभा सकते हैं और समाज तथा संस्कृति के मूल्यों को स्थापित भी कर सकते हैं। इससे हम, भारतीय शिक्षा व्यवस्था को नये कलेवर के साथ नये क्षितिज तक पहुँचाकर भूमण्डलीकरण के भवर में भटकती भारतीय शिक्षा को नया आयाम दे सकते हैं। कहने का आशय यह है कि हमें शिक्षा के संदर्भ में हीन ग्रन्थियाँ पालने की आवश्यकता नहीं है। यह सच है कि नये दौर में हम थोड़ा पिछड़ गये हैं। शिक्षा का ढ़ाँचा चरमरा गया है मगर इस स्थिति से उबरा जा सकता है, बशर्ते दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ शिक्षा व्यवस्था में सुधार के पारदर्शी प्रयास हों। इस दिशा में जो सुधार हो रहे हैं वे अत्यन्त ही प्रभावकारी सिद्ध हो रहे हैं। हम ऐसी उम्मीद कर सकते हैं कि आने वाले दिनों में हम शिक्षा के अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के समक्ष पहुँच जायेंगे। बुनियादी शिक्षा की संरचना मजबूत होगी बस आवश्यकता इस बात की है कि सुधार की नई पहलों की सार्थकता पर विशेष बल दिया जाए तथा इनके व्यवहारिक पहलुओं की अनदेखी न की जाए।

अंत में कहा जा सकता है कि अध्यापक शिक्षा के दोनों पहलुओं, सेवापूर्ण एवं सेवारत अध्यापक शिक्षा को धान में रखकर कौशल आधारित मॉडल का निर्माण कर उसकी क्रियान्विति की सुनिश्चितता हेतु व्यूह रचना का निर्माण कर सुधार करने के प्रयास करने चाहिए ताकि राष्ट्र को योग्य शिक्षक उपलब्ध हो सकें एवं सभी के लिए (Eduction for All) की संकल्पना पूर्ण होने के साथ–साथ गुणवत्ता आधारित जीवनोपयोगी शिक्षा भी मिल सके और राष्ट्र तेजी से विकास पथ पर आगे बढ़ सके। इसके साथ ही उच्च शिक्षा संस्थागत ढाँचे नहीं बल्कि सूचना प्रौद्योगिकी की शक्ति पर सवार होकर अपना रूप बदल रही है।यह अलग बात है कि क्षेत्रीय विविधता और प्रशासनिक इच्छाशक्ति के अनुसार बदलाव की गति अलग अलग होगी। कवि 'बायरन' ने फ्रेंच क्रांति के लिए कभी लिखा था कि एक सुहानी सुबह जब मै जगा तो पाया कि दुनिया बदल चुकी थी।सूचना क्रांति उच्च शिक्षा को इतने नाटकीय रूप में शायद न बदल पाए लेकिन इसे एकाधिकार और आभिजात्य से आजाद कर जन सुलभ अवश्य बना देगी।

संदर्भ संकेत

1. सांस्कृतिक साम्राज्यवाद –मार्टिन कारनाय,पृ0 सं 63
2. राज,समाज और शिक्षा–कृष्ण कुमार , पृ0 सं 39
3. उत्पीड़ितों का शिक्षा शास्त्र–पाउले फ्रेरे ,पृ0 सं 44

अन्य संदर्भ ग्रन्थ

- कमल नयन काबरा; भूमण्डलीयः विचार, नीतियां और विकल्प,पृ0–18
- भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास– सिंह डॉ कर्ण गोविन्द प्रकाशन,लखीमपुर खीरी।
- भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्यायें– लाल, रमन बिहारी एपसाइलन पब्लिशिंग हाउस, कानपुर।
- आदि और मध्य युगीन भारत में शिक्षा– चौबे, सरयू प्रसाद, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
- भारत में शिक्षा का विकास–शर्मा, डॉ0 आर0 ए0, लाल बुक डिपो, मेरठ।
- भारत में शैक्षिक सुधार (समसामयिकी महासागर), अरिहन्त नम्व0 2009।
- आओ स्कूल चलें हम (कुरूक्षेत्र)– ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली– 2007।
- विद्या मेद्य मासिक पत्रिका मेरठ, जुलाई, नम्व0 2009, अगस्त 2010।
- नई सदी में भारत : दशा एवं दिशा– डॉ0 सियाराम,ओमेगा पब्लिकेशन्स,नई दिल्ली

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और समावेशी शिक्षा के बदलते परिदृश्य

डॉ0 सियाराम
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी
तिलक महाविद्यालय, औरैया, उ.प्र.

किसी भी राष्ट्र अथवा समाज के विकास का मूल आधार शिक्षा है जिस समाज में शिक्षा का स्तर जितना उच्च होगा, वह समाज उतना ही प्रगतिशील और विकसित माना जायेगा। इसीलिए प्रत्येक देश की सरकारों का यह प्रथम कर्तव्य है कि वे अपने–अपने देश में प्रत्येक नागरिक के शिक्षा प्राप्ति के अधिकार की जिम्मेदारी को समझें और ईमानदारी से ऐसे प्रयास करें कि उनके नागरिकों में न केवल शिक्षा का स्तर ऊँचा उठे अपितु उसकी गुणवत्ता भी बनी रहे। स्वतंत्रता प्राप्ति के 70 वर्ष बीत जाने के बाद भी हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था संतोषजनक नहीं कहीं जा सकती। इसलिए एन0 सी0 ई0 आर0 टी0 के पूर्व निदेशक श्री जगमोहन सिंह राजपूत आज भारत में शिक्षा सुधारों को प्राथमिकता देने की वकालत करते हुये कहते है–''विश्व के सौ या दो सौ उच्च शिक्षा संस्थानों और विश्वविद्यालयों में आज भी अनुपस्थिति पर चिंता प्रकट की जाती हैं। नये–नये उपाय भी सुझाये जाते हैं और उनमें से कुछ का क्रियान्वयन भी प्रारम्भ किया जाता है लेकिन परिवर्तन दिखाई नही देता है। शिक्षा के गुणवत्ता की धुरी 'कौन पढ़ाए' के आस–पास ही घूमती है।''[1] इस सुझावों के पूर्ण क्रियान्वयन न होने का ही परिणाम है कि आज हमारा देश शिक्षा की गुणवत्ता में पिछड़ता जा रहा है। भले ही अमेरिका आदि देशों में भारत के 'टेक्नोक्रेटों' की अधिकता हो किन्तु देश के आमजनों में शिक्षा का स्तर निन्तनीय ही बना हुआ है।

यद्यपि हमारे देश के अधिकांश तथाकथित बुद्धिजीवी भारत के प्राचीन काल में 'विश्व गुरू' होने का दम भरते हैं तथापि वे इस तथ्य से भी भलिभाँति परिचित हैं कि उस समय शिक्षा पर केवल कुछ गिने–चुने लोगों का ही आधिपत्य था। ऐसे में हम ये सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि जितने बुद्धिजीवी गुरू उस समय रहे होंगे उससे कम आज भी नहीं हैं। आज भारत की प्रतिभा का लोहा अनेक देशों में माना जाता है किन्तु यहाँ की बहुसंख्यक आबादी शिक्षा के अधिकार से या तो वंचित है या नाममात्र की साक्षर। यद्यपि देश की स्वतंत्रता के साथ ही सर्वजन को शिक्षित किये जाने का प्रयास आरम्भ हुए थे किन्तु ''प्रारम्भिक वर्षों में हमसे प्राथमिक और ग्रामीण शिक्षा की अनदेखी हो गयी। सन् 2001 में नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन से डॉक्टरेट की मानक उपाधि ग्रहण करते हुये अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने कहा था, समय से प्राथमिक शिक्षा पर निवेश न कर पाने की कीमत भारत आज अदा कर रहा है। नेहरू जी ने तकनीकी शिक्षा के महत्त्व को पहचाना जिसके कारण आई0 आई0 टी0 जैसे शिक्षा संस्थान खड़े हुए, पर प्राइमरी शिक्षा के प्रति उनका दृष्टि कोण 'निराशाजनक' रहा।''[2] कालान्तर में कोठारी आयोग की सिफारिशों के बाद शिक्षा की प्रगति हेतु केन्द्रीय बजट में सकल राष्ट्रीय उत्पाद की कम से कम 6 प्रतिशत धनराशि के निवेश से लेकर अनेक प्रगतिशील योजनाएँ बनायी और लागू की गईं। परिणामतः शिक्षा का स्तर बढ़ा परन्तु गुणवत्ता अभी भी आपेक्षानुसार नहीं है। यदि मुख्य धारा के नागरिकों को छोड़ दिया जाय तो शिक्षा के स्तर और गुणवत्ता की स्थिति अत्यधिक भयावह है। आज भी दलित, पिछड़े, आदिवासी, पसमांदा, मुसलमानों और घुमन्तू जातियों–समूहों में पुरुषों की शिक्षा का स्तर सोचनीय है। स्त्रियों का तो कहना ही क्या? इन वर्गों में गरीबी के आकड़ों को देखते हुए कहा जा सकता है कि भयावह कुपोषण व खराब स्वास्थ के मध्य इन वर्गों के विधार्थी बीच में ही पढ़ाई छोड़कर घर बैठ जाते हैं। जो किसी तरह पढ़–लिख लेते

हैं उनमें बेरोजगारी की भयानक समस्या है। इन सबको दृष्टिगत रखते हुए 'समावेशी शिक्षा' केवल एक दृष्टिकोण ही नहीं बल्कि एक माध्यम भी है। विशेशकर उन लोगों के लिए जिनमें कुछ सीखने की ललक होती है और जो तमाम अवरोधों के बावजूद आगे बढ़ना चाहते हैं।

देश के प्रत्येक वर्ग के नागरिकों के हितों को देखते हुए दो सरकार ने 'सब पढ़ें सब बढ़ें' के सूत्र वाक्य के अनुरूप योजनाएँ बनाना व उनका क्रियान्वयन आरम्भ किया। यद्यपि इन तमाम कोशिशों के सकारात्मक परिणाम आना अभी शेष है फिर भी शिक्षा के प्रचार–प्रसार के साथ–साथ उसमें दक्षता का मुद्दा उठाया जाने लगा है। इस सम्बन्ध में 'शिक्षा में बदलाव का समय' में दक्षता विकास को प्रोत्साहन और शिक्षा के ढाचे में बुनियादी बदलावों पर जोर देते हुये श्री निशिकान्त ठाकुर ठीक ही लिखते हैं–''पिछली सरकार ने माध्यमिक स्तर पर शिक्षा में बड़े बदलाव किये लेकिन ये बदलाव न केवल निरर्थक बल्कि नुकसानदेह भी साबित हुए हैं। यहाँ तक कि खुद स्कूलों में ही इसके खिलाफ बातें होने लगीं और भविष्य के लिये तैयारी के नाम पर कई जगह भीतर ही भीतर समानान्तर व्यवस्थाएँ बनने लगीं क्योंकि 'एक्टिविटीज' के नाम पर केवल छात्रों और अभिभावकों पर काम और खर्च का बोझ बढ़ा दिया गया और वह भी यह सोचे बगैर कि आखिर इससे उनकी सृजनशीलता में क्या विकास होगा।''[3] वर्तमान सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्री श्री प्रकाश जावड़ेकर जी का कहना है कि सरकार ने जनता के विकास के लिए उनके कार्यक्रम शुरू किये जिससे सबके जीवन में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य आया है। शिक्षा व्यवस्था के सम्बन्ध में उनका मानना है– ''अच्छी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए हमने सरकारी स्कूलों को ही बेहतर बनाने की मुहिम चलाई, जहाँ लोग अपने बच्चों की शिक्षा के लिए आने भी लगे। चार–पाँच राज्यों ने तो इस पर इतने बेहतर तरीके से अमल किया है कि अभिभावक अब निजी स्कूलों से इनमें दाखिला दिला रहे हैं। खास तौर से ग्रामीण इलाकों में यह रुझान खासा मजबूत है।''[4] जनता में यह सकारात्मक रुझान बना रहे और सभी बालक–बालिका समान रूप से शिक्षा ग्रहण करें इसके लिए हमें 'समावेशी शिक्षा पद्धति' को अपनाना आवश्यक है क्योंकि ''समावेशी शिक्षा वह शिक्षा है जिसके द्वारा विशिष्ट क्षमता वाले जैसे– मन्दबुद्धि, अन्धे बालक, बहरे बालक तथा प्रतिभाशाली बालकों को ज्ञान प्रदान किया जाता है। समावेशी शिक्षा के द्वारा सर्वप्रथम छात्रों के बौद्धिक स्तर की जाँच की जाती है, तत्पश्चात् उन्हें दी जाने वाली शिक्षा का स्तर निर्धारित किया जाता है। अतः यह एक ऐसी शिक्षा प्रणाली है जो विशिष्ट क्षमता वाले बालकों हेतु ही निर्धारित की जाती है।''[5] चूँकि विशिष्ट क्षमता वाले बालक भी देश के नागरिक हैं। अतः उनकी शिक्षा का दायित्व भी हमारा ही है।

भारत एक विविधताओं व विभिन्नताओं से सम्पन्न देश है। यहाँ अनेक भाषा समुदाय, पंथ, धर्म, संस्कृति आदि को मानने वाले एक साथ रहते हैं। ऐसे में हमारे राष्ट्र के लिए ऐसी शिक्षा पद्धति की महती आवश्यकता है जो सभी विभिन्नताओं व विशिष्टताओं से निपटने में सक्षम हो–''आजादी के बाद से भारत में हुई शैक्षिक व्यवस्था का विकास इस बात की पुष्टि करता है कि समावेशी शिक्षा ने विभिन्न क्षेत्रीय विविधताओं और भिन्न सीमाओं के बावजूद भी शिक्षा के लिए उपकरण के रूप में कार्य किया है। समावेशी शिक्षा से हमारा तात्पर्य वैसी शिक्षा प्रणाली से है जिसमें सभी शिक्षार्थियों को बिना किसी भेद भाव के सीखने सिखाने के समान अवसर मिले परन्तु आज भी यह समावेशी शिक्षा उस मुकाम पर नहीं पहुँची है।''[6] इस प्रकार समावेशी शिक्षा में सभी बच्चों को बिना किसी भेद भाव के विद्यालयी शिक्षा में सम्मिलित कर उनकी समझ व आवश्यकता के अनुरूप शिक्षित करने पर बल दिया जाता है। इसके लिए छात्रों की आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रमों को बनाने की जरूरत को देखते हुए ऐसे कोर्स बनाना होगा जिसमें सभी विषयों का समावेश हो। साथ ही साथ कक्षाओं में ऐसा वातावरण बने जिससे बच्चे शिक्षणेतर गतिविधियों में भी हर्ष के साथ सम्मिलित हों। इसके लिए आवश्यक है कि ''इससे जुड़े शिक्षक न केवल छात्रों को आधार भूत शिक्षा मुहैया करायें बल्कि लीक से हटकर उन्हें विशयक निर्देशों, सभी भाशाओं का ज्ञान, आलोचनात्मक नजरिये से रूबरू कराने, अपनी समस्याओं का निपटान करने और प्रामाणिक आकलन का अवसर

दे।''[7] स्पष्ट है कि ऐसी वैविध्यपूर्ण आवश्यकताओं को पूरा करना बड़ी चुनौती है लेकिन सामाजिक सम्बन्धों को उपयुक्त बनाने का एक यह एक अवसर है। साथ ही यह हमारी शिक्षा व्यवस्था के लिए चुनौती भी है। इस चुनौती का सामना करने के लिए समावेशी शिक्षा उपयुक्त माध्यम बन सकती है।

विद्यालय वैश्विक समुदाय के युवा नागरिकों को तैयार करते हैं। एक ऐसा वैश्विक समाज जहाँ सहिष्णुता हो, सभी शिक्षित हों और अपनी विविधताओं के साथ सहजता से निवास करें। इस दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि ''सामाजिक बदलाव का सबसे बड़ा जरिया शिक्षा है और सामाजिक भेदभाव का जरिया भी शिक्षा ही है, गुणवत्ता का आकलन तभी महत्त्वपूर्ण है जब उन कारणों का निवारण करे, जिनके कारण बालक की शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित होती है। बड़ी संख्या में बच्चे पहली पीढ़ी के छात्र हैं। उनके परिवारों में इससे पहले कोई पढ़ने नहीं गया। इससे वहाँ शिक्षा का माहौल बनाने और शिक्षित होने के लाभों को समझने–समझाने की जरूरत भी है। गाँवों और कस्बों में ऐसे रोल मॉडल खोजे जाने चाहिए जो केवल शिक्षा के सहारे आगे बढ़ने में कामयाब हुए।''[8] इस कार्य में स्थानीय समुदाय की सहायता आवश्यक है। सभी समुदायों में सीखने के मौके होते हैं, आवश्यकता उन्हें पहचान कर उनके बेहतर इस्तेमाल की है। कोई योजना सबके लिए उपयुक्त नहीं कही जा सकती फिर भी शिक्षा की कुछ निश्चित योजनाएँ है जो समाज के सभी वर्गो की शैक्षिक, सामाजिक और अनुदेशात्मक जरूरतों को पूरा कर सकती हैं। 'शिक्षा में समावेशन' भी इनमें से एक है। ''समावेशन की सफलता शिक्षक वर्ग के हाथ में निहित हाती है जो शैक्षिक बदलाव और स्कूली वातावरण की सर्वश्रेष्ठ कुंजी है। शिक्षक ही निर्मित शैक्षिक वस्तुस्थिति में तय नीतियों को लागू करने में अग्रणी भुमिका निभाते हैं।''[9]

हमारा संविधान जाति, वर्ण, वर्ग, धर्म, सम्प्रदाय, लिंग, स्थान–क्षेत्र या आय के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव का निशेध कर समावेशी समाज की स्थापना करने का आदर्श प्रस्तुत करना है। वह सभी विधार्थियों को सामाजिक, जातिगत, आर्थिक, वर्गीय, लैंगिक, शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से अलग–अलग देखने के स्थान पर उन्हें स्वतंत्र अधिगमकर्त्ता के रूप में देखे जाने का आदेश करता है, इससे स्कूलों में शिक्षा हेतु समावेशी वातावरण सृजन कर लोकतन्त्र को सार्थक किया जा सकता है। इस दृष्टि से समावेशी शिक्षा की आवश्याकतायें निम्नांकित हैं[10]–

1. समावेशी शिक्षा प्रत्येक बच्चे के लिए उच्च और उचित उम्मीदों के साथ उसकी व्यक्तिगत शक्तियों का विकास करती है।
2. समावेशी शिक्षा अन्य छात्रों को अपनी उम्र के साथ कक्षा के जीवन में भाग लेने और व्यक्तिगत लक्ष्यों पर काम करने हेतु प्रेरित करती है।
3. समावेशी शिक्षा बच्चों को उनके शिक्षा क्षेत्र में और उनके स्थानीय स्कूलों की गतिविधियों में उनके माता–पिता को भी शामिल करने की वकालत करती है।
4. समावेशी शिक्षा सम्मान और अपनेपन की स्कूल–संस्कृति के साथ–साथ व्यक्तिगत मतभेदों को स्वीकार करने के लिए भी अवसर प्रदान करती है।
5. समावेशी शिक्षा अन्य बच्चों, अपने स्वयं की व्यक्तिगत आवश्यकताओं और क्षमताओं के साथ प्रत्येक का एक व्यापक विविधता के साथ दोस्ती का विकास करने की क्षमता विकसित करती है।

इस प्रकार समावेशी समायोजन से समूह में विश्वास की भावना आती है। इसमें भिन्न–भिन्न आयुवर्ग के बच्चे साथ–साथ सहयोगात्मक वातावरण में सीखते हैं न कि प्रतिस्पर्धा की भावना से। मुख्यधारा के विद्यालयों में भरोसे का वातावरण बनाकर व परस्पर सम्बन्धों को बढ़ावा देकर शिक्षा देना अत्यधिक लाभप्रद होगा। यहाँ यह भी ध्यान रखने योग्य है कि ''समावेश का अर्थ छात्रों को एक ही स्तर पर आँके जाने का नहीं है कि जिन्हें पहले से तय सूचनाएँ दी जाएँ। ज्ञान हासिल करना सक्रियता है, निश्क्रियता नहीं। इसका रूपान्तर होना चाहिए और इसके लिए

शिक्षा ग्रहण करने वाले की भागीदारी जरूरी है।''[11] स्वतन्त्र भारत की अब तक की विभिन्न शैक्षिक योजनाओं में 'समावेशी शिक्षा' एक अधुनातन व आवश्यक कदम है। इसकी जिम्मेदारी सरकार, शिक्षक व समाज तीनों पर बराबर है। सरकार बजट के साथ उचित वातावरण निर्माण की नीतियाँ बनाकर उनका समुचित क्रियान्वयन करे। शिक्षक ही समावेशन द्वारा पूर्ण बदलाव लाने के लिए मुख्यतः उत्तरदायी हैं। उनमें गुणवत्ता, सोच, पेशेवर दक्षता लाने के लिए समुचित प्रशिक्षण की भी आवश्यकता है। वर्तमान समय और समाज की आवश्यकताओं और चुनौतियों को पूरा करने के लिए विशिष्ट समावेशी पाठ्यक्रम भी आवश्यक है जो आम और खास दोनों तरह के बच्चों का मार्गदर्शन कर सके। समाज और शिक्षित वर्ग आवश्यकतानुसार अपेक्षित सहयोग कर शिक्षा सम्बन्धी अपने योगदान को पूरा कर सकते हैं।

सन्दर्भ संकेत

1. दैनिक जागरण, इटावा संस्करण–15–02–2017, पृष्ठ–10।
2. कुरुक्षेत्र, मार्च–2017, पृष्ठ–30।
3. योजना, जनवरी–2016, पृष्ठ–33।
4. दैनिक जागरण, इटावा संस्करण–15–08–2017, पृष्ठ–16।
5. समावेशी शिक्षा : एम0 के0 नारंग, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, 2016/17, पृष्ठ–1।
6. योजना, जनवरी–2016, पृष्ठ–34।
7. कुरुक्षेत्र, मार्च–2017, पृष्ठ–32।
8. योजना, जनवरी–2016, पृष्ठ–34।
9. योजना, जनवरी–2016, पृष्ठ–35।
10. www.tetsuccesskey.com/2014/12/samaveshi-shiksha-inclusive Education-ctet.html.
11. https://bipinpandey-kuchkahikuchankahi.blogspot.in/2013/07/samaveshi-shiksha.html.

❑❑

प्रो0 राय ने जय प्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया एवं आचार्य नरेन्द देव के सम्पर्क से समता के केन्दीय मूल्य का उन्मेष पाया। डॉ0 राय ने समाजवादी आन्दोलनों में प्रखर भूमिका निभाई और कई बार जेल गए। सभी सरोकारों के बीच वह शाश्वत मूल्यों की तलाश में सदैव समर्पित रहे। आप में माननीय सम्बन्धों की उच्च मूल्यवत्ता कूट–कूट कर भारी हुई थी।इसमें कोई दो राय नही कि उपने समय के रचनाकारों की समालोचना में डॉ0 राम कमल राय एक उदार किन्तु न्याय और सत्य संचित मूल्यों के प्रति विशेष आस्थावान थे।

- कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

प्राथमिक शिक्षा की जटिलताएँ

डॉ० अनीता यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर–शिक्षा शास्त्र
महाराज सिंह महाविद्यालय इटैली, औरैया

किसी भी राष्ट्र व समाज को मजबूती से खड़े रखने में सबसे महत्वपूर्ण प्राथमिक शिक्षा को मानना शायद गलत नहीं होगा क्योंकि आगे की बेहतर शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा के कंधों पर ही निर्भर करती है। परन्तु भारत की शिक्षा नीतियाँ इस विचार को ग्रहण करने में अभी तक असमर्थ रही है तभी तो प्राथमिक शिक्षा से जुड़े आंकड़े व तथ्य कुछ और ही इशारा करते है। एनुअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट (असर), ग्रामीण भारत के स्कूलों में बच्चों के नामांकन और उनकी शैक्षणिक प्रगति पर किया जाने वाला देश का सबसे बड़ा वार्षिक सर्वेक्षण है। स्वयंसेवी संस्था 'प्रथम' के सहयोग से जिला स्तर पर स्थानीय संस्थाओं से जुड़े कार्यकर्ताओं के जरिए इस बार देश के चौबीस राज्यों के अट्ठाईस जिलों में चौदह से अठारह वर्श के किशोरों के बीच कराए गए सर्वेक्षण की बारहवीं रिपोर्ट से कई चौंकाने वाले तथ्य सामने आए हैं। यह रिपोर्ट न सिर्फ देश में बुनियादी शिक्षा की बदहाली की तस्वीर बयां कर रही हैं, बल्कि इसने भारत को 'विश्व गुरु' बनाने के सपने के दिवालिया होने और शिक्षा व्यवस्था में समाहित बुनियादी समस्याओं तथा प्राथमिक शिक्षा के गिरते स्तर की तरफ देश के नीति–नियंताओं का ध्यान भी खींचा है। सर्वेक्षण में देश के 1641 गांवों के पच्चीस हजार से अधिक घरों में रहने वाले लगभग तीस हजार से ज्यादा किशोरों को शामिल किया गया था। सर्वेक्षण के बाद जो तस्वीर उभरकर सामने आई है उसके मुताबिक चौदह फीसद किशोरों को भारत के मानचित्र की सही जानकारी नहीं है, जबकि इक्कीस फीसद को अपने राज्य का नाम भी नहीं पता है। छत्तीस फीसद किशोर ऐसे हैं जिन्हें देश की राजधानी मालूम नहीं है, जबकि साठ फीसद ग्रामीण युवा कंप्यूटर–इंटरनेट के मामले में अब तक निरक्षर हैं। सर्वेक्षण में किशोरों से सामान्य ज्ञान, अंकगणितीय कौशल और दैनिक जीवन से जुड़े प्रश्न भी पूछे गए। सर्वे में शामिल किए गए युवाओं में से करीब पच्चीस फीसद ऐसे हैं जो अपनी भाषा में एक सरल पाठ को धाराप्रवाह रूप में नहीं पढ़ सकते। इसके अलावा आधे से जयादा युवा ऐसे हैं जिन्हें गुणा–भाग करने में कठिनाई होती है।

प्राथमिक शिक्षा देश की शिक्षा–व्यवस्था का आधार है। इसे दुरुस्त किए बिना माध्यमिक और उच्च शिक्षा के स्वर्णिम भविष्य की कल्पना नहीं की जा सकती। दरअसल, प्राथमिक शिक्षा का गुणात्मक विकास करके ही नागरिकों और राष्ट्र को उन्नति के पथ पर अग्रसर रखा जा सकता है। भारत में बुनियादी शिक्षा की कल्पना सर्वप्रथम महात्मा गांधी ने की थी। 1937 में वर्धा में आयोजित अखिल भारतीय शैक्षिक सम्मेलन में गांधीजी ने भारतीय शिक्षा में सुधार के लिए 'नई तालीम' नामक योजना पेश की थी, जिसे बाद में 'बुनियादी शिक्षा' और 'वर्धा योजना' भी कहा गया। गांधीजी ने बच्चों को राष्ट्रव्यापी, निःशुल्क आौर अनिवार्य शिक्षा देने का प्रस्ताव रखा था। इसके अलावा, वे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, मातृभाषा में शिक्षा तथा रोजगारपरक शिक्षा के हिमायती थे।

हालांकि वर्ष 2009 में संसद से शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आरटीई) पारित कर देश में छह से चौदह साल के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की संवैधानिक व्यवस्था लागू तो कर दी गई, लेकिन बच्चों को विद्यालय से जोड़ने तथा शिक्षकों के रिक्त पदों को भरने में उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई है। देश को अब भी नौ लाख शिक्षकों की जरूरत है। कई राज्यों में शिक्षकों की नियुक्तियां अटकी हुई हैं, जिसे भरने में राज्य सरकारें ढुलमुल रवैया अपनाती रही हैं। सरकार ने छात्र और शिक्षक का अनुपात 40:1 निर्धारित किया हुआ है, लेकिन कई सरकारी स्कूलों में यह अनुपात अत्यंत चिंताजनक है। कहीं जरूरत भर के शिक्षक नहीं हैं, तो कहीं बचों की उपस्थिति ही कम है। समय पर कभी छात्रों तो कभी शिक्षकों का विद्यालय नहीं पहुंचना तथा गैर–शैक्षणिक कार्यों

को शिक्षकों के कंधे पर डालना भी एक प्रमुख समस्या रही है। दरअसल, बाजारवाद की गिरफ्त में सामंती शिक्षा, कुकुरमुत्ते की तरह गली–गली में खुलते निजी विद्यालयों तथा सरकारी उपेक्षा की वजह से बुनियादी शिक्षा निरंतर हाशिये पर जाती रही है। सरकारी स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं के अभाव तथा पढ़ाई–लिखाई के स्तर में गिरावट की वजह से अभिभावक अपने बच्चों के लिए निजी और कॉनवेन्ट स्कूलों की तरफ देख रहे हैं। एक समय था जब सरकारी स्कूलों को सम्मान की नजर से देखा जाता था, लेकिन आज उसे उपेक्षा के भाव से देखा जा रहा है। मैंने भी अपनी प्राथमिक शिक्षा गांव के ही सरकारी विद्यालय से प्राप्त की थी। तब स्थिति इतनी चिंताजनक नहीं थी, लेकिन आज स्थिति यह है कि बमुश्किल पांच से सात बच्चे विद्यालय आ रहे हैं। भोजन वितरण (मिड–डे मील) के बाद बच्चों का चंपत हो जाना भी आम बात है।

प्राथमिक विद्यालय की निकटतम उपलब्धता के बावजूद, कक्षा में बच्चों की उपस्थिति कम नजर आ रही है। स्कूल के समय, बच्चे या तो खेलते नजर आ जाते हैं या घर के कामों में बड़ों का हाथ बंटाते। साठ लाख बच्चे आज भी स्कूली शिक्षा से महरूम हैं। आलम यह है कि 'मध्याह्न भोजन योजना', छात्रवृत्ति तथा मुफ्त पाठ्य–पुस्तकों के वितरण की व्यवस्था भी सरकारी स्कूल में बच्चों को रोके रखने में सफल नहीं हो पा रही है। वहीं, ग्रमीण विद्यालयों में विद्यालय–परित्यक्त छात्रों की संख्या का दिनोंदिन बढ़ना भी चिंता की बात है। सरकारी सकूलों में आधारभत संरचना की कमी, शौचालय के न होने या उसकी बुरी स्थिति में होने से लड़कियां स्कूल जाने से कतराती हैं। जबकि प्राथमिक स्कूलों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा न दिए जाने के कारण आज निम्न आय वाले परिवारों के अभिभावक भी अपने बच्चों को निजी स्कूलों में भेजना ही श्रेयस्कर समझ रहे हैं। दूसरी तरफ, समाज के उपेक्षित वर्ग के बच्चों की नामांकन संख्या में बढ़ोतरी न होना भी नीति–निर्माताओं का सिरदर्द बन गया है। सच्चाई यह भी है कि सरकारी विद्यालय दिनोंदिन अपनी चमक खोते जा रहे हैं। इन विद्यालयों से अनियमितता की लगातार शिकायतें आ रही हैं। सवाल गंभीर है कि आखिर सरकारी विद्यालयों के लिए तमाम अनुदान और सहायता के बावजूद गुणवत्तापूर्ण शिक्षा बच्चों की पहुंच से कोसों दूर क्यों है? जबकि सरकारी विद्यालयों पर ग्रामीण भारत की एक बड़ी आबादी निर्भर है!

भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्राथमिक शिक्षा स्तर पर एक अन्य गम्भीर समस्या मासूमों बच्चों के कधों पर बस्ते का बोझ लगातार बढ़ते जाना पूरे देश के लिए एक परेशानी का विषय है। शिक्षाविद इसके खिलाफ बराबर आगाह करते रहे हैं। शायद इसीलिए भारत सरकार स्कूली बच्चों के बस्तों का बोझ कम करने के लिए ई–बस्ता कार्यक्रम शुरू करने जा रही है। इस कार्यक्रम के तहत स्कूली बच्चे अब अपनी रुचि के अनुसार पाठ्यसामग्री डाउनलोड कर सकेंगे। गौरतलब है कि मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने हाल ही में पच्चीस केंद्रीय विद्यालयों में प्रायोगिक तौर पर बस्तों का गोझ कम करने के लिए एक कार्यक्रम शुरू किया था। उसमें छात्रों और शिक्षकों ने काफी रुचि दिखाई थी। तभी केंद्र सरकार ने इस परियोजना को आगे बढ़ाने का मन बनाया है। उसी के तहत ई–बस्ता और ई–पाठशाला कार्यक्रम को आगे बढ़ाया जा रहा है। एनसीईआरटी भी स्कूलों में कक्षा एक से लेकर बारहवीं तक के लिए ई–सामग्री तैयार कर रहा है।

शिक्षा क्षेत्र से जुड़े कुछ विशेषज्ञ मानते हैं कि यह योजना तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि देश में छात्रों के लिए सस्ते टैबलेट और स्कूलों को मुफ्त इंटरनेट की सुविधा प्रदान नहीं की जाती। उल्लेखनीय है कि सरकार ने इसे अभी पायलट प्रोजेक्ट के रूप में शुरू किया है। उम्मीद है बहुत जल्द सरकार कुछ सुधार के बाद इसे पूरी तरह लागू कर देगी।

आज तकरीबन सभी स्कूल पाठ्यक्रम की पढ़ाई, होमवर्क व पाठों को रटने को बालक के शैक्षिक विकास के लिए जरूरी मान रहे हैं। अन्य शिक्षाविदों के साथ–साथ, प्रोफेसर यशपाल की अध्यक्षता में शिक्षा में सुधार के लिए बनी समिति ने शुरुआती कक्षाओं में बच्चों को बस्ते के बोझ से मुक्त करने की सलाह दी थी। इससे जुड़े तमाम अध्ययन भी बताते हैं कि बच्चों के कंधों पर लादे जाने वाले बस्तों के भारी बोझ का उनक पढ़ाई–लिखाई की गुणवत्ता से कोई सीधा संबंध नहीं है। शायद यही वजह है कि बस्ते का यह बोझ अब बच्चों की शिक्षा, समझ

और उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डाल रहा है। उदाहरण बताते हैं कि बस्तों के भारी वजन और ढेर सारे होमवर्क के चलते बहुत–से बच्चों की आंखें कमजोर हो गई हैं, सिर में दर्द रहने लगा है तथा उनकी अंगुलियां टेढ़ी होनी शुरू हो गई हैं। बच्चे स्वप्नों में अब परियों के दृश्य न देख कर होमवर्क को लेकर बुदबुदाते हैं। बाल मनोविज्ञान से जुड़े अध्ययन भी बताते हैं कि चार साल से लेकर बारह साल तक की उम्र के बच्चों के व्यक्तित्व का स्वाभाविक विकास होता है। ऐसे में बच्चों के विकास के लिए किताबी ज्ञान की तुलना में भावनात्मक सहारे की ज्यादा जरूरत होती है। साथ ही 'प्ले–बे लर्निंग' यानी खेल–खेल में सीखने की विधि से बच्चों को पढ़ाने से उनकी प्रतिभा अधिक मुखरित होती है। पिछले दिनों देश के कई बड़े शहरों में ऐसोचैम की तरफ से दो हजार बच्चों पर किए गए सर्वे में साफ कहा गया था कि यहां पांच से बारह वर्ष से आयुवर्ग के बयासी फीसद बच्चे बहुत भारी स्कूल–बैग ढोते हैं। इस सर्वे ने यह भी साफ किया कि दस साल से कम उम्र के लगभग अट्ठावन फीसद बच्चे हल्के कमर दर्द के शिकार हैं। हड्डी रोग विशेषज्ञ भी मानते हैं कि बच्चों के लगातार बस्तों के बोझ को सहन करने से उनकी कमर की हड्डी टेढ़ी होने की आशंका प्रबल हो जाती है।

कहना न होगा कि देश में कुछ समय पहले बच्चों के पीठ दर्द और कंधों की जकड़न की समस्या से निजात दिलाने के लिए मानवाधिकार आयोग ने दखल देते हुए अपना फैसला सुनाया था। आयोग का कहना था कि निचली कक्षाओं के बच्चों के बस्ते का वजन पौने दो किलो और ऊंची कक्षाओं के बच्चों के बस्ते का वजन साढ़े तीन किलो से अधिक नहीं होना चाहिए। स्कूली बच्चों की इसी समस्या को ध्यान में रखते हुए महाराष्ट्र सरकार ने बस्तों का बोझ कम करने की एक पहल की थी। इसी के तरह ठाणे नगर निगम ने अपने अधीन चलने वाले तकरीबन ड़ेढ सौ प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में पहली और दूसरी कक्षा में पढ़ने वाले बच्चों के लिए सभी की डेस्क में एक लॉकर की व्यवस्था की थी। वह इसलिए ताकि बच्चों को कंधे पर घर से स्कूल तक बस्ता ढोकर ले जाने और वापस ढोकर लाने से छुटकारा मिल जाए। इस फैसले के तहत ही स्कूल की छुट्टी के बाद बच्चा अपना बस्ता स्कूल में ही रख कर घर खाली हाथ जाने लगा था। इसमें एक अहम बात यह भी रही कि वहां कक्षाओं में पढ़ाई और सीखने की गतिविधियों को आपसी बातचीत पर आधारित बनाए जाने की तैयारी भी की गई थी। पता लगा है कि ठाणे के इस प्रयोग के सुखद परिणाम रहे हैं। इसलिए यह एक अनुकरणीय प्रयोग बन गया है।

एसोचैम की एक रिपोर्ट में खुलासा हुआ है कि भारत यदि अपनी मौजूदा शिक्षा व्यवस्था में प्रभावशाली बदलाव नहीं करता है तो विकसित देशों की बराबरी करने में उसे छह पीढ़ियां यानी करीब सवा सौ साल लग जाएंगे। गौरतलब है कि भारत अपनी शिक्षा व्यवस्था पर सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का महज 3.83 फीसद हिस्सा खर्च करता है, जबकि अमेरिका, ब्रिटेन और जर्मनी में यह हिस्सेदारी क्रमशः 5.22 फीसद, 5.72 फीसद और 4.95 फीसद है। हालांकि इस संबंध में संयुक्त राष्ट्र का मानक यह है कि हर देश शिक्षा व्यवस्था पर अपने जीडीपी का कम से कम छह फीसद खर्च करे। देश में शिक्षा सुधारों के लिए डीएस कोठारी की अध्यक्षता में 1964 में गठित कोठारी आयोग ने भी अपनी रिपोर्ट में कुल राष्ट्रीय आय का छह फीसद शिक्षा पर व्यय करने का सुझाव दिया था। जबकि वास्तविकता यह है कि इस क्षेत्र में महज तीन से चार फीसद ही राशि आबंटित हो पाती है। बहरहाल, देश की मौजूदा शिक्षा प्रणाली में व्यापक परिवर्तन की दरकार है।

सन्दर्भ संकेत

1. दैनिक हिन्दुस्तान समाचार पत्र
2. दैनिक जनसत्ता समाचार पत्र
3. सहारा दैनिक समाचार पत्र– 'हस्तक्षेप'
4. दैनिक नवभारत टाइम्स
5. मासिक कुरूक्षेत्र पत्रकार

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

oSfnd f'k{kk O;oLFkk ds vUrxZr f'k{k.k laLFkkvksa dk lekt esa ;ksxnku

MkW0 dqekj ;'koUr
छपरा (सारण) बिहार–841412

शिक्षा ने मनुष्य के उत्कर्ष में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। शिक्षा ही मानव के सर्वांगीण एवं संतुलित विकास को करने वाली अन्तर्ज्योति एवं एक विशेष शक्ति है। शिक्षा से मनुष्य का जीवन विशुद्ध, प्रज्ञा सम्पन्न, परिष्कृत और समुन्नत ही नहीं होता बल्कि समाज भी सात्विक और नैतिक निर्देशों का पालन करता हुआ सन्मार्ग पर चलकर विकसित होता है। मनुष्य का जीवन शिक्षा और ज्ञान से ही धर्मप्रवण, नैतिक मूल्यों से युक्त और उच्च आदर्शों से संचालित होता है। विद्यार्जन से व्यक्ति आत्मनिर्भर बनता है साथ ही समाज के निर्माण एवं विकास में योगदान करता है।

शंकराचार्य ने कहा कि 'सा विद्या या विमुक्तये।' इस तरह विद्या हमको संसार के सुख तथा सुयश को प्रदान करती है। वह ज्ञान का रास्ता दिखाकर हमें मोक्ष दिलाती है। इस तरह वैदिक काल में शिक्षा का अर्थ ज्ञान के उस स्रोत को समझा जाता था जो कि मनुष्य की उन्नति में पथ–प्रदर्शन का काम करता था। श्री ए0 एस0 अल्तेकर ने लिखा है कि, ''वैदिक युग से लेकर आज तक भारत में शिक्षा का मूल तात्पर्य रहा है कि शिक्षा प्रकाश का वह स्रोत है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सच्चा पथ–प्रदर्शन करती है।''

भारतीय समाज में शिक्षा को सदैव अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही शिक्षा अथवा विद्या का स्वरूप अत्यन्त ज्ञानपरक, सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित रहा है, जिसमें व्यक्ति के लौकिक एवं पारलौकिक जीवन के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी। भौतिक और आध्यात्मिक जीवन के निर्माण तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों को निष्पादित करने के लिए शिक्षा की नितान्त आवश्यकता थी। मनुष्य एवं समाज का आध्यात्मिक और भौतिक उत्कर्ष शिक्षा के ही माध्यम से सम्भव माना जाता रहा है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा का उदय वेदों से माना जाता है। वेदों को भारतीय जीवन दर्शन का प्रमुख स्रोत माना जाता है। वेदों का मुख्य विषय यज्ञीय विधि विधान है। वैदिक कालीन शिक्षा का मात्र उद्देश्य छात्रों की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास इस प्रकार से करना था कि मोक्ष की प्राप्ति की जा सके। वैदिक काल में शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास करके उसे पूर्ण बनाना था।

वैदिक काल में जिन शिक्षण संस्थाओं में बालक अध्ययन करता था उन्हें गुरुकुल कहते थे। इन्हीं गुरुकुलों में बालक का उपनयन संस्कार करने के बाद उसकी औपचारिक शिक्षा की शुरूआत होती थी। यह गुरुकुल नगर के कोलाहल से दूर प्रकृति की सुरम्य गोद में बनाए जाते थे ताकि शिक्षक और छात्र आसानी से शांत वातावरण में शिक्षण कार्य कर सके। गुरुकुल शिक्षा पद्धति में बालक को गुरुकुल में रहते हुए वहाँ के नियमों का पालन करना होता था।

गुरुकुल में शिक्षा गृहण करने वाले बालकों को ब्रह्मचारी अथवा अन्तेवासी या कुलवासी कहा जाता था। शिक्षक (गुरु) अपने आश्रम के सभी ब्रह्मचारियों का अभिभावक होता था तथा उसके खान–पान, पोषाक व अन्य व्यवस्थाओं को नियोजित करता था। गुरुकुल में अध्यापक व शिष्यों का सम्बन्ध मधुर होता था, दोनों ही अपने कर्त्तव्यों का सही ढंग से निर्वाह करते थे। गुरुकुलों में बालकों को इस प्रकार की शिक्षा दी जाती थी जिससे बालक

का सर्वांगीण विकास हो सके अर्थात बालक का सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, चारित्रिक एवं नैतिक उत्थान हो सके। अतः हम कह सकते है कि वैदिक कालीन शैक्षणिक संस्थाओं का उद्देश्य बालक को इस प्रकार की शिक्षा देना था कि वह अपने भौतिक उद्देश्यों के साथ–साथ जीवन के अन्तिम उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त कर सके।

उत्तर वैदिक काल की जटिल परिस्थितियों में महावीर स्वामी (599–527 ई0पू0) और गौतम बुद्ध (563–483 ई0पू0) जैसे युग दृष्टाओं का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होने उत्तर वैदिक कालीन कर्मकाण्डीय स्वरूप से शिक्षा को दूर करने का प्रयास किया। बौद्ध धर्म के प्रचार व प्रसार के लिए बौद्ध मठों, तथा विहारों की स्थापना की गई। प्रारम्भ में इन मठों एवं विहारों का एकमात्र उद्देश्य बौद्धों को धर्म की शिक्षा प्रदान करना था परन्तु कालान्तर में सभी धर्मो के छात्रों को इन मठों एवं विहारों में शिक्षा दी जाने लगी। बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली काफी सीमा तक वैदिक शिक्षा के ही समान थी, लेकिन कुछ आधारों पर वैदिक कालीन और बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली में अंतर भी था। सबसे प्रमुख अन्तर तो यह था कि वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली आध्यात्मिक विकास पर बल देती है जबकि बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली नैतिकता अथवा शील पर अधिक बल देती थी। एक आधारभूत अंतर यह भी था कि वैदिक कालीन शिक्षा संस्थाएं गुरु का घर होती थी जबकि बौद्ध शिक्षा संस्थाओं का अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता था। न तो वह गुरु गृह होते थे न ही छात्र गृह। साथ ही साथ बौद्ध शिक्षा ने न केवल शिक्षा में व्याप्त जाति सम्बन्धी कुप्रथा समाप्त किया, बल्कि शिक्षा को सर्वसुलभ बनाया अर्थात बौद्ध शिक्षा एक ऐसी शिक्षा पद्धति है, जिसने सर्वप्रथम शिक्षा का सार्वभौमीकरण किया।

बौद्ध काल में शिक्षा गुरुकुल में न देकर बौद्ध मठों या विहारों दी जाती थी। यह मठ या विहार ही बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे, यह मठ तथा विहार अधिकतर नगर से दूर ही बनाए जाते थे। तक्षशिला, नालन्दा तथा विक्रमशिला आदि बौद्ध काल में उच्च शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। लेकिन बालक की प्रारम्भिक शिक्षा बौद्ध मठों एवं विहारों से ही प्रारम्भ होती थी। शिष्य सामान्यतः बौद्ध मठों में 12 वर्ष रहकर अध्ययन करते थे। बौद्ध शिक्षा मुख्यतः निवृत्ति प्रधान थी, उसका उद्देश्य जीवन में 'निर्वाण' की प्राप्ति था। बौद्ध कालीन शिक्षा संस्थाओं में बालक को स्वास्थ्य सम्बन्धी, नैतिक व्यवहार, चारित्रिक व्यवहार सम्बन्धी शिक्षा दी जाती थी, साथ ही साथ आध्यात्मिक शिक्षा भी दी जाती थी ताकि बालक जीवन के अन्तिम उद्देश्य (निर्वाण) को प्राप्त कर सके।

इस प्रकार हम देखते है कि वैदिक एवं बौद्ध शिक्षण संस्थाओं में इस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी कि बालक अपने लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सक्षम हो सके।

leL;k dk iknHkkko & प्राचीन काल से ही भारत वर्ष में शिक्षण संस्थाओं को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इन शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति को संपुष्ट करने में काफी योगदान मिला है। इन प्राचीन शिक्षण संस्थाओं का स्वरूप शासन तंत्र एवं प्रबन्धन ऐसा था, जिसने शिक्षक और छात्र के नैतिक, चारित्रिक एवं शील के विकास में काफी योगदान दिया है। लेकिन आज शिक्षा संस्थाओं में उच्च आदर्शो का अभाव देखने को मिलता है। आज के छात्र अनुशासन हीन हो गए है। नैतिकता देखने को नहीं मिलती। उनका चारित्रिक पतन हो चुका है। शिक्षक और छात्र दोनों को अपने कर्त्तव्यों की कोई परवाह नही। शिक्षा के उद्देश्यों और उच्च आदर्शो को दोनों (शिक्षक एवं छात्र) भूल चुके हैं। आज शिक्षा का व्यवसायीकरण होने लगा है। बालक और समाज आज किस राह पर आगे बढ़ रहे हैं इससे किसी को कोई सारोकार नही है, कोई भी इसमें सुधार करने के दायित्व को उठाना नहीं चाहता है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के उच्च आदर्शो को ही देखकर मेरे मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि प्राचीन भारत में मुख्य रूप से वैदिक काल और बौद्ध काल में शिक्षण संस्थाओं का स्वरूप कैसा था? उसका शासन तन्त्र कैसा था ? प्रबन्धन और संचालन कैसा था? तात्कालिक शिक्षण संस्थाओं के द्वारा ने प्राचीन भारतीय शिक्षण प्रणाली में क्या अन्तर आए? क्या आज उन साक्ष्यों के आधार पर वर्तमान शिक्षण प्रणाली और वर्तमान शैक्षिक संस्थाओं को

परखा जा सकता है। मैं यही संपुष्टि करना चाहती हूँ कि क्या आज की कतिपय समस्याओं का समाधान तद्युगीन शैक्षिक प्रणाली से किया जा सकता है? इन्हीं प्रश्नों के समाधान हेतु मैंने इस समस्या का चयन किया है।

leL;k esa iz;qDr "kCnksa dk ifjHkk"khdj.k &

1- izkphu Hkkjrh; f"k{kk i)fr & प्राचीन भारतीय शिक्षा के अंतर्गत मुख्य रूप से वैदिक एवं बौद्ध कालीन शिक्षा को प्रमुख स्थान दिया है। अतः प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में हम वैदिक और बौद्ध काल दोनों की चर्चा करेगें।

d½ oSfnd dky & प्राचीन भारत के इतिहास में सैंधव सभ्यता (2500–1750 ई0पू0) के पश्चात् (1000–600 ई0पू0) का समय वैदिक काल का माना जाता है। इस काल में ऋग्वेद, युजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद की रचना हुई। प्राचीन भारतीय शिक्षा का उदय वेदों से माना जाता है। इस काल में यज्ञीय विधि विधान के बीच शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया।

[k½ ckS) dky & छठी शताब्दी ईसा पूर्व में नास्तिक सम्प्रदायों का उदभव हुआ। उस समय गौतम बुद्ध (563–483 ई0पू0) तथा महावीर स्वामी (599–527 ई0पूव) जैसे युग दृष्टाओं का आविर्भाव हुआ। गौतम बुद्ध के विचारों ने शिक्षा को प्रभावित किया। बौद्ध काल में मठ एवं विहार शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे।

2- f"k{k.k laLFkk,¡ & शैक्षिक व्यवस्था में शिक्षण संस्थाओं को ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। क्योंकि इन शिक्षण संस्थाओं में ही बालकों को औपचारिक शिक्षा प्रदान की जाती है, जहाँ निश्चित स्थान, निश्चित समय सीमा तथा निश्चित पाठ्यक्रम की व्यवस्था होती है। प्राचीन शैक्षिक व्यवस्था में इनका समुचित प्रबन्ध था। ये संस्थायें शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति को समर्पित रहती थीं।

lUnHkZ lwph

- अंगुत्तर निकाय : (अनु0) भदन्त आनन्द कौसल्यायन, 4 भाग, महाबोधि सभा, कलकत्ता, 1957–59।
- अर्थशास्त्र : (अनु0) आ0पी0 कांगले, यूनिवर्सिटी ऑफ मुम्बई, मुम्बई प्रथम – भाग, 1960 द्वितीय भाग – 1963, तृतीय भाग – 1965।
- अध्याध्यायी : (सं0 एवं अनु0) श्रीचन्द्र वसु, दो भाग मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1980।
- जातक : (हिन्दी अनुवाद) भदन्त आनन्द कौसल्यापन, छः खण्डों में, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग वि0सं0 2013।
- ऋग्वेद : वैदिक संशोधन मण्डल, वैदिक रिसर्च इन्स्टीटयूट, पूना 1946 (सं0) श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल बलसाड, सूरत, 1975।
- विनय पिटक : (अनु0) राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा, सारनाथ, वाराणसी, 1935।

❑❑

सर्वशिक्षा अभियान का मूल्यांकन

अनिल कुमार
शोधार्थी–समाजशास्त्र
पंडित जवाहर लाल नेहरू पी०जी० कॉलेज, बाँदा, उ०प्र०

आज हम स्वतंत्र हो गये और 15 अगस्त 1947 की स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद हमने एक नये युग में प्रवेश किया और इसके पश्चात् देश के विकास के लिए एवं देश की शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए संविधान का निर्माण किया गया और 26 जनवरी 1950 की इस नये युग के लिए संविधान लागू किया। हमारे सभी संविधान निर्माताओं से देश की शिक्षा की दशा छिपी हुई नहीं थी। वे भली–भाँति जानते थे कि हमारे देश में शिक्षा की क्या स्थिति है तथा बिना शिक्षा के विकास के देश के उत्थान के स्वप्न देखना बेकार है। इसीलिए संविधान निर्माताओं ने देश का सम्पूर्ण विकास करने के उद्देश्य से संविधान में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्राविधान रखा तथा संविधान की धारा 45 में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को राज्य का एक नीति निर्देशक सिद्धान्त घोषित किया।

धारा–45 राज्य इस संविधान के लागू होने के समय से दस वर्ष के अन्तर्गत सभी बच्चों के लिए जब तक वे 14 वर्ष के नहीं हो जाते निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।

अनिवार्य तथा निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी प्रयास – भारत में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने में सर्वाधिक प्रयास स्वयं भारतीय का ही रहा है। प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने हेतु कदम आगे बढ़ाये शिक्षा को नवजीवन देने वाले ये दो सविख्यात शिक्षा प्रेमी थे। बड़ौदा नरेश महाराज सायाजीराव गायकवाड़ और गोपाल कृष्ण गोखले बीसवीं सदी के प्रारम्भ में बम्बई में सर चिमन लाल सीतलवाड़ और सर इब्राहिम रहीम तुल्ला प्रभावशाली व्यक्तियों ने अपने प्रान्त की सरकार से बम्बई नगरों में अनिवार्य शिक्षा लागू करने की जोरदार शब्दों में माँग की सरकार ने उन्हें संतुष्ट करने हेतु एक समिति नियुक्त कर दी जिसके सदस्यों ने सरकार की चाटूकारिता में यह घोषित कर दिया कि अनिवार्य शिक्षा की अभी कोई आवश्यकता नहीं है। इसे प्रारम्भ किया जाना असम्भव है। जिस कार्य को बम्बई जैसे धनी शहर में लागू नहीं किया जा सकता, इस कार्य को महाराज सायाजीराव गायकवाड़ ने निर्धन राज्य बड़ौदा में परीक्षण के तौर पर अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की योजना की 1893 में अपने राज्य के अमरेली तालुका के 9 ग्रामों में प्रारम्भ कर दिया इस योजना के अनुसार इन ग्रामों में 7 से 12 वर्ष तक की आयु के सभी बालक और 7 से 10 वर्ष तक की आयु की सभी बालिकाओं के लिए प्राथमिक शिक्षा की निःशुल्क एवं अनिवार्य बना दिया गया। इस सफल परीक्षण एवं उत्कृष्ट उदाहरण का गोपाल कृष्ण गोखले पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा उनके मस्तिष्क में यह बात अमिट विचार अंकित कर गई कि एक समिति साधन वाला छोटा सा राज्य जिस कार्य को कर सकता है। उसे साधन सम्पन्न ब्रिटिश भारत क्यों नहीं कर सकता सौभाग्य से उस समय गोपाल कृष्ण गोखले केन्द्रीय धारा सभा के सदस्य थे अतः उन्होंने इस सभा के माध्यम से भारत सरकार की अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की दिशा में क्रियाशील करने का संकल्प लिया 19 मार्च 1910 को केन्द्रीय धारा सभा के समक्ष अपना प्रस्ताव प्रस्तुत किया। सभा सिफारिश करती है कि सम्पूर्ण देश में प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क और अनिवार्य बनाने का कार्य प्रारम्भ किया जाय और इस विषय में निश्चित प्रस्तावों का निर्माण करने के लिए सरकारी और गैर सरकारी अधिकारियों का संयुक्त आयोग शीघ्र ही नियुक्त किया जाये इस सम्बन्ध में गोखले के इस वाक्य को अपने निर्देशक के सूत्र के रूप में स्वीकार करना चाहिए शिक्षा की गुणात्मक उन्नति महत्वपूर्ण अवश्य है, पर उस पर बल तब ही दिया जाना चाहिए जब निरक्षरता का अन्त हो जाये। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात प्राथमिक शिक्षा ने अपने स्वर्णिम युग में प्रवेश किया तथा भारत ने भी संसार के अन्य प्रगतिशील देशों

की तरह सभी बाल एवं बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व स्वीकार किया।

86वें संविधान संशोधन द्वारा 6–14 आयु वर्ष वाले बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में निःशुल्क और अनिवार्य रूप से उपलब्ध कराना अनिवार्य बना दिया गया।

प्राथमिक शिक्षा को सुलभ बनाने के लिये अनेक कार्यक्रम चलाये गये, वो निम्नवत् है–

1. शिक्षा का अधिकार	–	2009
2. ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड	–	1987–88
3. मध्याहन भोजन योजना	–	15 अगस्त 1995
4. डी.पी.ई.पी.	–	1999–2000
5. स्कूल चलो अभियान	–	2004
6. कस्तूरबा गाँधी आवासीय बालिका विद्यालय	–	2004
7. पढ़े भारत बढ़े भारत	–	2014
8. सर्व शिक्षा अभियान	–	2000–2001

सर्व शिक्षा अभियान :– इन सभी प्रयासों में सर्व शिक्षा कार्यक्रम वर्ष 2000–2001 से किया जा रहा है जिसका उद्देश्य सार्वभौमिक सुलभता एवं प्रतिधारणा प्रारम्भिक शिक्षा में बालक–बालिका एवं सामाजिक श्रेणी के अन्तरों को दूर करने तथा अधिगम की गुणवत्ता में सुधार हेतु विविध हस्ताक्षेपों में अन्य बातों के साथ नये स्कूल खोला जाना तथा वैकल्पिक स्कूली सुविधायें प्रदान करना स्कूलों एवं अतिरिक्त कक्षा व कक्षों का निर्माण किया जाना प्रसाधन कक्षा एवं पेयजल सुविधा प्रदान करना, अध्यापकों का प्रावधान करना नियमित अध्यापकों का सेवाकालीन प्रशिक्षण तथा अकादमिक संसाधन निःशुल्क पाठ्य पुस्तकें एवं वर्दियाँ तथा अधिगम स्तरों के परिणामों में सुधार हेतु सहायता करना शामिल है। सर्व शिक्षा अभियान जिला आधारित एक विशिष्ट विकेन्द्रित योजना है। इसके माध्यम से प्रारम्भिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण करने की योजना है इसके लिए स्कूल प्रणाली की सामुदायिक स्वामित्व में विकसित करने की रणनीति अपनाकर कार्य किया जा रहा है। यह योजना पूरे देश में लागू की गई है और इसमें सभी प्रमुख सरकारी शैक्षिक पहल को शामिल किया गया है। इस अभियान के अन्तर्गत राज्यों की भागीदारी से 6–14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को 2010 तक प्रारम्भिक शिक्षा उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया था।

सभी व्यक्ति की अपने जीवन को बेहतरी का अधिकार है लेकिन दुनियाभर के बहुत सारे बच्चे इस अवसर के अभाव में ही जी रहे है क्योंकि उन्हें प्राथमिक शिक्षा जैसे अनिवार्य मूलभूत अधिकार भी मुहैया नहीं कराई जा रही है।

सर्व शिक्षा अभियान का उद्देश्य :–

1. सभी बच्चों के लिए वर्ष 2005 तक प्रारम्भिक विद्यालय शिक्षा गारन्टी केन्द्र वैकल्पिक विद्यालय बैक टू स्कूल की उपलब्धता।
2. सभी बच्चे 2007 तक 5 वर्ष की प्राथमिक शिक्षा पूरी कर ले।
3. सभी बच्चे 2010 तक 8 वर्ष की स्कूली शिक्षा पूरी कर ले।
4. संतोषजनक कोटि की प्रारम्भिक शिक्षा जिसमें जीवनोपयोगी शिक्षा को विशेष महत्व दिया गया हो।
5. 2007 तक प्राथमिक स्तर पर समाप्त करना।
6. वर्ष 2010 तक सभी बच्चों को विद्यालय में बनाये रखना।

सर्व शिक्षा अभियान इस बात का विश्वास दिलाता है कि प्रत्येक बच्चा जिसके लिये विशेष सहायता की जरूरत है। उसकी श्रेणी अथवा क्षमता जो भी हो उसे उपयुक्त वातावरण में शिक्षा प्रदान की जाये सर्व शिक्षा अभियान एक ऐसी नीति अपनाता है। जिसमें किसी भी बच्चे की पढ़ने के अयोग्य करार नहीं दिया जाता इसीलिए

कोई बच्चा ऐसा नहीं बचता जो इस शैक्षिक पद्धति से बाहर हो। 9वीं पंचवर्षीय योजना के अंत में सर्व शिक्षा अभियान की केन्द्रीय प्रायोजित स्कीम के रूप में देश में शिक्षा के सुधार के लिए अपनाया गया जिसका मुख्य उद्देश्य था 6–14 वर्ष तक सभी बच्चों का नामांकन एवं शिक्षा में सुधार करना अनिवार्य था।

सर्वशिक्षा अभियान की प्रमुख समस्या – सर्व शिक्षा अभियान सिर्फ कागजों तक सीमित है इसका वास्तविक रूप बहुत अन्धकार में है जब से सर्व शिक्षा अभियान लागू हुआ है, नामांकन एवं ठहराव में कमी जरूर आयी है, पर नामांकन ही बढ़ा, शिक्षा की गुणवत्ता फेल हो गयी है। सर्व शिक्षा अभियान अपने उद्देश्य को पूरा करने में असफल दिखाई दे रहा है आज भी स्कूलों में भौतिक सुविधाओं की कमी है। बच्चों की समय पर ड्रेस नहीं प्राप्त होती है, आधा सत्र निकल जाता है तो पुस्तकें दी जाती हैं। वो भी सभी बच्चों की नहीं प्राप्त होती है। विद्यालय में शुद्ध जल पीने को नहीं मिलता है। आज भी स्कूल जर्जर अवस्था में दिखाई देते हैं उनकी मरम्मत नहीं की जाती है। बच्चों को बैठने के लिए फर्नीचर भी नहीं है। जिससे उनका मनोबल कम होता है। अधिकतर विद्यालय में शौचालय, बिजली पंखा भी नहीं उपलब्ध होता है एवं ग्रामीण परिवेश में अध्यापकों की नियुक्ति नहीं की गयी एवं अध्यापकों की कमी निरन्तर बनी हुई है व अध्यापकों को अन्य कार्य में लगाना यह प्रमुख समस्या है एवं बच्चों की कार्य व्यवस्था में लगाया जाना यह सर्व शिक्षा अभियान में आने वाली समस्या जिससे जल्द निजात पाना जरूरी है। सभी सुविधाओं के फलस्वरूप परिषदीय स्कूलों में 7 लाख बच्चे कम हो गये यह आँकड़े दर्शाते हैं, सर्व शिक्षा सफल नहीं हो सका।

सर्व शिक्षा अभियान सफल बनाने के संवैधानिक उपाय – सर्व शिक्षा अभियान को सफल बनाने के लिए निम्न उपाय आवश्यक है :–

1. सर्व शिक्षा अभियान सफल बनाने के लिए योग्य अध्यापकों की नियुक्ति की जाये।
2. ग्रामीण परिवेश में अध्यापकों की तैनाती की जाये।
3. सभी विद्यालय में भौतिक सुविधाओं में वृद्धि की जाये।
4. अध्यापकों की अन्य कार्य में न लगाया जाये।
5. नामांकन पर ध्यान न देकर शिक्षा की गुणवत्ता पर ध्यान दिया जाना चाहिए।
6. मध्याह्न भोजन, ड्रेस, जूते, बैग, मोजे सारी सुविधायें बन्द हो जाना चाहिए। पास होने की रणनीति बन्द हो जाना चाहिए।
7. अभिभावकों के ऊपर भी कड़े नियम लागू होना चाहिए जिससे अपने बच्चों को विद्यालय रेगुलर भेजे।
8. अध्यापकों की उपस्थिति बायोमैट्रिक से अनिवार्य किया जाये।
9. हाईकोर्ट के नियम का पालन हो सरकारी कर्मचारी अपने बच्चों को सरकारी स्कूल में पढ़ायें।
10. सभी सुविधाओं के फलस्वरूप बच्चों के खातों में छात्रवृत्ति दे दी जाये। इससे काफी हद तक शिक्षा में सुधार होगा।

संदर्भ संकेत

1. सर्व शिक्षा अभियान मूल्यांकन रिपोर्ट योजना आयोग भारत सरकार नई दिल्ली, मई 2010
2. गुप्ता महावीर प्रसाद (2008) भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएं साहित्य प्रकाशन आगरा
3. भटनागर सुरेश (2016) समकालीन भारत और शिक्षा आर० लाल बुक डिपो
4. त्यागी गुरसरनदास (2014) भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास अग्रवाल पब्लिकेशन्स
5. यादव ममता देवी (2015) फैजाबाद जनपद की प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक प्रगति में सर्व शिक्षा अभियान की भूमिका एक प्रवृत्यात्मक अध्ययन पी०एच०डी० शोध प्रबन्ध वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली
6. Sarva Shiksha Abhiyan.com
7. दैनिक जागरण 19 मई 2018 पेज नं० 12

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

राष्ट्र निर्माण में डॉ0 भीमराव रामजी आम्बेडकर का योगदान

डॉ0 कविता यादव
502 टाइप–4,
डॉ0 श0मि0रा0पु0वि0, कैम्पस मोहान रोड, लखनऊ

1891 में जन्में 1956 में पाया निर्वाण

अछूत और अस्पृश्य
जाति को मिला न्याय,
गढ़ डाला संविधान
ऐसे थे मानवता के रक्षक,
डॉ0 भीमराव आम्बेडकर महान।।

संसार में अनेक ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने समाज के निर्धन एवं निम्न वर्ग के होते हुए भी समाज में अपना उच्च स्थान बनाया। उन्हीं में एक अद्भुत और यहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ0 आम्बेडकर थे। आम्बेडकर जी की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने अस्पृश्य और अछूत समझी जाने वाली जाति में जन्म लिया और जीवन के आरम्भ से लेकर शिक्षण काल तक अस्पृश्यता और निर्धनता के दंश को झेला लेकिन इन परिस्थितियों को इन्होंने अपने मार्ग में बाधक नही बनने दिया अपितु साधक के रूप में निरन्तर आगे बढ़ते रहे। आम्बेडकर जी का जन्म 1891 में महाराष्ट्र की महार जाति में हुआ उनकी माता का नाम भीमा बाई तथा पिता का नाम राम जी राव था। मात्र 17 वर्ष की आयु में आपका विवाह रामाबई जी के साथ हुआ आम्बेडकर जी के जन्म के समय समाज में छुआ–छूत रूढ़िवादिता का प्रभाव जोर–शोर से व्याप्त था। आम्बेडकर जी एक विधिवेत्ता, बहुजन राजनीतिक नेता, और एक बौद्ध पुनरूत्थानवादी होने के साथ भारतीय संविधान के वास्तुकार थे अछूत जाति के होते हुए भी अपनी प्रतिभा के बल पर उच्च शिक्षा प्राप्त की और कानून की उपाधि प्राप्त करने के साथ विधि, अर्थशास्त्र व राजनीति विज्ञान में अपने अध्ययन और अनुसंधान के कारण कोलांबिया विश्वविद्यालय और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से कई डाक्टरेट डिग्रियाँ भी अर्जित की। वे विदेश गए तथा वापस अपने देश के एक विद्वान रूप में लौटे। अनके कष्टों को सहन करते हुए अपने कठिन संघर्ष और कठोर परिश्रम से उन्होंने प्रगति की ऊँचाइयों को स्पर्श किया तथा अपनी प्रतिभा बल पर ही संविधान सभा द्वारा गठित सभी समितियों में 29 अगस्त 1947 को 'प्रारूप समिति' जो कि सर्वाधिक महत्वपूर्ण समिति थी उसके अध्यक्ष पद के लिए चुना गया। उनके व्यक्तित्व और चिन्तन का संविधान के स्वरूप पर गहरा प्रभाव पड़ा जिसके कारण संविधान में समाज में पद– दलित वर्गो अनुसूचित जातियों और जन जातियों के उत्थान के लिए विभिन्न संवैधानिक व्यवस्थाओं और प्रावधानों का निरूपण किया। परिणाम स्वरूप भारतीय संविधान सामाजिक न्याय का एक महान दास्तावेज बन गया।

अपने इन कार्यों के साथ–साथ बाबा साहेब ने राजनीति और संविधान के जरिए भारतीय समाज में स्त्री पुरूष के बीच व्याप्त असमानता दूर करने का सार्थक प्रयास किया। जाति धर्म एवं लिंग निरपेक्ष संविधान में उन्होंने न्याय की परिकल्पना की है। हिन्दू कोड बिल के जरिए उन्होंने संवैधानिक स्तर से महिला हितों की रक्षा का प्रयास किया। संविधान सम्मत सामाजिक सम्मत, सामाजिक न्याय सूत्र और हिन्दू कोड बिल में ही 'महिला सशक्तिकरण' की विशद व्याख्या विद्यमान है ''डॉ0 आम्बेडकर, आजाद भारत में महिलाओं की सामाजिक गुलामी खत्म करने के लिए स्टेटस मैन की भूमिका निभाते रहे।

भारतीय समाज में महिलाओं के हितों की रक्षा के लिए सुधार कार्य 19वीं शताब्दी में शुरू हुआ। इस सदी में कई नायक पैदा हुए लेकिन अम्बेडकर सबसे ज्यादा प्रभावित महात्मा फूले और छत्रपति साहू जी महाराज से दिखते है। भारत में सबसे पहले अंग्रेज एवं ईसाई मिशनरियों द्वारा स्त्रियों को शिक्षित करने के उद्देश्य से 1810 में बंगला भाषा में स्त्री शिक्षा से संबंधित पुस्तक लिखी गई। दरअसल 'सशक्तीकरण' का मूल मंत्र है शिक्षा। इस वजह से देश के विभिन्न हिस्से में स्थानीय समाज सुधारक स्त्री शिक्षा पर जोर देते रहे थे। लिंग–विभेद और छुआछूत जैसी कुरीतियां शूद्र व महिला शिक्षा के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा थी 1848 में महात्मा फूले ने शूद्र व अछूत वर्ग के लड़के–लड़कियों के लिए स्कूल खोला कहने का आशय है कि समाज में व्याप्त कुरीतियों के खिलाफ सामाजिक समानता के लिए संघर्ष जारी था। ऐसे ही माहौल में 1891 में जन्में डॉ0 अम्बेडकर ने शूद्रों की तकदीर बदलने का फैसला किया। उनका कहना था ''लड़का शिक्षित होगा तो सिर्फ एक ही व्यक्ति शिक्षित होगा जब लड़की शिक्षित होगी तो पूरा परिवार शिक्षित होगा। डॉ0 अम्बेडकर ने ही हिन्दू धर्म, शास्त्रों में महिलाओं का क्या स्थान है और क्या नियम कानून उनके हक में है इससे समाज को परिचित किया। उन्होंने बताया कि धार्मिक मान्यताओं के अनुसार स्त्री धन, विद्या और शक्ति की देवी हे। उन्होंने यह प्रमाणित किया कि मनु संहिता में भी तीसरे अध्याय के छप्पनवें श्लोक में लिखा है ''जहां नारी की पूजा होती हे वहाँ देवता रमण करते है। 20 जुलाई, 1920 को डॉ0 आम्बेडकर ने मूल नायक नामक पत्र का प्रकाशन कोल्हापुर नरेश के सहयोग से प्रारम्भ किया इस पत्र के माध्यम से दलितों एवं महिलाओं के मुद्दों को उठाया। 1924 में बहिष्कृत हितकारिणी सभा नामक संस्था स्थापित की। वेणु भाई मटरकर रंगूबाई शुभरकर और रामाबाई आदि महिलाएं उनके आन्दोलन से जुड़ी।

1927 में सरकार ने उन्हें मुंबई विधानमंडल का सदस्य नियुक्त किया। मार्च 1927 को उनके चावदार तालाब आंदोलन में काफी संख्या में दलित महिलाओं ने भाग लिया। महिला आन्दोलन को नई दिशा देने के लिए महिला मण्डल की स्थापना की गई। इस संस्था की अध्यक्ष उनकी पत्नी रमाबाई बनीं। 28 जुलाई 1928 को डॉ0 अम्बेडकर ने मुम्बई विधान परिषद में कारखाना तथा अन्य संस्थानों में कार्यरत महिलाओं को प्रसूति अवकाश की सुविधा वेतन सहित प्रदान करने से संबंधित प्रस्ताव करने की वकालत की।

1931 में, लंदन में गोलमेज सम्मेलन के अन्तर्गत दलित (स्त्री–पुरूष) को पृथक मतदान देने के अधिकार दिलाने हेतु आवाज बुदंल किया। 1932 में पूना पैक्ट के अन्तर्गत उन्होंने अछूत (स्त्री–पुरूष) को संसद, विधानसभा एवं सरकारी नौकरियों में आरक्षण दिलाने के लिए संघर्ष किया।

16 जून 1936 को मुम्बई के दामोदर हाल में महिलाओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि –''नारी समाज की गहना है, सभी लोगों को उसे सम्मान देना चाहिए।'' इस सम्मेलन में अधिकांश वेश्याएं भी जुड़ी। 20 जुलाई 1920 को नागपुर में महिला सम्मेलन को संबोधित करते हुए सशक्तिकरण पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि सशक्तिकरण का अर्थ है, अपनी क्षमताओं को बनाना और उसे विकसित कर समाज की मुख्यधारा का अहम हिस्सा बनना। महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में आम्बेडकर का स्पष्ट दृष्टिकोण संविधान के अनुच्छेद 14,15 और 16 में झलकता है। लिंग समानता की प्रमुखता उन्होंने मौलिक अधिकार, मौलिक दायित्वों के तहत निर्देशित सिद्धान्तों के आधार पर किया है। धारा 14 के तहत् महिलाओं को संपत्ति और शिक्षा का अधिकार दिया। उनकी मान्यता थी ''शिक्षा शेरनी का दूध है शिक्षा के बिना जीवन व्यर्थ है। शिक्षित महिलाओं को योग्यता के अनुसार नौकरी करने का भी अधिकार दिया। डॉ0 आम्बेडकर ने महिलाओं को मतदान करने का अधिकार डॉ0 अम्बेडर ने महिलाओं को मतदान करने का अधिकार प्रदान कर उनकी राजनैतिक अधिकारों की सिर्फ रक्षा ही नही की अपितु सम्पूर्ण विश्व के समक्ष एक मिशाल भी पेश किया। क्योंकि इसके साथ ही महिलाओं के प्रति हिंसा को रोकने हेतु धारा 313 के तहत् हिंसात्मक और जबरन गर्भपात को अपराध की श्रेणी में रखा गया। सदियों से महिलाओं के साथ हो रही आमानुषिक व्यवहार को समूल नष्ट करने के लिए 11 अप्रैल 1947 को लोकसभा में हिन्दू कोड बिल पेश किया।

इस बिल के अन्तर्गत हिन्दू विवाह अधिनियम, विशेष विवाह अधिनियम गोद लेना, साधनहीन पारिवारिक सदस्यों का भरण–पोषण, उत्तराधिकारी अधिनियम, हिन्दू विधवा, पुनर्विवाह अधिनियम आदि कानून बनाये। बाबा साहब का मानना था कि समाज की प्रगति नारी–प्रगति के अभाव में अंधूरी है, क्योंकि वह समाज का आधा हिस्सा होती है। 19 जुलाई 1972 को नागपुर में सम्पन्न दलित वर्ग परिषद'' की सभा में डॉ0 आम्बेडकर का उक्त कथन अवलोकनीय है। ''नारी जगत की प्रगति, जिस अनुपात में हुई होगी उसी मानदण्ड से मैं उस समाज की प्रगति को आँकता हूँ। उन्होंने गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाली स्त्रियों से आग्रह किया था। ''आप सफाई रखना सीखों, सभी अनैतिक बुराइयों से बचों, हीन भावना को त्याग दो शादी विवाह में जल्दी मत करो और अधिक संतानें पैदा मत करो नारी चेतना की दृष्टि से स्त्रियों में आत्मचेतना का विकास आवश्यक है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अम्बेडकर जी ने केवल स्त्रियों के लिए ही नही अपने अपितु जीवन के 65 वर्षो में देश को सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक, औद्योगिक, संवैधानिक इत्यादि विभिन्न क्षेत्रों में अनगिनत कार्य करके राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने दलित एवं दलित आदिवासियों के मंदिर प्रवेश पानी पीने, छुआ–छूत, जाति–पाति, ऊँच–नीच जैसी सामाजिक कुरितियों को मिटाने के लिए ''नासिक सत्याग्रह देवला की गर्जना जैसे आन्दोलन चलाए। बेजुबान शोषित और शिक्षित लोगों को जगाने के लिए वर्ष 1927 से 1956 के दौरान मूक नायक, बहिष्कृत भारत, जनता और प्रबुद्ध भारत नामक पांच साप्ताहिक एवं पाक्षिक पत्र पत्रिकाओं का संपादन किया। कमजोर वर्गो के छात्र छात्राओं को छात्रावासों, रात्रि स्कूलों ग्रंथालयों और शैक्षणिक गतिविधियों के माध्यम से अपने दलित वर्ग शिक्षा समाज के जरिए अध्ययन करने और साथ ही आज अर्जित करने के लिए उनको सक्षम बनाया।

बौद्धिक वैज्ञानिक प्रतिष्ठा भारतीय संस्कृति वाले बौद्ध धर्म की 14 अक्टूबर 1956 को 5 लाख लोगों के साथ नागपुर में दीक्षा ली तथा भारत में बौद्ध धर्म की पुनस्थापित कर अपने अंतिम ग्रंथ ''बुद्ध एण्ड हिज धम्मा'' के द्वारा निरन्तर वृद्धि मार्ग प्रशस्त किया।

❑❑

इलाहाबाद को सपनों की भूमि मानने वाले डॉ0 राय जब इलाहाबाद के विश्वविद्यालय में जब नौकारी पाते हैं तो अपने अध्यापन से एवं गरीब छात्रों की मदद कर इतने लोकप्रिय हो जाते हैं कि शायद ही कोई डॉ0 राम कामल राय जैसा लोकप्रिय अध्यापक इस कतार को पार कर पाया हो। शब्द कर्मियों की शब्द क्रीड़ा के माध्यम से की गई अभिव्यक्ति एक कौतूहल उत्पन्न करते हुए सहज ही मन को बेध देती है। ऐसा ही कुछ डॉ0 रामकमल राय की रचनाओं को पढ़कर अहसास होता है। किसी भी व्यक्ति की सोच एवं उसकी अभिव्यक्ति उसके अन्तर्मन में व्याप्त शब्दों का योग होती है। वह जो कुछ जैसा सोचता है,वही उसकी निजता बन जाती है।

- कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

हिन्दू मुस्लिम एकता के संदर्भ में महात्मा गाँधी के विचार

डॉ. ममता यादव
एसोसिएट प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान विभाग
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

महात्मा गाँधी सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखते थे। सभी धर्मों के प्रति उनके हृदय से समान आदर था। उनका मानना था कि हमें सभी धर्मों के प्रति वैसा ही सम्मान रखना चाहिए जैसा हम अपने धर्म के प्रति रखते हैं। महात्मा गाँधी शास्त्रों के इस दर्शन में विश्वास रखते थे कि 'जो दूसरे धर्म कि निन्दा करता है वह स्वयं के धर्म कि ही निन्दा करता है।'

गाँधी जी ने ये महान शिक्षा दी कि सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु होना तथा अपने धर्म का पालन करना चाहिए। उनके अनुसार सभी धर्म ईश्वर–प्रदत्त हैं किन्तु मनुष्य द्वारा कल्पित तथा उनकें ही द्वारा धर्म का प्रचार होने के कारण वे अपूर्ण है। गाँधी का मानना था कि जिस प्रकार एक ही आत्मा भिन्न–भिन्न व्यक्तियों में विभक्त होकर भिन्न–भिन्न रूपों में दृष्टिगोचित होती है, जो कि बाहर से भिन्न–भिन्न रूपों में परिलच्छित होता है। वे कहते हैं – 'संसार के सभी महान धर्मों के मूलभूत तथ्य में मेरा विश्वास है। मूल में सब एक हैं और सब एक दूसरे के सहायक हैं।'

इसी विश्वास के साथ गाँधी जी हिन्दू–मुस्लिम एकता पर बहुत बल देते थे। उनकें अनुसार हिन्दू और मुसलमानों में कभी ना टूटने वाला अटूट संबंध हैं।

गाँधी जी अपने स्वराज दर्शन के आदर्श को प्रस्तुत करते हुए हिन्दू–मुस्लिम एकता को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया। उन्होंने कहा –

"Swaraj is possible because Hindus and Muslims are united. A handful of Europeans are ruling on us because of our weakness."

महात्मा गाँधी इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे कि भारत के समक्ष सबसे महत्त्वपूर्ण, संवेदनशील और कठिन समस्याओं में हिन्दू–मुस्लिम एकता प्रमुख थी। यह एक सम्प्रदायिक समस्या थी और जब तक इस समस्या का समाधान नहीं हो जाता, देश प्रगति नहीं कर सकता। क्योंकि समस्या के जड़ में आपसी अविश्वास, संशय और द्वेष था। परन्तु राष्ट्रहित में इसका समाधान निकालना आवश्यक था। इस कारण हिन्दू मुस्लिम विभेद गाँधी जी के समक्ष एक चुनौती के रूप में आया और इस चुनौती को सामने रखते हुए गाँधी जी ने हिन्दू–मुस्लिम एकता को जीवन का एक महत्त्वपूर्ण ध्येय बना लिया। साम्प्रदायिक एकता का विचार गाँधी जी के मन में उनके बचपन से ही था। जैसा कि उन्होंने ने स्वयं कहा हैं –

'Comunual Unity is a Vital part of my being. It was so when Khaddar and the Village Industries, Where not even convinced by me. At the time the Communal unity possessed me I was a lad of twelve years old, just a beginner in English. It was then that I realised that all Hindus, Muslims and Parsis are the son of the same soil and as such,were pledged to complete brotherhood.'

गाँधी जी ने धार्मिक सहिष्णुता का पाठ बचपन से ही पढ़ा सभी धर्मों के लोग उनके पिताजी के घर आते थे। वे एक दूसरे से अपने धर्मों के बारे में चर्चा करते थे। जिससे उनके बचपन से ही सभी धर्मों के सह अस्तित्व का बींज अंकुरित हुआ जो कालान्तर में अच्छी तरह फला–फूला।

महात्मा गाँधी ने सभी क्षेत्रों में चाहे राजनीतिक हो सामाजिक या नैतिक सभी में हिन्दू–मुस्लिम एकता का

पुरजोर समर्थन किया। यदि राजनीतिक क्षेत्र को देखे तो ये निश्चित था कि बिना हिन्दू–मुस्लिम एकता के बिना भारत की स्वतन्त्रता संभव न थी। सामाजिक रूप से देखा जाये तो इससे समाज में सद्भावना उत्पन्न होती। और नैतिक रूप से देखे तो हिन्दू–मुस्लिम एकता इस बात पर आधारित थी कि ईश्वर अपनी संतान के मध्य कोई भेद नहीं करता है।

गाँधी जी के विचार से हिन्दू–मुस्लिम विभेद के मुख्यतः पाँच कारण थे जो निमन्त्रण हैं –

1. अंग्रेजों कि बॉटो और राज करों की नीति प्राथमिक कारण थी।
2. उनके विचार में शहरी सभ्यता भी इसके लिए जिम्मेदार थी, क्योंकि इससे हिंसा और असमानता का जन्म होता था।
3. आधुनिक शिक्षा को भी गाँधी जी इसका कारण मानते थे, क्योंकि यह व्यक्ति का शहरीकरण की भी बुराइयाँ उसके अन्दर पैदा होती थीं।
4. हिंसा भी साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने के लिए ज़िम्मेदार थी। क्योंकि लोग एक दूसरे से अपने विभेदों का बदला लेने के लिए हिंसा का प्रयोग करते।
5. और अंत में लोगों के बीच धार्मिक असमानता के मनोवैज्ञानिक कारण को भी इसके लिए गाँधी जी ने जिम्मेदार माना।

महात्मा गाँधी ने केवल इस समस्या के कारणों का विश्लेषण ही नहीं किया बल्कि इसके समाधान के लिए भी सुझाव दिये। सर्वप्रथम गाँधी जी ने दोनों धर्मों के लोगों से एक–दूसरे को बेहतर समझने की अपील किया। उन्होंने खुद सभी धर्मों के साहित्यों का गहन अध्ययन किया और विश्व के सामने सभी धर्मों की समानताओं को रखा।

गाँधी जी ने 'टालसटाय फार्म' में हिन्दू और पारसी लड़कों को रमजान में रोजा रखने को कहा उसी प्रकार मुस्लिम युवकों को भी हिन्दू पर्व पर व्रत रखने के लिए प्रेरित किया।

गाँधी जी ने बहुसंख्यक समुदाय को भी उदारता दिखाने की अपील की अकसर हिन्दुओं से उदारता बरतने के लिए उपवास पर चले जाते थे, जिससे एकता बढ़ावा मिलता था। गाँधी जी एक राष्ट्र सिद्धान्त के समर्थक थे। उनका मानना था कि हिन्दू–मुस्लिम एकता में किसी प्रकार कि समस्या नहीं होनी चाहिए क्योंकि विश्व के अन्य देशों में मुस्लिम दूसरे धर्मों के साथ भाईचारे के साथ रहते हैं। परन्तु भारत में हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्ध एक तरह से असमंतर थे। चीन, इंग्लैंड समेत कई अन्य देशों में मुस्लिम थे परंतु कहीं पर भी मुसलमानो के लिए अलग पहचान या अलग राज्य की माँग नहीं थी जैसी कि भारत में हो रही थीं। महात्मा गाँधी का प्रश्न था कि उन राज्यों में जहाँ मुस्लिम बहुसंख्यक हैं उन्हें अलग करने की माँग होगी तो फिर उन राज्यों में क्या होगा कहा मुसलमान अल्पसंख्यक हैं या देश भर में फैले हुए हैं। क्या यह उन पर लागू नहीं होता ?

गाँधी जी का मानना था कि एक राष्ट्र के लिये धार्मिक सद्भावना एवं शांति आवश्यक है। इसलिए भारत में हिंदू–मुस्लिम का भाई–भाई की तरह रहना अनिवार्य था। उन्होंने कहा कि जब तक हिन्दू–मुस्लिम एकता सुनिश्चित नहीं होगी तब तक स्वराज की प्राप्ति संभव नहीं है।

गाँधी जी के हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रति संकल्प को उनके द्वारा व्यक्त विचारों में देखा जा सकता है। गाँधी जी ने कहा था हिन्दू और मुसलमान एक ही पेड़ की शाखाओं या पत्तियों की तरह हैं। हर व्यक्ति चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, चाहे उसका धर्म कुछ भी हो, वह भारत देश का नागरिक हैं। उन्होंने दोनों समुदायों के लोगों से अपील करते हुए साझा लक्ष्य के लिए प्रेरित किया। गाँधी जी ने इस बात पर जोर दिया कि हिंदू मुसलमान दोनों समुदाय के लोग शांति और सद्भावना के साथ रह सकते क्योंकि दोनों एक ही अन्न खाते है, एक पानी पीते है। गाँधी जी के अनुसार हिंदू–मुस्लिम का एक दूसरे के साथ खान–पान और शादियाँ भी सामान्य बात होनी

चाहिए। और यदि ऐसा नहीं भी होता है तो कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए। यह व्यक्ति विशेष का अपना निजी मामला है। उसी तरह जिस तरह उसकी अन्य मामलों में पसंद–नापसंद होती है। उन्होंने एस बात पर ज़ोर दिया की ऐसे मामलों को व्यक्तिगत मानते हुए उसे सांप्रदायिक रंग नहीं देना चाहिए क्योंकि हिन्दू–मुस्लिम एक ही राष्ट्र की संतान हैं। महात्मा गाँधी ने हिन्दुओं और मुसलमानो को आपसी एकता के लिए प्रेरित करते हुए कहा कि–'इससे अधिक प्राकृतिक संयोग क्या हो सकता है कि हिन्दू मुसलमान एक ही धरती पर पैदा हुए, एक ही अन्न खाकर बड़े हुए, दोनों के शत्रु भी एक हैं, दोनों की भाषाएँ भी एक हैं, ऐसे में भारत माता के दोनों पुत्रों को भाई–भाई के रूप में स्थाई मित्र होना चाहिए।

हिन्दू–मुस्लिम एकता को बढ़ावा देने का गाँधी जी का वास्तविक लक्ष्य स्वराज की प्राप्ति का था। गाँधी जी नहीं चाहते थे कि हम आपस में लड़ते रहे और अंग्रेज़ इसका लाभ उठा कर अनवरत हम पर शासन करते रहे गाँधीजी दोनो समुदायों को आपसी मतभेद आपस में मिल–बैठ कर सुलझा लेने पर जोर देते थे। वह ये नहीं चाहते थे कि भारत के दो भाईयों का झगड़ा कोई तीसरा बाहरी व्यक्ति सुलझाये। उन्होंने 'स्वराज' के लिए इसे एक बड़ी कमजोरी बताया हैं। गाँधीजी दोनों समुदायों के बीच एकता के लिए अपनी जान तक न्योछावर करने के लिए तत्पर रहते थे। उन्होंने कहा था कि –'यदि हिन्दू मुस्लिम एकता अगर मेरी जान देकर भी प्राप्त हो सके तो मैं इसके लिए तैयार हूँ। मुझे आशा है कि इसकी सामर्थ्य मेरे पास है। यदि हिन्दुओं और मुसलमानों का पाषाण ह्रदय पिघल सके व परिवर्तित हो सके तो मैं अनिश्चितकालीन उपवास के लिए तैयार हूँ, जैसा मैंने 1924 में दिल्ली में किया था'।

गाँधीजी ने स्वीकार करते हुए कहा कि उन्होंने कभी स्वप्न में भी ऐसा नहीं सोचा था कि वे केवल अपने प्रयास और हिन्दुओं के सहयोग से स्वराज प्राप्त कर लेंगे, इसके लिए मुसलमानों, पारसियों, ईसाइयों, यहूदियों तथा अन्य सभी भारतीयों का सहयोग आवश्यक होगा।

गाँधी जी ने हिन्दू–मुस्लिम एकता को दोनों समुदायों के लिए अपरिहार्या बताया था। उनके ही शब्दों में – "For good or ill, the communities are welded in India, they are neighbour, sons and soil. They are born here;Nature will force them in to live in peace if they do not come together Voluntarily."

उपरोक्त विचारों एवं तथ्यों से स्पष्ट है कि गाँधी जी हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए दृढ़ संकल्पित थे और उसके लिए उन्होंने आजीवन प्रयास किया। उनको इस बात का सदैव विश्वास था कि दोनों समुदाय इस देश में एक होकर मित्रवत भाई–भाई के रूप में रहेंगे। यह दोनों की आपसी आवश्यकता एवं मजबूरी है। गाँधी जी ने हिन्दू–मुस्लिम एकता को वास्तविक 'स्वराज' की प्राप्ति और स्थापना के लिए आवश्यक मानते थे और मृत्युपर्यंत वह इस उद्देश्य के लिए दृढ़ संकल्पित रहे व कार्य रहे।

References

Tendulkar,D.G.,Mahatma, Vol. Viii (Quoting),pp.129-30
Gandhi M.K.: My Religion,Ahmababad, Navjian Publications House,1955,p.28
Gandhi M.K.: Autobiography, (Quoting),P.4
Gandhi M.K.:Communal Unity, Navjivan Publication House, Ahmedabad,1949,pp.294
A Quoted in Laws Fisher: Life of Mahatma Gandhi, (Quoting),p.433
Young India: Dec.2,1920
Young India: July, 28,1921
Constructive Programme: Navajivan Publishing House Ahmebabad,1948

❑❑

धर्म सम्प्रदाय और संस्कृति

डॉ0 ज्योति वर्मा
एसो0प्रो0 / विभागाध्यक्ष (संस्कृत)
बुन्देलखण्ड कॉलेज, झांसी

लगभग साढ़े तीन हजार वर्षो के काल में भारत भूमि मे विभिन्न संस्कृतियों, धर्मो , सम्प्रदायों, वर्गो का समागम होता रहा है। किन्तु भारत देश का धर्म और संस्कृति ऐसी रही है कि हर बार दरार पड़ते ही भरा दी जाती थी। विदेशी संस्कृति को आत्मसात करते हुये अपने मूल्यों को सुरक्षित रखते हुये नित नये सृजन और समय की मांग के अनुसार परिशोधन करते हुये सबके प्रति स्नेह और मैत्री तथा सदभाव पूर्ण प्रवृति के कारण ही ऐसा सम्भव हुआ है। ईसा से लगभग, एक सौ वर्ष पूर्व यूची और शक जाति के लोग हिन्दुस्तान आये। और इससे भी सौ वर्ष पूर्व आभीर जाति इस देश में आकर बसी। नीग्रो, औश्ट्रिक, द्रविड़, आर्य मंगोल, यूनानी, हूंण और तुर्क सभी इस धरती पर आये, और बसे भी, किन्तु किसी का कोई अलग अस्तित्व नहीं रहा। सभी भारतीय संस्कृति में भली भांति पच–खप गये। विभिन्न संस्कृतियों के मेल से जो भारतीय संस्कृति रूपी प्रपाणक रस तैयार हुआ, उसमें यह पता लगाना मुश्किल था कि इस संस्कृति में किस जाति की संस्कृति का कितना अंश है। चूंकि पान लगाने का कार्य आर्यों ने किया, इसलिये, भारतीय संस्कृति पर आर्यो के नाम का बौद्धिक लेवल पढ़ा जा सकता है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार मिस्टर डाडवेल ने लिखा है कि ''भारतीय संस्कृति महासमुद्र के समान है, जिसमें अनेक नदियाँ आकर विलीन होती रहीं हैं।1 मुसलमानी आक्रमण से पूर्व जो तुर्क लोग इस देश में आये थे, उनका क्या हाल हुआ , इसका रहस्य बतलाते हुए एक अन्य इतिहासकार स्मिथ ने लिखा है कि ''इन विदेशी लोगों ने भी, अपने पहले आने वाले शकों और युचियों के समान ही हिन्दू – धर्म की पाचन – शक्ति के सामने घुटने टेक दिये और बड़ी ही शीघ्रता से वे हिन्दुत्व में विलीन हो गये।'' आर्यो और द्रविड़ों के मिलन से भारतीय संस्कृति ने जो रूप धारण किया, यह उसी की ताकत थी कि इस समन्वय के बाद जो भी जातियाँ इस देश में आयीं, वे भारतीय संस्कृति के समुद्र में एक के बाद एक, विलीन होती चली गयीं। जैसा कि श्री जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है–''ईरानी और यूनानी लोग, पार्थियन और बैक्ट्रियन लोग, सीथियन और हूण लोग, मुसलमानों से पहले आने वाले तुर्क और ईसा की आरम्भिक सदियों में आने वाले ईसाई, यहूदी और पारसी, ये सब –के–सब , एक–के–बाद–एक, भारत में आये और उनके आने से समाज ने एक हल्के कम्पन का भी अनुभव किया, मगर, अन्त में आकर, वे सब–के–सब भारतीय संस्कृति के महासमुद्र में विलीन हो गये। उनका कहीं कोई अलग अस्तित्व नहीं बचा।'' भारतीय संस्कृति की पाचन शक्ति प्रचण्ड है। जो प्रत्येक नई संस्कृति को आत्मसात करके उसे अपना बना लेती है।

यहाँ सभीं धर्मो और सम्प्रदायों को बराबर का दर्जा मिला हैं। हिन्दू धर्म के अलावा यहां जैन, बौद्ध और सिख ही नहीं यहूदी, ईसाई, इस्लाम, पारसी आदि सम्प्रदायों को भी हम आदर प्रदान करते हैं। आरम्भ से ही हमारे ऋषियों ने उदारवादी दृष्टिकोण अपनाया है। सत्य और अहिंसा हमारी संस्कृति के मूल स्वर है। हमारे मूल्य गइराई तक अपनी जड़ो से जुड़े हुये हैं।

भारतीय संस्कृति का लिखित दस्तावेज हमें ऋग्वेद से प्राप्त होता है। ऋग्वेद की आर्य संस्कृति में देवों और यज्ञों का प्रधान्य थां। यज्ञों के बिना देव कृपा प्राप्त करना सम्भव न थी। सभी प्रकार की समृद्धि, युद्ध में विजय, कृषि, धन धान्य, राक्षसों पर विजय और भूत, प्रेत, पिशाचादि की बाधाओं के परिहार के लिये आर्य लोग देवों की कृपा पर आश्रित रहते थे। देवों की कृपा यज्ञों में दिये गये हविश और मत्रों में उच्चरित देवस्तुति पर निर्भर रहती

थी। इन याज्ञिक अनुष्ठानों में जो वर्ग दक्ष था उसे समाज में शीर्ष स्थान मिलता थां। बहुदेवतावाद वैदिक संस्कृति का आधार था। ऋग्वेद में अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि देवताओं की स्तुति सूक्त मिलते हैं। सभी देव पूर्ण समर्थ एवं सर्व प्रभुत्व सम्पन्न वर्णित हैं। दूसरी ओर इसी ऋग्वेद में हम कुछ ऐसे मंत्रों को भी देखते हैं जिनमें इन देवताओं के पृथक पृथक अस्तित्व को न मानकर उन्हे एक ही महान देव के विभिन्न रूप कहा गया है।[2]

इन्द्रं मित्रं वरूणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरूत्मान

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

एक देवता का यह पृथक विचार सम्भवतः उन जातियों के संपर्क में आने से प्रादुर्भूत हुआ होगा, जिनमें बहुदेवोपासना न थी। एक ही देवता की उपासना की जाती थी। ऋग्वेद के दशम मण्डल के एक सूक्त में हमें उन दार्शनिक विचारों के बीज भी प्राप्त होते हैं, जिनमें पुराहितों की यज्ञ विधि तथा देव विषयक सर्वमान्य विश्वास में सन्देह व्यक्त किया गया है।[3] जिनका विस्तार हम बाद में उपनिशद् काल मे पाते हैं। अथर्ववेद के दार्शनिक सूक्त इस संदेह को और भी पुष्ट करते हैं। ये ऋषि निश्चय ही उस पुरोहित वर्ग के न रहे होगें जो यज्ञ ओर देवस्तुतियों में संलग्न रहे थे।

इस प्रसंग में यह ध्यान देने की बात है कि तत्व चिन्तन के इस क्षेत्र में याज्ञवल्क्य आदि ब्राह्मणों के अतिरिक्त अश्वपति, जनक आदि राजाओं का योगदान भी रहा है। यहां तक कि मैत्रेयी, गार्गी आदि स्त्रियों तथा सत्काम जाबाल जैसे अज्ञात कुलशील व्यक्ति भी इसमें संलग्न मिलते हैं।

वेद के प्रवृत्ति मार्ग के विरोध में जो यह निवृत्तिपरक ज्ञानमार्ग सामने आया उसमें योग पद्धति के द्वारा अव्यक्त अचिन्त्य ब्रह्म को प्राप्त करने की बात कही गई है।[4] इस वैदिक यज्ञीय मार्ग के विरोधी वर्ग को समाज में स्थान देने की भावना से ही मनीषी चिन्तकों ने आश्रम व्यवस्था की कल्पना की होगी। जिसमें कर्ममार्ग तथा ज्ञानमार्ग, प्रवृत्ति और निवृत्ति, अभ्युदय और निःश्रेयस् सभी को जीवन में उचित स्थान प्राप्त हुआ। प्रारम्भिक उपनिषदों में हम देखते हैं कि ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ इन तीनों आश्रमों की ही चर्चा है। सन्यास आश्रम की बात, बाद के उपनिषदों, रामायण, महाभारत और धर्मशास्त्रों में मिलती है। ब्रह्मचारी, गृही और वानप्रस्थी इन तीन को ही पंच महायज्ञों से मुक्त नही किया गया है। परन्तु सन्यासी को यज्ञकर्म से मुक्त माना गया है।[5]

''अनग्निरनिकेतः स्यात्'' मनुस्मृति में उसे कर्म से भी निवृत्ति दी गई है।[6] यह बात इसी ओर संकेत करती है कि सन्यास की पद्धति आर्यो की न होकर आर्येतर किसी जाति की रही होगी, जिसमें यज्ञ की मान्यता न होगी और योग विधि से मोक्ष प्राप्ति पर बल दिया जाता होगा। विचारों की इन दो विरोधी शाखाओं का स्पष्ट निर्देश उपनिषदों में मिलता है। ईशावास्योपनिषद में विद्या और अविद्या, संभूति और असंभूति इन शब्दों से ज्ञान तथा कर्म मार्गों का निर्देश है।[7] इसी भाव को कठोपनिषद् में विद्या और अविद्या के अतिरिक्त श्रेय तथा प्रेय मार्गो से भी अभिहित किया गया है। इन दोनों मार्गो की पृथकता का संकेत स्पष्ट रूप से किया गया है।[8] मुंडकोपनिषद् में तो स्पष्ट ही वेद और वेदांगों को अपराविद्या में गिना कर, श्रेष्ठ परा विद्या से पृथक कहा गया है।[9]

इस प्रकार हम देखते है कि संपूर्ण उपनिषद् काल में यज्ञ से स्वर्ग प्राप्ति की अपेक्षा तपस्या योग आदि के द्वारा ब्रह्मलोक की प्राप्ति पर बल दिया गया है। और इस लोक में होने वाले भोग, विलास तथा कामोपभोग की ओर से वितृष्णा दिखाई गई है। जो लोग प्रेय मार्ग के कामोपभोग में लिप्त हैं उन्हे बाल, मंन्द कहा गया है।[10] नचिकेता को ब्रह्म विद्या का अधिकारी इसीलिये समझा गया कि उसे कामोपभोग के साधनों ने नहीं लुभाया, उसने सभी कामनाओं का त्याग किया था।[11] श्रीमद्भगवद्गीता में भी हमें यही औपनिशदिक स्वर सुनाई देता है। श्रीकृश्ण अर्जुन को त्रैगुण्य रूप वेदों से हटाकर निस्त्रैगुण्य होने का उपदेश देते है[12] उपनिषद् काल में जहां यज्ञरूप नावों को अदृढ़ बातकर उनकी निंदा की गई है– प्लवा हयेते अदृढा यज्ञ रूपाः'' वहीं आगे चलकर महाभारत काल में हमें धार्मिक समन्वय की भावना दिखाई देती है। यहां अग्निचयन के अतिरिक्त अनेकों अन्य कर्म भी यज्ञ माने गये

है। यहां यज्ञ की निन्दा न कर उसके अर्थ में विस्तार किया गया है। सभी यज्ञों में जप–यज्ञ को श्रेष्ठ बताकर आध्यात्मिक उन्नति में सहायक तत्वों को भी यज्ञ की संज्ञा दी गई है।[14]

यद्यपि वैदिक वाङगमय के चरम विकास के बाद औपनिषदिक विचार उसकी प्रतिक्रिया के रूप आये। किन्तु ये औपनिषदिक विचार जन सामान्य की चिन्तन सीमा से बाहर थे। इनकी चर्चा अरण्यवासी ऋृषि मुनि ब्रह्म सांसदों में या जनकादि राजर्षि राजसंसदों में करते थे। यज्ञीय जटिलता और आध्यात्मिक सूक्ष्मता के चलते जन सामान्य के लिये ईश्वर संबन्धी कोई एक सर्वमान्य मान्यता न होने के कारण सामान्य जीवन में, नैतिक मूल्यों का निर्धारण न होने से, वे संकटापन्न हो रहे थे। इसी काल में अनेकों वेदबाहृय परम्परायें अस्तित्व में आईं। इनमें कोई संसार त्याग में ही आत्मा की मुक्ति मानते थे तो कुछ कष्ट साध्य तपस्याओं में विश्वास करते थे। इसी प्रकार अन्यान्य चिन्तक थे जो, अज्ञेयवाद, भौतिकवाद, अक्रियावाद और अकृततावाद को मानते थे इस प्रकार यह युग एक प्रकार की बौद्धिक अस्थिरता का युग था। जिसने नैतिक अराजकता को जन्म दिया।

याज्ञिक क्रियाओं में पशु बलि अनवार्य थी। ब्राह्मणों का समाज में प्रभुत्व था। दैवीय शक्तियों से सम्बन्ध स्थापित कराने वाले ब्राह्मणों का वर्चस्व था। नैतिक आचारों में कोई समानता नहीं थी। स्त्रियों के अधिकार शूद्रों तथा वैश्यों के समान कम होते जा रहे थे। ऐसी सामाजिक, दार्शनिक परिस्थिति में क्रान्ति के फूटने की स्थिति तक तनाव आ गया था। सामान्य वर्ग में भारी कसमसाहट थी। तभी शाक्य मुनि गौतम बुद्ध अपने प्रभाव शाली व्यक्तित्व के साथ भारतीय संस्कृति के क्षितिज पर सूर्योज्वल प्रकाश की तरह उदित हुये।

बुद्ध ने सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया। उन्हें जन सामान्य के हित की चिन्ता थी। वे दुःख से आत्यन्तिक निवृत्ति का उपाय सर्वजन सुलभ बनाना चाहते थे। वैदिक यज्ञों की पशु हिंसा से दुःखित हो कर उन्होने यज्ञ तथा हिंसा दोनों का विरोध किया। दर्शन के क्षेत्र में कोई वेदों को प्रमाण मानता था, तो कोई वेदों के अस्तित्व में विश्वास नहीं करता था। कोई ईश्वर में विश्वास करता था तो कोई अनीश्वरवादी था। कुछ स्वर्ग नरक की सत्ता स्वीकार करते थे तो कुछ नहीं। ऐसी बौद्धिक अनिश्चय की अवस्था में बुद्ध ने व्यर्थ के दार्शनिक विवादों में न पड़ते हुए, इन बातों का धर्म से सम्बन्ध स्वीकार न करते हुए उन्होनें इस प्रकार के चिन्तन को अभिधम्म अर्थात धर्म से परे की संज्ञा दी। दार्शनिक अनिश्चितता तथा संप्रदाय बाहुल्य से समाज में जो अनैतिकता आ गई थी, बुद्ध भगवान ने उसको एक नैतिकवाद दिया। डा0 राधा कृष्णन कहते है।[15]

"Buddhism is essentially psychology, logic and ethics not metaphysics."

बुद्ध से पूर्व उपनिषदों के ऋषि एक विशेष प्रकार के जीवनादर्श पर बल दे चुके थे। बुद्ध ने अपने अपको किसी नये संप्रदाय का प्रवर्तक नहीं माना। वे स्वतः कहते हैं कि उनके द्वारा खोजा गया धर्म प्राचीन आर्य धर्म ही था। उस समय औपनिषदिक ऋषि वेदों के बहुदेववाद तथा उस पर आश्रित धर्म का एक दम त्याग न करके उनसे समझौता करने में यत्नशील थे, जो हुत कुछ असंगत सा था। बुद्ध ने नैतिकवाद की स्थापना के लिये अध्यात्म तथा तत्वचिन्तन के विचारों को नैतिकता और व्यवहार में अनुपयोगी मान कर त्याग दिया। वस्तुतः बौद्ध धर्म अपने प्रारम्भिक रूप में उपनिषद् के विचारों को एक नई दृष्टि से समझने का प्रयत्न था।

उपनिषदों और बौद्ध धर्म ने वैदिक कर्मकांड का एक सा विरोध किया। जीवन दुःख है यह विचार उपनिषदों और सांख्य दर्शन के समान बौद्ध धर्म में भी हैं वास्तव में बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म की एक शाखा विशेष ही है।

भगवान बुद्ध के समय धर्म संप्रदायों की संख्या 62 तक पहुँच चुकी थी। यह बात प्रमाणित करती है कि, वैदिक याज्ञिक कर्मकाड के विरोध में जो धार्मिक चिन्तन की स्वतन्त्रता उपनिषद् काल में अभिव्यक्त हुई उसी ने इतने विभिन्न सप्रदायों को पनपने का अवसर दिया। पर कालान्तर में इनमें से अधिकांश लुप्त हो गये और कुछ ही बच सके जिन्होने भारतीय धर्म तथा विचारों पर गहरा प्रभाव डाला। इन संप्रदायों में से चार ही मुख्य हैं– जैन, बौद्ध, वैष्णव, शैव। ये चारों वेद के विरोध में यद्यपि एक स्वर थे, तथापि अन्यान्य बातों में बहुत कुछ भिन्न भी थे।

वैष्णव और शैव धर्म ईश्वरवादी थे। वैदिक काल के देव विष्णु और रूद्र इसके आराध्य देव हुये। इसके विपरीत जैन तथा बौद्ध धर्म अनीश्वरवादी थे। इन्होने अपने धर्म के संस्थापक महावीर और गौतम को ही कालान्तर में देवत्व प्रदान कर दिया।

यद्धपि इन चारों धर्मो में ही प्रचलित वैदिक व्यवस्था से पर्याप्त भिन्नता थी, पर जैन तथा बौद्ध धर्म को मध्य देशीय ब्राह्मणों ने उनकी नास्तिकता के कारण अधार्मिक माना। वैष्णव तथा शैव धर्मों को बदलती हुई परिस्थितयों के कारण वैदिक धर्म का ही एक परिष्कृत रूप समझा गया। औ इसी कारण इन दोनों के धर्म सिद्धान्तों का प्रतिपादन मध्य देश से ही कवियों द्वारा निर्मित रामायण महाभारत, वेदोत्तरकालीन उपनिषदों और पुराणों में मिलता है। वेद के प्रभावहीन हो जाने पर मध्य देश के इन्ही ग्रंथो का प्रभाव हुआ और इन्हें वेद के स्थान पर धर्मग्रन्थ माना जाने लगा।[16] इतिहास और पुराणों के अध्ययन से वेद का मन्तव्य जाना जा सकता है, यह भावना भी बद्ध मूल होती गई – ''इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत''[17]।

जिस प्रकार बौद्ध और जैन धर्मो ने बहुत कुछ उपनिषदों से ग्रहण किया था उसी प्रकार वैष्णव धर्म ने भी। यह धर्म भी बौद्ध तथा जैन धर्मो के उद्भवकाल के आसपास ही पश्चिम के सात्वतों में उदित हुआ। ये सात्वत यादवों की ही एक शाखा थे तथा मथुरा और उसके समीपवर्ती प्रदेश में निवास करते थे। मूलतः ये एक देव परमात्मा को मानते थे और उसे देवाधिदेव हरि पुकारते थे। तथा मोक्ष प्राप्ति के लिये यज्ञ और तपस्या के प्राचीन उपायों की अपेक्षा इसी हरि की भक्ति और पूजा पर बल देते थे। इस धर्म में यज्ञों और उसके प्रतिष्ठापक वेदों पर पूणर्तः अश्रद्धा व्यक्त नहीं की गई है, पर उन्हें कम महत्व का बताया गया है।[18] इसमें पशु, हिंसा, यज्ञीय कर्मकांड तथा उग्र तपस्या का विरोध ये तत्व बौद्ध धर्म के समान है, पर ईश्वर हरि का श्रद्धा सहित भक्ति पूजन और आरण्यक उपनिषदों के सिद्धान्तों का मंडन इस धर्म की अपनी विशेषताये हैं। इस धार्मिक सुधार को वृष्णि गण के देवकी पुत्र वासुदेव कृष्ण से बड़ा प्रेरेणात्मक बल प्राप्त हुआ। भगवद्गीता में इस धर्म के दार्शनिक सिद्धान्तों की ऐसी सुन्दर स्थापना और व्याख्या की गई कि इस धर्म को एक स्थिर रूप प्राप्त हो गया।

श्रीमदभगवद्गीता के व्याख्यान से यह एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय के रूप में विकसित हो चला और शीघ्र ही वासुदेव कृष्ण परमेश्वर के रूप में पूजे जाने लगे।[19] 'वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि।'' ''वासुदेवः सर्वमिति महात्मा सुदुर्लभः''। इस सम्प्रदाय का मूल छान्दोग्य उपनिषद् में ऋषि धोरांगिरस द्वारा अपने शिष्य देवकी पुत्र कृष्ण को दिया गया उपदेश है। इसमें दान आर्जव, अहिंसा, सत्य, तप, ध्यान, योग पर बल दिया गया है तथा यज्ञ के प्रति अनास्था व्यक्त की गई है। श्रीमद्भगवद्गीता में दो बातें महत्वपूर्ण है– पहली यह कि य़द्यपि सन्यास और कर्मयोग दोनों ही निःश्रेयस् प्राप्ति कराने में समर्थ हैं तथापि सन्यास की अपेक्षा कर्मयोग श्रेष्ठ है[21]। समाज में रहते हुये वर्णाश्रम धर्म के अनुरूप कर्म करते रहना कर्म त्याग से अधिक उचित है। दूसरी यह कि इनमें मनुष्य के मन को ईश्वर भाव से रहित शुष्क नैतिकवाद से दूर रहने का उपदेश दिया गया है। उपनिषदों में ईश्वर विषयक विचार यत्र तत्र विखरे हुये थे गीताकार ने उन्हें एक सुसंबद्ध मोक्ष विषयक दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया, जो सभी के द्वारा सुग्राहय हो सका। इस भक्ति मार्ग के सभी अधिकारी हो सकते थे। ब्राह्मण क्षत्रियों का तो कहना ही क्या, यह ग्रन्थ वैश्यों शूद्रों, स्त्रियों यहां तक कि पापयोनियों के लिये भी यह परम गति प्राप्त कराने वाला था। अर्थात वे भी भक्ति द्वारा मोक्ष पा सकते थे जिन्हे वैदिक धर्म में कोई स्थान नहीं दिया गया था। इस प्रकार ब्राह्मण धर्म भागवत धर्म में समन्वित होकर नये रूप में प्रतिष्ठित हो गया।

शैव सम्प्रदाय की प्राचीनता के संबन्ध में कई विद्वानों का मत है कि यह सम्प्रदाय वैदिक युग से भी पूर्व आर्येतरों में विद्यमान था। ऋग्वेद में जिन लिंग पूजकों का र्निदेश है और जिनके प्रति आर्यों की घृणा व्यक्त हुई है, वे निश्चय ही आर्येतर थें।[22] शिव के चरित्र में कई देवों का मिश्रण प्रतीत होता है। ऋग्वेद में रूद्र प्रकृति की दुष्ट तथा विनाशक शक्ति का प्रतिनिधित्व करने वाला देव है। उसका क्रोध प्रार्थना मंत्रों से शांत किया जाता हैं[23]।

पर इस देव को ऋग्वेद में कोई महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त न था। बाद में यजुर्वेद के प्रसिद्ध सूक्त शतरूद्रीय में उसके दुष्ट स्वभाव के साथ साथ उसका सौम्य चरित्र भी चित्रित किया गया। यही देव क्रमशः रूद्र से शंभू, शंकर या शिव बन जाता है। अथर्ववेद में रूद्र को ईश्वर का स्थान प्राप्त हो गया और यजुर्वेदीय श्वेताश्वर उपनिषद में तो उसे परम ब्रह्म का ही समकक्ष बना दिया गया। इसके विषय में ''एको हि रूद्रो न द्वितीयाय तस्थुः'' कहा गया है। इस प्रकार शैव धर्म एक विशेष सम्प्रदाय के रूप में अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा था। परवर्ती काल में उसका प्रसार एक विशिष्ट सम्प्रदाय के रूप में हुआ। ईसवी सन के प्रारम्भ में यह धर्म अधिक व्यापक रूप धारण कर सका। 600 ई0 पू0 से 150 ई0 पू0 तक के युग में हमें चार शैव सम्प्रदाय मिलते है– पाशुपत , शैव, कापालिक और कालामुख।[25] कई विद्वानो का मत है कि शिव देवत्व तथा लिंग रूप में पूजन सिंधु घाटी की आर्येतर सभ्यता की वस्तु थी जिसे आर्या ने स्वीकार कर लिया।

निष्कर्ष :– इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदोत्तर युग के पूर्वाद्ध में शनैःशनैः वैदिक संस्कृति तथा वैदिक संस्कृत का ह्रास होता गया। उसके स्थान पर आरम्भ में अनेक मत धर्म और दर्शन तथा नैतिक आदर्श सामने आये।

जीवन के प्रति दो मुख्य दृष्टियां प्रतिष्ठित हुई एक आस्तिकवादी और दूसरी नास्तिकवादी। आस्तिकवादी विचार धारा में उन सभी सम्प्रदायों का एक समन्वित रूप सामने आया जो किसी भी रूप में ईश्वर विश्वासी थे। आर्य और आर्येतर ईश्वर विश्वासी धर्मो का एक ऐसा सम्मिश्रण या समन्वय हुआ जिसमें प्रत्येक धर्मवाले को अपनी उपासना, पूजा, अर्चना, विधि, दर्शन, धर्मलिंग रहन–सहन आदि की पूर्ण स्वतन्त्रता मिली। वैदिक संस्कृति के स्थान पर अब इन सभी धर्मों के समन्वय से जिस संस्कृति ने जन्म लिया उसे हिन्दू संस्कृति कहा जा सकता है। इसमें यज्ञ, पूजा, मूर्ति, वैदिक या अवैदिक देव, विभिन्न धर्मवालों के आचार विचार आदि सभी का पारस्परिक घृणा द्वेष से रहित समन्वय हो गया। यज्ञ को महत्व देने वाले आर्यों ने यज्ञों के साथ–साथ आर्येतरों की पूजा विधि भी अपना ली। इस प्रकार आर्यों तथा आर्येतरों के बीच की सांस्कृतिक खाई पट चली और जो संयोजक सेतु निर्मित हुआ उसके निर्माण में विभिन्न संस्कृतियों ने ऐसा योगदान किया कि अब उन तत्वों को पृथक करना आर्य तथा आर्येतर तत्वों में विश्लेषित करना संभव नहीं रहा।

नास्तिकवादी सम्प्रदायों को भी इस समन्वित हिन्दू संस्कृति में स्थान मिला। उनके प्रति भी किसी प्रकार का द्ववेश व्यक्त नहीं किया गया। दोनों में भेद केवल ईश्वर के अस्तित्व के विषय में ही रह गया, अन्य और बातें जैसे आत्मा पुनर्जन्म, कर्म सिद्धान्त, देवी देवता आदि में परस्पर गंभीर मत भेद न रहे ।

हिन्दुत्व का स्वभाव है कि वह जितना ही पारिवर्तित होता है, उतना ही अपने मूल स्वरूप के करीब पहँच जाता है। आज से तीन हजार वर्ष पूर्व भारतीय संस्कृति का जो रूप था, आज भी मूलतः वह वैसा ही है। मिस्त्र बेबीलोन और यूनान में भी प्राचीन सभ्यताये उठी थी, किन्तु , काल ने उन्हे ध्वस्त कर दिया। केवल भारत ही एक ऐसा देश है। जिसका अतीत कभी मरा नहीं। वह उत्तरोत्तर परिवर्तित होता रहा। भारतीय संस्कृति की गूँज अपनी अतीत की गरिमा के साथ आज भी जीवित है और कदाचित आगे भी जीवित रहेगी।

संदर्भ संकेत

1. संस्कृति के चार अध्याय–रामधारी सिंह दिनकर पृष्ठ 81।
2. ऋग्वेद – 1/134/46
3. नासदीय सूक्त ऋग्वेद 10/129
4. कठोपनिशद – 2/6/10–11
5. मनुस्मृति – 6/3–5
6. मनुस्मृति – 6/43
7. ईशा 9/12

8. कठो0 1/2/2–4
9. मुंडको0 1,5
10. कठो0 1/2–2
11. कठो0 1/2/11
12. श्रीमद्भागवत गीता – ''त्रैगुण्यविषयो वेदा निस्त्रैगुणयो भवार्जुन''
13. मुण्डकोपनिषद – 2/7
14. गीता 10/25
15. Indian philosophy , vol. 1, pg. 353
16. क. छान्दोग्योप. 7/1/2
ख. भारतं पंचमो वेदः। महाभारत किटिकलं एडीशन 1/1/205
17. महाभारत 01/01/204
18. श्रीमद्भगवतगीता 2/45
19. श्रीमद्भगवतगीता 10/37:7/19
20. छोन्दोग्य उपनिशद 3/17/4–6
21. श्रीमद्भगवतगीता 5/2
22. ऋग्वेद : 7/21/59 10/99/5
23. ऋग्वेद 01/114

❑❑

डॉ0 राम कमल राय साहित्य की सरसता, सजग,संवेदना और सूक्ष्म विषद विवेचना की प्रवहमान त्रिवेणी थे। डॉ रामकमल राय अध्यपाक, लेखक और राजनीति कर्मी के साथ–साथ एक यायावार भी थे। यात्राएँ उन्हें प्रिय थीं। वे मुक्त मन से पर्वत प्रदेशों और सुदूर अंचलों की यात्राएँ किया करते थे।

- कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

वर्तमान सदी में अंतर्राष्ट्रीय राजनीति और भारत–एक मूल्यांकन

डॉ0 भावना यादव
सहायक प्राध्यापक–राजनीति विज्ञान विभाग
शासकीय स्वशासी कन्या स्नाताकोत्तर, उत्कृष्टता महाविद्यालय,सागर (म.प्र.)

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की दृष्टि से वर्तमान सदी परिवर्तन की सदी मानी जा सकती है, क्योंकि इसके पहले शक्ति संतुलन, सामूहिक सुरक्षा, उपनिवेशवाद आदि सिद्धांतों की प्रमुखता थी। वहीं आज वैश्वीकरण, उदारीकरण, मुक्त पूँजी, आर्थिक विकास जैसे सिद्धांतों को महत्व दिया जा रहा है। फलस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में विभिन्न देशों के आपसी संबंधों का स्वरूप बदल रहा है। भारत भी इन परिवर्तनों से अछूता नहीं है। वास्तव में किसी देश के संबंध अनायास ही नहीं बनते, वरन् उन संबंधों के निर्माण में कुछ तत्व प्रभावशाली भूमिका का निर्वहन करते हैं। किसी भी देश के अन्य देशों से संबंधों का संचालन उस देश की विदेश नीति द्वारा किया जाता है जो उस देश का अन्य देशों के प्रति राजनीतिक व्यवहार है। इस व्यवहार का निर्धारण उस देश का इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिक विचारधारा, नेतृत्व या व्यक्तित्व, सैनिक शक्ति या सुरक्षा आदि मिलकर करते हैं। भारत की विदेश नीति भी इसका अपवाद नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने जो दृष्टिकोण अपनाया वह उसके अतीत के आदर्शों पर आधारित था। फलस्वरूप सहयोग शांति और मैत्री के लक्ष्यों को समाहित करती नीति पंचशील, गुटनिरपेक्षता और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के सिद्धांतों पर आधारित थी।

स्वतंत्र भारत ने उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद का विरोध तथा अपने पड़ोसी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध निर्माण की घोषणा की, परंतु शीतयुद्ध के प्रारंभ, द्विध्रुवीय व्यवस्था के उद्भव व भारत से अलग हुए पाकिस्तान द्वारा पूँजीवादी गुट के समर्थन ने भारत के समक्ष नई चुनौतियों को जन्म दिया। परिणामस्वरूप गुटनिरपेक्षता की नई नीति का निर्माण हुआ। आज शीतयुद्ध समाप्त हो चुका है, जर्मनी के एकीकरण, सोवियत संघ के विघटन तथा विचारधाराओं के संघर्ष के अंत की घोषणा के साथ ही अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का एक अध्याय पूर्ण हो चुका है। फिर भी गुटनिरपेक्षता, पंचशील शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व और मैत्रीपूर्ण संबंधों की नीति अब भी भारतीय नीति का मूलाधार बनी हुई है और इसने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में भारत की स्थिति को और अधिक मजबूत किया है।

किसी भी देश की विदेश नीति उसकी ऐतिहासिक परम्पराओं, दार्शनिक विरासतों, सांस्कृतिक विशिष्टताओं एवं भौगोलिक स्थिति से निर्धारित होती है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने जो नीति अपनाई वह उसके अतीत के आदर्शों से निर्धारित हुई शांति, सहयोग और मैत्री के लक्ष्यों को समर्पित यह नीति गुटनिरपेक्षता पंचशील और शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व आदि सिद्धांतों पर आधारित थी। समयानुसार भारत की विदेश नीति ने अपना स्वरूप बदला और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत को प्रमाणित करते हुये भारत के विकास की दिशा का निर्धारण किया।

यह सच है कि समय–समय पर पड़ोसी देशों का आक्रमण हमारी विदेश नीति की प्रभावशीलता पर प्रश्नचिह्न लगाता है। साथ ही पिछले कुछ समय में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक सुदृढ़ और सशक्त भारत की छवि का निर्माण करने में भी हम प्रायः सफल नहीं हो पाये हैं। ऐसे में सरकार और नेतृत्व परिवर्तन से अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में हमारी अपेक्षायें भारत के विकास के साथ विश्व गुरू प्रभावशाली सशक्त राष्ट्र की छवि निर्माण की हो जाती है।

वास्तव में विदेश नीति के निर्माण में कई तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, इन तत्वों में राजनैतिक व्यवस्था

का विदेश नीति निर्धारण में प्रत्यक्ष प्रभाव होता है। प्रत्येक देश की तरह भारत में राजनीतिक व्यवस्था का एक सुनिश्चित स्वरूप और कार्यविधि रही है। भारत में संसदीय शासन प्रणाली है तथा लोकतंत्र में गहरी आस्था के कारण विदेश नीति के निर्धारण में लोकतांत्रिक व्यवहार का प्रभाव स्वाभाविक है। यही कारण है कि हमने स्थिरता के साथ–साथ आवश्यक लचीलेपन के साथ अपनी विदेश नीति के स्वरूप का निर्धारण किया। पं. जवाहरलाल नेहरू के अनुसार ''किसी भी देश की विदेश नीति की आधारशिला उसके अंतर्राष्ट्रीय हित की सुरक्षा होती है और भारत की विदेश नीति का भी ध्येय यही है।''

विदेश नीति को महत्वपूर्ण मानते हुये भारतीय संविधान में भारत की विदेश नीति के लक्ष्यों को बताया गया है। ''भारतीय संविधान की धारा 51 में विदेश नीति का निर्देशन करते हुय चार आदर्शों का वर्णन इस प्रकार किया गया है – (क) अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि का। (ख) राज्यों के बीच न्यायसंगत और सम्मानपूर्ण संबंधों को बनाये रखने का। (ग) संगठित लोगों के एक–दूसरे व्यवहारों में अंतर्राष्ट्रीय विधि और संधि बाध्यताओं के प्रति आदर बढ़ाने का, और (घ) अंतर्राष्ट्रीय विवादों के मध्यस्थता द्वारा निपटारे के लिये प्रोत्साहन देने का प्रयास करेगा।''[1]

इन्हीं लक्ष्यों के साथ भारत की विदेश नीति पर पं. जवाहरलाल नेहरू, श्रीकृष्ण मेनन, राममनोहर लोहिया, श्रीमती गाँधी, राजीव गाँधी, इन्द्रकुमार गुजराल, अटल बिहारी वाजपेयी के व्यक्तिगत विचारों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। जहाँ नेहरू एक भावुक राजनीतिक थे जो चीन के साथ व्यवहार में धोखे का शिकार हुये वहीं श्रीमती गाँधी अधिक व्यवहारिक थी इसीलिये सिक्किम के विलय, बांग्लादेश के निर्माण और पोखरण विस्फोट जैसे भारत में लोकप्रिय परंतु पड़ोसी व विदेशियों को शंकित करने वाले कदम उठा पायीं। लाल बहादुर शास्त्री, मोरारजी और वाजपेयी जी ने पड़ोसी के प्रति अधिक ध्यान देकर विदेश नीति को तत्थपरक और व्यवहारिक बनाया। वहीं राजीव गाँधी ने विदेश नीति को आर्थिक विचारों के अनुरूप मोड़कर पूँजीवादी के प्रति सहिष्णु बनाया, तो नरसिम्हा राव ने राजीव गाँधी की विदेश नीति को जारी रखा। अटल बिहारी वाजपेयी ने भारत को महाशक्ति बनने हेतु 1998 में पोखरण में आणविक विस्फोट को हरी झण्डी दिखाई। उन्होंने कारगिल युद्ध में विजय पायी, साथ ही लाहौर बस यात्रा व मुशर्रफ के साथ आगरा शिखरवार्ता में कूटनीति का परिचय देकर नेहरू, गाँधी के समान कुशल राजनीतिक होने का प्रमाण दिया। मनमोहन सिंह ने एल.पी.जी. के दौर में आर्थिक विचारों को बढ़ावा दिया। तो नरेन्द्र मोदी ने अपने कार्यकाल के शुरूआती दौर में ही भारत को उभरती शक्ति के रूप में विश्व में स्थापित करने हेतु अपनी विदेश यात्राओं से संकेत देने शुरू कर दिये हैं।

वास्तव में ''आज विश्व जिस ग्लोबल युग में है, वहाँ सम्बद्धता और प्रतियोगिता के साथ–साथ कुछ खास तरह की महान चालें भी काम करती रहतीं हैं, जो कि किसी देश की हैसियत और ताकत की परीक्षा के लिये जरूरी भी होती है। ऐसे में किसी देश के सफल होने के लिये यह जरूरी है कि नेतृत्व अपनी घरेलू नीतियों का निर्धारण व संचालन करने के साथ–साथ विदेश नीति के विषय पर भी बेहद गंभीर और प्रगतिशील हो। मगर पिछले कुछ वर्षों अथवा यूँ कहें कि दशको से विदेश नीति के मोर्चे पर भारत के नाम कोई भी खास उपलब्धि नहीं हैं। यही नहीं, भारत धीरे–धीरे सॉफ्ट स्टेट की स्थिति तक पहुँच गया। अगर भारत दुनिया में एक निर्णायक भूमिका निभाना चाहता है, तो उसे अपनी कूटनीतिक क्षमता और दुनिया के प्रति विजन का प्रदर्शन करना होगा।''[2]

उक्त संदर्भ में बात लक्ष्यों और व्यक्तित्व से आगे राष्ट्रीय विकास किसी भी राष्ट्र के वैश्विक पटल पर उत्थान और पतन का कारण उसकी विदेश नीति होती है। जहाँ राष्ट्रों के आपसी हितों में समानता होने पर मजबूत मैत्री संबंध बनते हैं वहीं हितों के टकराव संघर्ष का कारण भी बनते हैं। विदेश नीति का संचालन विभिन्न साधनों यथा युद्ध, संधि, बहिष्कार, प्रचार, यात्रा, चेतावनी, आर्थिक व्यापारिक संबंधों आदि आदि से किया जाता है। भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अपने शपथ ग्रहण समारोह में पड़ोसी दक्षिण एशियाई देशों के प्रमुखों को आमंत्रित कर

अपने कार्यकाल के प्रारंभ में ही यह संकेत दे दिया कि नई सरकार की विदेश नीति परस्पर सहयोग की भावना पर आधारित होगी। अपनी पहली विदेश यात्रा छोटे से पड़ोसी देश भूटान से प्रारंभ कर मोदी जी ने पड़ोसी देशों के प्रति भारत की मित्रता और घनिष्टतापूर्ण नीति का प्रारंभ किया।

मोदी जी की ''अमेरिका यात्रा और संयुक्त राष्ट्र संघ के उनकी उपस्थिति को मिलाकर, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि देश की विदेश नीति को उन्होंने एक नई धार दी है। यह धार इतनी स्पष्ट रही कि पूरी दुनिया समझ गई होगी कि नरेन्द्र मोदी की विदेश नीति किस दिशा में जा रही है। इसको ठीक से समझने के लिये हमें मोदी के अब तक के पूरे कार्यकाल की विदेश नीति को देखना होगा। भारत उपमहाद्वीप से बाहर उन्होंने अपनी पहली विदेश यात्रा के लिये जापान को चुना था। वह एशिया प्रशांत क्षेत्र में अमेरिका, चीन को घेरने की जो रणनीति बना रहा है, उसका खास अंग है। इसके बाद आस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री भारत आये। यह देश भी अमेरिका का साथी है। जापान में प्रधानमंत्री ने इशारों ही इशारों में चीन को कठघरे में खड़ा कर दिया था, यह भी साफ हुआ कि हम रूस का साथ नहीं छोड़ेगें ...... इतना ही नहीं उन्होंने इस्त्रायली प्रधानमंत्री बेजोमिन नेतन्याहू से मुलाकात भी की। यह वह काम है, जिसको करने की भारत के प्रधानमंत्री हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं। ...... इन्हीं सब कारणों से भारतीय विदेश नीति की दिशा साफ होने लगी है।''[3] परंतु ''यदि प्रधानमंत्री मोदी चाहते हैं कि उनकी विदेश नीति मौलिक हो तो उसकी लगाम उन्हें खुद थामनी होगी। विदेश मंत्री वे चाहे जिसे बना दें, यह स्पष्ट है कि सत्तारूढ़ नेताओं में कोई भी उसका विशेषज्ञ नहीं है। अब तक जिन चार प्रधानमंत्रियों ने भारत की विदेश नीति को ढाला है – नेहरू, इंदिरा, नरसिंह राव और वाजपेयी उनके विदेश मंत्री चाहें जो भी रहे हों, विदेश नीति के मूलभूत सिद्धांतों का निर्धारण और संचालन उन्होंने स्वयं किया है।''[4] यहाँ यह भी महत्वपूर्ण है कि विदेश नीति के मोर्चे पर भारत से विगत में जो कुछ भी किया वह बहुत कम है।

''यदि कोई भारतीय विदेश नीति और सुरक्षा नीति को लेकर संपूर्ण सरकार के पिछले दस वर्षों के कार्यकाल पर विचार करेगा तो उसे हर तरफ टूटे और बिखरे हुये भग्नावशेष नजर आयेंगे। चीन ने जहाँ विवाद के मसलें पर दबाव बढ़ा दिया है तो वाशिंगटन के साथ गिरते हुए नजर आते हैं, रूस की नजरें कहीं और हैं तो यूरोपीय संघ हमसे निराश है। हमारी सशस्त्र सेनाओं का मनोबल गिरा हुआ है, दूसरे और माओवादी पूरे देश में जड़ें जमाने के साथ अपना विस्तार करने में सफल रहे हैं। पाकिस्तान के साथ शांति प्रक्रिया भी रूकी हुई है। वक्त का रूख बदला हुआ है और हर कही असुरक्षा का वातावारण है।''[5] इतना ही नहीं बदलते वैश्विक परिदृश्य के साथ इन चुनौतियों और समस्याओं के साथ और भी अंतर्राष्ट्रीय संबंध विदेश नीति को प्रभावित कर रहे हैं। यह सच है कि ''अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य ऊपर–नीचे होता रहता है, लेकिन क्षेत्रीय राजनय के मामले में नेपाल, पाकिस्तान व मालदीप से हमारे रिश्ते चिंता का विषय है। आज नेपाल, चीन की गोद में जाने को आतुर है। नए नेपाली प्रधानमंत्री खड्ग प्रसाद शर्मा ओली ने कहा है – छोटे देश की संप्रभुता छोटी नहीं होती। हमारे प्रधानमंत्री ने ओली को तत्काल न्यौता देकर दूरदर्शी राजनय का परिचय दिया है। हमारे तमाम सद्प्रयत्नों के बावजूद पाकिस्तान से हमारा अनबोला है। फिर भी हमारी विदेश नीति में इस झगड़ालू पड़ौसी से संबंध सुधारने के लिये काफी जगह बनी रहती है। इधर, अफगास्तिान में हम पाक को लेकर संतुलन नहीं बैठा पाए हैं। मालदीप के राष्ट्रपति अब्दुल्ला यमीन ने हमारी विदेश मंत्री से कहा कि उनकी सरकार घरेलू मामलों में विदेशी दखल बर्दाश्त नहीं करेगी। यह कहकर उन्होंने अपने नायाब को चीन भेज दिया। याद रहे कि मालदीप ने चीन को अपने यहाँ जमीन खरीदने की अनुमति दे दी है। ऐसा नहीं है कि भारत इस अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य से नावाकिफ है।''[6]

वर्तमान में विश्व राजनीति का नया युग प्रारंभ हुआ है जिसमें पूँजीवादी विचारधारा को सर्वोपरि माना जा रहा है। साम्यवादी चीन भी इससे अछूता नहीं रह सका और समय के साथ परिवर्तनों के द्वारा आज के वैश्विक पटल पर विकसित राष्ट्र के रूप में उभरा है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का नया दौर प्रारंभ हुआ है।

भारत के प्रधानमंत्री जी की विदेश यात्राओं ने भारत के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की पुनर्स्थापना आरंभ की है। आज हर भारतीय की अपेक्षा इन विदेश यात्राओं से बने संबंधों के आगे भारत के विकास के उस मार्ग की ओर है जो भारत को संपूर्ण रूप से सशक्त कर विश्व परिदृश्य पर गौरवपूर्ण स्थान पर स्थापित कर सके।

सम्भवतः इसी कारण प्रधानमंत्री मोदी ने अपने शपथ ग्रहण में सारे देशों के प्रमुखों को आमंत्रित किया और मात्र सत्रह माह के शासन में दो दर्जन से ज्यादा विदेश यात्राएँ करके अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारत को पुनर्स्थापन की दिशा में कदम बढ़ा दिये हैं। परंतु हमें आवश्यकता है कि हम विश्व में अपनी भूमिका को जानें और उसके अनुरूप विदेश नीति के दृष्टिकोण को बनायें, जिससे हमारे हितों की पूर्ति सुरक्षात्मक तरीकों से संभव हो। आज मोदी जी की यात्राओं से जो अवसर हमें मिल रहे हैं इन्हें अपने पक्ष में उपयोग कर पाने की रणनीति तय करना होगी, तभी हमारे अंतर्राष्ट्रीय संबंध हमें लंबे समय तक विकास में सहयोग दे पायेंगे।

संदर्भ संकेत

1. डॉ. एस.पी. सिंहल – भारत की विदेश नीति, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. 54–55।
2. राज एक्सप्रेस – संपादकीय, डॉ. रहीस सिंह, 22 अप्रैल, 2014, पृ. 4।
3. राज एक्सप्रेस – डॉ. डी.बी. कुभंज, 3 अक्टूबर, 2014, पृ. 4।
4. दैनिक भास्कर – वेदप्रताप वैदिक, 24 मई 2014, पृ. 8।
5. दैनिक जागरण – हर्ष वी. पंत, 4 अप्रैल 2014, पृ. 6।
6. राज एक्सप्रेस – घनश्याम सक्सेना, 19.10.2015, पृ. 4।

❑❑

जीवन पर्यन्त चलना ही जिन्दगी है के आग्रही, दृढ संकल्प के साथ अपने सृजनलोक से व्यक्तिलोक तक की यह यात्रा रामकमल राय सन् 1978 ई0 से शुरू कर सन् 2003 ई0 तक की कालावधि के बीच करते हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि अज्ञेय को पढ़ना, सोचना, समझना और लिखना, प्रकाशित करना रामकमलराय की अज्ञेय के प्रति लगाव और निष्ठा का परिमाण है। अज्ञेय पर काम करने वाले हर पाठक, शोधार्थी के लिये प्रो0 रामकमल राय की अज्ञेय पर लिखी चारों पुस्तकें–अज्ञेय सृजन और संघर्ष, शिखर से सागर तक, शेखर : एक जीवनी–विविध आयाम, अज्ञेय सृजन की समग्रता संदर्भ ग्रन्थ के रूप में प्रयुक्त होती रहेंगी। वास्तव में देखा जाए तो समाज में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो सम्मान पाकर गौरवान्वित होते हैं तो कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जिनका सम्मान कर समाज स्वयं गौरवान्वित होता है। डॉ0 रामकमल राय के सृजन को पढ़कर हर पाठक यह गर्व महसूस कर गौरवान्वित होता है।

- कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

दिव्यांगजनों के लिए कार्यरत संस्थाओं का संक्षिप्त विवेचन

डॉ0 विजय कुमार वर्मा
सहायक प्राध्यापक–समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

देश में दिव्यांगजनों के समावेशन व विकास हेतु विभिन्न राष्ट्रीय संस्थाएँ कार्य कर रही हैं। समय–समय पर इन संस्थाओं ने आवश्यकतानुसार विभिन्न योजनाओं को क्रियान्वित करके दिव्यांगों की स्थिति को मजबूती प्रदान की है। दिव्यांगजनों हेतु कार्यरत संस्थाएँ निम्नवत् हैः–

1. राष्ट्रीय दृष्टि बाधितार्थ संस्थान (N.I.V.H.) राष्ट्रीय दृष्टि बाधितार्थ संस्थान की स्थापना जुलाई, 1979 में हुई थी। इससे पूर्व इसका नाम 'नेशनल सेंटर फॉर दि ब्लाइंड' था और यह पहले विभिन्न रूपों में चल रहा था। अक्टूबर, 1982 में इसका पंजीकरण हो गया और इसे एक स्वशासित संस्था का दर्जा भी मिल गया। इस संस्थान के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं :

(1) नेत्रहीनों की शिक्षा और पुनर्वास से सम्बन्धित हर विषय पर शोध करना, शोध करने वाली संस्थाओं को आर्थिक व अन्य प्रकार की सहायता देना और समन्वय स्थापित करना।

(2) नेत्रहीनों के लिए नवीन सहायक उपकरण विकसित करने, चिकित्सकीय व शल्य चिकित्सकीय विधियाँ और उपकरण बनाने, जैव चिकित्सकीय इंजीनियरिंग द्वारा सहायक उपकरण बनाने आदि कार्यों को स्वयं करना या इस प्रकार का कार्य कर रही संस्थाओं को आर्थिक व अन्य प्रकार की सहायता देना और समन्वय स्थापित करना।

(3) नेत्रहीनों के पुनर्वास, प्रशिक्षण और समय–समय पर मूल्यांकन आदि करने के लिए उपयुक्त शिक्षक, नियुक्ति अधिकारियों, मनोवैज्ञानिकों, व्यावसायिक प्रशिक्षकों को स्वयं प्रशिक्षित करना और अन्य संस्थाओं द्वारा प्रशिक्षित कराना।

(4) नेत्रहीनों के लिए सहायक उपकरणों को रियायती दरों पर बँटवाने, इन उपकरणों के प्रोटोटाइप निर्माण में सहायता करना, उनकी शिक्षा, पुनर्वास और थेरेपी हेतु उपकरणों के विकास में सहयोग देना। संस्था का पता : निदेशक, राष्ट्रीय दृष्टि बाधितार्थ संस्थान, 116, राजपुर रोड, देहरादून, उत्तर प्रदेश है।

2. श्रवणहीनों के लिए राष्ट्रीय संस्थान (N.I.H.H.) 'नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर दि हियरिंग हैंडीकैप्ड' की विधिवत् स्थापना 1983 में हुई थी और इसे अलीयावर जंग नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर हियरिंग हैंडीकैप्ड के नाम से जाना जाता है। इसके मुख्य कार्य इस प्रकार हैं:

(1) श्रवणहीनों के लिए शिक्षा व रोजगार हेतु शोध–कार्य स्वयं करना, शोध करने वाली संस्थाओं को सहायता देना और समन्वय स्थापित करना।

(2) बधिरों के लिए जैव चिकित्सकीय इंजीनियरिंग द्वारा तैयार किये जाने वाले चिकित्सकीय और शल्य चिकित्सकीय उपकरणों का मूल्यांकन करना, शोध करना, शोध करने वाली संस्था की आर्थिक व अन्य प्रकार की सहायता करना।

(3) बधिरों के लिए शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और पुनर्वास हेतु शिक्षकों, नियुक्ति अधिकारियों, मनोवैज्ञानिकों, व्यावसायिक सलाहकारों आदि को स्वयं प्रशिक्षित करना और इस प्रकार का कार्य कर रही संस्थाओं को

आर्थिक व अन्य प्रकार की सहायता देना।

(4) श्रवणहीनों के लिए शिक्षा, पुनर्वास और थेरेपी में काम आने वाले उपकरणों व सहायक यंत्रों के प्रोटोटाइप निर्माण और फिर विकसित कर बड़े पैमाने पर उत्पादन कराने जैसे कामों को बढ़ावा देना। इस संस्थान का पता : निदेशक, नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर दि हियरिंग हैंडीकैप्ड, बान्द्रा (पश्चिम), मुम्बई, महाराष्ट्र है।

3. नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर दि आर्थोपेडिकली हैंडीकैप्ड (N.I.O.H.) : अस्थि दिव्यांगों के लिए राष्ट्रीय संस्थान का गठन, अस्थि दिव्यांग बच्चों और ऐसे वयस्कों, जो ऐसी दिव्यांगता से पीड़ित हों जो उनके चलने–फिरने, माँसपेशियों के घूमने आदि में बाधा बनती हो, के लिए 1978 में किया गया था। 1982 में इसे स्वशासित संस्थान का दर्जा दे दिया गया। यह पूरे देश के अस्थि दिव्यांगों के लिए कार्य कर रही संस्थाओं के लिए उत्कृष्ट स्तर का संस्थान है और अस्थि दिव्यांगों के स्वास्थ्य सम्बन्धी, सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक, व्यावसायिक और मनोवैज्ञानिक पुनर्वास आदि के लिए व्यापक रूप से कार्य करता है।

इस बहुद्देशीय संस्थान के निम्न उद्देश्य हैं :

(1) अस्थि दिव्यांगों को विभिन्न प्रकार की सेवा देने के लिए प्रशिक्षित मानव संसाधन तैयार करना।

(2) अस्थि दिव्यांगों के पुनर्वास के लिए शोध–कार्य संस्थान में कराना और अन्य जगहों पर चल रहे कार्यों को आर्थिक व अन्य प्रकार की सहायता प्रदान करना।

(3) अस्थित दिव्यांगों के काम आने वाले सहायक उपकरणों का मानकीकरण करना और उनके निर्माण और वितरण को बढ़ावा देना।

(4) अस्थि दिव्यांगों की दिव्यांगता को दूर करने के लिए की जाने वाली शल्य चिकित्सा, सहायक उपकरण और व्यावसायिक प्रशिक्षण हेतु नई–नई विधियों और सेवाओं को विकसित करना।

(5) अस्थि दिव्यांगों के लिए सूचनाएँ और दस्तावेजों के लिए मुख्य केन्द्र के रूप में काम करना।

(6) अस्थि दिव्यांगों के लिए कार्य कर रही राज्य सरकार की संस्थाओं और स्वयंसेवी संस्थाओं को सलाह प्रदान करना।

इस संस्थान में अनेक प्रकार की सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। जहाँ बाहर से आने वाले मरीजों का इलाज होता है। दिव्यांग की शल्य चिकित्सा करके उनकी दिव्यांगता को दूर करने के लिए एक अलग इकाई है। इनके पुनर्वास के लिए एक अलग वार्ड है। कृत्रिम अंग व कैलिपर आदि बनाने के लिए एक केन्द्र है। यहाँ फिजियोथेरेपी भी की जाती है। ऑक्यूपेशनल थेरेपी का भी प्रबन्ध है। अस्थि दिव्यांगों के सामाजिक व आर्थिक पुनर्वास के लिए एक इकाई कार्य कर रही है। दिव्यांगता को रोकने के लिए भी कार्यक्रम चलाये जाते हैं। दिव्यांगता का पता लगाने के लिए जाँच आदि का कार्य भी किया जाता है। यहाँ पर अस्थि दिव्यांग आवश्यक सलाह भी ले सकते हैं। अस्थि दिव्यांगता से सम्बन्धित सभी प्रकार की सूचनाएँ यहाँ एकत्रित की जाती हैं और ये सूचनाएँ सम्बन्धित लोगों की जानकारी के लिए हमेशा उपलब्ध रहती हैं। यहाँ पर अस्थि दिव्यांगता की समस्या से निपटने के लिए अनेक पाठ्यक्रम चलाये जाते हैं। ये पाठ्यक्रम कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा मान्यता प्राप्त हैं। स्नातक स्तर के पाठ्यक्रम तीन वर्ष के हैं और पाठ्यक्रम पूरा करने के बाद 6 महीने की अनिवार्य इंटर्नशिप होती है। ये पाठ्यक्रम हैं :

(1) बैचलर ऑफ फिजियोथेरापी

(2) बैचलर ऑफ ऑक्यूपेशनल थेरापी

(3) बैचलर ऑफ प्रॉस्थेटिक व ऑर्थोटिक

इन सबके अतिरिक्त दिव्यांगों के लिए कार्य कर रहे लोगों के ज्ञानवर्धन के लिए अल्प समय के प्रशिक्षण कार्यक्रम भी चलाये जाते हैं। ये कार्यक्रम दो दिन से लेकर चार हफ्ते के होते हैं। संस्थान समय–समय पर सेमीनार, वर्कशॉप सिम्पोजियम और ग्रुप डिस्कसन आदि करवाता है। इनमें सरकारी और गैरसरकारी संगठनों में इस दिशा

में कार्य कर रहे लोग भाग लेते हैं।

दीगर बात यह है कि निम्न आय वर्गों के दिव्यांग लोगों के लिए सहायक उपकरण आदि मुफ्त दिये जाते हैं। इन लोगों का इलाज भी मुफ्त होता है। यह संस्थान कलकत्ता के उत्तरी इलाके में बी.टी. रोड, बॉन हुगली में स्थित है। निदेशक, नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर दि आर्थोपैडिकली हैंडीकैप्ड, बी.टी. रोड, बॉन हुगली, कलकत्ता–700090 पर पत्राचार कर आवश्यक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

4. नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर दि मेंटली हैंडीकैप्ड (N.I.M.H.) : मानसिक रूप से दिव्यांग व्यक्तियों के लिए 'नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर दि मेंटली हैंडीकैप्ड' का गठन 1984 में हुआ था। इस संस्थान के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं :

(1) मानसिक रूप से अविकसित व्यक्तियों की देखभाल व तौर–तरीके विकसित करना।

(2) मानसिक रूप से दिव्यांग व्यक्तियों की विभिन्न प्रकार से सेवा करने के लिए प्रशिक्षित मानव संसाधन तैयार करना।

(3) मानसिक अविकास के कारणों का पता लगाना और इस दिशा में सुधार हेतु शोध करना व शोध करने वाली संस्थाओं को सहायता देना और साथ में उनके बीच में समन्वय स्थापित करना।

(4) मानसिक रूप से दिव्यांगों के लिए जो स्वयंसेवी संस्थाएँ कार्य कर रही हैं उनको समय–समय पर सलाह देना और सहायता प्रदान करना।

(5) मानसिक दिव्यांगता के बारे में सूचनाएँ इकट्ठी करना, दस्तावेज बनाना और उन्हें सम्बद्ध लोगों को उपलब्ध कराना।

(6) देश में मानसिक दिव्यांगता की मात्रा, कारण, ग्रामीण व शहरी इलाकों में उसका प्रभाव, इससे सम्बन्धित सामाजिक व आर्थिक मुद्दों के बारे में आँकड़े इकट्ठे करना।

(7) पूरे देश में मानसिक रूप से दिव्यांगों की सेवा आदि में गुणवत्ता बढ़ाना और इस प्रक्रिया को निरन्तर बनाये रखना। संस्था के अधोलिखित पते–निदेशक, नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर दि मेंटली हैंडीकैप्ड, मनोविकास नगर, सिकन्दराबाद, आंन्ध्र प्रदेश से आवश्यक अपेक्षित जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

5. नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ रिहैबिलिटेशन, ट्रेनिंग एण्ड रिसर्च (National Institute of Rehabilitation, Training & Research) : इस संस्थान का प्रारम्भ 1975 में एलिम्को की एक शाखा के रूप में हुआ था। यह भुवनेश्वर/कटक से लगभग 35 कि.मी. दूर औलरपुर में स्थित है। यह ग्रामीण इलाका है। इस संस्थान को 1984 में भारत सरकार के समाज कल्याण मंत्रालय ने अपने हाथ में ले लिया। इस संस्थान के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं –

(1) एलिम्को द्वारा बनाये गये उत्पादों को इस्तेमाल करने के लिए आगे बढ़ाना।

(2) अस्थि दिव्यांगों के पुनर्वास के लिए कार्य कर रहे लोगों को प्रशिक्षण देना, प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं को सहायता देना और उनके बीच समन्वय स्थापित करना।

(3) अस्थि दिव्यांगों के लिए बायो मडिकल इंजीनियरिंग, सर्जिकल और मेडिकल विधियों में शोध करना और शोध करने वाली संस्थाओं को आर्थिक व अन्य प्रकार की सहायता देना तथा उसके बीच समन्वय स्थापित करना।

(4) अस्थि दिव्यांगों के इस्तेमाल में आने वाले सहायक उपकरणों के प्रोटोटाइप का निर्माण, बढ़ावा देने, वितरण करने व रियायती दरों पर वितरण कराने में मदद करना।

(5) दिव्यांगों की सेवा हेतु कार्यक्रमों के विभिन्न मॉडल तैयार करना।

(6) अस्थि दिव्यांगों को व्यावसायिक प्रशिक्षण, रोजगार और पुनर्वास प्रदान करने के लिए प्रयास करना।

(7) दिव्यांगता और दिव्यांगों के पुनर्वास से सम्बन्धित तमाम जानकारी एकत्रित करना, दस्तावेज तैयार करना और प्राप्त जानकारी को जरूरतमंद लोगों और संस्थाओं तक पहुँचना।

(8) भारत में और भारत के बाहर दिव्यांगों के पुनर्वास कार्यक्रम में अन्य प्रकार की गतिविधियाँ प्रारम्भ करना।

उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संस्थान में छः बड़े विभाग हैं। ये हैं: अकेडेमिक्स, जहाँ शिक्षा दी जाती है। बायो इंजीनियरिंग, जहाँ जैव अभियांत्रिकी का उपयोग करके उपकरण आदि बनाये जाते हैं। ऑक्यूपेशनल थेरापी व फिजियोथेरापी, इन दोनों में इलाज होता है। इनके अलावा पुनर्वास चिकित्सा और शल्य चिकित्सा विभाग हैं। साथ में सूचना और दस्तावेज तैयार करने वाला विभाग भी है। संस्थान को चलाने के लिए प्रशासनिक व कार्मिक विभाग है। वित्त, भंडार, निर्माण, मरम्मत आदि के लिए अलग–अलग विभाग हैं और ये संस्थान की गतिविधियों को संचालित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शिक्षण–कार्य में लगभग 150 लोग लगे हैं और इतने ही लोग प्रशासनिक कार्य सँभाल रहे हैं। दिव्यांगों के पुनर्वास के लिए प्रशिक्षित मानव संसाधन की बढ़ती आवश्यकता की पूर्ति के लिए यह संस्थान निम्न पाठ्यक्रम 1987 से चला रहा है:

(1) स्नातक स्तर का फिजियोथेरापी और ऑक्यूपेशनल थेरापी का कोर्स : साढ़े तीन वर्ष का स्नातक स्तर का यह पाठ्यक्रम उत्कल विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर द्वारा मान्यता प्राप्त है। इनमें बीस सीटें हैं और इसमें प्रवेश के लिए न्यूनतम योग्यता इंटरमीडिएट (10+2) या समकक्ष है। प्रवेशार्थियों के फिजिक्स, केमिस्ट्री व बायोलॉजी में न्यूनतम 50 प्रतिशत अंक होने चाहिए।

(2) प्रोस्थेटिक और आर्थोटिक इंजीनियरिंग में डिप्लोमा स्तर का कोर्स : यह पाठ्यक्रम ढाई वर्ष का है और इसमें 20 सीटें हैं। यह राज्य सरकार की तकनीकी शिक्षा परिषद से मान्यता प्राप्त है। इसके लिए न्यूनतम शैक्षिक योग्यता इंटरमीडिएट (10+2) निर्धारित की गई है और प्रवेशार्थियों के फिजिक्स, केमिस्ट्र और गणित में न्यूनतम 50 प्रतिशत अंक होने चाहिए।

(3) डिप्लोमा इन नेशनल बोर्ड एक्जामिनेशन : इसमें दो सीटें हैं और यह भौतिक चिकित्सा व पुनर्वास में एम. डी. के समकक्ष है।

(4) अल्प अवधि के पाठ्यक्रम : दिव्यांगों के कल्याण में लगे प्रशिक्षित व्यक्तियों और संस्थाओं को प्रोत्साहित करने के लिए और उनके ज्ञान को बढ़ाने के लिए और साथ में समुदाय आधारित पुनर्वास के लिए प्रशिक्षित करने हेतु यह संस्थान अल्प अवधि के पाठ्यक्रम भी चलाता है। साथ में चिकित्सा के बारे में भी जानकारी देने के लिए सेमिनार आदि आयोजित करता है।

(1) दिव्यांग बच्चों के लिए कार्य कर रहे और दिव्यांग बच्चों के माता–पिता को सलाह देने वाले प्रशिक्षित व्यक्तियों के लिए पाठ्यक्रम।

(2) दिव्यांगों के कल्याण के कार्यक्रम में लगे जिले और ब्लाक स्तर के अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम।

(3) गैरसरकारी संगठनों में लगे प्रशिक्षित व्यक्तियों के लिए कार्यक्रम।

(4) सामान्य प्राईमरी स्कूलों के शिक्षकों को दिव्यांग के बारे में जानकारी देना।

इनके अतिरिक्त ऑर्थोपेडिक व सामान्य सर्जनों, बाल रोग विशेषज्ञों, जन स्वास्थ्य सेवा में लगे डॉक्टरों और ऑर्थोपेडिक्स के स्नातकोत्तर स्तर के छात्रों के लिए भी समय–समय पर अल्पकालिक पाठ्यक्रम चलाये जाते हैं। साथ में ऑक्यूपेशनल थेरापिस्टों, फिजियोथेरापिस्टों, प्रोस्थेटिक और आर्थोटिक इंजीनियरों ओर तकनीशियनों के लिए भी इसी प्रकार के कार्यक्रम चलाये जाते हैं। इन कार्यक्रमों में नवीनतम जानकारी काम कर रहे लोगों को दी जाती है।

यहाँ पर विभिन्न प्रकार के दिव्यांगों, जैसे अस्थि दिव्यांगों जिनमें पोलियों सेरेब्रल पाल्सी व अन्य विकृतियों

के शिकार, कुष्ठ रोग से पीड़ित शामिल हैं तथा श्रवणहीनों आदि का इलाज किया जाता है। उनको ऐसे सहायक उपकरण लगाये जाते हैं जिससे उनकी विकृति स्थायी दिव्यांगता में न परिवर्तित हो जाय और वे अपने रोजमर्रा के काम आसानी से करते रहें। इन सबके लिए यहाँ पर निम्न प्रकार की सुविधाएँ हैं :

(1) 100 बिस्तरों वाला अस्पताल।

(2) शल्य चिकित्सा के लिए पूर्ण सुसज्जित दो यूनिटें।

(3) मरीजों की दिव्यांगता का मूल्यांकन करने के लिए विशेषज्ञों सहित क्लीनिक।

(4) रेडियोलॉजिकल और पैथोलॉजिकल जाँच सुविधाएँ।

(5) कुष्ठ रोग से पीड़ित मरीजों के लिए शल्य चिकित्सायुक्त क्लीनिक।

(6) सूक्ष्म सर्जरी की सुविधा।

(7) सेरेब्रल पाल्सी के मरीजों के लिए अलग क्लीनिक।

(8) स्पीच थेरापी और श्रवण सहायक यंत्रों की सुविधा।

(9) फिजियोथेरापी यूनिट।

(10) ऑक्यूपेशनल थेरापी यूनिट।

(11) मनोवैज्ञानिक समस्याओं के लिए सलाह केन्द्र।

(12) व्यावसायिक सलाह केन्द्र व प्रशिक्षण केन्द्र।

(13) आर्थोटिक और प्रोस्थेटिक सहायक यंत्रों के निर्माण के लिए बड़ी व सुविधा सम्पन्न वर्कशाप।

(14) उपरोक्त कार्यों के लिए हर प्रकार के आधुनिक कम्प्यूटरयुक्त उपकरण मौजूद हैं।

यह संस्थान सिर्फ अपने यहाँ आने वाले जरूरतमन्दों का ही इलाज नहीं करता है वरन् उड़ीसा, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, बिहार, जम्मू व कश्मीर आदि राज्यों के ग्रामीण, दूरदराज व आदिवासी इलाकों में पुनर्वास कैम्प लगाकर मरीजों का इलाज और सहायक उपकरण बाँटने का कार्य करता है। ऐसे कैम्प साल में 6–8 बार लगाये जाते हैं और जिला प्रशासन व स्वयंसेवी संस्थानों के सहयोग से चलाये जाते हैं।

संस्थान में अनुसंधान गतिविधियाँ निरन्तर चलती रहती हैं। इनमें शल्य चिकित्सा की नई–नई तकनीकें, उपचार के तरीके, सहायक उपकरणों में जरूरी बदलाव आदि किया जाता है। पिछले कई सालों में अनेक नये उपकरण विकसित किये गये हैं जिनमें कम कीमत वाली शौचालय सहित व्हीलचेयर, ट्राइसाइकिलें आदि शामिल हैं। इनमें से लकवाग्रस्त बच्चों के लिए बहुद्देशीय ऑर्थोसिस के लिए कल्याण मंत्रालय में राष्ट्रीय टेक्नोलॉजी पुरस्कार भी मिल चुका है। संस्थान में एक बड़ी लाइब्रेरी है जिसमें चिकित्सा व तकनीक सम्बन्धी नवीनतम पुस्तकें हैं। ये पुस्तकें दिव्यांगता और पुनर्वास सम्बन्धी अनेक विषयों की हैं। यहाँ 90 से अधिक विदेशी जरनल नियमित रूप से मँगाए जाते हैं। यहाँ ऑडियोविजुअल सहायक यंत्रों और शिक्षण यंत्रों का अच्छा संग्रह है। दिव्यांगता से सम्बन्धित हर प्रकार की पुस्तकें यहाँ उपलब्ध हैं। कुष्ठ रोग से सम्बन्धित आधुनिकतम पुस्तकें सी डी रो पर भी उपलब्ध हैं। इन सबके अतिरिक्त नवीनतम विषयों पर डाक्यूमैंटरी फिल्में भी उपलब्ध हैं। इनमें बचपन में दिव्यांगता और यूनिसेफ से आर्थिक सहायता मिलने की स्कीम पर बनी फिल्में भी शामिल हैं। संस्थान की वार्षिक रिपोर्ट भी विस्तृत और जानकारीपरक होती है। समय–समय पर पुस्तिकाओं का प्रकाशन भी किया जाता है। इस संस्थान का पता निम्न है : निदेशक, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ रिहैबिलिटेशन, ट्रेनिंग और रिसर्च, आलटपुर, पो. बेराय, जिला कटक, उड़ीसा।

6. इंस्टीट्यूट ऑफ फिजीकली हैंडीकैप्ड (I.P.H.) : दिव्यांगों के पुनर्वास के लिए आवश्यक मानव संसाधन विकसित करने के लिए भारत सरकार के सामाजिक न्याय व अधिकारिता मंत्रालय ने 1976 में इस संस्थान की

स्थापना की थी। यह संस्थान स्वायत्तशासी है और सोसाइटी एक्ट के तहत पंजीकृत है। इस संस्थान में फिजियोथेरापी और ऑक्यूपेशनल थेरापी के साढ़े तीन वर्ष के स्नातक स्तर पर पाठ्यक्रम चलाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रोस्थेटिक और आर्थोटिक इंजीनियरिंग में ढाई वर्ष के डिप्लोमा स्तर के पाठ्यक्रम भी चलाये जाते हैं। दिव्यांगों के लिए प्रोस्थेटिक व आर्थोटिक सहायक उपकरण बनाने हेतु यहाँ एक पूर्ण सुसज्जित वर्कशाप भी है। बाहर से आने वाले मरीजों के लिए फिजियोथेरापी, ऑक्यूपेशनल थेरापी, स्पीच थेरापी आदि की सुविधा भी ओ. पी.डी. में उपलब्ध है। अस्थि दिव्यांगों के लिए प्राइमरी स्तर तक का एक विशेष विद्यालय भी इस संस्थान में चलाया जाता है। साथ में सामाजिक व व्यावसायिक मुद्दों पर सलाह देने के लिए भी एक केन्द्र चलाया जा रहा है। दिल्ली स्थित इस संस्थान के से निम्न पते पर सम्पर्क कर आवश्यक जानकारी प्राप्त की जा सकता है : निदेशक, इंस्टीट्यूट फॉर दि फिजीकली हैंडीकैप्ड, 4, विष्णु दिगम्बर मार्ग, नई दिल्ली।

7. रिहैबिलिटेशन काउंसिल ऑफ इंडिया (R.C.I.) : भारत सरकार ने 1986 में सोसाइटी एक्ट के तहत रिहैबिलिटेशन काउंसिल का गठन किया था। 31 जुलाई, 1993 को भारत सरकार ने एक कानून बनाकर इसे रिहैबिलिटेशन काउंसिल ऑफ इंडिया नामक विधिसम्मत संस्था का दर्जा दिया। सामाजिक न्याय व अधिकारिता मंत्रालय इसकी प्रशासनिक देखरेख करता है। इसके निम्न उद्देश्य हैं :

(1) दिव्यांगों के पुनर्वास के लिए चलने वाले प्रशिक्षण और कार्यक्रमों तथा नीतियों पर नियंत्रण रखना।

(2) दिव्यांगों के लिए कार्य करने वाले विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षकों, कार्यकर्ताओं के लिए न्यूनतम शैक्षिक व प्रशिक्षण सम्बन्धी योग्यताएँ निर्धारित करना।

(3) इन न्यूनतम योग्यताओं को पूरे देश में समान रूप से लागू करना।

(4) दिव्यांगों के पुनर्वास में काम करने वालों के लिए स्नातक/डिप्लोमा/ सर्टिफिकेट स्तर के पाठ्यक्रम चला रहे संस्थानों/विद्यालयों को मान्यता प्रदान करना। साथ में जिन संस्थानों में आवश्यक सुविधाएँ नहीं हैं उनकी मान्यता वापस ले लेना।

(5) दिव्यांगों के पुनर्वास के लिए प्रदान की जाने वाली विदेशी संस्थाओं या विश्वविद्यालयों द्वारा डिग्री/डिप्लोमा/सर्टिफिकेट आदि को मान्यता प्रदान करना।

(6) यह काउंसिल पुनर्वास सम्बन्धी शैक्षिक योग्यताएँ रखने वालों की सूची भी बनाती है। इसमें ऐसे लोगों की सेवाएँ आवश्यकता पड़ने पर बेहतर तरीके से ली जा सकती है।

(7) दिव्यांगता के क्षेत्र में कार्य कर रही संस्थाओं के सहयोग से पुनर्वास सम्बन्धी नवीनतम जानकारी के आदान–प्रदान को भी यह काउंसिल समय–समय पर प्रेरित करती है। इसका पता निम्न है– सदस्य सचिव, रिहैबिलिटेशन काउंसिल ऑफ इंडिया, भारत स्काउट व गाइड बिल्डिंग, 16, महात्मा गाँधी मार्ग, इंद्रप्रस्थ स्टेट, नई दिल्ली।

8. डिस्ट्रिक्ट रिहैबिलिटेशन सेंटर (D.R.C.) : विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के दिव्यांगों को उनके घर के पास बेहतर व सम्पूर्ण पुनर्वास सेवा देने के लिए ग्यारह चुने हुए जिलों में इस प्रकार के केन्द्र बनाये गये हैं। ये जिले हैं : उड़ीसा में भुवनेश्वर, मध्यप्रदेश में बिलासपुर, पश्चिम बंगाल में खड़गपुर, कर्नाटक में मैसूर, तमिलनाडु में चेंगल पट्टू, उत्तर प्रदेश में सीतापुर और जगदीशपुर, आन्ध्रप्रदेश में विजयवाड़ा, हरियाणा में भिवानी, राजस्थान में कोटा, महाराष्ट्र में बिरार। विशेष जानकारी के लिए निम्न पते पर पत्राचार द्वारा सूचना प्राप्त की जा सकती है : प्रोजेक्ट डायरेक्टर, डिस्ट्रिक्ट रिहैबिलिटेशन सेंटर, 4, विष्णु दिगम्बर मार्ग, नई दिल्ली–2

9. आर्टिफिशियल लिम्ब्स मैन्युफैक्चरिंग कारपोरेशन ऑफ इंडिया, कानपुर (Artificial Limbs Manufacturing Corporation of India, Kanpur) : इस कम्पनी का गठन भारत सरकार ने 1972 में कम्पनी कानून के तहत किया था, पर यह लाभ कमाने वाली संस्था नहीं है। इसके मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं :

(1) देश–भर के दिव्यांगों के लिये आवश्यक आर्थोटिक्स और प्रोस्थेटिक सहायक उपकरणों का बड़े पैमाने पर उत्पादन करना।

(2) उपरोक्त उत्पादन और बाद में फिटिंग व मरम्मत के लिए इंजीनियरों और तकनीशियनों को प्रशिक्षित करना।

(3) दिव्यांगों के लिए सहायक उपकरण बनाने की प्रक्रिया में निरन्तर सुधार करने हेतु आवश्यक अनुसंधान व विकास करना।

उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कानपुर में आधुनिक मशीनों से सुसज्जित एक फैक्टरी लगातार कार्य कर रही है। उत्पादन को सुचारू रूप से चलाने के लिए एक समृद्ध टूल रूम भी है। पूरा उत्पादन वैज्ञानिक तरीके से किया जाता है। उत्पादन की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए एक क्वालिटी कन्ट्रोल विभाग है। यह विभाग भारतीय मानक संस्थान और अन्य अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा निर्धारित मानकों के आधार पर उत्पादों की गुणवत्ता बनाये रखता है। इसके लिए इस विभाग के पास एक प्रयोगशाला है जिसमें आधुनिक जाँच उपकरण हैं। इस प्रयोगशाला में बाहर से खरीदे जाने वाले कच्चे माल की भी कड़ाई से जाँच होती है और साथ में कारपोरेशन द्वारा तैयार किये जाने वाले अन्तिम उत्पाद भी जाँचे जाते हैं। यह प्रयोगशाला इतनी समृद्ध है कि पूरे उत्तर भारत में इस प्रकार के सामान के लिए जाँच हेतु भारतीय मानक ब्यूरो द्वारा मान्यता प्राप्त है। इसमें दूसरे उत्पादकों द्वारा तैयार सामान भी जाँचे जाते हैं। इस कारपोरेशन के बारे में अधिक जानकारी हेतु निम्न पते पर लिखा जा सकता है : चेयरमैन कम मैनेजिंग डायरेक्टर, आर्टिफिशियल लिम्ब्स मैन्युफैक्चरिंग कारपोरेशन ऑफ इंडिया, जी.टी. रोड, कानपुर, उत्तर प्रदेश।

❑❑

किसी भी लेखक का लेखन मन की आकुलता, संवेदनशीलता का परिणाम उसके सृजन में मानवीय संघर्षों, सामाजिक परिवेश में होने वाले परिवर्तन का यथार्थपरक चित्रण होता है। कल्पना के विशाल फलक पर जब यह वास्तविकता का उद्देलन, भावोद्गार प्रकट करता है तो शिखर से सागर, अज्ञेयःसृजन एवं संघर्ष जैसी कृति की सर्जना होती है। शब्दों का मायाजाल बुने बगैर भाव–संवेदनाओं की अभिव्यक्ति कर चिंतक डॉ0 रामकमल राय ने सृजन की आकुलता को अपनी इन रचनाओं में दर्शाया है।

- कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

हिंदी साहित्य में दिव्यांग विमर्श का स्वरूप और महत्व

वन्दना पाण्डेय
शोध छात्रा–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

हिन्दी साहित्य में उत्तर आधुनिकता के परिणामस्वरूप अनेक साहित्यिक विमर्शों का उदय हुआ। इन विमर्शों को हाशिये के विमर्श के अन्तरगत रखा जाता है। स्त्री विमर्श , दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, दिव्यांग विमर्श आदि हाशिये के विमर्श के श्रेणी में आते हैं । हाशिये पर होने का मूल अर्थ है – व्यक्तिगत, अंतर्वैयक्तिक, व सामाजिक स्तरों पर पूर्ण सामाजिक जीवन तथा अन्य आवश्यकताओं से वंचित रखा जाना। जाहिर है कि सामाजिक संरचना में किसी व्यक्ति या समाज के हाशिये पर होने के कई आधार हैं । विकलांगता के कारण एकाधिक नुकसानों को झेलने वाले इन समूहों की समस्याओं को लैंगिक अंतर की कसौटी पर जाति, धर्म, नश्ल , स्थान और अन्य सामाजिक कारकों के सापेक्ष समझा जा सकता है। पुरूष वर्ग में विकलांग या दिव्यांग उसे समझा जाता है जो किसी शारीरिक या मानसिक विकृति के कारण अन्य पुरुषों की तुलना में शारीरिक क्षमता एवं स्वायत्तता का निर्वाह करने में असफल रहता है, वहीं स्त्री वर्ग में ऐसी स्त्रियों को जो किसी शारीरिक या मानसिक विकृति के कारण गृहिणी, पत्नी, माँ आदि की भूमिका निर्वाह करने में असफल हो।

दिव्यांगता का तात्पर्य भौतिक और मानसिक अक्षमता से है । भौतिक अक्षमता में अंधापन ,बहरापन, पेशीय तथा स्नायु से सम्बंधित विकार, हाथदृपैर का न होना आदि शामिल है । किसी विशेष अंग की अक्षमता, जिससे दिन प्रतिदिन की क्रियाएं प्रभावित होतीं हैं या व्यक्ति की अन्य व्यक्तियों की भांति सामान्य जीवन जीने में अक्षमता विकलांगता? दिव्यांगता कहलाती है।

World Health Organization (2004) के अनुसार अक्षमता किसी व्यक्ति को अलग–अलग प्रभावित करती है जिसमें स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवार, दोस्तों एवं पड़ोसियों के साथ सामाजिक सम्बन्ध एवं उसका स्वातंर्त्य शामिल होता है । 'क्रो और क्रो' के अनुसार एक व्यक्ति जिसको कोई ऐसा शारीरिक दोष होता है जो किसी भी प्रकार से उसे सामान्य क्रियाओं में भाग लेने से रोकता है या उसे सीमित रखता है, उसे हम शारीरिक न्यूनताग्रस्त या विकलांग ? दिव्यांग व्यक्ति कह सकते हैं।

समाज में विकलांग लोगों के प्रति प्रायः दो धारणाएं होती हैं । पहला यह कि समाज में लोग विकलांग लोगों के प्रति दया का भाव रखते हैं तथा दूसरा यह कि इनकी शारीरिक एवं मानसिक अक्षमता को इनके पूर्व जन्म का अपराध मान लिया जाता है ।

भारत सरकार ने विकलांगों के सामाजिक व आर्थिक समावेश के लिए एवं उन्हें सामान अवसर प्रदान करने के लिए कुछ कानून बनाये हैं । जैसे – 1. भारतीय पुनर्वास परिषद् (1992), 2. विकलांग व्यक्ति कल्याण अधिनियम और 3. ऑटिज्म, सेरेब्रल पॉलिसी, मानसिक मंदता और बहु–विकलांगता वाले व्यक्तियों के कल्याण के लिए राष्ट्रीय न्यास अधिनियम (1995)। इसके अलावा वर्ष 2008 में भारत ने विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संधि 2006 (यू एन सी आर पी डी) को संपुष्टि दी है जिसमें समाज के अन्य वर्गों के साथ–साथ विकलांगों की भी पूर्ण भागीदारी पर विशेष बल दिया गया है। विकलांग व्यक्तियों को शिक्षा, सरकारी नौकरी एवं अस्पताल आदि में आरक्षण प्राप्त है। इसके साथ दृसाथ सरकार विकलांग व्यक्तियों कर लिए पेंशन भी मुहैय्या कराती हैं । लोकसभा में दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016 पास किया गया है जिसमें दिव्यांगता का प्रकार 7 से बढाकर 21 कर दिया गया है। इस अधिनियम द्वारा दिव्यांगों को सरकारी नौकरियों में 4% तथ उच्च्य शिक्षा में 5% का आरक्षण प्रदान किया गया है।

शारीरिक रूप से अक्षम व्यक्तियों में भी कुछ विशेष क्षमताएँ होती हैं । प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने इस मामले में बहुत ही सराहनीय पहल की है। उनका कहना है कि ऐसे लोगों को देखकर भले ही लगता है कि ये लोग भले ही शारीरिक रूप से अक्षम हैं किन्तु अनुभव से लगता है कि ईश्वर ने इन्हें कुछ विशेष क्षमताएं प्रदान की हैं। प्रधानमंत्री ने ऐसे लोगों को विकलांग न कहकर दिव्यांग कहने का आह्वान किया है।

शारीरिक अथवा मानसिक अक्षमता को दिव्यांगता कहा जाता है। यह व्यक्ति के मन में निराशा एवं कुंठा उत्पन्न करती हैं जिससे व्यक्ति अकर्मण्यता की तरफ उन्मुख हो जाता है। लेकिन यदि उचित वातावरण एवं सम्यक् प्रेरणा मिले तो ऐसा व्यक्ति उपलब्धियों के शिखर पर आसीन हो सकता है । दीर्घतमा, अष्टावक्र, शुक्राचार्य, जायसी, सूरदास, राणा सांगा, रणजीत सिंह, विनोद कुमार मिश्र, रवीन्द्र जैन, सुधा चंद्रन, राजेन्द्र यादव, अंजली अरोड़ा, प्रभा शाह, रितु रावल, बाबा आम्टे, होमर, मिल्टन, बायरन, वाल्टर स्कॉट, मार्सेल प्राउस्ट, हेलेन केलर, एडिसन, लुई ब्रेल, स्टीफेन हॉकिन्स, लारा ब्रिजमैन ऐसी ही विभूतियाँ हैं जिनके कार्यों की बराबरी सामान्य व्यक्ति भी नही कर सकता । ऐसे व्यक्तियों के लिए बस इतना ही आवश्यक है कि ये अपनी प्रतिभा को पहचानें एवं निखारें।

प्रायः यह देखा गया है कि प्रकृति अगर किसी से कुछ छीनती है बदले में उसे कुछ "और" प्रदान कर देती है । जो व्यक्ति इस "और" को पहचान लेता है, वह ऊँचाईयों की बुलंदियाँ छू लेता है और संसार में अपनी एक अलग पहचान बना लेता है । रामधारी सिंह दिनकर ने कहा है – "जब कभी अहं पर नियति चोट करती है तो उससे कोई बड़ी चीज जन्म लेती है ।" जो व्यक्ति उस अहं को पहचान लेता है उसकी निशक्तता सशक्तता में बदल जाती है । इतिहास गवाह है कि दुनिया में विकलांगता ? दिव्यांगता के शिकार महान दार्शनिकों, साहित्यकारों, खिलाडियों ने अपनी अक्षमता को भुलाकर अपनेदृअपने क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त की है।

भारत में विकलांग विमर्श की सुदीर्घ परंपरा रही है। ऋग्वेद के एक सूक्त में अपंगों, लूले लंगड़े, बहरों आदि के साथ दया एवं सहृदयतापूर्ण व्यवहार करने तथ उन्हें शिक्षित एवं पुरुषार्थी बनाने की सलाह दी गयी है। "अष्टावक्र" जिनका शरीर आठ जगह से टेढ़ा था, ने अपने मन की हीन भावना एवं नैराश्य को त्यागकर अपने ज्ञान के समक्ष अपने भौतिक शरीर को अर्थहीन कर दिया था। उनके ज्ञान के आगे विदेहराज जनक तक नतमस्तक हो गए थे।

हिंदी साहित्य के सन्दर्भ में बात करें तो हिंदी साहित्य के बहुमूल्य रत्न 'सूरदास' जन्मांध थे । सूरदास जी को वल्लभाचार्य ने कहा कि "सूर होके घिघियात काहे हो कुछ भगवत भजन कर।" गुरु की प्रेरणा पाकर जब सूरदास भगवान की भक्ति में लीन हुए तो हिंदी साहित्य का महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'सूरसागर' की रचना कर दिए। सूरदास ने कृष्ण भक्ति काव्य के क्षेत्र में जो योगदान दिया उसकी बराबरी कोई सामान्य व्यक्ति भी नही कर सकता। 'पद्मावत' के रचयिता महाकवि जायसी एक नयन वाले तथ कुरूप थे । उनकी कुरुपता को देखकर जब शेरशाह उन पर हँसा था तो उन्होंने शेरशाह को कहा था – "मोहिं का हँससि कि कोहरहिं ?" अर्थात् तू मेरे ऊपर हँसा है या उस कुम्हार पर, जिसने मुझे बनाया है ? महाकवि जायसी ने अपनी कमी को कोसने के बजाय उसका महिमा–मंडन ही किया है – "एक नयन कवि मुहम्मद गुनी ? सोई बिमोह जेहि कवि सुनी।" कहानीकार राजेंद्र यादव अस्थि विकलांग थे। शारीरिक अक्षमता के बावजूद उन्होंने हिंदी साहित्य के क्षेत्र में अपना अमूल्य योगदान दिया।

स्त्री, दलित, आदिवासी विमर्श की भाँति दिव्यांग विमर्श भी समय की मांग है । अभी हाल में ही प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका में 12% आबादी विकलांगता की शिकार है । इंग्लैंड में 18% आबादी विकलांग है वहीं जर्मनी में 9% लोग विकलांगों की श्रेणी में गिने जाते हैं । जबकि सरकारी आकड़ों के अनुसार भारत में सिर्फ 2% आबादी ही विकलांगों की श्रेणी में आती है। दिव्यांग लोगों के लिए रोजगार के अवसर प्रदान करने वाले केंद्र एन सी पी ई डी पी के जावेद अबीदी इन आकड़ों के सन्दर्भ में एक चौकाने वाला खुलासा करते हुए

बताते हैं कि सन् 2000 ई. तक अर्थात् आजादी के 53 साल तक भारत कि जनगणना रिपोर्ट में एक भी अशक्त व्यक्ति नही गिना गया था । दूसरे शब्दों में कहें तो जो लोग सरकारी योजनाओं का निर्माण करते हैं , फैसले लेते हैं, धन आवंटन करते हैं, उनके मष्तिष्क में दिव्यांगों का अस्तित्व ही नही था।

कुछ यही हाल साहित्य में भी रहा है। संस्कृत साहित्य में विकृत अंग वाला पात्र नायक की श्रेणी में नही आ सकता। संस्कृत साहित्य में लूले, लंगड़े और अपाहिज को प्रायः हंसी एवं व्यंग का पात्र माना गया है । प्राचीन साहित्य की बात करें तो रामायण एवं महाभारत सदृश महान आदर्शवादी कृतियों में मानसिक रूप से कुटिल पात्रों को शारीरिक रूप से विकृत बना दिया गया है । रामचरित मानस में कुब्जा मंथरा यदि कुटिल है तो शारीरिक रूप से भी विकृत है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में यह मनोदशा कुछ हद तक बदली है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यास "रंगभूमि " में अंध े सूरदास को नायक के रूप में प्रस्तुत किया है । अमृतलाल नगर ने महाकवि सूरदास के जीवन पर आधारित "खंजन नयन" नामक उपयास लिखा है। अज्ञेय के संस्मरणात्मक रेखाचित्र "खितीन बाबू" के नायक खितीन बाबू की एक आँख चेचक की भेंट चढ़ गयी है किन्तु अपने अदम्य साहस और उत्कट जिजीविषा के कारण वह मानवता के सामने एक मिसाल बन जाते हैं।

समकालीन साहित्य में डॉ. विनय कुमार शर्मा की पुस्तक "हिंदी साहित्य में विकलांग विमर्श" विकलांग विमर्श की प्रमुख पुस्तक है। वर्त्तमान में गोवा की राज्यपाल मृदुला सिन्हा के उपन्यास "ज्यों मेहँदी के रंग" को विकलांग विमर्श का प्रथम उपन्यास माना जाता है। वरिष्ठ साहित्यकार और छत्तीसगढ़ी भाषा की प्रथम कवयित्री के रूप में प्रतिष्ठित शकुंतला शर्मा ने अपने काव्य संग्रह "बेटी बचाओ" में दिव्यांगता को अपनी ताकत बनाने वाली लड़कियों का चित्रण किया है। जगद्गुरु रामभद्राचार्य द्वारा रचित कृति "अष्टावक्र" दिव्यांग विमर्श की प्रमुख कृति है । विनोद कुमार मिश्र ने दिव्यांगो से सम्बंधित "विकलांगों का अधिकार" नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है । विनय कुमार पाठक कृत "विकलांग विमर्श की कहानियां" भी दिव्यांग विमर्श के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कृति है ।

सन्दर्भ संकेत

1. डॉ. विनय कुमार शर्मा : हिंदी साहित्य में विकलांग विमशरू प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010
2. विनय कुमार पाठक : विकलांग विमर्श की कहानियां : प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010
3. गिरिराज शरण : विकलांग जीवन की कहानियां : प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010
4. शकुंतला शर्मा : बेटी बचाओं : प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016
5. प्रेमचंद : रंगभूमि : सरस्वती प्रेस, इलाहबाद, वर्तमान संस्करण, 2016
6. श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, आठवां संस्करण, 2016
7. राजेंद्र यादव : मुड़–मुड़ कर देखता हूँ : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2016
8. मैत्रेयी पुष्पा : वह सफर था कि मुकाम था : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016
9. अमृतलाल नगर : खंजन नयन : राजपाल एंड संस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1981
10. मृदुला सिन्हा : ज्यों मेहँदी के रंग : प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016
11. जगद्गुरु रामभद्राचार्य : अष्टावक्र : रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट, प्रथम संस्करण, 2016
12. विनोद कुमार मिश्र : विकलांग विभूतियों का अधूरा सपना : प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016
13. विनोद कुमार मिश्र : विकलांग विभूतियों की जीवनगाथाएँ : प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2005
14. डॉ. विजय कुमार वर्मा : दिव्यांग विभूतियाँ : सामजिक सरोकार : आशा प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2017
15. डॉ. विजय कुमार वर्मा : दिव्यांगता : एक सामाजिक यथार्थ : आशा प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2017

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 2005 का हिन्दू महिलाओं पर प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

आभा मिश्रा
शोध छात्रा–समाजशास्त्र विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारतीय हिन्दू समाज में स्त्री की भूमिका सदैव महत्वपूर्ण रही है। हिन्दू धर्म में स्त्री को देवी के रूप में माना गया है और 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' की संकल्पना को स्वीकार किया गया है। विश्व की जनसंख्या में आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करने के साथ ही महिलाओं की सामाजिक एवं पारिवारिक व्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण भूमिका रही है और हिन्दू समाज में तो पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में प्रत्येक कर्तव्य की पूर्ति में नारी की सहभागिता आवश्यक थी। यद्यपि घर से लेकर बाहर तक के सभी क्रियाकलापों में स्त्री की भूमिका महत्वपूर्ण है किन्तु अधिकारों की बात की जाये तो पुरूषों की तुलना में महिलाओं की स्थिति निम्नतर ही है। इसमें भी सम्पत्ति के अधिकार या सम्पत्ति रखने के मामले में हिन्दू महिलाओं की स्थिति बहुत ही अस्पष्ट रही है। इसका एक प्रमुख कारण हिन्दू समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था भी है। किसी भी समाज में सत्ता का केन्द्र पुरूषों की स्थिति होती है तो वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था ही है। लर्नर (1986) ने पितृसत्ता को पुरूषों की सत्ता के संस्थाकरण के रूप में देखा है।

भारतीय समाज में हिन्दू महिलाओं की स्थिति एवं अधिकारों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो वैदिक कालीन समाज में महिलाओं की स्थिति अच्छी थी एवं परिवार में सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। तत्कालीन समाज में परिस्थिति विशेष में सम्पत्ति विषयक अधिकार भी प्राप्त थे। उत्तर वैदिक कालीन समाज में स्त्रियों के इन अधिकारों में कमी आयी और मध्यकाल के आते–आते स्थिति और निम्नतर हो गयी। उत्तर वैदिक कालीन समाज से मध्यकाल तक की सांस्कृतिक एवं सामाजिक व्यस्थाओं में हिन्दू महिलाओं की स्थिति ऐसी बनी कि वे सम्पत्ति के अधिकार के मामले में लगातार हाशिये पर चली गयी। लेकिन आधुनिक समाज में पुनर्जागरण काल में नारी की सामाजिक वैधानिक स्थिति को सुदृढ़ करने हेतु तमाम नारीवादी संगठन बने और आंदोलन शुरू हुये। फलस्वरूप ब्रिटिश कालीन समाज में एवं स्वतंत्रता पश्चात समय–समय पर कानून बनाये गये जैसे– विवाहित महिला का सम्पत्ति का अधिकार (1874), हिन्दू लॉ ऑफ इनहेरिटेन्स एक्ट (1929), हिन्दू स्त्री का सम्पत्ति का अधिकार (1937), हिन्दू कोड बिल (1948) हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (1956) एवं संशोधित हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (2005) आदि। स्वतंत्रता पूर्व जो भी अधिनियम आये उनमें महिलाओं को सम्पत्ति के अधिकार बहुत ही सीमित रूप में दिये गये लेकिन पहली बार कानूनी तौर पर महिलाओं को सम्पत्ति में अधिकार देने की लिखित व्याख्या की गयी। स्वतंत्रता पश्चात हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा–14 महिलाओं को चल और अचल सम्पत्ति में पूरा अधिकार देती है। समय के साथ–साथ महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को और बेहतर बनाने की दिशा में 2005 में संशोधित अधिनियम और बेहतर प्रावधानों के साथ आया।

2. हिन्दू उत्तराधिकार संशोधन अधिनियम (2005) – यह अधिनियम 9 सितम्बर 2005 से प्रभावी हुआ। इस अधिनियम के अन्तर्गत सम्पत्ति के उत्तराधिकार को वृहद रूप प्रदान किया गया तथा तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में बेटियों को भी सम्पत्ति में बेटों के बराबर अधिकार कानूनी रूप में दिया गया। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 2005 के लागू होने के बाद से अब पैतृक सम्पत्ति की रजिस्ट्री, लेना बेचना, पट्टे पर देना आदि के लिये

पुत्री की सहमति आवश्यक है। सम्पत्ति की रजिस्ट्री या क्रय–विक्रय जैसे मामलों में या तो पुत्री अपना हिस्सा लेती है या फिर यह घोषित करती है कि वह अपना हिस्सा नहीं लेगी तभी यह सम्भव है। इस अधिनियम के आने से भारतीय समाज में मिताक्षरा शासित हिन्दू परिवारों में सम्पत्ति के विभाजन को लेकर एक नयी अवधारणा आयी और पैतृक सम्पत्ति में पुत्रियों को भी पुत्र के बराबर हिस्सा दिया गया। साथ ही विधवा स्त्री, परित्यक्ता आदि के लिये भी प्रावधान किये गये जिससे सम्पत्ति के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में स्त्री एवं पुरूष के बीच जो भी असमानताएं थी समाप्त करने का प्रयास किया गया। इसीलिये इस अधिनियम के आने से हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 4(2) धारा (6), धारा (23), धारा (24) आदि प्रभावित हुई, जिनका विवरण अग्रांकित है–

धारा 4 (II) – के अन्तर्गत भूमि के सम्बन्ध में जो राज्य स्तरीय नियम लागू थे उनको समाप्त कर कृषि भूमि में बेटियों को भी बेटों के बराबर समान रूप से अधिकार दिया गया।

धारा (6) – के अन्तर्गत पुत्र एवं पुत्रियों को जन्म से सहृदायिक सम्पत्ति में अधिकार स्वतंत्र रूप से दिया गया।

धारा (23) – पैतृक निवास से सम्बन्धित अधिकार के सन्दर्भ में है। अतः संशोधित अधिनियम में अब पुत्रियां विवाहित हो या अविवाहित उन्हें पुत्रों के बराबर ही पैतृक सम्पत्ति में रहने एवं विभाजन का अधिकार दिया गया है।

धारा (24) – यद्यपि 1956 के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में भी विधवा स्त्रियों चाहे वह पुत्र की विधवा हो, भाई की विधवा हो सभी को सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त या परन्तु यदि वह पुनः विवाह कर लेती थी तो वह विधवा के रूप में उत्तराधिकार की हकदार नहीं होती थी परन्तु अब वह पुनः विवाहित होने पर उत्तराधिकार पाने की हकदार होगी।

धारा (30) – वसीयत के उत्तराधिकार से सम्बन्धित है, अब तक सिर्फ पुरूष ही अपनी सम्पत्ति व संयुक्त हिन्दू परिवार में प्राप्त सम्पत्ति की वसीयत कर सकता था परन्तु 2005 के अधिनियम के बाद से पुरूष के साथ ही स्त्री को भी यह अधिकार हो गया है कि वह उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति की वसीयत कर सकती है।[1]

अतः हिन्दू उत्तराधिकार संशोधित अधिनियम 2005 के द्वारा हिन्दू अविवाहित एवं विवाहित महिला तथा विधवा स्त्री, तलाकशुदा स्त्री को भी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी के रूप में माना गया है। इसके पहले हिन्दू परिवारों में सम्पत्ति का स्वमित्व सिर्फ पुरूषों के नाम पर ही था और विभिन्न अधिनियमों में महिलाओं को सम्पत्ति में हक भी दिया गया परन्तु स्वामित्व नहीं। साथ ही इस अधिनियम में कृषि भूमि के अधिकार के जुड़ने से उन हिन्दू महिलाओं की स्थिति बेहतर होगी जिनके जीवन यापन का माध्यम भूमि एवं खेती किसानी है। यह प्रयास निश्चित रूप से महिलाओं के लिये एक सकारात्मक पहल है क्योंकि इससे परिवार एवं समाज में उनकी भूमिका को सम्मान मिलेगा एवं निर्णयों में उनकी सहभागिता भी बढ़ेगी, बस सवाल कहीं न कहीं अमल में लाने का है।

सैद्धान्तिक पक्ष – यद्यपि शोध पत्र का अधिकांश भाग अधिनियम केन्द्रित है लेकिन अध्ययन में समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत अधिनियम के सामाजिक पक्ष को देखने का प्रयास किया गया है न कि अधिनियम की विधिक विवेचना पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। वस्तुतः किसी भी अध्ययन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने के लिये उसके सैद्धान्तिक पक्ष को जानना भी आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन का सैद्धान्तिक पक्ष लिंग के समाजशास्त्र के अन्तर्गत आता है क्योंकि सर्वप्रथम नारीवादी आंदोलनों में ही सम्पत्ति के अधिकार को भी शामिल करते हुये लिंग समानता की बात कही गयी थी। इस शोध पत्र में भी सम्पत्ति के अधिकार के अन्तर्गत पुरूष एवं स्त्री में सम्पत्ति के बराबर विभाजन के आधार पर लिंग समानता को देखने का प्रयास किया गया है। नारीवादी सिद्धान्तों मे लिंग समानता की बात की जाती है यद्यपि इसके लिये नारीवादी सिद्धान्त के कई प्रकार जैसे उदारवादी नारीवाद, मार्क्सवादी नारीवाद, रेडिकल नारीवाद और, समाजवादी नारीवाद आदि है। यदि सम्पत्ति के अधिकार को लेकर देखा जाये तो उदारवादी नारीवाद, मार्क्सवादी नारीवाद और समाजवादी नारीवाद आंदोलन में इस पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

उदारवादी नारीवाद ने तो लिंग असमानता को अस्वीकार करते हुये पितृसत्तात्मक व्यवस्था का सीधे तौर पर विरोध किया और महिलाओं के अन्य अधिकारों की सुरक्षा के साथ–साथ विवाहित महिलाओं के सम्पत्ति के अधिकार पर भी ध्यान केन्द्रित किया। नारीवादी आंदोलन के प्रथम चरण के दौरान ही ब्रिटेन एवं अमेरिका में विवाहित महिलाओं के सम्पत्ति के अधिकार को बढ़ावा देने की बात कही गयी। 1781 में उदारवादी नारीवाद के काल में ही स्त्रियों के अधिकारों के सन्दर्भ में 'बेंथम' की पुस्तक ''इंट्रोडक्शन टू द प्रिंसिपल्स ऑफ मोरल्स एण्ड लेजिस्लेशन'' प्रकाशित हुई।

मार्क्सवादी नारीवाद पूंजीवादी पितृसत्तात्मक व्यवस्था को महिलाओं की अधीनता एवं निम्न स्थिति हेतु जिम्मेदार माना। मार्क्सवाद ने पुरूष एवं स्त्री के बीच असमान सामाजिक सम्बन्धों के लिये निजी सम्पत्ति आर्थिक असमानता आदि को जिम्मेदार माना है। ये पितृसत्तात्मक व्यवस्था एवं आर्थिक आश्रितता है जो कि परिवार में स़्त्री की स्थिति एक श्रमिक जैसी कर देती है।

समाजवादी नारीवाद में क्रांति द्वारा समाज की व्यवस्था को बदलने की बात कही जाती है। फ्रेडरिक एंगेल्स (1884) का भी मानना था कि स्त्री जाति का उद्धार सामाजिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप ही हो सकता है, जिसमें पूँजीवादी व्यवस्था को जड़ से समाप्त कर उसके स्थान पर समाजवाद लाया जाये। समाजवादी नारीवाद में महिला के निजी एवं सार्वजनिक जीवन दोनों पक्षों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। इनका मानना है कि वित्तीय निर्भरता के कारण ही महिलाएँ पुरूषों से शोषित होती रहती है।

जहाँ पश्चिमी देशों में महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु नारीवाद आंदोलनों की शुरूआत महिलाओं द्वारा की गयी वही भारत में पुरूष सुधारवादी विचारकों द्वारा इस ओर प्रयास किया गया। नारीवादी आंदोलन की प्रथम लहर (1850–1915) के दौरान राजाराम मोहन राय ने स्त्रियों की बेहतर पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति हेतु उनके सम्पत्ति के अधिकार को आवश्यक बताया। इसी दौरान ब्रिटिश कालीन शासन में हिन्दू नारी के सम्पत्ति के अधिकार को लेकर 1874 का अधिनियम आया। दूसरी लहर (1915–1947) के दौरान हिन्दू महिलाओं के सम्पत्ति के अधिकार को लेकर कानूनी प्रयास भी किये गये जैसे अम्बेडकर कृत हिन्दू कोड बिल आदि। तीसरी लहर में तमाम नारीवादी संगठन एवं महिलाएं इस संघर्ष में जुड़े। 1970–80 के दशक में महिलाओं पर आधारित पत्र पत्रिकाएं आयी। प्रस्तुत अध्ययन में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में नारी की स्थिति का विश्लेषण करते हुये आर्थिक असमानता को दूर करने एवं नारी की स्थिति सशक्त करने हेतु विधिक पक्षों के द्वारा उसका समग्र विकास करने का प्रयास किया गया है।

साहित्य की समीक्षा – यदि महिला अधिकार की बात की जाये तो सम्पत्ति का अधिकार महत्वपूर्ण है और आज यह शोध की दृष्टि से एवं कानूनी दृष्टि से भी एक विचारणीय विषय है। यद्यपि आज शोध के क्षेत्र में स्त्री अध्ययन नवीन विषय नहीं रह गया है, फिर भी सम्पत्ति के अधिकार को लेकर बहुत अधिक अध्ययन नहीं हुआ है।

डॉ0 ए0एस0 अल्तेकर (1959) – ने हिन्दू महिलाओं की स्थिति एवं अधिकार का अध्ययन प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक काल तक के सन्दर्भ में किया है। आपने भारतीय नारी की शिक्षा, धार्मिक स्थिति, स्त्रियों की सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार, हिन्दू स्त्री का समाज में स्थान आदि महत्वपूर्ण मुद्दों पर प्रकाश डाला है।

अरविंद जैन (2001) – ने स्त्रियों की स्थिति एवं अधिकारों को सामाजिक वैधानिक एवं पितृसत्तामक व्यवस्था के आधार पर विश्लेषित किया है कि जब पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पुत्री के जन्म से ही विभेद शुरू हो जाता है तो सम्पत्ति में अधिकार एवं पुत्र के बराबर देना दुरूह प्रश्न है।

बीना अग्रवाल और प्रदीप पांडा (2005)– ने 2001 में केरल राज्य के तिरूवंतपुरम के 500 परिवारों के ग्रामीण एवं शहरी दोनों के तुलनात्मक अध्ययन में पाया कि महिलाओं के सम्पूर्ण सशक्तिकरण यथा जीवनयापन,

रहन–सहन का स्तर ऊँचा उठाने एवं वैवाहिक हिंसा व शोषण में कमी हेतु सम्पत्ति का स्वामित्व आवश्यक है। जिन महिलाओं को उत्तराधिकार में सम्पत्ति मिली थी उनकी स्थिति अन्य महिलाओं से बेहतर थी।

नीरा देसाई (2011)– ने भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में देखने के साथ ही वैश्वीकरण के प्रभावों को शामिल किया है। स्वतंत्रता पूर्व एवं पश्चात की विभिन्न घटनाओं को रेखांकित करते हुये भारतीय नारीवाद के संघर्ष को देखा है। आर्थिक परिदृश्य में महिलाओं की स्थिति को देखते हुये उनके कानूनी अधिकार जैसे–सम्पत्ति का अधिकार, तलाक का अधिकार एवं उनकी सामाजिक वैधता का विश्लेषण किया है।

मधु किश्वर (2011)– ने महिलाओं के उत्तराधिकार हक को अधिनियम के साथ–साथ समाज की वास्तविकता से जोड़कर देखा है कि किस प्रकार आज कानूनों के आने के बाद भी समाज की प्रथा एवं परम्पराओं का अधिपत्य है जैसे–बेटियां तो पराया धन है, दहेज बेटी का हिस्सा है आदि। उनका विचार है कि इन कानूनों के बेहतर क्रियान्वयन से समानता आयेगी और औरतों के साथ ही पुरूषों के लिये भी यह सकारात्मक होगा एक बेहतर जीवन के सन्दर्भ में।

अध्ययन के उद्देश्य –

- हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (2005) के सन्दर्भ में हिन्दू महिलाओं की जागरूकता का अध्ययन करना।
- हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (2005) के बारे में महिलाओं के दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
- परिवार के आर्थिक निर्णयों में महिलाओं की सहभागिता के आधार पर उनकी स्थिति का अवलोकन करना।

अनुसंधान प्रारूप एवं प्रविधि–

1. अनुसंधान प्रारूप– प्रस्तुत शोध पत्र में उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुये वर्णनात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया है।

2. निदर्शन प्रतिचयन– अध्ययन में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन का प्रयोग किया गया है। उक्त निदर्शन पद्धति द्वारा ऐसे उत्तरदाताओं का चयन किया गया है जो कि अध्ययन के उद्देश्य को पूरा करते हो।

3. प्रतिदर्श आकार – अध्ययन हेतु 40 उत्तरदाताओं का चयन साक्षात्कार अनुसूची के लिये किया गया है। इन 40 उत्तरदाताओं को निम्न प्रकार से चयनित किया गया है–

अविवाहित हिन्दू स्त्री	15
विवाहित हिन्दू स्त्री	15
तलाकसुदा स्त्री	5
विधवा स्त्री	5
कुल संख्या	40

4. अध्ययन का क्षेत्र– अध्ययन हेतु इलाहाबाद जनपद के नगरीय क्षेत्र को लिया गया है। इलाहाबाद जनपद का नगरीय क्षेत्र इलाहाबाद तहसील के अन्तर्गत आता है, जो कि व्यवस्थित विकास हेतु 80 वार्ड में विभाजित किया गया है। सर्वप्रथम नगरीय क्षेत्र को चार भाग (zone) में बांटा गया है तत्पश्चात् पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी एवं दक्षिणी क्षेत्र से गहन अवलोकन एवं उद्देश्य के आधार पर विभिन्न वर्गों एवं आयु समूह के उत्तरदाताओं का चयन किया गया है।

5. अध्ययन की इकाई– अध्ययन की ईकाई के रूप में विभिन्न वर्गों की अविवाहित, विवाहित, तलाकशुदा एवं विधवा हिन्दू महिलाओं को शामिल किया गया है।

6. तथ्य संकलन के स्रोत– तथ्य संकलन के स्रोत के रूप में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया

गया है। जबकि अध्ययन की प्रकृति पूर्णतया अनुभवात्मक है इसलिये द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग सिर्फ अध्ययन के सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य हेतु किया गया है।

7. तथ्य संकलन के उपकरण एवं प्रविधि– तथ्य संकलन हेतु उपकरण के रूप में साक्षात्कार अनुसूची को शामिल किया गया है। यद्यपि अधिकांश उत्तरादाता शिक्षित थे, परन्तु अल्पशिक्षित, अशिक्षित उत्तरदाताओं हेतु अवलोकन, साक्षात्कार एवं केस स्टडी का प्रयोग किया गया है।

8. तथ्य विश्लेषण– समस्त संकलित सूचनाओं को प्रतिशत के माध्यम से विश्लेषित कर व्याख्या की गयी है।

अध्ययन की उपलब्धियां (Findings) – उत्तराधिकार अधिनियम की जानकारी– हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 में एवं संशोधित रूप में 2005 में आया। 2005 में ही पुत्री को भी पुत्र के बराबर सम्पत्ति में अधिकार मिला चाहे वह अविवाहित हो या विवाहित, परित्यक्ता अथवा विधवा। यद्यपि ऐसा तभी सम्भव होगा जब महिलाओं में उनके अधिकारों के प्रति जागरूकता होगी। उत्तराधिकार अधिनियम के विषय में महिलाओं की जागरूकता का विवरण सारणी–1 में दिया गया है।

सारणी–1

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (2005) के सन्दर्भ में महिलाओं की जागरूकता का विवरण

विकल्प	हिंदू महिलाएं				कुल योग
	अविवाहित	विवाहित	तलाकशुदा	विधवा	
हाँ	8 (53.33%)	4 (26.66%)	2 (40%)	1 (20%)	16
नहीं	4 (26.66%)	9 (60%)	1 (20%)	3 (60%)	17
अनिश्चित	3 (20%)	2 (13.33%)	1 (20%)	1 (20%)	6
कोई उत्तर नहीं	0	0	1 (20%)	0	1
योग	15	15	5	5	40

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की जानकारी के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं से प्राप्त आंकड़ो से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 53.33 प्रतिशत हिन्दू अविवाहित महिलाओं को अधिनियम के बारे में पता है, जबकि 26.66 को नहीं जानकारी थी और 20: महिलाएं अनिश्चय की स्थिति में थी। वहीं पर विवाहित महिलाओं में सिर्फ 26.66 प्रतिशत

को ही जानकारी थी और 60 प्रतिशत नहीं जानती थी साथ ही 13.33ः महिलाएं अनिश्चय की स्थिति में थी। यद्यपि तलाकशुदा महिलाओं में जानकारी का प्रतिशत 40 था जबकि 20ः नहीं जानती थी और इतनी ही अनिश्चय की स्थिति में थी। विधवा स्त्री में 20 प्रतिशत महिलाएं अधिनियम के बारे में जानती थी जबकि 60 प्रतिशत को कोई जानकारी नहीं थी और 20 प्रतिशत ही अनिश्चय की स्थिति में थी अतः किसी भी अधिनियम के बेहतर क्रियान्वयन हेतु उसकी जानकारी हर वर्ग को होना आवश्यक है।

हिन्दू महिलाओं का सम्पत्ति का अधिकार– पहले की तुलना में अब महिला अधिकारों का विस्तार हुआ है। तमाम संवैधानिक प्रावधान किये गये है परन्तु इन अधिकारों का प्रयोग करने हेतु महिलाओं को उनकी जानकारी होना आवश्यक है। जिसका विवरण सारणी–2 में दिया गया है।

सारणी 2

सम्पत्ति के अधिकार के सन्दर्भ में महिलाओं की जागरूकता का विवरण

विकल्प	हिंदू महिलाएँ				कुल योग
	अविवाहित	विवाहित	तलाकशुदा	विधवा	
हाँ	8 (53.33%)	10 (66.66%)	4 (80%)	2 (40%)	24
नहीं	5 (33.33%)	....	....	1 (20%)	6
आंशिक रूप से	2 (13.33%)	3 (20%)	1 (20%)	2 (40%)	8
कोई उत्तर नहीं	....	2 (13.33%)	....	....	2
योग	15	15	5	5	40

सारणी संख्या–2 से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक 66.66 प्रतिशत विवाहित महिलाओं को सम्पत्ति के अधिकार की जानकारी है जबकि अविवाहित महिलाओं में 53.33% महिलाओं को ही जानकारी है। तलाकशुदा महिला में यह प्रतिशत 80 रहा है और विधवा स्त्री में 40% महिलाओं को इस अधिकार के बारे में पता है। सर्वाधिक 33.33% अविवाहित महिलाओं को इसकी कोई जानकारी नहीं और 20 प्रतिशत विधवा स्त्रियों को भी नहीं पता था। जब कि विवाहित एवं तलाकशुदा में ये प्रतिशत शून्य रहा है। सबसे अधिक 40 प्रतिशत विधवा महिलाओं को इसके बारे में थोड़ा बहुत ही जानकारी थी और विवाहित एवं तलाकशुदा महिलाओं यह प्रतिशत समान रूप से 20% ही रहा है। अविवाहित महिलाओं में 13.33 प्रतिशत को आंशिक रूप में ही पता था कि ऐसा कुछ है। वहीं पर 13.33 प्रतिशत विवाहित हिन्दू महिलाओं ने कोई उत्तर नहीं दिया।

पैतृक सम्पत्ति में उत्तराधिकार के बारे में उत्तरदाताओं का दृष्टिकोण – हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 2005 के तहत पिता की सम्पत्ति में पुत्र के ही बराबर पुत्री का भी अधिकार है। इस सन्दर्भ में उत्तरदाताओं के विचारों का विवरण सारणी–3 में दिया गया है।

सारणी 3 – सम्पत्ति के उत्तराधिकार सम्बन्ध में महिलाओं के दृष्टिकोण की विवरण सूची

विकल्प	हिंदू महिलाएँ				कुल योग
	अविवाहित	विवाहित	तलाकशुदा	विधवा	
पुत्र एवं पुत्री में सम्पत्ति का वितरण समान रूप में	6 (40%)	10 (66.66%)	4 (80%)	4 (80%)	24
पुत्र को पुत्री से अधिक मिले	....	....	....	....	....
पुत्री को आवश्यकता हो तो दिया जाये	9 (60%)	5 (33.33%)	1 (20%)	1 (20%)	16
कोई उत्तर नहीं	....	....	....	....	....
योग	15	15	5	5	40

पैतृक सम्पत्ति में पुत्र एवं पुत्री दोनों को हक दिये जाने के सम्बन्ध में सर्वाधिक 80 प्रतिशत तलाकशुदा एवं विधवा स्त्रियों का मानना है दोनों को समान रूप से मिलना चाहिये। जबकि विवाहित महिलाओं में ये प्रतिशत 66.66 रहा है, और अविवाहित महिलाओं में सबसे कम सिर्फ 40 प्रतिशत महिलाओं ने समान अधिकार को सही माना है। यहाँ पर 60 प्रतिशत अविवाहित महिलाओं का मानना है कि पुत्री को आवश्यकतानुसार सम्पत्ति में हक दिया जाये जो कि सोचनीय है। 33.33% विवाहित महिलाओं का भी मानना है कि यदि पुत्री को आवश्यकता हो तो सम्पत्ति में अधिकार मिलना चाहिये। जबकि तलाकशुदा एवं विधवा स्त्रियों में सिर्फ 20 प्रतिशत महिलाओं को ही लगता है कि पुत्री को आवश्यकतानुसार पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा मिलना चाहिये।

सम्पत्ति का अधिकार एवं घरेलू हिंसा, दहेज मृत्यु जैसी सामाजिक समस्याओं में सम्बन्ध– इसके अन्तर्गत उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया कि विवाह के समय यदि सम्पत्ति का कुछ हिस्सा महिलाओं के नाम किया जाये तो क्या इन समस्याओं में कमी आयेगी। इस सन्दर्भ में महिलाओं के दृष्टिकोण का वर्णन निम्न सारणी के माध्यम से दिया गया है–

सारणी 4–सम्पत्ति के अधिकार का वैवाहिक हिंसा पर प्रभाव के बारे में लोगों की प्रवृत्ति का विवरण

विकल्प	हिंदू महिलाएँ				कुल योग
	अविवाहित	विवाहित	तलाकशुदा	विधवा	
हाँ कमी आयेगी	4 (26.66%)	10 (66.66%)	3 (60%)	2 (40%)	19
नहीं कमी आयेगी	2 (13.33%)	....	....	....	2
आंशिक रूप से	5 (33.33%)	3 (20%)	1 (20%)	....	9
कुछ कह नहीं सकते	4 (26.66%)	2 (13.33%)	1 (20%)	3 (60%)	10
योग	15	15	5	5	40

यदि विवाह के समय महिलाओं के नाम सम्पत्ति का कुछ हिस्सा किया जाये तो वैवाहिक हिंसा दहेज मृत्यु आदि घटनाओं में कुछ कमी होगी इस बारे में सबसे अधिक 66.66% विवाहित महिलाओं ने माना कि यदि महिलाएं सशक्त होगी तो शोषित नहीं रहेंगी। सबसे कम 26.66% अविवाहित महिलाओं ने माना कि घरेलू हिंसा या दहेज मृत्यु में कमी आयेगी 60 प्रतिशत तलाकशुदा महिलाओं ने भी इन घटनाओं में कमी हेतु आर्थिक सशक्तिकरण को आवश्यक माना जबकि विधवा महिलाओं को प्रतिशत 40 रहा है। सिर्फ अविवाहित महिलाओं (13.33%) ने माना कि इन घटनाओं में कोई कमी नहीं आयेगी। सर्वाधिक 33.33ः अविवाहित महिलाओं का विचार है कि इन घटनाओं में आशिंक रूप से कमी आयेगी सम्पत्ति में हिस्सा मिलने पर भी वहीं पर 20 प्रतिशत विवाहित एवं तलाकशुदा महिलाओं का भी यही दृष्टिकोण है। सर्वाधिक 60 प्रतिशत विधवा महिलाओं ने इस बारे में कुछ भी नहीं कहा जबकि 26.66 प्रतिशत अविवाहित महिलाएं भी अनिश्चय की स्थिति में रही है। 13.33% विवाहित महिलाओं ने भी कुछ नहीं कहा है।

परिवार के आर्थिक निर्णय में महिला सहभागिता– वर्तमान समय में महिलाएं घर के अन्य मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है, परन्तु क्या घर के आर्थिक निर्णय जैसे– (जमीन–जायदाद) घर या वाहन खरीदने से सम्बन्धित आदि निर्णयों में महिलाओं की भागीदारी क्या है, उनकी स्थिति क्या है इस सन्दर्भ में उत्तरदाताओं के मत का विवरण निम्न तालिका द्वारा बताया गया है–

सारणी 5

आर्थिक निर्णय में सहभागिता के आधार पर स्थिति का विवरण

विकल्प	हिंदू महिलाएँ				कुल योग
	अविवाहित	विवाहित	तलाकशुदा	विधवा	
निर्णय स्वयं के द्वारा/माता के द्वारा	3 (20%)	....	2 (40%)	1 (20%)	6
परिवार के किसी मुख्य पुरूष सदस्य द्वारा	2 (13.33%)	5 (33.33%)	....	3 (60%)	10
परिवार की किसी बड़ी महिला की सलाह पर	....	2 (13.33%)	....	....	2
सामूहिक परामर्श	8 (53.33%)	2 (13.33%)	1 (20%)	1 (20%)	12
पति–पत्नी/माता–पिता दोनों मिलकर	2 (13.33%)	6 (40%)	2 (40%)	....	10
योग	15	15	5	5	40

सारणी 5 से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक 40ः तलाकशुदा महिलाओं की आर्थिक निर्णय में स्वयं की भागीदारी है जबकि 20 प्रतिशत विधवा महिलाएं भी आर्थिक निर्णय स्वयं लेती है और अविवाहित में भी 20 प्रतिशत आर्थिक निर्णय स्वयं या माता के द्वारा लिये जाते है। यद्यपि विवाहित महिलाओं में यह प्रतिशत शून्य रहा है जो कि सोचनीय मुद्दा है। सर्वाधिक 60 प्रतिशत विधवा स्त्रियों ने माना है कि आर्थिक निर्णय परिवार के मुखिया पुरूष सदस्य द्वारा लिये जाते है जबकि विवाहित महिलाओं 33.33 प्रतिशत ने माना है। अविवाहित महिलाओं में यह प्रतिशत 13.33 रहा है। सिर्फ 13.33 विवाहित महिलाओं ने माना है कि आर्थिक निर्णयों में परिवार की किसी बड़ी महिला की सलाह महत्वपूर्ण होती है। सर्वाधिक 53.33 प्रतिशत अविवाहित महिलाएँ सामूहिक परामर्श को मानती है जबकि 20 प्रतिशत तलाकशुदा एवं विधवा स्त्रियों ने माना है वहीं पर विवाहित महिलाओं का प्रतिशत 13.33 रहा है।

केस अध्ययन–1

50 वर्षीय एन0एस0 अशिक्षित एवं विधवा हिन्दू महिला है। इनके परिवार में 1 बेटा एवं बेटी है। बेटी विवाहित है। यह इलाहाबाद नगर में बैंक रोड निवासी है। एन0एस0 तीन बहनों में दूसरे नम्बर पर है तथा इनका कोई भाई नहीं है। विधवा होने के बाद एन0एस0 ने ही माता–पिता की सेवा की तत्पश्चात वह पैतृक सम्पत्ति उत्तराधिकार में पायी है। बातचीत के दौरान उन्होंने बताया कि उनका कोई भाई नहीं परन्तु चचेरे भाई व परिवारीजन नहीं चाहते थे कि वह उत्तराधिकारी बने अतः उन्हेंने लगभग 5 सालों तक मुकदमा लड़ा है तब जाकर उनको सम्पत्ति मिली है। चूंकि उनकी एक पुत्री है तो क्या वो सम्पत्ति पुत्र एवं पुत्री में बराबर देगी ऐसा पूछने पर एन0एस0 ने कहा कि नहीं ऐसी समाज में परम्परा नहीं और उनकी विवाहित पुत्री सम्पन्न है यदि ऐसा न होता तब वे कुछ हिस्सा देती। उन्होंने कहा कि चूंकि उनका भाई नहीं था और उन्होंने माता–पिता की सेवा की इसलिये पैतृक सम्पत्ति मिली।

इस केस के अध्ययन से यह निष्कर्ष सामने आया है कि भारतीय समाज में अभी भी हिन्दू महिलाऐं कानून की अपेक्षा समाज के रीति–रिवाज परम्पराओं को अधिक महत्व देती है।

केस अध्ययन–2

40 वर्षीय जे0एस0 विवाहित एवं शिक्षित महिला है। वह इलाहाबाद नगर के गोविन्दपुर क्षेत्र में रहती है तथा उनको पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा मिला है। चूंकि जे0एस0 अपने माता–पिता की इकलौती संतान है इसलिये उन्हें किसी भी प्रकार की कानूनी लड़ाई उत्तराधिकार हेतु नहीं लड़नी पड़ी। जे0एस0 की एक पुत्री भी है, शोधकर्ता द्वारा पूछने पर की क्या वे अपनी सम्पत्ति को पुत्र एवं पुत्री में बराबर देगी?उन्होंने कहा कि उनकी तो इच्छा है परन्तु इस सन्दर्भ में पति से विमर्श करेंगी तभी कुछ निर्णय लेगी।

इस केस अध्ययन से यह निष्कर्ष सामने आया है कि भारतीय हिंदू समाज में शिक्षित महिलाएं अब अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता तो हो रही है परन्तु कहीं न कहीं समाज की परम्परा एवं पितृसत्तात्मक व्यवस्था अभी भी उनके मन मस्तिष्क में प्रभावी रूप में है।

अध्ययन का निष्कर्ष – प्रस्तुत अध्ययन में यह तथ्य मुख्य रूप से सामने आया है कि आर्थिक सबलता कहीं न कहीं शोषण में कमी लाती है अतः हिन्दू महिलाओं को पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा मिलना चाहिये। वर्तमान समय में महिलाएं अपने अधिकारों के लिये जागरूक भी हो रही है जोकि सारणी–1 और सारणी–2 के द्वारा स्पष्ट है। यद्यपि अधिनियम की जानकारी अविवाहित महिलाओं में अन्य की तुलना में अधिक थी, परन्तु सारणी–2 के अनुसार सम्पत्ति के अधिकार की जानकारी का विवरण लिया गया तो विवाहित महिलाओं का प्रतिशत सबसे अधिक 66. 66ः था। आज महिलाओं के दृष्टिकोण में भावात्मकता के साथ तर्किकता भी आ रही क्योंकि अध्ययन में 80ः विध ावा एवं तलाकशुदा हिंदू महिलाओं का कहना था कि पैतृक सम्पत्ति का पुत्र एवं पुत्री में समान विभाजन होना चाहिये। ऐसा होने से महिलाओं के शोषण, घरेलू हिंसा एवम् दहेज मृत्यु जैसी घटनाओं में कुछ कमी आयेगी क्योंकि महिलाएं आर्थिक तौर पर सशक्त न होने के कारण यह सब सहती रहती है। अध्ययन में यह भी पाया गया कि जहां पर अधिनियम की जानकारी को लेकर अविवाहित महिलाओं के प्रतिशत सर्वाधिक था वहीं पर 60ः अविवाहित महिलाओं का मानना है कि पुत्री को सम्पत्ति में हिस्सा आवश्यकतानुसार दिया जाये, यह एक सोचनीय बात है जो कि आज भी समाज के परम्परागत स्वरूप को स्पष्ट करता है। आज महिलाएं घर गृहस्थी से लेकर बच्चा पालने तक के निर्णय भले ही स्वयं ले रही हो परन्तु आर्थिक निर्णय अधिकांशत आज भी पुरूषों द्वारा लिये जा रहे भले ही घर महिलाओं के नाम पर हो, लेकिन लेने के निर्णय में भागीदारी का प्रतिशत बहुत ही कम है। निष्कर्षतः एक बेहतर जीवन हेतु हिन्दू महिलाओं को भी पैतृक सम्पत्ति में समान रूप में हक मिलना चाहिये, परन्तु भारतीय समाज में महिलाएं आज भी कानून की अपेक्षा समाज, धर्म, रीति–रिवाजों को अधिक महत्व देती है जैसे–जिन्हें पैतृक

सम्पत्ति में हिस्सा मिला है वे ये सोचकर पुत्री को हिस्सा नहीं देना चाहती कि उसका भाई है तो क्या जरूरत, आवश्यकता हुई तो देंगे, या फिर पति की सहमति हुयी तो आदि ये सब परम्परागत समाज के लक्षण को दर्शाते है।

संदर्भ संकेत

- मिश्र, जयशंकर (1999), प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना
- आनन्द, सुगम (2007), भारतीय इतिहास में नारी साहित्य संगम, इलाहाबाद
- अल्तेकर, ए0एस0 (1959), द पोजीशन ऑफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, नई दिल्ली
- दीवान, पारस (2016), आधुनिक हिन्दू विधि की रूपरेखा, इलाहाबाद लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद
- गजभिये, अनिल (2015), हिन्दू कोड बिल इतिहास और संघर्ष, सम्यक प्रकाशन, नयी दिल्ली
- जैन, अरविंद (2001), उत्तराधिकार बनाम पुत्राधिकार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- परमार, शुभा (2017), नारीवादी सिद्धान्त और व्यवहार, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्रकाशन, हैदराबाद
- Panda, Pradeep & Agrawal, Bina (2005), Marital violence Human Development and women's property status in India, world development vol 33
- देसाई, नीरा – ठक्कर, ऊषा (2011), भारतीय समाज में महिलाएं, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
- केसरी, यू0पी0डी0 (2016), हिन्दू विधि, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद

❑❑

किसी भी रचनाकार की रचनाधर्मिता की परीक्षा कलात्मकता, सामाजिक उपादेयता और प्रासंगिकता की दृष्टि से होती है इसके साथ ही कृतिकार के रूपगत, शैलीगत, भावगत और शिल्पगत वैशिष्ट्य की दृष्टि से भी; क्योंकि एक श्रेष्ठ रचनाकार अपने जीवन जगत के प्रत्यावलोकन में रत होकर उन विविध जागतिक और सामाजिक दृष्यों–परिदृष्यों, घटनाओं, भाव–वैविध्यों और यथार्थ–सत्यों को अभिव्यक्त करता है जिसके जुड़ाव–घटाव, टूटन–घुटन में युग सत्यों का निर्माण होता है। साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, दीपशिखा भी है क्योंकि रचनाकार बाह्य परिवेश से जो अनुभव संचित करता है उसे वह अपने संचित ज्ञान की निकष पर चढ़ाकर जो निष्कर्ष निर्णीत करता है वे निष्कर्ष ही उनका चिन्तन बन जाते हैं। एक सफल कृतिकार देश, काल, वातावरण की गति और कला को ठुकराता हुआ ऐसा मौलिक सृजन करता है। जिसकी सामाजिक उपादेयता, सामाजिक सौद्देश्यता तथा मानव जीवन के कल्याण एवं विकास के लिये उसका अनुप्रयोग कितना है को दृष्टि में रखकर अपना निष्कर्ष निकालता है ऐसी ही रचनाओं की प्रासंगिकता बनी रहती है। इनकी विशिष्टता में ही इसे कालजयिता अर्थ–प्राप्ति की स्वीकृति भी दी जाती है क्योंकि इनका अनुभव रूपी ज्ञान किसी भी दशा में सत्यों एवं तथ्यों के आधार पर शत–प्रतिशत मौलिक होता है। डॉ0 रामकमल राय का सृजन इन्हीं सरोकारों के बीच से होकर गुजरता है।

- कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

भारत में लोकपाल बनाम जन लोकपाल चिन्तन–चिन्ता के विविध सरोकार

डॉ0 गीता यादव
अध्यक्ष–राजनीति विज्ञान विभाग
टी0डी0पी0जी0 कालेज, जौनपुर, उ.प्र.

किसी भी सभ्य लोकतान्त्रिक समाज का मुख्य उद्देश्य जनता की प्रसन्नता, सन्तोष तथा कल्याण होता है। सच तो यह है कि सरकार की शक्ति जनता की समृद्धि पर निर्भर करती है और जन सन्तोष पर ही लोकतन्त्र की सुरक्षा तथा स्थायित्व निर्भर रहता है। सरकार के कार्यपालिका संगठनों के प्रति जनता की शिकायतें हमेशा रही हैं, समय–समय पर अनेक रूपों में व्यक्त होती रही हैं। जन शिकायत दो प्रकार की होती हैं–सामान्य तथा व्यक्तिगत। सामान्य जन शिकायतें सरकार की नीतियों और कार्यों के विरूद्ध होती हैं। वे समाज के सभी वर्गों पर एकसामान लागू होती हैं। इसके उदाहरण हैं : खाद्यान्नों की कमी, मूल्यों में वृद्धि, यातायात के साधनों में अव्यवस्था, ट्रेनों के आने–जाने में विलम्ब आदि। ऐसी शिकायतें अधिक मात्रा में पायी जाती हैं और समय–समय पर उग्र रूप भी धारण कर लेती हैं जिससे बडी मात्रा में उपद्रव फैल जाते हैं। इसके विपरीत, व्यक्तिगत शिकायतें वे हैं, जो व्यक्ति विशेष तक सीमित रहती हैं। वे शिकायतें सरकार के कार्यपालिका अंग के विरूद्ध होती हैं, जिसमें राजनीतिज्ञ वर्ग के लोग तथा लोक–कर्मचारी दोनो सम्मिलित होते हैं। सरकार द्वारा उठाये गये कतिपय कदम शासन के अकर्मण्यता, जिसका प्रभाव व्यक्तिगत रूप से नागरिकों पर पड़ता है, ऐसी शिकायतों के आधार होते हैं। आज का नागरिक शासकीय कर्मचारीयों से यह अपेक्षा रखता है कि वे ईमानदार, परिश्रमी, सक्षम, सहानुभूतिपूर्ण, शिष्ट तथा उचित बर्ताव करने वाले हों। मध्य प्रदेश प्रशासनिक सुधार आयोग ने इन सब गुणों को ''प्रशासन में सत्यनिष्ठा तथा सामर्थ्य की संज्ञा दी है।

सरकार द्वारा नवीन उत्तरदायित्व को स्वीकार करने के कारण प्रशासकीय प्रक्रियाएँ बहुत बढ़ गयी हैं। विधि ा आयोग ने अपने चौदहवें प्रतिवेदन में कहा है कि प्रशासनिक कार्यों का एक वृहत् क्षेत्र ऐसा है जिसमें प्रशासनिक सत्ताधारी विधि एवं औचित्य की शाब्दिक परिधि के बाहर कार्य कर सकते हैं, जिससे अपकृत नागरिक को कोई प्रभावशाली निवारण नही मिल सकता है। प्रशासनिक शक्ति तथा विवेक कार्यपालिका के विभिन्न स्तरों की न तो समझ होती है और न चारित्रिक दृढ़ता। जहाँ भी शक्ति तथा विकास का निवास होता है, वहीं उनके दुरूपयोग की सम्भावना भी बनी रहती है, विशेषतः उन परिस्थितियों में जहाँ उनका उपयोग दुर्लभता, नियन्त्रण तथा लोक निधि के व्यय करने के दबाव की पृष्ठभूमि में किया जाता है। कार्यपालिका की शक्ति तथा उसके विवेक को नियन्त्रित करने के पारस्परिक उपाय, विधायी नियन्त्रण एवं न्यायिक समीक्षा रहे हैं। अनेक देशों के अपने संविध ाानों में नागरिकों के लिए मौलिक अधिकारों का समावेश किया है, जो न्यायसंगत है। इनके अतिरिक्त नागरिकों की शिकायतों को प्रकाश में लाने तथा उनका निवारण करने के अन्य उपाय भी है; जैसे–विभिन्न स्तरों के प्रशासनिक अधिकारियों से अपील करना। किन्तु नियन्त्रण के इन सब उपकरणों में त्रुटियाँ आ गयी हैं। व्यवहार में विधायी नियन्त्रण दैनिक प्रशासनिक कार्यों से उत्पन्न व्यक्तिगत शिकायतों का निवारण करने की अपेक्षा सार्वजनिक महत्व के मामलों पर कार्यवाही करने के लिए अधिक प्रभावशली सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार, न्यायालय में न्याय प्राप्त करने की प्रक्रिया समय एवं धन दोनों का बहुत अपव्यय होता है और अनेक मामलों में न्यायालयों की अपेक्षा नागरिक प्रशासन के अनुचित को सहन करना अधिक सरल एवं असुविधाजनक मानता है। प्रशासनिक अधिकारियों के

प्रयास, प्रतिवेदन एवं अपीलें भी इसी दिशा में पर्याप्त प्रभावशाली सिद्ध नही हुए हैं।

भारत में वैसे तो अनेक समस्याएँ विद्यमान हैं जिसके कारण देश का विकास अवरूद्ध है। उनमें प्रमुख है बेरोजगारी, गरीबी, अशिक्षा, भ्रष्टाचार आदि प्रमुख है लेकिन इन सबमें वर्तमान में सबसे ज्यादा यदि कोई देश के विकास को बाधित कर रहा है तो वह है भ्रष्टाचार की समस्या। आज इससे सारा देश त्रस्त है–मंत्रियों, प्रशासनिक अधिकारियों और कर्मचारियों में व्याप्त भ्रष्टाचार चरम पर है। जिसके कारण जनता का शासन में विश्वास दिनों–दिन कम होता जा रहा है। न्यायपालिका के पास कार्यभार इतना अधिक है कि वह हर प्रशासकीय कृत्य की जांच नहीं कर सकती, उसकी अपनी सीमाएँ भी हैं। इसलिए एक ऐसे स्वतंत्र और निश्पक्ष अभिकरण के रूप में लोकपाल जैसी संस्था की उपयोगिता संदेह से परे है जिसके द्वारा भ्रष्टाचार के मामलों पर गम्भीरता से विचार किया जा सके और जनता की किसी अधिकारी या मंत्री के विरुद्ध शिकायत को प्रभावशाली ढ़ंग से सुना जा सके।

इस सन्दर्भ में लोकपाल उच्च सरकारी पदों पर आसीन व्यक्तियों द्वार किये जा रहे भ्रष्टाचार की शिकायतें सुनने एवं उस पर कार्यवाही करने के निमित्त सृजित एक संवैधानिक पद है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के एक सम्मलेन में राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों के आचरण तथा कर्तव्य पालन की विश्वसनीयता तथा पारदर्शिता को लेकर दुनिया की विभिन्न राजनीतिक प्रणालियों में उपलब्ध संस्थाओं की जांच की गई। स्टॉकहोम में हुए इस सम्मलेन में वर्षों पूर्व आम आदमी की प्रशासन के प्रति विश्वसनीयता तथा प्रशासन के माध्यम से आम आदमी के प्रति सत्तासीन व्यक्तियों की जवाबदेही बनाए रखने के संबंध में विचार–विमर्श हुआ था। जिसमें लोकसेवकों के आचरण की जांच और प्रशासन के स्वस्थ मानदंडों को प्रासंगिक बनाए रखने के संदर्भों की पड़ताल भी की गई थी। इस सेमिनार ने पाँच मुख्य संस्थाओं की जांच की जो पूरी दुनिया में जांच एजेंसियों के रूप में उस समय लागू थीं। इनमें संसदीय जांच समितियाँ, रूस की प्रोक्यूरेसी, अंग्रेजी विधि व्यवस्था में वर्णित न्यायिक अनुतोष, फ्रांसीसी पद्धति की जांच व्यवस्थाएँ तथा स्कैण्डिनेवियन देशों में प्रचलित ओम्बुड्समैन भी शामिल रहे हैं। भ्रष्टाचार को मिटाने और दूर करने के लिए विभिन्न देशों में समय–समय पर अनेक कदम उठाये गये हैं। स्वीडन में सर्वप्रथम सन् 1809ई0 में संविधान के अन्तर्गत ओम्बुड्समैन की स्थापना की गयी। भारत में आम्बुड्समैन को लोकपाल के नाम से जाना जाता है। फिनलैण्ड में सन् 1918 ई0 में, डेनमार्क में सन् 1954 ई0 में, नार्वे में सन् 1961 ई0 में व ब्रिटेन में सन् 1967 ई0 में ओम्बुड्समैन (लोकपाल) की स्थापना भ्रष्टाचार समाप्त करने के लिए की गई थी। विभिन्न देशों में ओम्बुड्स को विभिन्न नामों से जाना जाता है। इंग्लैण्ड में इसे संसदीय आयुक्त, सेवियत संघ में 'वक्ता' अथवा प्रोसिक्युटर व डेनमार्क एवं न्यूजीलैण्ड में इंगलैण्ड की तरह संसदीय आयुक्त के नाम से भी जानते है और भारत में इसे लोकपाल के नाम से जाना जाता है।

भारत में लोकपाल का प्रश्न काफी पुराना है। लम्बे समय से इसकी मांग की जा रही है। इसे दुखद ही कहा जाएगा कि आजादी के बाद से अभी तक देश को मजबूत, निश्पक्ष एवं स्वतन्त्र लोकपाल नहीं मिल पाया है। सन् 1963 ई0 में तत्कालीन लोकसभा के निर्दलीय सदस्य लक्ष्मीमल सिधंवी ने एक प्रस्ताव पेश कर ऐसी संस्था की मांग की थी। उन्होंने ओम्बड़समैन को पीपुल्स प्रोसीक्यूटर के नाम से सम्बोधित किया। सन् 1965 ई0 में भी एक प्रस्ताव के द्वारा ऐसे ही पदाधिकारी की मांग की गई जो जन शिकायतें दूर करें। सन् 1967 ई0 में भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने अपनी रिपोर्ट में ओम्बड्समैन की स्थापना पर बल दिया। इसी सिफारिश को आधार बनाकर सन् 1968 ई0 में इसे संसद में प्रस्तावित किया जो बाद में संसद की संयुक्त समिति को भेजा गया। इसी संयुक्त समिति ने ही सन् 1969 ई0 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और इसे लोकपाल और लोकायुक्त कहा। यह प्रस्ताव लोकसभा में पास भी हो गया, परन्तु राजनीतिक पैतरेबाजी के कारण यह राज्यसभा में पास नहीं हो पाया। बाद में सन् 1971 ई0 में नया बिल लोकसभा में पेश किया गया। दुर्भाग्य से यहाँ भी पास नहीं हो पाया। मार्च सन् 1977 ई0 में जनतापार्टी ने लोकसभा में इस आशय का बिल पेश किया। इसमें पहली बार प्रधानमंत्री तथा लोकपाल

के दायरे मे लाया गया और जाँच के लिये स्वतन्त्र प्रशासकीय ढाँचा प्रदान किया गया। उसकी नियुक्ति के लिये मुख्य न्यायधीश, राज्यसभा के सभापति तथा लोकपाल के परामर्श पर राष्ट्रपति द्वारा किये जाने की व्यवस्था की गई। उसे स्वतन्त्र एवं निश्पक्ष बनाये रखने की व्यवस्था की गई। दुर्भाग्यवश राजनीतिक कारणों से यह प्रस्ताव भी पास नहीं हो पाया। 26 अगस्त सन् 1985 ई0 को पुनः प्रस्तावित किया गया। राजीव गांधी की तत्कालीन सरकार ने इस निधेयक की पुनः समीक्षा की और नये विधेयक को लाने के वादे के साथ इसको वापस ले लिया। वी0पी0 सिंह की राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने सन् 1989 ई0 में लोकसभा में नया लोकपाल विधेयक पेश किया। इसकी मुख्य बात यह थी कि तीन सदस्यीय लोकपाल कार्यालय का निर्माण था। इसमें भी प्रधानमंत्री को लोकपाल के दायरे में रखा गया था। हाल में सन् 2012 ई0 में जनता के बढ़ते दबाव के कारण सरकार ने हड़बडी में लोकपाल विधेयक पेश किया जिसमें साफ तौर पर जन आकांक्षाओं की अनदेखी हुई। विभिन्न समयों में विभिन्न राजनीतिक दलों के तिकड़म (न पास होने देने) का शिकार होता रहा है। इस लम्बे लोकपाल यात्रा में सभी दलों ने समय समय पर इसके मार्ग में बाधायें उत्पन्न कीं हैं। लगभग सभी दल सार्वजनिक बहसों में, भाषणों में ऐसे लोकपाल को लेकर अपने सकल्प को दोहराते हैं परन्तु सदन में वे इसे टालने, रोकने का प्रयास करते दिखते हैं। यह शीर्ष राजनीतिक नेतृत्व का दोहरा चरित्र है कि विगत 50 वर्षों से लोकपाल बिल पास नहीं हो पाया है।

आज भारत का सम्पूर्ण राजनैतिक परिदृष्य लोकपाल की तीव्र मांग को लेकर प्रभावित है। वर्ष सन् 2012 ई0 में भारत ने इसकी मांग को लेकर अन्ना हजारे के नेतृत्व में शायद आजादी के बाद का सबसे बड़ा अंदोलन देखा। पहली बार जनसम्प्रभुता ने अपनी शक्ति दिखायी और राजनैतिक सम्प्रभु की शक्ति को झकझोर दिया। यह ऐसा अन्दोलन था जिसने सरकार के पास लोकपाल विधेयक पास करने के अतिरिक्त अन्य विकल्प सीमित कर दिये है। शायद यह इस अन्दोलन का ही परिणाम था कि सरकार ने हड़बड़ी में पहले तो सिविल सोसायटी को अपने सुझावों के साथ आमन्त्रित किया। उनके साथ कई तरह के लोकपाल के मांडलों पर चर्चा की। कई दौर की वार्ता के बाद सरकार ने जो लोकपाल का मांडल तैयार किया है उसको लेकर भी असहमति दिख रही है। वर्तमान ड्राफ्ट भी जन आकांक्षा को पूरा करने, सरकार तथा उसके अधीनस्थों पर प्रमावी अंकुश लगाने में असफल दिख रहा है। वर्तमान ड्राफ्ट में सी0बी0आई0 की स्वतन्त्रता और उसकी निश्पक्षता को लेकर कई प्रश्न अनसुलझे रह गये हैं।

अंततोगत्वा भारत में बढ़ते भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने व लोकतांत्रिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए जन लोकपाल बिल को लेकर आने की सख्त आवश्यकता महसूस की जा रही है क्योंकि सरकारी लोकपाल बिल के प्रवधानों से भारत में बढ़ते भ्रष्टाचार पर अंकुश लगने की संभावनाएँ कम ही नजर आ रहीं हैं।

❑❑

अतीत एवं वर्तमान आईने में भाषा के बदलते परिदृश्य

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
अध्यक्ष – हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.

उपनिषदों का कहना है कि ''भाषा के बगैर न सत्य को पहचाना जा सकता है, न असत्य को, न सदगुणों को, न अवगुणों को, न अच्छे की पहचान सम्भव है, न बुरे की, न सुख को जान सकते हैं न दुख को, इन सभी की पहचान भाषा के द्वारा ही हो सकती है और यह मनुष्य में आदर्श बनाने की शक्ति पैदा करती है जिससे उसमें त्याग की भावना फूटती है। भाषा से अनुभव प्रतिबिम्बित होते हैं, उनका प्रतिचित्रण होता है जिसके द्वारा भावनाओं की तह तक जाया जा सकता है। भाषा के द्वारा सुख शान्ति के लिए स्नेहमय सम्पर्क बनाने और उसके द्वारा सहजीवन के द्वारा खुल जाते हैं। इन सभी शक्तियों का सम्मिलित, सुगन्धित, सुनिर्मित अगर कोई रूप है, कोई रूपरेखा खींची जा सकती है, तो वह भाषाई समाज है। उस समाज को समाजिकता उसके अलग–अलग पुर्जों को जोड़ने की प्रक्रिया में है जो भाषा में निहित है।

अध्यात्मवादी दृष्टिकोण से भाषा की उत्पत्ति के बारे में विचार किया जाए तो इनके प्रमुख विचारकों का मानना है कि भाषा ईश्वरकृत है। मनुष्य में यह क्षमता नहीं थी कि वह भाषा रचता।[1] कुछ धर्मों के मानने वाले अनुयायी इसलिए अपनी भाषा को देववाणी की संज्ञा देते हैं। आगे चलकर यह देववाणी ही मानव भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। कुछ ईसाई और यहूदी विचारकों की मान्यता है कि जिस भाषा में मानव जाति के आदि पिता–माता आदम और हौवा बातें करते थे, उसी से संसार की समस्त भाषाएँ उत्पन्न हुई। भाषा वैज्ञानिकों में ईश्वीकृत मूल भाषा की स्थापना का खण्डन–मण्डन अब आवश्यक समझा जाता है।

प्रारम्भ में मनुष्य की जिज्ञासा का समाधान किसी वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ विश्लेषण से नहीं होता था, बल्कि प्रत्येक अज्ञात के पीछे किसी अलौकिक सत्ता का हाथ मानकर सन्तोष किया जाता था। ''इस अलौकिक सत्ता को अनादि–अनन्त माना जाता था ओर उसके मूल की खोज का प्रश्न ही नहीं उठता था। यह सत्ता ईश्वर आदि नामों से अभिहित की जाती थी। भाषा के सम्बन्ध में चिन्तन करने पर अन्य तत्वों की भाँति यहाँ भी पहला प्रश्न यही हुआ कि भाषा आई कहाँ से। इस प्रश्न का उत्तर वही मिला जो इस प्रकार के सभी प्रश्नों के लिए दिया जाता रहा है–ईश्वर की देन! पतंजलि के शब्दों में ईश्वर ही आदि गुरू है, उसके पहले कोई गुरू नहीं था।''[2] इस दैवी उत्पत्ति के अनुमान के पीछे चाहे जो अवधारणा या मानवधारा रही हो लेकिन इसके साथ आम जनमानस की धारणा अवश्य जुड़ी हुई थी। जिसके आधार पर उसे प्रत्येक उपयोगी–अनुपयोगी वस्तु ईश्वर की कृपा से प्राप्त हुई हैं इसका प्रमुख कारण यह है कि धर्म प्राण सामान्यजन ईश्वर के इस निर्मित्त का कारक मानकर सन्तोष का अनुभव करती है। इसलिए क्योंकि उसकी भूतकालीन विस्तृत व्यापकता के बारे में वह अविश्वसनीय रूप से आश्वस्त रहते हैं। बाइबिल में उल्लेख है कि बेबल का आकाश चुम्बी मीनार बना रही मनुष्य जाति की संभावित शक्ति की असीमता से ईश्वर भयभीत हो गया और विघ्न स्वरूप उसे कारीगरों में से कोई व्यक्ति किसी दूसरे की बात नहीं समझ पाता था, इसलिए उनका पारस्परिक सहयोग समाप्त हो गया। बेबल (बेबीलोन भी) शब्द स्वतः इस घटना का प्रमाण है क्योंकि यह शब्द हिब्रू के बालल[3] से बना है जिसका अर्थ होता है गड़बड़ा देना, मिश्रित कर देना या भ्रान्त कर देना। इस प्रकार बेबल शब्द का अर्थ है–वह स्थान जहाँ ईश्वर ने मनुष्य की भाषा गड़बड़ा दी थी। जो लोग भाषा को दैवी उत्पत्ति मानते हैं उसे वे देवीवाद की संज्ञा देते हैं। इसलिए भारतीय आर्य अपनी

प्राचीन संस्कृत को देव–भाषा कहते रहे हैं। जर्मन लोगों ने अपनी भाषा जर्मन को देवभाषा कहा है। ग्रीस के विद्वानों में 'फूसेइन्थेसेई' का झगड़ा शताब्दिक इसी बात को लेकर चलता रहा कि भाषा ईश्वर की प्रत्यक्ष देन है अथवा मनुष्य का कृतित्व है।[4]

भाषा की उत्पत्ति के सन्दर्भ में दैवीय अवधारणा का भौतिकवादी शरीर वैज्ञानिक एवं भाषा वैज्ञानिक इसका खण्डन करते हैं कि भाषा दैवीय उत्पत्ति का कारक नहीं कही जा सकती हैं जैसे भौतिक विज्ञान में इस स्थापना का खण्डन अनावश्यक हो गया है कि मेघों से इन्द्र पानी बरसाता है, वैसे भाषा विज्ञान के क्षेत्र में उपर्युक्त स्थापना का खण्डन भी अनावश्यक है। साथ ही साथ जैसे भौतिक विज्ञान भी जब तक अध्यात्मवाद से प्रभावित दिखाई देता है, वैसे ही भाषा विज्ञान पर अध्यात्मवाद का प्रभाव देखा जा सकता है। अध्यात्मवाद अब आत्मा की बात करे, यह आवश्यक नहीं है। हेगल की तरह वह बुद्धि और विचार की बात करता है। यह संसार क्या है? विचार का ही मूर्तिरूप है। पदार्थ क्या है? चिन्तन का ही धनी मूल रूप है। इस तरह भाषा की रचना क्यों हुई? इसलिए हुई कि मनुष्य में बुद्धि है, मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है।[5]

भाषा की दैवी उत्पत्ति अवैज्ञानिक कल्पना को रूसो का निर्णयवाद स्वीकार नहीं करता है। रूसो के अनुसार आदिकाल में मनुष्य समाज ने परस्पर बैठकर भाषा का निर्माण किया, शब्दों की रचना की और उनका अर्थ निर्धारित किया। यह मत भी गम्भीरतापूर्वक विचार करने के योग्य नहीं समझा जाता। जब भाषा थी ही नहीं, तब मनुष्य समाज को एकत्र कर लेना, शब्दों की रचना करके लोगों को उनका ज्ञान करा देना और अर्थ के सम्बन्ध में विचार–विमर्श कर लेना किस प्रकार सम्भव हुआ? एकत्र मनुष्य–समाज, जो भाषा जैसी किसी वस्तु से परिचित नहीं था और जिसे यह कल्पना भी न थी कि इस प्रकार की किसी वस्तु की रचना की जा सकती है, सहसा यह कैसे अनुभव करने लगा कि इस प्रकार की किसी वस्तु की रचना की सकती है और इस प्रकार की जा सकती है? यदि यह कल्पना किसी एक व्यक्ति के मस्तिष्क में आई तो उसने दूसरे व्यक्तियों पर उसे व्यक्त कैसे किया?[6]

हर्डर नामक वैज्ञानिक ने अपने अनुभव के आधार पर यह पाया कि मनुष्य ने भाषा की रचना नहीं की, बल्कि उसे जन्मा है। जिस प्रकार गर्भस्थ शिशु को जन्म देने के लिए माँ को प्रत्यक्ष रूप से कुछ करना नहीं पड़ता है, उसी प्रकार भाषा की रचना के लिए मनुष्य को कुछ करना नहीं पड़ा। समय पर भाषा ने स्वयं ही प्राकृतिक रूप से जन्म ले लिया। इसी आधार पर इस मान्यता को प्रकृतिवाद की संज्ञा दी गई। इसी तरह की मान्यता भाषा वैज्ञानिक डॉ0 राम विलास शर्मा की है कि मनुष्य की बुद्धि उसके विकास का परिणाम नहीं है, वरन उसका विकास उसकी बुद्धि का परिणाम है। भाषा के प्रयोग द्वारा उसने बुद्धि अर्जित और परिष्कृत नहीं की, वरन अपनी बौद्धिक योग्यता के कारण वह भाषा की रचना कर सका। इस तरह की स्थापना भौतिकवादी विचारधारा के अनुकूल न होकर अध्यात्मवादी या भाववादी विचारधारा के अधिक अनुकूल मानी जाएगी।

विकास क्रम में सैद्धान्तिक व्यवस्था के अनुसार मनुष्य अपने आदिम बर्बर जीवन में पशु के समान आचरण करता था। भाषा की उत्पत्ति क्यों हुई, मनुष्य ही भाषा की रचना क्यों कर सका, इसे समझने के लिए डार्विन के संकेतवाद के सिद्धान्त को समझना होगा। डार्विन का मानना है कि प्रारम्भ में मानव हाथ के संकेत से काम चलाता था। उसके अंगों ने अचेतन रूप से उन संकेतों का अनुकरण प्रारम्भ कर दिया होगा। इसके परिणाम स्वरूप मनुष्य का मुख–भाँति–भाँति की आकृतियाँ बनाने लगा होगा, जिसके साथ कुछ ध्वनियाँ भी सम्बद्ध रहती रही होंगी। क्रमशः किसी प्रसंग में यही ध्वनियां अवशिष्ट रह गईं होंगी औ (अर्थ की दृष्टि) से लुप्त सम्बद्ध हस्त संकेतों का कार्य करने लगी होंगी। हस्त संकेतों से भाषा की उत्पत्ति का समर्थन करने के कारण इस विचारधारा को 'संकेतवाद' कह सकते हैं। हाँलाकि इस पूरी–पूरी भाषाओं का निर्माण इस वाद के सन्दर्भ भी स्पष्टतापूर्वक नहीं समझा जा सकता है। उपरोक्त सभी वादों के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया जाए तो प्राकृतिक ढंग से उत्पन्न होने वाले शब्द संकेत मूलक, अनुकरणमूलक, आवेगी तथा श्रमपरिहरण मूलक हो सकते हैं। इस प्रकार इन वादों को

प्रकृतिवाद में समन्वित रूप से अन्तर्हित मानना चाहिए। इस दृष्टि से प्रकृतिवाद ठोस विचारधारा का प्रतिनिधि है।[7]

अनुकरणवाद के अनुसार मनुष्य की भाषा का आरम्भ अनुकरण से हुआ जिसे अनुकरण मूलकतावाद की संज्ञा दी सकती है। इसके अनुसार पशु–पक्षियों तथा प्राकृतिक पदार्थों की ध्वनि का मनुष्य ने अनुकरण किया और अनुकरण मूलक शब्दों का प्रयोग उन–उन पशु–पक्षियों तथा पदार्थों के लिए करने लगा। इस प्रवृत्ति के दर्शन वर्तमान परिवेश में देखने को मिल जाते हैं। पिपिहरी एक वाद्ययंत्र है जिससे पी.पी. ध्वनि निकलती है। मोटर साइकिल के लिए प्रयुक्त होने वाला एक शब्द फटफट या फटफटिया है जो चलती हुई मोटर साईकिल की फटफट ध्वनि के अनुकरण पर बना है। भों की ध्वनि निकलने के कारण भोंपू नाम दिया गया। कोयल के लिए अंग्रेजी में कुक्कू, कौवे के लिए संस्कृत में काक इसी प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हैं किन्तु किसी भी भाषा को यदि हम उत्पत्ति की दृष्टि से सटीक समझें तो यह हमारी न समझ ही कही जा सकती है क्योंकि इनमें अनुकरणमूलक शब्दों की संख्या इतनी कमी मिलती है कि इस वाद के आधार पर भाषा के उद्‌गम की समस्या का समाधान संभव नहीं लगता। यदि किसी भाषा में ऐसे शब्दों की संख्या पर्याप्त अधिक मिलती है तो किसी में उनका नितांत अभाव मिलता है।[8]

भाषा की उत्पत्ति के सन्दर्भ में रेनन का मत कुछ अलग हटकर है। आपका मानना है कि जब मनुष्य ने पशु पक्षियों की ध्वनि का अनुकरण करना आरम्भ किया, उस समय तक वह स्वयं कुछ बोलता ही नहीं था। यदि कुछ छोटे जीव–जन्तु बोलते थे तो श्रेष्ठ कही जाने वाली मनुष्य जाति क्यों नहीं बोलती रही होगी? और यदि एक मनुष्य पशु–पक्षियों की ध्वनि का अनुकरण कर सकता है तो अपने साथियों का अनुकरण क्यों नहीं किया होगा? हाँलाकि इस तरह का मत भाषा वैज्ञानिकों में नहीं, शरीर विज्ञानियों में भी प्रचलित है। वी0ई0 नीगस इंगलैण्ड के एक प्रसिद्ध शरीर वैज्ञानिक हैं। अपने घोषयंत्र (लैरिन्क्स) के विकास पर एक बहुत ही महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। (पुस्तक का नाम–वी0ई0 नीगस, द कम पैरेटिव अनाटोमी एण्ड फिजियोंलॉजी ऑफ लैरिन्क्स, लन्दन 1945) इस पुस्तक में पशुओं द्वारा ध्वनि–संकेतों के प्रयोग की चर्चा करते हुए वी0ई0 नीगस लिखते हैं कि बहुत से पशु ऐसी ध्वनियाँ करते हैं जिनसे भाषा का विषद शब्द भण्डार बन सके, लेकिन उनमें बुद्धि नहीं है कि वे इस क्षमता से लाभ उठाएँ जैसे कि मनुष्य उठाता है।'' भाषा वैज्ञानिक ब्लूम फील्ड का मानना है कि पशु किसी परिस्थिति की प्रतिक्रिया रूप में ध्वनि करते हैं और इसी से भाषा की उत्पत्ति होती है।[9] इसी सम्बन्ध में वनमानुषों का उदाहरण देते हुए नृतत्व शास्त्री मेंलविल जेकब्स और बी0जे0 स्टर्न ने लिखा है कि वे अनेक भाववाचक ध्वनियों या साधारण ध्वनि–संकेतों से काम लेते हैं। आरम्भ में यह ध्वनियाँ स्वतः प्रेरित होती हैं। क्रमशः जीवनयापन में इनकी उपयोगिता से लाभ उठाकर मनुष्य अधिक सुस्पष्ट और निश्चित संकेत वाली ध्वनियों से काम लेता है।[10]

साधारण नियमों की दृष्टि से अवलोकन किया जाए तो भाषा रचना मानव व्यवहार का अपवाद नही है। बल्कि भाषा उन साधारण नियमों की पुष्टि प्रदान करती है। फिर यहाँ प्रश्न उठता है कि आखिर साधारण नियम क्या होता है? साधारण नियम यह है कि ''जैसा मनुष्य का जीवन होता है, वैसे ही उसके विचार होते हैं। उसका जीवन कैसा है, यह उस पर निर्भर है कि वह जीवनयापन के लिए आवश्यक सामग्री कैसे संग्रह करता है। उदाहरण के लिए समाज के पुराने ढाँचे में उत्पादन और वितरण के नये तरीके स्वतः स्फूर्त ढंग से पैदा होते हैं और इन तरीकों के अनुरूप नये सामाजिक विकास के नियमों के अनुसार, कायम होते हैं, वैसे ही मनुष्य ही मनुष्य बुद्धि से सोचकर योजनानुसार भाषा नहीं रचता वरन उसकी जीवनयापन की आवश्यकताओं के अनुसार वह स्वतः स्फूर्ति ढंग से निर्मित होती है।[11]

समाज आज भारत में, चाहे वह संगठित हो या तरल अपने अनेकों श्रेणीबद्ध स्तरों में विभक्त होने के साथ–साथ विभिन्न भाषाई गिरोहों से घिरे रहने के कारण अनेक तबकों में बँटा हुआ है। इसके अलावा जनतंत्रात्मक राज्यों के निर्माण और उन राज्यों की स्थापना भाषावार होने के कारण सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अत्यधिक

भाषागत होने से पृथकता बढ़ रही है। वर्तमान का भारतीय समाज अपने–अपने स्तर के साथ भिन्न श्रेणियों का निर्माण करता हुआ सीमित तबकों में बँटता जा रहा है। विज्ञान और तकीकी के सहारे जो औद्योगिक सम्पत्ति बढ़ रही है उसमें अपना–अपना हिस्सा प्राप्त करने और बढ़ाने के लिए प्रत्येक भाषाई समाज अपने निजी सम्प्रेषण माध्यम के द्वारा भाषाएँ निष्ठा में भी रूपांतरण ला रहा है जिससे प्रादेशिक भाषाएँ अपने–अपने क्षेत्रों में एक सशक्त, समग्र, सजीव क्रांतिकारी भूमिका निभाने लगी हैं और व्यक्ति के भाषाई तादात्म्य में नया अनुभव होने लगा है।

हर एक सभ्यता के प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपनी–अपनी भाषा के प्रति प्रेम उतना ही पुराना है जितना कि कोई देश का इतिहास। इसके बावजूद बदलती परिस्थितियों के हेर–फेर तथा सामाजिक दबाव से भाषाई निष्ठा में परिवर्तन अपेक्षित हैं। सामाजिक जीवन में भाषाई निष्ठा को बदलने के लिए कई दबाव सहायक सिद्ध हो सकते हैं। जैसे मानव की ज्ञान पिपासा, आदर्शवाद एवं मानवता में विस्तृत तथा विशाल समाज में पहुँचने और अपने व्यक्तित्व और निजी प्रभाव को बढ़ाने की आकांक्षा आदि अनेकों कारणों से भाषाई निष्ठा बदल सकती है। भाषा के प्रभाव का अनंत विस्तार राज्य के विस्तार तथा राजनीति ऐसे क्षेत्र हैं जिसमें इसके चमत्कारिक सामाजिक रूपान्तरण होते देखा गया है।

यूरोप के सन्दर्भ में भाषा के विकास की यदि बात की जाए तो दसवीं से लेकर अठारहवीं सदी तक सारे संसार में भाषा माध्यम के द्वारा समाजीय ग्रन्थों में भाषाओं का प्रभाव यूरोप मे कम होता गया। या यूँ कहा जाए कि कुछ हद तक मिट भी गया। इसी समय यातायात की सुगमता तथा सामुदायिक शक्ति के जोर ने एक नये सामाजिक रूपांतरण को जन्म दिया। प्रमाणिक भाषाओं की चौखट में अड़ोस–पड़ोस की बोलियों एवं उपभाषाओं ने विलीन होकर समाज का दायरा विस्तृत बना दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि इससे भाषाई शक्ति की वृद्धि हुई और नवीन शासनों का निर्माण भी हुआ। यही नहीं इसके साथ पुरानी ग्रांथिक भाषाओं का प्रभाव घटा, क्षितिज समाज में भाषाई स्तर पर क्षेत्र का विस्तार हुआ। जिससे जनता तथा क्षितिज समाज के बीच खाई पट गई और एक नई राजनैतिक शक्ति उभर आई।

बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक (अर्थात दूसरे विश्व युद्ध के बाद यह स्पष्ट को गया कि भाषा किसी समाज की पहचान तथा उसके प्रतीक के रूप में उभर रही है। इसके बावजूद कुछ क्षेत्रों के अन्तर्गत संप्रेषण–माध्यम के रूप में कई बोलियों तथा उपभाषाओं से भी काम लिया जाता है। यह स्थिति इंडोनेशिया, मोरक्कों, फिलीपीन और कई अफ्रीकी देशों में देखी जा सकती है। यद्यपि इन भाषाई क्षेत्रों में कोई पुरानी साहित्यिक परम्परा नहीं है। राष्ट्रवाद से उत्पन्न राष्ट्रीयतावाद ने भावना के बल पर बहु भाषा–भाषी प्रदेशों–देशों को भी अपनी एक राष्ट्रभाषा निर्माण के लिए प्रयत्न करने की दिशा में मजबूर किया है क्योंकि राष्ट्रीय स्तर के भाषा माध्यम के बिना सम्प्रेषण असम्भव है। सामाजिक तथा राजनैतिक शक्तियों के निर्माण में इससे अधिक अवरोध पैदा होना है।[12]

दुनिया के अन्य देशों के साथ ही यूरोप की निजी भाषा के प्रति निष्ठा ने भारत को भी अपने आगोश में ले लिया। इसका स्पष्ट प्रभाव बीसवीं सदी के प्रथम चरण से लेकर स्वराज्य की प्राप्ति तक स्पष्ट रूप से अवलोकित किया जा सकता है। आन्ध्र प्रदेश के वासियों ने सन् 1910 ई0 में मद्रास प्रेसीडेंसी से अलग होने की जब मांग की तो एकाएक तो किसी को यह समझ में नहीं आया कि आखिर यह मुद्दा क्या है? तेलगु बोलने वाले मद्रास प्रेसीडेंसी (पुराने) में संख्या कम नहीं थी और काफी तादाद में वह तमिल प्रदेश के सभी जिलों में निवास करते थे। बड़े आश्चर्य की बात है कि तमिल प्रदेश में रहने वाले तेलगु लोगों ने आंध्र को अलग किए जाने के आन्दोलन में उत्साह नहीं दिखाया। इन तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ''भाषाई आन्दोलन महज भाषागत ही नही बल्कि प्रदेश भूमिगत है, संस्कृत और साहित्यगत नहीं बल्कि समाजशक्तिगत है जो राजनैतिक शक्ति का स्रोत बना रह सकता है। भाषाई आन्दोलन कभी धर्म का चोंगा ओढ़ता दिखाई देता है, कभी संस्कृति, जाति धर्म इनकी शक्तियाँ गलने लगीं और संगठन के सूत्र के रूप में भाषा की शक्ति बढ़ने लगी। इसलिए सामाजिक शक्ति के संचय

हेतु भाषा का आश्रय अधिक समर्थ माना जाने लगा है। यही कारण है कि यूरोप के अन्य देशों के राष्ट्रों ने जब–जब अपना भौगोलिक नक्शा बनाया, तब–तब अपने भू–भाग में सम्प्रेषण, शासन तथा संस्कृति के भाषाई प्रतिरूप का भी नाम निर्देश किया।[13]

वह ऐसे कौन से तत्व हैं जिनसे भाषा समृद्धि होती है और उसका सुदृढ़ विकास होता है। भाषा की समृद्धि तथा उसके निरंतर विकास के दो क्षेत्र हैं। प्रथम क्षेत्र वह होता है जो वस्तुपरक ज्ञान की वृद्धि की अपेक्षा करता है। और द्वितीय वह जो भावनापरक ज्ञान की भाषाई समृद्धि के इतिहास पर विवेचन करने से यह ज्ञात होता है कि अधिकांश भाषाओं ने अधिकतर भावनापरक विकास में अधिक तरक्की की और वस्तुपरक साहित्य विकास से कम। यह भेद ज्यादा सम्पन्न भाषा तथा भाषाओं के हस्तक्षेप से पैदा हुआ। इस हस्तक्षेप से मुक्त होने का प्रयत्न यूरोप में हुआ जो लैटिन और ग्रीक भाषाओं की शक्ति से ग्रस्त था। हालाँकि ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन किया जाए तो यूरोपीय भाषाओं की मुक्ति का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। एक समय ऐसा था कि जब अंग्रेजी की स्थिति बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती थी। सत्रहवीं शताब्दी तक अंग्रेजी की स्थिति ठीक–ठाक थी। अंग्रेजी शासकों की इच्छा शक्ति ने इतिहास में कभी न छिपने वाले सूर्य की तरह अपनी भाषा अंग्रेजी को भी सबलता प्रदान की। अंग्रेजी शासकों की इस भाषानीति के आधार पर कहा जा सकता है कि कोई भाषा अपने आपमें न अशक्त होती है ओर न ही सशक्त। ये दोनों अशक्तता एवं सशक्तता उसके बोलने वालों की सीमित या अनंत शक्ति के प्रतीक रूप में ही अपने को पेश करता है। अगर डेढ़–दो सौ साल में अंग्रेजी, जिसके बोलने वालों की संख्या और निवास का रकवा आन्ध्र प्रदेश के बराबर भी नहीं है, उनकी भाषा विश्वविख्यात समृद्ध तथा शक्ति सम्पन्न भाषा बन सकती है तो कोई वजह नहीं कि दूसरी भाषाएँ जो अंग्रेजी जैसी सक्षम नहीं बना सकेगी। भाषा का भावना परक साहित्य, असंख्य मनीषियों की संचित अपार ज्ञान–राशि का और उनके निरंतर परिश्रम का अनुदान है। किसी भी भाषा के लिए इन दोनों पक्षों की समृद्धि समान रूप से वांछनीय है और समाज के लिए उपादेय।[14]

जहाँ तक भाषा के उपयोग की बात उठती है तो इसका दायरा काफी विस्तृत आकार लिए हुए है। भाषा के उपयोग का दायरा साधारणतयः तीन स्तरों पर विभाजित किया जा सकता है। भाषा के ये स्तर उसके उपयोग के माध्यम से सम्बन्ध रखते हैं। प्रथम संप्रेषण माध्यम, द्वितीय कार्य माध्यम और तृतीय को ग्रन्थ माध्यम कहा जा सकता है। सम्प्रेषण माध्यम सबसे अधिक संतोष तथा शक्ति प्राप्त का स्तर हैं क्योंकि वह जन–विस्तृति का स्तर है इसके साथ ही जनता के स्तर का भी। संप्रेषण का स्तर सम्पर्क तथा साक्षरता के साथ सीधे रूप में जुड़ा हुआ है। इसलिए यह मान लिया जाता है कि यही स्तर सबसे अधिक प्रधान है। दूसरा स्तर कार्य माध्यम सेवा का माध्यम माना जाता है। इसे कुछ हद तक समाज निर्माण का माध्यम भी माना जा सकता है। वास्तव में इस वर्ग का सम्बन्ध समाज के उस वर्ग के साथ जुड़ा हुआ है जो मध्यम वर्ग कहलाता है, यह वर्ग शिक्षित होने के साथ ही समाज में व्यवस्था, व्यापार, शिक्षण, उद्योग राजनीति तथा ऐसे अन्याय पेशों में लगा रहता है। भाषा के उपयोग का तीसरा ग्रंथित कहलाता है जो सही रूप में वर्तमान तथा भविष्य के लिए वास्तविकता तथा आदर्श का चित्र हमारे मस्तिष्कों में अंकित करता रहता है। इसके संचय, प्रचार, प्रचुरता, उपादेयता से सारा समाज लाभान्वित होता है। इसमें कोई दो राय नही हैं कि विगत दशकों से भाषा का सम्प्रेषण माध्यम का दायरा काफी विस्तार पा गया है। इसके परिणाम स्वरूप आज प्रादेशिक स्तर पर सिवाय प्रादेशिक के और किसी भाषा का उपयोग नहीं होता। हालाँकि इने–गिने कुछ वर्गों में जो उच्च शिक्षित समाज तक सीमित हैं उनमें अंग्रेजी का उपयोग कम नहीं हुआ है। आंकड़े इस बात के गवाह हैं कि धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में अंग्रेजी करीब–करीब समाप्त सी हो गई है। लेकिन जहाँ तक कार्य माध्यम का प्रश्न है तो यहाँ नज़ारा कुछ दूसरा ही दिखाई देता है। इस स्थिति के दो कारण गिनाए जाते हैं। प्रथम भारतीय भाषाओं में इसके लिए क्षमता का अभाव और दूसरा, शिक्षित समाज में अंग्रेजी को छोड़कर भारतीय भाषाओं को अपनाने के प्रति उपेक्षा, बहुत हद तक अनिच्छा/काफी हद तक ये

दोनों कारण सही हैं। इन्हीं कारणों से सही भाषाई नीति, भाषाई विस्तार और साथ ही साथ, जन समाज के दबाव के बावजूद भारतीय भाषाओं को वह गौरव नहीं मिल पा रहा है जो उसका अपना है और उसे विधिवत मिलना चाहिए।[15]

वास्तविकता यह है कि कार्य भाषा के स्तर पर इसलिए विरोध एवं विवाद हो रहे हैं कि इन क्षेत्रों में भी अंग्रेजी का वर्चस्व भारतीय भाषाओं में अवतरित नहीं हुआ। तुलनात्मक रुप से यद्यपि अंग्रेजी का स्तर ठीक नहीं कहा जा सकता है लेकिन इसके प्रति मोह कोई त्याग नहीं पा रहा है। अपनी भाषा के प्रति–प्रेम और सद्भावना रखते हुए भी अधिकांश भारतीय अपनी भाषा में कार्य करने की सुगमता नहीं देखते। इसके साथ ही भारतीय भाषाओं के प्रति लगाव रखने वालों को जब सरकारी या गैर सरकारी दफ्तरों में अंग्रेजी के द्वारा काम करने का प्रशिक्षण दिया जाने लगा है। इसका प्रतिकूल प्रभाव शिक्षित कार्यकर्ताओं, सरकारी तथा गैर सरकारी लोगों पर पड़ना स्वाभाविक है। भारतीय भाषाओं में हिन्दी को अग्रणी स्थान प्राप्त है वह अपनी ढेर सारी अच्छाईयों के कारण बहुजन समाज में व्याप्त है। हालाँकि अपनी अनेक विशेषताओं एवं जन साधारण में लोकप्रिय होने के बाद भी वह निरन्तर बढ़ने और बढ़ाने की प्रक्रिया में अभी उलझी हुई है।

सन्दर्भ संकेत

1. भाषा और समाज–राम विलास शर्मा, पृ0 61
2. भाषा और भाषिकी–देवी शंकर अवस्थी, पृ0 104
3. वास्तव में इस शब्द की व्युत्पत्ति अक्कदी भाषा के बाबेल शब्द से है जो बाबईलु का संक्षिप्त रूप है। बाब–ईलु का अर्थ है ईश्वर का द्वार। अज्ञानवश ध्वनि साम्य के आधार पर इसे यहूदी भाषा हिब्रू के बालल शब्द से सम्बद्ध मान लिया गया है। बाइबिल की मूल भाषा हिब्रू है। यह लोक व्युत्पत्ति का मनोरंजक उदाहरण है।
4. भाषा और भाषिकी–देवी शंकर अवस्थी, पृ0 105
5. भाषा और समाज, राम विलास शर्मा, पृ0 61
6. भाषा और भाषिकी, देवी शंकर द्विवेदी, पृ0 105–106
7. भाषा और भाषिकी–देवी शंकर द्विवेदी, पृ0 106
8. भाषा और भाषिकी, डॉ0 देवी शंकर द्विवेदी, पृ0 107
9. लियोनार्ड ब्लूम फील्ड, लैंग्वेज, 1955, पृ0 40
10. मेलविल जेकब्स और वी0 जे0 स्टर्न, जेनरल एंथ्रोपौलौजी, 1952, पृ0 17
11. भाषा और समाज – राम विलास शर्मा, पृ0 65
12. समन्वय का सूत्र हिन्दी – डॉ0 मोटुरी सत्य नारायण, पृ0 24
13. समन्वय का सूत्र – हिन्दी डॉ0 मोटुरी सत्यनारायण, पृ0 25
14. समन्वय का सूत्र : हिन्दी, डॉ0 मोटुरी सत्यनारायण, पृ0 26
15. समन्वय का सूत्र : डॉ० मोदुरी सत्यनारायण, पृ0 29

❑❑

आधुनिक युग की भूमिका में–अन्धायुग

डॉ0 अंजली साहू
अंशकालिक–प्रवक्ता
शशिभूषण डिग्री कॉलेज, लखनऊ

डॉ0 धर्मवीर भारती एक प्रयोगवादी कवि है। 'आपके साहित्य में विषयगत वैविध्य होने के साथ–साथ विधागत वैविध्य आश्चर्यजनक रूप से दिखाई देता है। ज्यादातर साहित्यकार अपनी किसी एक विद्या से ही प्रसिद्धि प्राप्त करते है पर वे लोग विरले होते है, जिनका सब कुछ उत्कृष्ट हो, हर कृति नई बुलंदियों को छूकर आए। भारती जी का नाम ऐसे ही लोगों में शामिल है। जहाँ से भी देखो उनके साहित्यिक कद की ऊँचाई एक समान ही दिखती है। आपने गद्य एवं पद्य की प्रायः सभी विधाओं को अपनी अभिव्यक्ति का सशक्त एवं सफल माध्यम बनाया। अन्धायुग और कनुप्रिया, ठंडा लोहा, सात का गीत वर्ष, गुनाहों का देवता आदि आपकी लोकोपयोगी रचनाएं है। यद्यपि 'अन्धायुग' के बाद अन्य काव्य नाटकों का प्रणयन हुआ किन्तु काव्य नाटकों की श्रेणी में अन्धायुग का स्थान प्रमुख है।

पौराणिक पृष्ठभूमि में समकालीन जिन्दगी के यथार्थ को प्रक्षेपित या उदघाटित करने वाली रचनाओं में अन्धायुग एक आदर्श है जिसमें महाभारत के 18वीं दिन की संध्या से प्रभास तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु दर घटनाओं का वर्णन है। अंधायुग की ज्यादातर कथावस्तु प्रख्यात है कुछ स्वकल्पित पात्र तथा घटनाएं है जिनसे कथानक को गति मिलती है। अंधायुग में प्रहरी जन जीवन की निरर्थकता और रिक्तता को व्यक्त करते है। प्रहरी व्यापक परिप्रेक्ष्य में मानव की स्थिति के प्रतीक बन जाते है। पौराणिक और आधुनिक दोनों सतरों पर युद्धजन्य संस्कृति की अनैतिकता अमर्यादा के अनुरूप 'अन्धायुग' के पात्र मूल्यांधता को किसी रूप या पक्ष के प्रतीक 'अन्धायुग' में अतीत के प्रतीकों द्वारा वर्तमान को अभिव्यक्ति मिलती है। आधुनिक बोध के धरातल पर 'आन्धायुग' आधुनिक और पौराणिक प्रतीक नाटकों की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसमें आपने पौराणिक समस्याओं को उठाया है और उनका समाधान प्रस्तुत किया। सारी कथा 20वीं शताब्दी के दो महायुद्धों एवं तत्‌जन्य विकृतियों की कथा बन गई है। इसमें महायुद्धीय यातना तृतीय विश्व युद्ध की आशंका व्यक्तिगत और दलगत एवं स्वार्थगत सिद्धान्तो ग्लानि, व्यर्थता बोध, व्याप्त विकृतियां ब्रह्मस्त्र को परमाणु बम मानना और उसकी संहारक शक्ति का विवरण है। निराशा, घुटन, उदासी आदि का वर्णन आधुनिक समस्याओं के संदर्भ में है। अश्वत्थामा की वेदना, मनोद्वन्द्वएवं युयुत्स की आत्महत्या आधुनिक वातावरण को सघन बना देती है। आज मानवतावादी मस्तिष्क पर संकट छाया हुआ है। सर्वत्र भय और त्रास छाया व्याप्त है। इन सब की अभिव्यक्ति 'अन्धायुग' में हुई है। इस प्रकार 'अन्धायुग' की कथा द्वापर के महाभारत से लेकर वर्तमान युग की कथा बन जाती है। यह युद्धोपरान्त कला–कथा धरित रचना है जिसमें 'भारती जी ने महाभारतोत्तरीय युग की पृष्ठभूमि में अपनी समकालीन महायुद्धोत्तरी स्थिति–परिस्थितियों का समावेश करते हुए युग चित्रण किया है तथा युगसम्य को देखते–दिखाते हुए अतीत की पृष्ठभूमि मे समकाल को संजोया है। आपके अनुसार 'अन्धायुग' का धृतराष्ट्र आज का सत्ताधारी है। अर्जुन, अश्वत्थामा जैसे ब्रह्मस्त्रधारी रूस अमेरिका जैसे आयुद्ध उन्नत शक्तियाँ है। युधिष्ठर पाण्डव पक्ष विजय के सूखे आधुनिक राजनीतिज्ञ है। युयुत्सु आज को सत्य का पक्षधर युवा वर्ग है। अश्वत्थामा पाकिस्तान जैसा प्रतिरोधी तथा कृपाचार्य–कृतवर्मा सहयोगी शक्तियां एवं कृष्ण मानवतावादी विचारक है। साथ ही तत्कालीन सभी युद्धोपरान्त की परिस्थितियाँ वस्तुतः बीसवीं शताब्दी में हुए दो–दो विश्व युद्धों के बाद की अर्थात् समकालीन परिस्थितियाँ है। व्यास की वाणी में मानों स्वयं 'भारती

जी' आज की महाशक्तियों को तृतीय विश्वयुद्ध और ब्रह्मस्त्र जैसे परमाणु आयुधों के प्रयोग से रोकने का आग्रह करते है।

मैं हूँ व्यास
ज्ञात क्या तुम्हें है परिणाम इस ब्रह्मस्त्र का?
पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नही होगी
शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुण्ठग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जाएगी।
जो कुछ भी ज्ञान संचित किया है मनुष्य ने,
सतयुग में, त्रेता में, द्वापर में,
सदा–सदा के लिए होगा विलीन वह
गेहूँ की बालों में सर्प फुफकारेगा
नदियों में बह–बह कर आयेगी पिघली आग।

वस्तुतः 'भारती जी' की रचना अन्धायुग की रचना का मुख्य उद्देश्य युद्ध की समस्या है जो प्राचीन और आधुनिक दोनों काल से होते आये हैं और शायद होते भी रहेंगे। तरह–तरह के न्यूक्लियर बम आदि का अविष्कार किया जा रहा है जिसका सदुपयोग और दुरूपयोग दोनों ही हो रहा है अभी कुछ समय पहले 11 सितम्बर 2001 अमेरिका की त्रासदी का एक काला दिन बनकर रह गया है जिसकी भरपायी अभी भी नही हो पायी है। उसके पश्चात 'सुनामी' लहरो के प्रकोप से भी देश नहीं बच पाया। आए दिन भूकंप की खबरें, अधिक ठंड, अधिक गर्मी ये सब समस्याएँ है, जो समाज में व्याप्त है। कवि ने सभी समस्याओं के समाधान को अपने काव्य के माध्यम से प्रस्तुत करना ही अपना उद्देश्य समझा है।

यदि 'भारती जी' के 'अन्धायुग' को ध्यान से पढ़ा जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि पुराणकथा के माध्यम से 'भारती जी' ने आधुनिक जीवन की समस्याओं तथा उसकी वास्तविकता को सामने ही लाकर रख दिया हो तथा इस पौराणिक कथा को युग के अनुरूप ढालने के लिए इन्होंने भाषा में तत्सम् शब्दों का प्रयोग भी काफी अधिक किया है। यद्यपि नाटक का मंगलाचरण संस्कृत भाषा में है तथा अश्वत्थामा द्वारा किये गये शिव के ओजस्वी स्त्रोत की भाषा भी संस्कृत है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी तत्सम् शब्द है जो प्राचीनता की छवि लिए हुए है – जैसे– वत्स, मातुल, असि, किरीट आदि। 'अन्धायुग' में अपमान एवं प्रतिशोध आधारभूत वृत्तियों के रूप में संयोजित है पर इन दोनों के मूल में युद्ध की स्थिति भी विद्यमान रही है अपमानित व्यक्ति प्रतिशोधात्मक दृष्टि से संघर्ष अथवा युद्ध का मार्ग अपनाता है। वस्तुतः युद्ध आधुनिक युग की अवश्यम्भावी स्थिति रही है और यह भी ज्ञात है कि युद्ध की यातनाएं अथवा उसके संकेत का प्रभाव सीमित नहीं रह पाता। युद्ध में नैतिकता, न्याय, विवेक का स्थान नही होता है उसमें मात्र रक्त की प्यास रहती है इतना ही नहीं इसके परिणामस्वरूप केवल सभ्यता के खण्डहर, सूने राजभवन मकान क्षत–विक्षत तन, गिद्ध एवं भिन्नाती मक्खियों ही शेष रह जाती है। युद्ध एवं शान्ति भारत की नहीं विश्व की सनातन समस्या बन चुकी है। कहीं वैयक्तिक स्वार्थो के लिए युद्ध किया जाता है, कही जन हितार्थ के लिए युद्ध के मूल कारण दोनों में कोई क्यों न हो जन विनाश तो सम्भव ही है। आज का मनुष्य क्या करणीय है अथवा क्या अकरणीय है से ग्रसित है। इसलिए यह कहना काफी हद तक तर्क संगत है कि 'अन्धायुग' इतिहास का पुर्नलेखन नहीं है। वह अतीत की भाषा में लिखा गया युगबोध का प्रमाण है। अतः इस आधुनिकता की चर्चा उसके समसामयिक संदर्भो का संकेत किया बिना पूरी नही हो सकती क्योंकि नाटककार का अपने देशकाल के साथ जीवन्त सचेतन सम्बन्ध अपने वर्तमान से उसका 'सम्बन्ध' ही उसे आधुनिक बनाता है। 'अंधायुग' की काली छाया द्वापर के साथ बीती नही आज भी हम पर छाई हुई, कुछ ऐसे उदाहरण जो आज समसामयिक सन्दर्भो से

मेल खाते हैं 'अन्धायुग' में विद्यमान है। जैसे संजय की तटस्थता की अंतिम परिणति में एक हद तक भारत की विदेश नीति की झलक दिखायी देती है तो प्रहरियों के संवादो में आम आदमी की अर्थहीनता, पीड़ा विवशता प्रकट होती है।

''हम सबके मन में गहरा उतर गया है युग
अँधियारा है, अश्वत्थामा है, संजय है,
है दासवृत्ति उन दोनों वृद्ध प्रहरियों की
अंधा संशय है, लज्जाजनक पराजय है।''

कहने का अभिप्राय मात्र इतना है कि युद्ध अंतिम परिणति में मानव मूल्यों के विरूद्ध षड़यंत्र होता है। क्योंकि युद्ध के बाद अराजकता, अशांति, महामारी, भुखमरी ध्वंस इत्यादि ही शेष रहते है। वस्तुतः यह सब विघटनकारी तत्व है। विघटन की यह प्रक्रिया केवल आंतरिक स्तर पर नही होती वरन् यह प्रक्रिया बाह्य स्तर पर भी उभर कर आती है। वाह्य स्तर पर विघटन का सम्बन्ध हत्या, रक्तपात आतंक से है, जबकि आन्तरिक स्तर पर मानवीय चरित्र, मर्यादा और आतंक से सामाजिक, सांस्कृतिक बोध से उत्पन्न हुई विकृति से है। 'धर्मवीर भारती' जी ने अपने 'अन्धायुग' में युद्ध की पृष्ठभूमि पर समकालीन युद्धों की विघटनकारी स्थितियों को इस प्रकार उद्घाटित किया है।

''टुकड़े–टुकड़े हो बिखर चुकी मर्यादा
उसको दोनों ही पक्षों ने तोड़ा है,
दोनों ही पक्षों में विवेक ही हारा,
दोनों ही पक्षों में विवेक ही हारा,
दोनों ही पक्षों में जीता अंधापन
अधिकारों का अंधापन जीत गया''।

इस प्रकार 'महाभारत' की कथा वर्तमान युग के द्वन्द्वग्रस्त मानव की मानसिक स्थिति के विवेचन विश्लेषण के स्तर पर सर्वाधिक प्रासंगिक रही है। 'अंधायुग' का संजय कवि का प्रतीक है। वह शब्द शिल्पी है। तटस्थ द्रष्टा है। उसकी तटस्थता कभी–कभी बहुत उलझी हुई हो जाती है, वह जो कहना चाहता है, उसमें और जिन शब्दों में कहना चाहता है, उसमें संघर्ष उठ रहा होता है। यह निष्क्रिय तटस्थता और सत्ता से जुड़े रहने का परिणाम है। यही वर्तमान युग के साहित्यकारों की वस्तुस्थिति है, उनका द्वन्द्व है। 'अन्धायुग' का अश्वत्थामा आधुनिक युग के दिग्भ्रमिक युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। वह धर्मराज युधिष्ठिर के अर्द्धसत्य और युद्ध संस्कृति से टकराकर–मर्यादा, सत्य आस्था जैसे शाश्वत मूल्यों को नाकारा घोषित कर देता है।

इस प्रकार महाभारत की विख्यात घटनाओं पर आधारित कथा को 'भारती जी' ने अपनी उर्वरा शक्ति के बल पर नया रूप देने का प्रयास किया है इसलिए प्रायः काव्य नाटकों की श्रेणी में अन्धायुग एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। वस्तुतः युद्ध के बाद समाज में जो विकृतियाँ फैलती हैं उसका बड़ा हृदयस्पर्शी चित्र 'अंधायुग' में प्रस्तुत किया गया हे। मात्र कथावस्तु को ही नहीं 'भारती जी' ने 'अंधायुग' में परम्परागत पौराणिक पात्रों को आधुनिक संदर्भ में देखा है।

अंधायुग का समस्त विस्तृत परिवेश ही अंधेपन का शिकार है। सभी क्षेत्रों में अंधापन फैला हुआ है। ऐसी परिस्थिति में अंधेपन की विजय स्वाभाविक है। इस अंधेपन को 'भारती जी' ने धृतराष्ट्र के माध्यम से व्यक्त किया है। धृतराष्ट्र की तरह आज के सत्ताधारी भी राज–समाज में अंधापन फैलाए हुए है।

''अंधो से शोभित था युग का सिंहासन
दोनों ही पक्षों में विवेक ही हारा।''

इस प्रकार पौराणिक पृष्ठभूमि में समकालीन जिंदगी के यथार्थ बोध को प्रक्षेपित या उद्घाटित करने वाले के लिए 'अन्धायुग' एक श्रेष्ठ उदाहरण है। महाभारत के अट्ठारहवें दिन की सन्ध्या से प्रभास क्षेत्र में कृष्ण की मृत्यु तक घटनाएँ वर्णित हैं। किन्तु महत्वपूर्ण यह पौराणिक आख्यान नही है अपितु आधुनिक जीवन में व्याप्त वे समस्याएँ है जिनके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आश्रय ग्रहण किया गया है। 'भारती जी' ने इसकी प्रेरणा दो–दो महायुद्धों से त्रस्त अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से ग्रहण की है। इसमें वर्णित निराशा, पशुता, व्यर्थता और अनास्थावादी स्वर युद्धोत्तर स्थिति का परिणाम है। युद्धीय दुष्परिणामों युगव्यापी पतनोन्मुख स्थिति चित्रण और भावी स्थिति की संभावित दुरावस्था से परिचित कराना ही अपना उद्देश्य समझा तथा 'अंधायुग' के माध्यम से आज के व्यक्ति की मनोग्रन्थि को पुराण सन्दर्भ में पकड़ने की कोशिश की है। युद्ध जन्य अंधी संस्कृति तथा उससे उत्पन्न अनास्थावादी स्वरों को मिथकीय कौशल से 'अंधायुग' अतीत और वर्तमान दोनों स्तरों पर एक साथ बांधे हुए है। महाभारत युद्ध के भयंकर परिणाम मनुष्य को आने वाले भविष्य के लिए चेतावनी देते है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि–'अन्धायुग' मिथकीय काव्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। जिसके माध्यम से 'धर्मवीर भारती' ने महाभातोत्तर कालीन परिवेश को आधुनिक युग दृष्टि से सम्पृक्त करने का अभूतिपूर्व प्रयास किया है।

'अन्धायुग' नयी कविता की बहुचर्चित और बहुत सशक्त कृति है। कवि ने महाभारत की कथा को लेकर आज के जीवन की गहन विसंगतियों, भायनक टूटन–विघटन, मूल्य विच्छिन्नता, त्रास और द्वन्द्व को चित्रित किया है। 'महाभारत' अपने आप में आधुनिक काल की द्वन्द्वात्मक प्रकृति को व्यक्त करने में समर्थ है किन्तु कवि ने इस युद्धि की ख्यात घटनाओं प्रसंगों और पात्रों को लेकर उनका ऐतिहासिक निर्वाह करते हुए भी उनका नियोजन इस दृष्टिकोण से किया है कि वे अपने भीतर के समग्रभाव से हमारे युग को ध्वनित करें।

❑❑

एक दर्जन कृतियों के सृजनकर्ता एवं अनेक प्रशासनिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन कर चुके डॉ0 रामकमल राय कृति की राह से कृतिकार की निर्मिति और आचरण की राह से व्यक्ति का मूल्यांकन उनका सिद्धांत जैसा था। डॉ0 राय ने अज्ञेय की काव्यनुभुति की तलाश करते हुए उनकी सौदर्य चेतना, सांस्कृतिक चेतना, स्वाधीनता बोध, प्रणयानुभूति के साथ ही साथ काव्य भाषा को परखने की कोशिश है। आपकी दृष्टि में अज्ञेय की काव्याव्यक अनुभूति की अभिव्यक्ति से तनिक भी कम महत्व उनके गद्य लेखन का नही है। चाहे उनके उपन्यास, कहानियाँ, संस्मरण, आत्मवृत्त हों ये सभी कृतियाँ काव्य कृतियों से कमतर नहीं हैं।

- कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

ध्वनिवाद का क्रमिक विकास

डॉ. अनुभा बाजपेयी
एम. बी. कालेज, बाराबंकी

काव्य–शास्त्र के ग्रन्थों के अनुशीलन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसमें अनेक सम्प्रदाय विद्यमान थे। काव्यशास्त्रियों के सामने प्रधान विषय था काव्य की आत्मा का विवेचन। वह कौन सी वस्तु है, जिसकी सत्ता रहने पर काव्य में काव्यत्व विद्यमान रहता है? वह कौन सा पदार्थ है जो काव्य के अंगों में सबसे अधिक उपादेय और महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रश्न के उत्तर में विभिन्न सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुई। कुछ विद्वान अलंकार को ही काव्य का प्राण मानते हैं, कुछ गुण या रीति को और कुछ विद्वान ध्वनि को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हैं। इस प्रकार काव्य की आत्मा के विवेचन में भेद होने के कारण भिन्न भिन्न शताब्दियों में नये नये सम्प्रदायों की उत्पत्ति होती गई। अलंकार सर्वस्व के टीकाकार समुद्रबन्ध ने इन विभिन्न सम्प्रदायों के उदय का जो कारण बतलाया है वह बहुत ही युक्तियुक्त है। उनका कहना है कि विशिष्ट शब्द और अर्थ मिलकर ही काव्य होते हैं। शब्दार्थ में व्यंग्यमूलक वैशिष्ट्य मानने वाले आचार्य आनन्द वर्धन हैं जिन्होंने ध्वनि को उत्तम काव्य स्वीकार किया है। आचार्य आनन्द वर्धन ने ध्वन्यालोक के आरम्भ में ध्वनिविरोधी तीन मतो का उल्लेख किया है जो उनसे प्राचीन हैं तथा काव्य में ध्वनि की स्वतन्त्र सत्ता मानने के विरोधी हैं। इन तीनों सम्प्रदायों के नाम हैं–

1. अभाववादी 2. भक्तिवादी और 3. अनिवर्चनीयतावादी।

अलंकार–सर्वस्व के टीकाकार जयरथ ने अपनी 'विमर्शिणी' में ध्वनि की बारह विप्रतिपत्तियों का निर्देश किया है जिनमें ध्वनि का विरोध माना जाता है। इन सबका अन्तर्भाव कर आचार्य आनन्दवर्धन मुख्यतया तीन ही ध्वनि–विरोधी पक्ष मानते हैं। इनका खण्डन कर उन्होनें ध्वनि की पृथक् स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध की है। काव्यशास्त्र के मुख्यतयः 6 सम्प्रदाय होते हैं–

सम्प्रदाय	आचार्य
1. रस सम्प्रदाय	आचार्य भरतमुनि
2. अलंकार सम्प्रदाय	आचार्य भामह
3. रीति सम्प्रदाय	आचार्य वामन
4. वक्रोक्ति सम्प्रदाय	आचार्य कुन्तक
5. ध्वनि सम्प्रदाय	आचार्य आनन्दवर्धन
6. औचित्य सम्प्रदाय	आचार्य क्षेमेन्द्र

ध्वनिमत को हम रस सिद्धान्त का विस्तृत रूप कह सकते हैं। 'रस कभी वाच्य नहीं होता वह सर्वदा व्यंग्य ही होती है।' इसी विचारधारा को आचार्य आनन्दवर्धन ने आगे बढ़ाया। उन्होनें वाच्यार्थ के अतिरिक्त प्रतीयमान अर्थ की सत्ता काव्य में सिद्ध की और उसे ही काव्य का आत्मभूत तत्त्व माना।

सर्वप्रथम 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग वैयाकरणों ने किया है। उन्हीं का अनुसरण कर साहित्यशास्त्रियों ने भी ध्वनि शब्द का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। साहित्य जगत इस शब्द के लिए वैयाकरणों का ऋणी है। विद्वान वैयाकरण, स्फोट को अभिव्यक्त करने वाले वर्णों को 'ध्वनि' की संज्ञा से अभिहित करते थे। उन्हीं के मत का अवलम्ब ग्रहण कर साहित्यिकों ने भी साक्षात् अर्थ से भिन्न वाच्यार्थ के अतिरिक्त किसी अन्य अर्थ (व्यंग्यार्थ) की व्यंजना कराने वाले वर्ण शब्दार्थ–युगलरूप–काव्य को ध्वनि की संज्ञा से अभिहित करना प्रारम्भ किया। इस मत का संकेत

आचार्य मम्मट ने अपने ग्रन्थ काव्यप्रकाश में किया है। ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन ने अपने ध्वनि मत की प्रमाणता बताने के लिए वैयाकरणों को प्रथम विद्वान बताते हुए स्वीकारा है। हम जिन घट आदि वर्णों (घ्+अ+ट्+अ) का मुख से उच्चारण करते हैं और कान द्वारा उनका श्रवण किया जाता है, वे 'नाद' या ध्वनि कहलाते हैं। वैयाकरणों ने घट आदि वर्णों के अतिरिक्त स्फोट नामक एक नित्य शब्द की स्थिति स्वीकार की है, और यह मान लिया है कि वह 'स्फोट' नाम का नित्य शब्द बुद्धि में स्थित रहता है। ये ध्वनियाँ जिन्हें अनित्य कहा जाता है, उसी 'स्फोट' नामक नित्य शब्द को अभिव्यक्त करती है। यह स्फोट रूपी शब्द ब्रह्म ही अर्थ को भी प्रकट करता है। इसी प्रकार वैयाकरणों ने स्फोट नाम के नित्य शब्द को व्यक्त करने वाले अनित्य वर्णों (घ्+अ+ट्+अ) को ध्वनि की समज्ञा प्राप्त है। शब्द से अर्थोपलब्धि किस प्रकार होती है? शब्द का कौन सा भाग अर्थ का बोध कराता है? शब्द का आदि भाग, मध्य भाग या अन्त्य भाग?लोग वर्णों को क्षण–स्थायी मानते हैं। ऐसा माना जाता है कि एक वर्ण दो क्षण से अधिक नहीं टिकता। इस प्रकार जब हम किसी भी शब्द का उच्चारण करेंगे जैसे– 'घोड़ा' तब उस घोड़ा शब्द के चार वर्णों (घ्+ओ+ड़्+आ) में से अंतिम वर्ण आ तक पहुँचते पहुँचते पहले के वर्ण नष्ट हो जाएंगे। परिणामस्वरूप अंतिम वर्ण से किसी भी तरह घोड़ा अर्थ की प्राप्ति होना असम्भव है। इस समस्या को सुलझाने के लिए वैयाकरणों ने दो प्रकार के शब्द माने हैं। एक नित्य और दूसरा अनित्य। यह अनित्य शब्द जो कि वर्णरूप होता है, उसी के द्वारा ध्वनि रूपी नित्य शब्द का व्यंग्यरूप में प्राकट्य होता है। इस तरह नित्य एवं अनित्य दो प्रकार के शब्दों की सत्ता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

ध्वन्यात्मक शब्द के मूल में जिसे हम सब नित्य शब्द की श्रेणी से परिगणित करते हैं, स्फोट सिद्धान्त काम करता है। वैयाकरणों के स्फोट सिद्धांतानुसार यह माना जाता है कि शब्द का उच्चारण करने के अनन्तर अनित्य वर्णात्मक शब्द तो नष्ट हो जाते हैं, किन्तु इन वर्णों के अतिरिक्त पूर्व–पूर्व वर्णों के अनुभव सहित अंतिम वर्णों के अनुभव से, व्यंग्य या प्रतीयमान अर्थ की प्रतीति कराने वाला अखण्ड एवं नित्य शब्द, स्फोट रूप में ही रहता है। इसी के द्वारा शब्दों के माध्यम से अर्थबोध होता है। इस अनुभव का हेतु, वह स्फोटरूप में रहने वाला अखण्ड शब्द ही है। इस प्रकार वैयाकरण अपने स्फोट सिद्धान्त के अन्तर्गत अर्थबोध की प्रक्रिया का समाधान शब्दों की दो कोटि–नित्य शब्द एवं अनित्य शब्द मानकर करते हैं।

ध्वनिवाद की स्थापना का प्रयोजन क्या था?यह बहुत स्पष्ट नहीं हो सका है, किन्तु इस सिद्धान्त की स्थापनाओं को देखकर इतना तो निर्भ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि भामह, वामन, उद्भटादि आलंकारिकों के द्वारा निर्दिष्ट अलंकार की सर्वत्रस्थित प्रतिष्ठा के वर्चस्व को समाप्त करने एवं रस सिद्धान्त के प्रति की जाने वाली उपेक्षा को नष्ट करके उसे वर्चस्व दिलाने के साथ ही साथ अभिधा, लक्षणा एवं तात्पर्य से भिन्न व्यंजना जैसी शक्ति को प्रतिष्ठित करने के लिए आनन्दवर्धनाचार्य ने 'ध्वन्यालोक' नामक ग्रन्थ के द्वारा इस सिद्धान्त को प्रतिष्ठित किया था। परवर्ती काल में आचार्य अभिनवगुप्त, आचार्य मम्मट एवं आचार्य प्रतिहारेन्दुराज आदि ने अपने सबल तथा अकाट्य तर्कों से इसे साहित्य के सर्वोच्च सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित किया। 'ध्वनि' शब्द का सामान्य प्रयोग 'उच्चरित नाद' के लिए किया जाता है। 'नाद' एवं 'ध्वनि' प्रारम्भिक अर्थ की दृष्टि से परस्पर पर्याय है। आचार्य आनन्दवर्धन ने जिस ध्वनि सिद्धान्त को स्वीकार किया है, वह व्याकरण एवं शैव दर्शन पर आधारित है।

आचार्य पतंजलि ने महाकाव्य में नादात्मक ध्वनि का उल्लेख करते हुए बताया है कि–

'प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्द इत्युच्यते।'

लोक में पद तथा अर्थ की प्रतीति कराने वाले श्रूयमाण नाद को ध्वनि कहते हैं। आचार्य पतंजलि ने महाभाष्य में ध्वनि सिद्धान्त के लिए आधारभूत तत्व स्फोट का उल्लेख किया है। ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन, आचार्य अभिनवगुप्त एवं मम्मटाचार्य कश्मीर के शैवागम सिद्धान्त के समर्थक रहे हैं। व्याकरण के स्फोटवाद एवं वाच्य से व्यंजित व्यंग्य की पुष्टि के लिए इन्हें आधार शैवागम सिद्धान्त का मिला। 'शिव' एवं 'शक्ति' को परम्परा में क्रमशः

अर्थ और ध्वनि (वाणी) का प्रतीक माना गया है। अतः ध्वनि सिद्धान्त के पोषण में शैवमत की स्थापनाऐं विशेष रूप में सहायक हैं। दूसरी ओर श्री वी. कणे ने ध्वनि को वेदांत पर आधारित बताया है। ध्वनि सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य आनन्दवर्धन ने विधि एवं निषेध दो तत्त्वों के माध्यम से अपनी ध्वनि विषयक स्थापना रखी है। विधि रूप स्फोटवाद है। यह ध्वनि सिद्धान्त का मूलाधार है। निषेध रूप में, वह सिद्धान्त हैं जो या तो अभिधा, लक्षणा से इतर व्यंग्य (ध्वनि) शक्ति को मानते ही नहीं, या लक्षणाशक्ति में इसका अन्तर्भाव मानते हैं, या ध्वनि के अस्तित्व को स्वीकार तो करते हैं किन्तु उसे विश्लेषण का विषय नहीं मानते। आचार्य आनन्दवर्धन, आचार्य अभिनवगुप्त एवं आचार्य मम्मट तात्पर्य का खण्डन करते हुए व्यंग्य रूप ध्वनि के अस्तित्व का निभ्रान्त शब्दों में प्रतिपादन करते हैं। आचार्य आनन्द वर्धन की ध्वनि–सिद्धान्त की स्थापना में सर्वप्रथम निषेध रूप में तीन–तीन मतों का उल्लेख किया है। आचार्य आनन्द वर्धन से पहले तथा बाद में भी काव्यशास्त्रीय जगत में पर्याप्त विरोध का सामना करना पड़ा था। प्रमुख विरोधियों में भट्टनायक, अलंकारवादी कुन्तक, मीमांसक मुकुलभट्ट, नैयायिक महिमभट्ट आदि ने ध्वनि सिद्धान्त का कट्टरपूर्वक विरोध किया। आचार्य जयरथ 'अलंकार सर्वस्व' की टीका के अन्तर्गत अपने पूर्ववर्ती किसी शास्त्रकार के दो श्लोकों का उल्लेख करते हैं, जिसके अनुसार ध्वनि के 12 विरोधीमत सिद्धान्त होते हैं। 1. तात्पर्य (मीमांसा), 2. अभिधा (प्राचीन मीमांसक तथा मुकुलभट्ट), 3. लक्षणलक्षणा, 4. जहत्स्वार्था, अजहत्स्वार्था दो प्रकार की लक्षणाएँ, 5,6– दो प्रकार के अनुमान, 7. अर्थापत्ति, 8. तन्त्र–श्लेषादि द्वयर्थक प्रयोग कौशल, 9. समासोक्ति तथा अन्य अलंकार, 10. रसकार्यता (दण्डी एवं भट्ट लोल्लट मत), 11. भोग व्यापार (भट्टनायक), 12. व्यापारान्तर बाधनम् (अलंकार्यमत, कुन्तक)। आचार्य आनन्दवर्धन जिस ध्वनि को स्थापित करते हैं, वह न तात्पर्य है, न लक्षणा है, न अनुमान है, न अनिर्वचनीय रस रूप है, न अलंकार्य है, न अर्थापत्ति है और न अलंकार रूप। वह इनमें अन्तर्भुक्त भी नहीं है। ध्वनि इन सबसे भिन्न स्फोट स्वभाव से मण्डित एक भिन्न विशिष्ट तत्त्व है। आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि के विषय में कहा है ''जहाँ अर्थ स्वयं को अथवा शब्द अपने को गुणीभूत करके उस अर्थ विशेष को अभिव्यक्त करे, वह वैयाकरणों द्वारा ध्वनि के नाम से पुकारा जाता है।'' यहाँ पर दो बातें विशेष उल्लेखनीय हैं–

1. अर्थ का अपने को गौण बनाना तथा शब्द का अपने को गौण बनाना,
2. एक अन्य अर्थ विशेष को व्यक्त (व्यंजित) करना।

अन्य अर्थ विशेष का 'व्यंजित' होना इस व्यंजित होने वाले अर्थ विशेष को आचार्य आनन्दवर्धन ''प्रतीयमान'' की संज्ञा देते हैं। इस 'प्रतीयमान' का स्वरूप क्या है? क्या यह शब्द, अर्थ एवं भावना व्यापार से भिन्न कोई अन्य तत्त्व हैं। आचार्य अभिनवगुप्त इस 'स ध्वनिरिति' की व्याख्या करते हुए बताते हैं कि–

''अर्थो वा शब्दो वा, व्यापारो वा।
अर्थोऽपि वाच्यो वा ध्वनितीति, शब्दोऽप्येवम्।
व्यंग्यो वा ध्वन्यते इति व्यापारो वा शब्दार्थयोर्ध्वनम्।
कारिकया तु प्रधान्येन समुदाय एव काव्यरूपो मुख्य तथा ध्वनिरिति प्रतिपादितम्।''

इस प्रकार वह प्रतीयमान, अर्थ रूप, शब्द रूप, व्यापार रूप तीन प्रकार का है। इसीलिए आचार्य अभिनवगुप्त ध्वनि की जब व्युत्पत्तिमूलक परिभाषा देते हैं, तो इस प्रतीयमान का कार्यक्षेत्र अत्यधिक विशद हो उठता है।

वे कहते हैं कि–

1. ध्वनतीति ध्वनिः, यह कर्तृव्युत्पत्तिमूलक प्रतीयमान है।
2. ध्वन्यते इति ध्वनिः, यह शब्दार्थ एवं वाच्यार्थ रूप प्रतीयमान है।
3. ध्वनयति इति ध्वनिः, यह भी कर्तृव्युत्पत्तिमूलक प्रतीयमान है।
4. ध्वन्यतेऽनेन इति ध्वनिः, यह व्यंग्यरूप ध्वनि है।

5. ध्वन्यतेऽस्मिन् इति ध्वनिः, यह काव्य रूप प्रतीयमान है।

इस प्रकार व्यापार भेद से ध्वनि के पाँच व्यावहारिक भेद होते हैं।

एक बार संक्षेप में अब तक हुए ध्वनि सम्प्रदाय के विवेचन में दृष्टि डालते हैं। ध्वनि सम्प्रदाय का प्रवर्तन आचार्य आनन्द वर्धन ने ध्वन्यालोक लिखकर किया है। 'ध्वन्यालोक' भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा में एक अत्यधिक व्यवस्थित शास्त्रग्रन्थ माना जाता है। इस सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य आनन्दवर्धन ने इस ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर उल्लेख किया है कि यह काव्यशास्त्र का कोई नवीन सिद्धान्त नहीं है। पूर्व आचार्यों ने अनेक रूपों में इसके सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। आचार्य आनन्दवर्धन की ऐसी उक्तियों को अनेक स्थानों पर देखा जा सकता है–

''काव्यस्यात्माध्वनिरितिबुधैर्यः समाम्नातपूर्व।''

अर्थात् काव्य की आत्मा ध्वनि है, जिसका कथन विद्वद्जन पहले कर चुके हैं। यही नहीं ध्वनि को परिभाषित करते हुए कहा है–

''....... स ध्वनिरितिसूरिभिः कथितः।''

सूरिभिः शब्द का अर्थ है– 'श्रूयमाणाः' अपनी विद्या में श्रेष्ठ विद्वानजन, व्याकरण वेत्ता अर्थात्,

''प्रथमे हि विद्वांसः वैयाकरणाः व्याकरणमूलत्वात् सर्व विद्यानाम्।''

आचार्य अभिनवगुप्त ने 'पूर्वसूरिभिः' शब्द का अर्थ काव्यतत्त्वार्थज्ञाता से लिया है।

'ध्वनि' शब्द आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा पहली बार नहीं प्रयुक्त किया गया है। यह 'व्यंजकत्व' के अर्थ में है और आनन्दवर्धन ने अनेक स्थलों पर संकेत किया है कि इसे व्याकरणशास्त्र से ग्रहण किया गया है–

''परिनिश्चितनिरपभ्रांशशब्द ब्रह्मणां विपश्चियतांमतमाश्रित्य एवं प्रवृत्तः एवं ध्वनि व्यवहारः।''

''प्रथमे हि विद्वांसः वैयाकरणाः। ते च श्रूयमाणेषु वर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति। तथैव अन्यैस्तन्मानुसारिभिः सूरिभिः काव्यतत्वार्थदर्शिभिः वाच्यवाचकसम्मिश्रः शब्दात्मा काव्यमिति व्यपदेश्यः व्यंजकत्वसाम्याद् ध्वनिरिति उक्तः।''

ध्वनि सिद्धान्त का मूलाधार 'स्फोट' सिद्धान्त है। संस्कार एवं बोध से सम्बद्ध उच्चरित ध्वनि 'शब्द' है–

नादैराहितबीजायामन्त्येन ध्वनिना सह।
आवृत्तपरिपाकायां बुद्धौ शब्दोवधार्यते।

इस ध्वनि में 'नाद' एवं 'स्फोट' दोनों का संयोग है। ध्वनि व्यंजक है और स्फोट 'व्यंग्य' है। मूलतः यही स्फोट 'ध्वनि' सिद्धान्त का मूल आधार है। आचार्य आनन्दवर्धन कहते हैं–

''व्यक्तशब्दानां तथा श्रूयमाणा ये वर्णा नादशब्दवाच्या अन्त्य बुद्धि निर्ग्राह्याः स्फोटाभिव्यंजकास्ते ध्वनिशब्देनोक्ताः''।

मूलतः भर्तृहरि कृत वाक्यपदीय एवं अन्य ग्रंथों में निर्दिष्ट 'स्फोट सिद्धान्त' को ध्वनि के आधार के रूप में ग्रहण कर 'काव्यध्वनि' के मन्तव्य को स्पष्ट करने की चेष्टा की गयी है। वैयाकरणों ने 'सामान्यध्वनि' को भी वायु की भाँति अनित्य, सनातन एवं सर्वव्याप्त स्वीकार किया है–

''सूक्ष्मो वायुरिव सर्वमूर्तीनामन्तवहिर्यश्च ध्वनिरवस्थितः, स एव कैश्चिद् आकाश इति पठ्यते।''

'ध्वन्यालोक' के अन्तर्गत व्यंजना, व्यंग्य, व्यंजक, प्रतीयमान आदि शब्द भर्तृहरि कृत वाक्यपदीय के अन्तर्गत बराबर प्रयुक्त मिलते हैं।

शब्दशक्तियों के सन्दर्भ में अभिधा, लक्षणा (भक्ति) एवं व्यंजना के सम्बन्ध में मीमांसा तथा न्यायशास्त्र में बराबर चर्चा मिलती है। 'वस्तुध्वनि' का मूलाधार 'वाक्यपदीय' में निर्दिष्ट 'स्थूलध्वनि' है। अलक्ष्यक्रम का सिद्धान्त भी कहीं न कहीं वाक्यपदीय में ही मिल जाता है। 'काव्य प्रौढ़ि' की चर्चा अलंकारवादी आचार्य पहले ही कर चुके हैं।

इन तथ्यों के होते हुए भी अपनी पूर्ववर्ती प्राप्त सांकेतिक या स्पष्ट ध्वनि सम्बन्धी शब्दावलियों का संस्कार

करते हुए आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि सिद्धान्त का जो भी प्रासाद खड़ा किया– वह निश्चित ही उनकी रचनात्मक प्रतिभा का अभूतपूर्व साक्ष्य है।

इस सिद्धान्त को पुनः विश्लेषित करने का श्रेय आचार्य अभिनवगुप्त को है। उन्होने 'ध्वन्यालोक' की 'लोचन' नामक टीका लिखकर इस सन्दर्भ में उठने वाले विवादों को समाप्त करते हुए निभ्रान्त रूप से ध्वनि को प्रतिष्ठित किया। पुनश्च आचार्य मम्मट ने 'काव्य प्रकाश' के अन्तर्गत इस सिद्धान्त के वर्चस्व को प्रतिपादित किया है।

हिन्दी में भिखारीदास कृत काव्य निर्माण, लाला भगवानदीन कृत व्यंग्यार्थ– मंजूषा, प्रतापसाहि कृत व्यंग्यार्थ कौमुदी, भानुकृत काव्य प्रभाकर, डॉ0 नगेन्द्र द्वारा सम्पादित ध्वन्यालोक की भूमिका, प्रो0 रेवाप्रसाद द्विवेदी कृत आनन्दवर्धन, डॉ0 भोलाशंकर व्यासकृत ध्वनि सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

संदर्भ संकेत

- ''बुधैर्वैयाकरणैः प्रधानभूतस्फोटरूप व्यंग्यव्यंजकस्यशब्दस्य ध्वनिरिति व्यवहारः कृतः।
- ततस्तन्मतानुसारिभिरन्यैरपि न्यग्भावितवाच्यव्यंग्यव्यंजनक्षमस्य शब्दार्थ युगलस्य।''–काव्यप्रकाश सू02 का वृत्ति भाग
- ''प्रथमे हि विद्वांसोवैयाकरणाः व्याकरणमूलत्वात् सर्वविद्यानाम्।
- ते च श्रूयमाणेषु वर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति। तथैवान्यैस्तन्मतानुसारिभिः सूरिभिः काव्यतत्वार्थदर्शिभिर्वाच्यवाचकसम्मिश्रः शब्दात्मा काव्यमिति व्यपदेश्यो व्यंजकत्वसाम्याद् ध्वनिरित्युक्तः। – ध्वन्यालोक 1/13 का वृत्ति भाग
- ध्वनिति स्फोट व्यनक्तीति ध्वनिः। – ध्वन्यालोक
- स्फुटति अर्थः यस्मात् सः स्फोटः। – ध्वन्यालोक
- ''पूर्वपूर्ववर्णानुभवसहितचरमवर्णानुभवः व्यंग्यः अर्थप्रत्यायकः अखण्डः शब्दभेदः।'' – वाचस्पत्य
- 'स्फोटस् तात्वान् एव ध्वनिकृता वृद्धिः।' – पतंजलि (महाभाष्य)
- देखिए, History of Sanskrit Poetics, Kane, Dhwani School.
- ''काव्यास्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्वस्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये।
  केचिद् वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयं तेन ब्रूमः सहदयमनः प्रीत ये तत्स्वरूपम्।। – ध्वन्यालोक 1/1
- ''तात्पर्यशक्तिरभिधा लक्षणानुमितीद्विधा।
  अर्थापत्तिः क्वचित्तन्त्रं समासोक्त्याद्यलंकृतिः।।
  रसस्यकार्यताभोगः व्यापारान्तरबाधनम्।
  द्वादशेत्थं ध्वनेरस्य स्थिता विप्रतिपत्तयः।। – श्रृंगार प्रकार, डॉ0 वी0 राघवन्, पृ0 – 140
- ''यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थो।
  व्यंक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।'' – ध्वन्यालोक – 1/13

❑❑

महिला उपन्यासकारों का नारी मुक्ति आन्दोलन

डॉ0 सुमन सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
दयानन्द गर्ल्स पी0जी0 कालेज, कानपुर

स्वतन्त्रता के बाद का सम्पूर्ण स्त्री लेखन स्त्री–मुक्ति और अस्मिता के पहचान के संघर्ष की महागाथा है। वास्तव में महिला लेखन एक व्यापक व्यक्ति चेतना और सामाजिक चेतना के रूप में विकसित हुआ जिसमें उनके जीवन का साक्ष्य है। भारतीय समाज के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण यह है कि भारत को स्वतंत्र हुए लगभग साठ वर्ष बीत जाने के बाद भी स्त्री–दलन के प्रति हमारे उन्नतिशील समाज का जड़ रवैया यथावत है। 'आपसी समझ' की आयातित अवधारणा ने स्त्री की दशा और दिशा बदलने में कोई सार्थक भूमिका नहीं अदा की। बदलते हुए जीवन मूल्य, आने वाली नयी घटनाएं, सामाजिक परिवेश इन्हें बाध्य कर रहा था कि वे इन सब को स्वर दें। साहित्य संस्कृति के व्यापक सन्दर्भ में महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे शोषण एवं अत्याचार के खिलाफ क्रांतिकारी बिगुल बजा दिया। कृष्णा सोबती, शशि प्रभा शास्त्री, मन्नू भण्डारी, निरूपमा सेवता, उषा प्रियंवदा, मालती जोशी, राजी सेठ, नासिरा शर्मा, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, प्रभा खेतान, पद्मा सचदेवा, मंजुल भगत, मैत्रेयी पुष्पा जैसी आदि महिला उपन्यासकार न केवल पुरूष वर्चस्व को खत्म करती है, बल्कि स्त्री प्रश्न के सभी मुखौटों को उधाड़ कर रख देती है।

भारतीय नारियों को किन–किन समकालीन समस्याओं से जूझना पड़ता है इसका विश्लेषण ही महिला उपन्यासकारों का प्रतिपाद्य है। चूँकि महिलायें पीड़ित है, भुक्त भोगी है इसीलिए अपनी समस्याएं ईमानदारी और संजीदगी से रख पाती है। इस सन्दर्भ में महादेवी वर्मा का यह वक्तव्य कि पुरूषों की अपेक्षा महिला लेखन में स्त्री विमर्श की यथार्थ एवं मौलिक अभिव्यक्ति हुई है, अवलोकनीय है – ''पुरूष के द्वारा स्त्री का चरित्र अधिक आदर्शवादी बन सकता है, परन्तु अधिक सत्य नहीं, विकृति के अधिक निकट पहुॅच सकता है, यथार्थ के अधिक समीप नहीं, पुरूष के लिए नारीत्व अनुमान है, परन्तु नारी के लिए अनुभव। अतः वह अपने जीवन का जैसा सजीव चित्रबद्ध हमें दे सकेगी वैसा पुरूष बहुत साधना के उपरान्त ही शायद दे सके।''[1] महिला उपन्यासकार विभिन्न सामाजिक समस्याओं से टकराती और जुझती हुयी समस्या के समाधान का प्रयास करती है।

इनकी उपन्यासों में नारी–चेतना एवं नारी जागृति का निरूपण विभिन्न रूपों में हुआ है। इन उपन्यासकारों ने एक तरफ नारी जीवन से सम्बन्धित प्रमुख समस्याओं जैसे दहेज प्रथा, बाल–विवाह, विधवा विवाह, पारिवारिक सम्बन्ध, सामाजिक स्थिति आदि का निरूपण किया है तो दूसरी तरफ नारी के स्वाभिमान, प्रतिशोधात्मक भाव, सहनशीलता, मातृत्व, ममत्व, पतिव्रत्य, शील–सदाचार, मर्यादा एवं महत्ता का भी सशक्त चित्रण किया है। इस सम्बन्ध में श्रीमती बसन्ती पन्त का मत है कि – ''इन उपन्यासों में चेतना के स्वर एक उद्घोष के रूप में ध्वनित हुए है। अधिकांश उपन्यासकारों ने नारी जीवन और उससे सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं का न केवल सामान्य निरूपण किया है, अपितु उनके सम्बन्ध जीवन्त निष्कर्ष और युग सापेक्ष निदान भी प्रस्तुत किये है। उपन्यास वह सशक्त माध्यम है जिसमें नारी जीवन की चेतना के समग्र आयाम परिवेश की जटिलताओं को आत्मसात किए हुए सार्थक रूप से प्रतिफलित हुए है।''[2] इन उपन्यास लेखिकाओं ने नारी जीवन के प्रत्येक पहलू को दुनिया के सामने लाया और केवल नारी–जीवन के प्रत्येक पहलू को दुनिया के सामने लाया और केवल नारी–जीवन ही नहीं बल्कि नारी जीवन को प्रभावित करने वाले हर क्षेत्र को अपनी लेखनी का विषय बनाया।

आज समाज में जो मान्यतायें चल रही है, उनमें से कुछ रूढ़ियों तथा परम्पराएं पुरानी हो चुकी हैं, इन परम्पराओं को तोड़कर एक नये समाज की कामना ही महिला लेखिकाओं ने की है। हमारे पुरूष प्रधान समाज

ने नारी को विशिष्ट दायरे में रखकर इसका व्यक्तित्व संकुचित बना दिया था। परन्तु जैसे–जैसे उसे मौका मिलता गया उसने अपना अस्तित्व सिद्ध करने का प्रयास किया है। चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'एक जमीन अपनी' की अंकिता अपने आप को किसी भी हालत में नियति के भरोसे, छोड़ने को तैयार नहीं है। कर्मठता के सहारे अपनी किस्मत तक को बदल देने का विश्वास उसमें है, तभी तो अंत में अपने पति सुधाशुं से कहती है – ''सुधांशु जी की, औरत बोनसाई का पौधा नहीं है कि जब भी चाहा जड़े काटकर उसे वापस गमले में रोप दिया। वह बौना बनाये रखने की इस साजिश से इन्कार भी तो कर सकती है।''[3]

वैवाहिक जीवन की सफालता स्त्री–पुरूष के मध्य परस्पर प्रेम एवं सांमन्जस्य में है। इसके अभाव में पति–पत्नी का जीवन घुटन, संत्रास एवं उत्पीड़न के अतिरिक्त और कुछ नहीं विवाह के सम्बन्ध में लेखिकाओं ने यह समस्या भी उठाई है कि विवाह यदि इच्छा के विरूद्व की जाये तो वैवाहिक जीवन एक समस्या बनकर रह जाती है। निरूपमा सेवती ने 'पतझड़ की आवाजें'' उपन्यास में वैवाहिक जीवन को लेकर अनेक प्रश्न चिन्ह अंकित किये हैं। उपन्यास की नायिका अनुभा आधुनिक नारी है और वह आधुनिक नारी के स्वत्व, स्वाभिमान, संघर्ष एवं जीवन का प्रतिनिधित्व करती है। नौकरी पेशा होने बावजूद भी उसकी सगाई टूट जाती है और समाज की विसंगतियों से वह साहस के साथ संघर्ष करती है। नारी के स्वाभिमान की रक्षा उसके जीवन का मुख्य आयाम है। वह अपनी योग्यता, प्रतिभा और बुद्धि के सहारे जीवनपथ पर आगे बढ़ना चाहती है। वह आधुनिकता को स्वच्छन्द आचरण न मानकर उसे 'जागरूकता' का नाम देती है – ''दिमाग का खुलापन जो आदमी को दम घोटू नियमों और सामाजिक फायदों से मुक्त करता है।''[4]

लेखिकाओं का मानना है कि विवाह केवल शारीरिक बन्धन नहीं होता बल्कि एक दूसरे की मानसिक स्थिति को समझना आवश्यक होता है। हमारे समाज में अनेक बार लड़के–लड़की की इच्छा को महत्व नहीं दिया जाता। परिणामतः विवाह ही एक समस्या बन जाती है। भारतीय परिवेश में दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन व्यतीत करने के लिए ही विवाह प्रथा आरम्भ की गई। परन्तु इस विवाह से सभी को आर्थिक एवं शारीरिक आधार मिल सकता है, मानसिक एवं आत्मिक नहीं। इस सत्य को लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में उद्घाटित किया है। यह सन्दर्भ अवलोकनीय है – ''विवाह में स्त्री को आधार मिलता है। वह आर्थिक है, शारीरिक है, मानसिक अथवा आत्मिक नहीं है। मानसिक और आत्मिक सम्बन्धों में तो स्त्री को केवल समझौता करना पड़ता है।''[5]

स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक परिवेश में दाम्पत्य जीवन एवं वैयक्तिक जीवन धारा में अनेक परिवर्तन आये है। महिला उपन्यासकारों ने ऐसे नारी पात्र चित्रित किये है, जिन्होंने पुराने मानदण्डों को अस्वीकार कर धीरे–धीरे अपने अस्तित्व को सिद्ध कर दिया है। डॉ0 नीहार गीते लिखती है – ''आज आत्मनिर्भय बनने के साथ ही नारी चेतना की जाग्रत हो गयी है। वह पति के असंतुलित व्यवहार के प्रति समर्पित नहीं हो सकी, क्योंकि उसे एहसास है कि केवल मात्र अर्थ की समस्या के कारण सदियों से पुरूष ने उसे गुलाम बना रखा है। इसीलिए स्वयं के अर्थोपार्जन के पश्चात् वह पराजय नहीं स्वीकार करती। जैसे 'बेघर' की संजीवनी तथा 'आपका बंटी' की शकुन।[6]

वर्तमान समय में वैवाहिक जीवन में बढ़ती कड़वाहट व तनाव के कारण विवाह विच्छेद (तलाक) आम बात हो गयी है। यह आज की परिवर्तित होती मानसिकता, वैयक्तिक विघटन, अकेलेपन एवं संत्रास का परिणाम है। विवाह–विच्छेद के माध्यम से पति–पत्नी अपने बिखरते दाम्पत्य जीवन को तोड़कर अलग–अलग समेट लेते है। डॉ0 शील प्रभा का मानना है कि – ''पति– पत्नी के वैवाहिक एवं पारिवारिक जीवन में असामंजस्य एवं असफलता का सूचक है विवाह–विच्छेद। हिन्दू समाज में स्त्री के लिए पतिव्रत एवं सतीत्व के पालन की बात कही गई है अतः स्त्री पुरूष को त्यागने की बात नहीं कर सकती। ऐसा करना उसके लिए सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से अनुचित माना गया है।''[7]

आज के परिवर्तित होते समाज में स्त्री वैवाहिक जीवन से उत्पन्न होने वाली यातनाओं को सहन करने के लिए तैयार नहीं है। वह पुरानी परम्पराओं और रूढ़ियों से मुक्त हो अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए विवाह–विच्छेद के लिए तैयार हो जाती है। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास की नायिका इन्हीं विडम्बनाओं के

कारण अपने पति से विवाह विच्छेद कर लेती है। दीप्ति खण्डेवाल के उपन्यास 'कोहरे' की नायिका सिमी पति द्वारा उपेक्षित होने के कारण विवाह–विच्छेद करके पुनर्विवाह कर लेती है। ''जहॉ परस्पर स्नेह के स्थान पर धिक्कार एवं तिरस्कार की भावना जड़े जमा चुकी हो, जहॉ सुखी दाम्पत्य जीवन के स्थान पर दुःख की ज्वाला ही धधकती हो, वहॉ स्त्री पुरूष को विवाह की जंजीरों से क्यों बांधकर रखा जाये और इस समस्या का निराकरण विवाह विच्छेद के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है।''[8]

इस समस्या को मन्नू भण्डारी ने अपने उपन्यास ''आपका बंटी'' में बड़े ही संवेदनापूर्ण एवं मार्मिक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है और साथ ही विवाह–विच्छेद के पश्चात् किन–किन समस्याओं और मानसिक उलझनों का सामना करना पड़ता है उसका बड़ा ही मनोवैज्ञानिक एवं सूक्ष्म चित्रण किया है। आपसी तनाव से मुक्ति पाने के लिए अजय एवं शकुन तलाक तोले लेते है, परन्तु शकुन को शान्ति एवं सन्तुष्टि नहीं मिलती। वह कहती है – ''आज जैसे एकाएक वह अन्तिम छोर पर आ गई हो। पर अपने आप पहुँचने का संतोष भी नहीं है। ढकेले जाने की विवश कचोट भर है। पर कैसा है अहंकार? न प्रकाश न वह खुलापन न मुक्ति का अहसास लगता है जैसे इस सुरंग से उसे दूसरे सुरंग के मुहाने पर छोड़ दिया गया हो, फिर एक और यात्रा वैसा ही अन्धकार वैसा ही अकेलापन है।''[9] वैवाहिक व पारिवारिक प्रताड़ना के कारण स्त्री विवाह –विच्छेद को अपनाती तो है सामाजिक रूढ़ियों व परम्पराओं से प्रभावित विसंगतियों को उसे झेलना पड़ता है।

भारतीय समाज में दहेज एक सामाजिक कलंक बन गया है। वर्तमान समय में जहॉ दहेज उन्मूलन की बात करते हैं वहीं दूसरी ओर दहेज की मांगे निरन्तर बढ़ती जा रही है। महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से दहेज रूपी कुप्रथा को सफलतापूर्वक उभारकर उससे उत्पन्न दुष्परिणामों को बखूबी चित्रित किया है। दहेज प्रथा के परिणामस्वरूप ही कन्या भ्रूण हत्या, बेमेल विवाह, आत्महत्या जैसे दुःखद पहलुओं का चित्रांकन कर शिक्षा एवं आत्मनिर्भरता पर विशेष बल दिया है। जिससे वे जीवन साथी का चुनाव स्वतन्त्रतापूर्वक कर सके। दहेज के कारण ही माता–पिता का आर्थिक विखराव, समुचित दहेज न लाने पर वधू का उत्पीड़न, कन्या द्वारा आत्महत्या आदि का चित्रण हमें इनके उपन्यासों में मिल जाता है। अनेक बार दहेज न लेने का कारण लड़के में कमी होती है। इस ढ़ोगी समाज पर करारा व्यंग्य करते हुए मेहरून्निसा परवेज लिखती हैं – ''माना कि वे लोग चाहते हैं कि लड़की को एक जोड़े में विदा कर दो। आज उनकी गरज है लड़का आधी उम्र का है, इसीलिए लड़की नहीं मिल रही है, तो ऐसा कह रहे है।''[10] आर्थिक स्थिति मजबूत न होने के कारण अच्छी लड़कियों को अनमेल विवाह करने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

दहेज का प्रचलन कन्या पक्ष के लिए परेशानी का कारण है। दहेज मॉगने वाले अपने लड़के पर किये गये खर्च को भी वसूलना चाहते है। शशि प्रभा शास्त्री अपने उपन्यास ''नावें'' में इस समस्या पर प्रकाश डालते हुए लिखती है – ''चाहते है कि जितना धन इन्होंने अपने लड़के को पढ़ाई पर खर्च किया है, वह सूद समेत वसूल हो जाए और आगे जब तक पढ़ें, वह खर्चें भी और साथ ही दो चार साल उसके न कमाने से जो हरजा होगा, उसकी पूर्ति भी हम कर दें।''[11] इन उपन्यासों में दहेज के कारण अनेक समस्याओं से नारी मन को जुझते, टूटते मनःस्थिति का वर्णन किया गया है।

दहेज व अर्थाभाव के कारण मध्यम वर्गीय युवतियॉं नौकरी करने के लिए विवश है। आज की उच्च शिक्षित कन्यायें विवाह के इन्तजार में घर में नही बैठती बल्कि अपने परिवार का भरण–पोषण करने के लिए तत्पर हैं। क्योंकि उपन्यास में लेखिका ने इसी समस्या को दर्शाया है – ''फादर नहीं है, इसीलिए मैं नौकरी कर रही हूँ। शादी नहीं कर रही, बहुत टक्करें खा चुकी हूँ।[12] आज समाज में अनेक ऐसी युवतियॉ मिल जायेंगी जो अविवाहित हैं और आजीवन अविवाहित रहना चाहती है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की नायिका विवाह करके अपने परिवार को आर्थिक संकट में छोड़ना नहीं चाहती वह कहती है – 'जीवन में बहुत महत्वपूर्ण कार्य हैं, सिर्फ विवाह ही तो नहीं। और देशों में देखिए, बिना शादी किए ही औरतें कैसे मजे में रहती है।''[13]

भारतीय समाज में विधवाओं की स्थिति पहले से ही दयनीय रही है। विधवा होने के कारण उसे सुखों से

वंचित रखा जाता था जिससे उसका जीवन यातनामय एवं कष्टमय हो जाता था। किन्तु धीरे–धीरे स्थितियॉ परिवर्तित होती गई साथ ही नारी के अन्दर भी अपने अस्तित्व को बनाएं रखने की भावना जाग्रत हो रही है। वह शिक्षित होकर आर्थिक रूप से आत्म निर्भर हो रही हैं। आज की नारी समाज के संस्कारों एवं परम्पराओं का तो निर्वहन कर रही है, मगर समाज की कुरीतियों एवं रूढ़ियों के प्रति उसके मन में अस्वीकार की भागना जागृत होने लगी है। आज वह सोचने लगी है कि जब विधुर पुरूष पुनर्विवाह करके समाज में सम्मानजनक जीवन व्यतीत कर सकता है तो नारी ही क्यों बन्धनों में जकड़ी रहे। वह पुनर्विवाह करे या नहीं परन्तु उसे सुखपूर्वक जीवन जीने का अधिकार तो मिलना ही चाहिए। यहीं भावना महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। समाज में पुरूष चाहे विधुर होने पर तुरन्त विवाह कर ले, परन्तु नारी के लिए पति के मरने बाद पुनर्विवाह करना उतना आसान नहीं होता। इस संदर्भ में 'तत्सम' उपन्यास में राजी सेठ लिखती है – ''जरा न्याय देखो। अपने भगवान का भकुआ आदमी अकेला रह जाय तो तूफान खड़ा हो जाता है और औरत के लिए पत्ता भी न हिले जब कि वह हर तरह से ज्यादा मजबूर है। तुम्हें बुरा लगता है तो लगे, मैं तो कहूँगी, तुम्हारे भगवान की दुनिया में इंसाफ नही है ...... कोई .... दो जातियॉ है .... और दोनों के लिए अलग–अलग तरह के नियम।''[14]

नारी के इसी परिवर्तित दृष्टिकोण को डा0 शशिप्रभा अपने उपन्यास 'अमलतास' में प्रस्तुत किया है। स्त्री पात्र बेला विधवा होने पर अपने हिस्से की सम्पत्ति प्राप्त करती है और सुखमय जीवन व्यतीत करती है। वह सोचती है कि जीवन की दुर्घटनाओं को लेकर दुःखी रहने से क्या फायदा?आधुनिक समाज की परिवर्तित होती परिस्थतियों में स्त्री की स्थिति को दर्शाती है। ''सुन्दर सुघड़ माथे पर नन्ही सो बैजनी रंग की बिन्दी लगी थी। हल्की बैजनी रंग की ही फूलों वाली सिल्कन साड़ी उसकी देह पर थी .... जूड़े पर मोंगरे की वेणी लपटी हुई थी, हॉ मॉग में सिन्दूर अलबत्ता नही था। हल्के–हल्के गहने उसके हर अंग पर झिलमिला रहे थे।''[15]

आज समाज में विधवाओं प्रति सामाजिक दृष्टिकोण बदल रहा है। बाल विवाह के कारण ज्यादातर स्त्रियों को वैधव्य जीवन जीने के लिए मजबूर होना पड़ता था। आधुनिक युग में बाल–विवाह के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदला है, और इनके प्रति लोगों का व्यवहार उदार एवं सहानुभूति पूर्ण हो रहा है तथा श्रेष्ठ जीवन के विभिन्न प्रयास भी किये जा रहे है। इस परिवर्तन की सार्थक अभिव्यक्ति हमें उपन्यासों में दृष्टिगोचर होता है। आज के नवयुवक विधवा–विवाह समाज में आदर्श प्रस्तुत कर रहे है। ''उसकी पंचवटी'' का पात्र वीरेन कहता है – ''उसकी थोड़ी सी उम्र किसी दूसरी के साथ कटी उसकी पत्नी बनकर वह जीती रही। अब वह इन्सान नहीं रहा, वह उसकी पत्नी नहीं रही, तो क्या वह दूसरे की पत्नी बनने के हक से वंचित रह जायेगी। जब पुरूष दूसरा विवाह करता है और पत्नी बिना किसी मनमुटाव के उसको और उसके बच्चे को हृदय से स्वीकार करती है तो पुरूष जाति का भी फर्ज बनता है कि उसको उसी तरह स्वीकार करे, उसके बच्चों को स्वीकार करें।''[16]

आधुनिक युग में जिस तरह विधवा विवाह को मान्यता मिलने लगी है, उसी तरह अन्तर्जातीय विवाह भी होने लगी है। जातिगत व्यवस्था मिटाने के लिए यह एक अच्छा कदम माना जा सकता है। महिला उपन्यासकारों ने अपनी औपन्यासिक कृतियों में अन्तर्जातीय विवाहों का चित्रण करके समाज में परिवर्तन की अपेक्षा की हैं। 'कृष्णकली' उपन्यास का पात्र प्रवीर विवाह नहीं करना चाहता तब उसकी मॉ उसे समझाती है –''प्रवीर बेटा, अपने समाज की न सही क्या किसी और समाज की लड़की तुझे पसन्द है? अगर ऐसा है तब भी हमें अब कोई आपत्ति नही है। मामू का भी तो पिछले साथ मेम ले आया है। चल वंश तो चलेगा।[17]

अन्तर्जातीय विवाह जातिवाद को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के साथ दहेज समस्या के समाधान में भी अपनी भूमिका निभा रहा है। इस प्रकार अन्तर्जातीय विवाह अनेक व्यक्तिगत, सामाजिक तथा पारिवारिक समस्याओं के समाधान में कारगर सिद्ध हो रहा है। भारतीय परिवार जो अब तक धार्मिक, सांस्कृतिक एवं पारम्परिक बंधनों में जकड़े हुए थे, आज मात्रा भले ही कम है वे इन रूढ़ विचार धाराओं एवं मान्यताओं को त्याग रहे हैं। 'सुरंगमा' उपन्यास के पात्र दिनकर और विनीता अन्तर्जातीय विवाह करते हैं। विनीता के पिता कुछ समय तक नाराज रहते है बाद में इसका समर्थन करते हुए कहते है – ''ऐसा हीरा दामाद मुझे अपने समाज में जुट सकता

था भला न सिगरेट पिए न शराब।''[18]

पुरूष और स्त्री दोनों को जीने का अगर समानाधिकार है तो स्त्री पर ज्यादती क्यों?महिला उपन्यासकारों ने अपने कृतियों में समानाधिकार के प्रश्न को भी उठाया है पढ़ी–लिखी तथा सुसंस्कारित स्त्री क्या पुरूष से सहज मित्रता नहीं कर सकती? और यह अधिकार पुरूषों को ही क्यों दिया जाता है। इस तरह के सवाल 'अभिषेक' उपन्यास में उठाया गया है। उपन्यास की नायिका वेणु कहती है – ''इतना पढ़ने–लिखेन और स्वावलंबी होने पर भी हम स्त्रियॉं क्या पुरूष से सहज स्नेही मित्र की अपेक्षा नहीं कर सकती।[19] उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यास पचपन खम्भे लाल दीवारें में भी इसी सामाजिक असमानता का बखूबी चित्रण किया है – ''जैसे रहती है, वह मुझे पता है। तुम एक पुरूष मित्र बनाकर तो देखो तुम्हारी अम्मा सबसे पहले तुम्हारी खबर लेगी। हमारा समाज किसी को जीने नहीं देता।''.[20]

पुरूष प्रधान संस्कृति में पुरूष को प्रधान मानकर नियम बनाए जाते हैं। सभी बातों के अधिकार उसके पास होते है, यहॉं तक कि नारी के जीवन का फैसला भी पुरूष ही करता आया है। इस संदर्भ में सवाल उठाते हुए 'तत्सम' की वसुन्धा कहती है – ''सार्थकता और पुरूष यह दोनों एक ही चीज के नाम क्यों है स्त्री के जीवन में इतनी बड़ी जगह क्यों घेर ली है। इस संबंध ने कि हर चीज की व्याख्या उसी बिंदु से ही होने लगे?''[21] बाहरी दुनिया का दबाव और शाश्वत दायित्व आज की नारी के सम्मुख जटिल प्रश्न है। इस प्रश्न को 'वसुधा' केन्द्र में लाती है।

इस प्रकार महिला उपन्यासकारों ने आधुनिक परिपेक्ष्य में नारी मुक्ति की बात अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। इनमें स्त्रियों का एक नया अनुभव संसार है, उनकी चिंताएँ–दुख, अभिलाषाएं –स्वप्न, एकान्त एवं दैहिक प्रश्नों का प्रखर ढ़ंग से नये तेवर के साथ प्रस्तुतीकरण हुआ है। इनमें सामाजिक एवं नैतिक वर्जनाओं, दोहरे मापदण्डों तथा अन्त र्विरोधों पर विचार किया गया है। यह लेखिकाओं को ऐसी प्रखर जागरूक पीढ़ी है, जिसने कुरीतियों, परम्पराओं, नैतिक वर्जनाओं के विरूद्व स्त्री विमर्श को नवीन आयाम प्रदान किया है। भारतीय समाज में स्त्री के चरित्र का सिर्फ एक ही मतलब है। उसकी यौन–शुचिता, कौमार्य की रक्षा या 'पतिव्रत धर्म का पालन'। इस दोहरी नैतिकता पर आज उत्तर आधुनिक दौर में भी समूची भारतीय समाज व्यवस्था टिकी हुई है। स्त्री–विमर्श इस समाज व्यवस्था के प्रतिरोध में खड़ा होकर यह बताने का प्रयास करता है कि ''स्त्री को अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी। नारी को धर्म, समाज, रूढ़ियॉं क्यों बॉंधें रखने का प्रयास करती है।''[22]

अपनी अस्मिता एवं अपने अस्तित्व की तलाश में संलग्न नारी को इन उपन्यास लेखिकाओं ने खोला और अपने रचनाओं में ढाला है। नासिरा शर्मा के चर्चित उपन्यास 'ठीकरे की मॅंगनी' की नायिका महरूख के लिए मर्द न तो जिन्दगी की धुरी है, न खिड़की। उसकी अपनी अस्मिता है, जिस पर वह ऑंच न आने देने के लिए जीवन भर संघर्ष करती है। नासिरा शर्मा अपने दूसरी उपन्यास 'शाल्मली' के माध्यम से नारी मुक्ति की अवधारण को सामने रखने का प्रयास करती है – ''मेरी नजर में सही नारी –मुक्ति और स्वतंत्रता समाज की सोच और स्त्री के बदलने में है। बाहर निकलो या घर में रहो, हर स्थान पर पुरूष तुमसे टकराएगा।''[23]

स्वतन्त्रता के बाद का सम्पूर्ण स्त्री–लेखन स्त्री–मुक्ति और अस्मिता के पहचान के संघर्ष की महागाथा है। महिला लेखन में स्त्रियों ने स्वयं को ढूढ़ने के प्रयास में अपने जीवन के अंधेरे कोने और जटिलताओं का साहित्य लिखा, जिसके कारण स्त्री लेखन को विडम्बनाओं, अंतविरोधों और पितृक समाज की चुनौतियों का भी सामना करना पड़ा। फिर भी समकालीन समस्याओं के साथ महिला उपन्यासकार अपने साहस और क्रांति चेतना का परिचय देती हैं। ऐसे अनेक उपन्यास गिनाये जा सकते हैं, जिनकी अंतर्वस्तु स्त्री लेखन में निरन्तर आ रहे अनुभव–वैविध्य और उनके अनुभूति विस्तार की ओर संकेत करती है, जिनकी भीतरी संसार केवल स्त्री–समस्याओं तक ही केन्द्रित नहीं है, बल्कि उसकी सीमा में घर, परिवार और समाज तीनों मौजूद है। रामदरश मिश्र के शब्दों में कहे तो ''इन लेखिकाओं को सचमुच नारी समाज की यातना, अपमान, बेबसी गहरे साल रही है और वे उसकी तकलीफों के शब्दों में बॉंधकर समाज को उसके प्रति जाग्रत करना चाहती है। उसकी अस्मिता की पहचान और स्वीकृति के लिए शब्द के माध्यम से संघर्ष कर रही हैं। और इस संबंध में वे नारी की शक्तियों को तो रेखांकित करती ही

है, उन सहज कमजोरियों को भी सामने रखकर उनके लिए उसका बचाव करती है, जिनके तहत् उसे समाज में लांछित और अपमानित होना पड़ता है और जिनसे लदे होने के बावजूद पुरूष समाज सुरक्षित और सम्मानित बना रहता है यानि कि लेखिकाएं इस दुहरे मानदंड को उजागर कर उस पर प्रहार करना चाहती हैं। बहुत अच्छा लग रहा है कि लेखिकाएं स्त्री को उसके वास्तविक रूप में चित्रित कर उसके स्त्री–रूप की सही पहचान कर रही हैं और उसके कर्तव्य के साथ–साथ उसके अधिकारों, उसकी अस्मिता की वकालत कर रही है।''[24]

इस प्रकार महिला उपन्यासकारों ने स्त्री को केन्द्र मानकर उसकी विविध आन्तरिक मनोवृत्तियों, कुण्ठाओं, विवादों के साथ बाह्य स्थितियों व समस्याओं जैसे–दाम्पत्य जीवन में दरार और विघटन, उनका आर्थिक, शारीरिक और मानसिक शोषण, उनको समानता का अधिकार न मिलना, नैतिकता एवं आधुनिकता का द्वन्द्व, कामकाजी महिलाओं का आत्म संघर्ष आदि को व्यापकता, सूक्ष्मता एवं गहनता से रूपायित करने का प्रमाणित प्रयास अपनी कृतियों में किया है और भविष्य में उसकी संभावनाओं के लिए अनेक क्षितिजों की तलाश भी की है। ''पिछले दो दशकों में यह विशिष्ट बात भी रेखांकित की जा सकती है कि कथा रचना के सन्दर्भ में इतनी महिला लेखिकाएं सामने आई जितनी पहले कभी नहीं रही।''[25] महिला लेखन अपने समय और समाज के जीवन की वास्तविकताओं तथा संभावनाओं को तलाश करने वाली दृष्टि हैं। यह दृष्टि एक ओर सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को देखने और रचने का माध्यम बनती है तो दूसरी ओर साहित्य में स्त्री जीवन की जटिल वास्तविकताओं और अनुभूतियों के अभिव्यक्ति की शक्ति भी है। इसीलिए स्त्री की चुनौती अपने समीकरण को छोड़कर पुरूष के समीकरण को पाना नहीं, अपितु अपने सत्य में से वृहत् सत्य की परिधि तक जाना है।

सन्दर्भ संकेत

1. श्रृंखला की काड़ियॉ – महादेवी वर्मा– पृ0 85
2. हिन्दी उपन्यास : रचना विधान एवं युग बोध– श्रीमती बसन्ती पन्त – पृ0 95
3. एक जमीन अपनी–चित्र मुदगल – पृ0 148
4. पतझड़ की आवाजें – निरूपमा सेवती – पृ0 122
5. नावें – शशिप्रभा शास्त्री – पृ0 120
6. स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में यथार्थ के विभिन्न रूप – डा0 नीहार गीत – पृ0– 165
7. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक सन्दर्भ– डा0 शील प्रभा वर्मा –पृ0 69
8. भारतीय महिलाओं का समाजशास्त्र – डा0एम0एम0 लाटनिया–पृ0 53
9. आपका बंटी– मभू भण्डारी – पृ0 37–38
10. कोरजा – मेहरून्निसा परवेज – पृ0 23
11. नावें – शशि प्रभा शास्त्री– पृ0 117
12. क्योंकि – शशि प्रभा शास्त्री – पृ0 33
13. पचपन खंभे लाल दीवारें – 341 प्रियंवदा –पृ0 10
14. तत्सम – राखी सेठ – पृ0 27
15. अमलतास – शशिप्रभा शास्त्री– पृ0 129
16. उसकी पंचवटी– कुसुम अंसल – पृ0 85
17. कृष्णकली – शिवानी – पृ0 88
18. सुरंगमा – शिवानी – पृ0 171
19. अभिषेक – कृष्णा अग्निहोत्री – पृ0 223
20. पचपन खम्भे लाल दीवारें – उषा प्रियंवदा – पृ0 10
21. तत्सम – राजी सेठ – पृ0 – 39
22. नारी का रचना संसार – स0 माधुरी – पृ0 90–91
23. शाल्मली– नासिरा शर्मा – पृ0 52
24. वर्तमान साहित्य – मार्च – 2011, पृ0 – 40
25. महिला उपन्यास लेखन एवं स्त्री विमर्श – डा0 कीर्ति मिश्रा – पृ0 – 187

❑❑

राम की शक्ति पूजा में केन्द्रीय संवेदना का आत्मसंघर्ष और निराला

सौरभ कुमार सिंह
शोधछात्र–हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

'राम की शक्तिपूजा में शक्ति तत्व की केन्द्रीयता इसके नामकरण से ही स्पष्ट है। कविता का नामकरण शक्ति पूजा पर ही केन्द्रित है। कविता का कथानक भी शक्ति की केन्द्रियता दर्शाता है, कविता का आरम्भ भी इस बिन्दु से होता है कि नायक नैतिक होते हुए भी शक्तिहीन है जबकि खलनायक अनैतिक पक्ष में होते हुए भी शक्ति सम्पन्न है। 1936 के भारत में शक्ति का अनैतिक पक्ष में होना एक साथ कई संदर्भो पर चोट है, जैसे अंग्रेजी शासन, रूढ़िवादी साहित्यिक चिन्तन, सामंतवादी पुरुषवादी सामाजिक संरचना इत्यादि। कुछ चिन्तक इस संवेदना को प्रगतिवादी क्रांति चेतना से जोड़ते हे क्योंकि गांधी की अहिंसा का विफल होना तथा निराला का प्रगतिवादी मूल्यों से सहमत होना जैसे तथ्य इस व्याख्या की संभावना तलाशते है। बहरहाल व्याख्या किसी भी अर्थ में हो शक्ति चेतना का उत्सव इस कविता का सारतत्व है।

राम की शक्तिपूजा की केन्द्रीय संवेदना का प्रसंग विवादस्पद है। निराला के सम्पूर्ण साहित्य मे गृहस्थिक प्रेम की प्रतिबद्धता के कई उदाहरण दिखते है, जैसे पंचवटी प्रंसग, तुलसीदास, तथा सरोज स्मृति के भी कुछ अंश। राम की शक्ति पूजा की मूल संवेदना इसी कड़ी का अगला चरण है। निराला जी सरोज स्मृति में पुत्री की मुक्ति करते है तो 'राम की शक्ति पूजा' में पत्नी की मुक्ति उनकी नारी मुक्ति–चेतना का सर्वोच्च चरण है। नन्दकिशोर नवल का दावा है कि इस कविता का केन्द्रीय भाव 'सीता की मुक्ति' और सीता के प्रतीक के माध्यम से 'नारी मुक्ति' है।[1]

राम की शक्ति पूजा पौरणिक आख्यानक परक ढाँचे में लिखी गई कविता है, इसलिए उसके कथ्य का निरूपण जटिल हो गया है। छायावादी कवियों की कविता में वैयक्तिकता का होना स्वाभविक है। छायावाद के चारों कवियों में देखे तो निजता के संप्रेषण की विशेषता निराला में सबसे अधिक मिलती है। निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' से तुरन्त पहले सरोज स्मृति से तुलना करने पर साफ दिखता है कि राम की शक्तिपूजा में भी इनका अपना व्यक्तित्व प्रक्षेपित हुआ है। सरोज स्मृति में जो समस्याएं है, उन्हीं का अगला चरण राम की शक्तिपूजा में दिखाई देता है। इसीलिए दूधनाथ सिंह जैसे समीक्षकों का मानना है कि निराला का अपना जीवन व इनके आत्मसंघर्ष ही इस कविता में प्रतीकात्मक पद्धति से व्यक्त हुए है।

कविता का विश्लेषण शक्ति तत्व की केन्द्रीयता कई बिन्दुओं को दर्शाता है। कविता का आरंभ 'रवि हुआ अस्त' से हुआ है जो शक्ति के अभाव का प्रतीकात्मक संकेत है। ''राम की शक्ति पूजा के राम को 'रवि हुआ अस्त' के नैराश्य से तब मुक्ति मिलती है, जब होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन कह कर महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन'।[2]

कविता के मध्य में विभीषण युद्ध से परामुख होते हुए राम को रघुकुल गौरव कहकर उनके ''कुल गौरव का स्मरण कराते हैं, तो राम भी दिन में हुए भयंकर युद्ध का वृत्तान्त कहते हुए, अपने विचलन का कारण बताते है–'कह भानु–कुल–भूषण वहाँ मौन क्षण भर'।[3] यहाँ भानु कुलभूषण का प्रयोग साभिप्राय हुआ है, किन्तु कथा का प्रतिपाद्य 'कुल गौरव' की रक्षा करने की बात पर क्यों नहीं गया? ''राम की शक्ति'' में सीता के प्रति राम का प्रेम

और उनकी मुक्ति का प्रयास प्रधान है। राम की निराशा और उनकी निरूपायता ही उन्हें वह मानवीय व्यक्तित्व प्रदान करती है, जिसके अन्धकार में उनका वह पत्नी प्रेम दमकता है, जिसकी मिसाल न फिर पुराण में है, न लोक–कथाओं में और न इतिहास में कहने की आवश्यकता होनी चाहिए इस व्यक्तित्व की जड़ आधुनिक जनतांत्रिक चेतना मे है।[4]

निराला की कविता का समांरभ मुक्त वृत्त से होता है। 'जुही की कली' (1916) उनकी पहली रचना है और यह मुक्त वृत्त में है। परिमल (1929) की भूमिका में निराला ले लिखा है– 'मनुष्य की मुक्ति की तरह कविता की मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मो के बन्धन से छुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना''।[5] मुंक्ति को उसने मूल्य के रूप में ग्रहण किया है। मुक्त मनुष्य के तमाम कार्य औरो को प्रसन्न करने के लिए होते है।' यहाँ भी निराला जी ने कविता को छन्दों से मुक्ति के साथ अपने कविता के माध्यम से तमाम तरह की मुक्ति की बात करते है। इस तरह निराला के द्वारा छन्दो की रीति बद्धता को तोड़ना एक क्रान्तिकारी काम था।

राम की शक्तिपूजा को निराला की अपनी वैयक्तिकता ही प्राणवान बनाती है। राम किन्ही अंशों में निराला है। उनका युद्ध निराला का युद्ध है। राम, रावण और युद्ध तीनों प्रतीक हैं। यह युद्ध भीतर भी चलता है और बाहर भी निरंतर चलता रहता है। यह युद्ध सामयिक भी और सनातन भी। परिस्थिति विशेष में इसके रूपाकार में भेंद हो सकता है पर केन्द्रिय मूल भूत तत्व युद्ध वही रहता है। रावण हीनतर मनोवृत्ति का प्रतीक हैः राम उच्चतर मनोवृत्तियों के। व्यक्ति और समाज के द्वदों से ही गत्यात्मक होते हैं। इस युद्ध को राम की तरह ही निराला ने भी झेला था। पराजय के फलस्वरूप–'स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर–फिर संशय। रह रह उठता जग जीवन में रावण–जय–भय'। निराला और राम भी इसी संशय से जुझ रहे थे। उस समय समस्त देश साम्राज्यवादी शक्तियों से जूझ रहा था। अपनी विजय के प्रति वह भी कम संशय ग्रस्त नहीं था।

इस तरह से 'राम की शक्ति पूजा' की केन्द्रिय और आत्म संघर्ष के द्वारा छायावाद के आधार स्तंभों के शुमार सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का रचना संसार जितना व्यापक है, व्यक्तित्व उतना ही उदान्त।राम की समस्या है–'अन्याय जिधर, है अधर शक्ति'। यह समस्या जितनी राम की है उतनी ही किसी अन्य व्यक्ति की हो सकती है। उसे संतुलित करने के लिए बड़ी शक्ति की जरूरत पडती है।निराला शक्तियो के संघर्ष में ही मानवीय नियत का उज्ज्वल भविष्य देखते है। इसलिए जांमवत ने उन्हें समझाते हुए कहा–'आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर।'

साधना गम विन्घ के कारण राम पुनः निराशा होते है।–

धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध!
जानकी! हाय, उद्धार प्रिया का न हो सका।

राम की शक्ति पूजा में सीता की मुक्ति केन्द्रीय भाव है, इसका प्रमाण यह है कि न सिर्फ कथानक के उद्देश्य के रूप में बल्कि कथानक के हर मोड़ पर सीता उपस्थित है। यूँ प्रतीत होता है कि राम के पास न होते हुए भी राम के शिविर की सभी घटनाओं का संचालन सीता ही कर रही है। ऊपर पंक्ति में सीता की युक्ति कथानक का मुख्य उद्देश्य है। जो कि रचना के अंतिम हिस्से में पूर्णतः स्पष्ट होती है। शक्ति पूजा का अंतिम इंदीवर माँ दूर्गा उठाकर ले गई है और रिक्त स्थान को देखकर राम–आत्मधिक्कार की अवस्था में पहुँच गये है।

यहाँ प्रश्न यह भी है कि यह आत्मधिक्कार किसलिए है? यह न तो विजय के लिए है, न साधना की सफलता के लिए बल्कि सिर्फ सीता की मुक्ति के लिए है। विफलता तथा आत्मधिक्कार की अवस्था में व्यक्ति सबसे पहले उसी लक्ष्य की बात करता है जो सबसे महत्वपूर्ण होते हुए भी पूरा नही हो पाता। आत्मधिक्कार के तुंरत बाद

'जानकी! हाय उद्वार प्रियाा का हो न सका' कथन का राम के मुख से निकलना इस बात का प्रमाण है कि सीता की मुक्ति ही कविता का केंद्रीय उद्देश्य है।

लेकिन एक और मन रहा राम का जो न थका। यह दूसरा मन निराला के जीवन में भी था जो विक्षेप–काल में भी उनकी सर्जनात्मक क्षमता को गतिशीलता प्रदान करता रहा। राम की शक्तिपूजा में आन्तरिक शक्ति के अभाव में राम सब कुछ करते हुए भी हार का अनुभव करते थे। ''वस्तुतः 'राम की शक्ति पूजा' अपनी सम्भवनाओं के साक्षात्कार की प्रकिया है। अन्य छायावादियों में आत्माभिव्यक्ति मिलती है तो निराला की लम्बी कविताओं में आत्मान्वेषण या साक्षात्कार है। इसीलिए नई कविता का मूल निराला की कविता में खोजा जाता है।''[6]

निराला जी की कविता (रचनाओं) का परिक्षण करने से पता चलता है कि आरम्भ में निराला ने तीन प्रकार की रचनाएं की – एक प्रकार की रचनांए मुक्त छन्द में दूसरे प्रकार की विषय मात्रिक छन्द में और तीसरे प्रकार की छन्द जो प्रचलित थी उस समय मुक्त छन्द में लिखी गयी उनकी रचनाएँ अधिक प्रौढ़ है, वाक्य रचना, शब्द–विन्यास, नाद–सौन्दर्य और भाव–वस्तु के उपस्थापन आदि सभी दृष्टियों से। इसका कारण यह है कि अध्ययन, विचार और काव्य प्रतिभा इन सभी दृष्टियों से निराला इस समय प्रौढ़ हो चुके थे और मुक्त छन्द में मुक्तता का एहसास करते हुए अपने को पूरा व्यक्त कर पाते थे। निराला का रचना संसार जितना व्यापक है, व्यक्तित्व उतना ही उदान्त। इसीलिए कह सकते है कि निराला अकेले ऐसे साहित्यकार है, जो जीते जी किवदंती बन चुके थे। और हर कविता के केन्द्र में बन्धन से मुक्ति की आकांक्षा भरी रहती है।

❑❑

अज्ञेय का मूल्यांकन समग्रता में करने वालों में प्रो0 रामकमल राय का नाम प्रमुख है। जिजीविशा और जीवटता अज्ञेय के कृति साहित्य की पहचान है। सामाजिकता में निजत्व का विलय नहीं बल्कि साथ, साहचर्य–सान्निध्य यही दृष्टि है जो अज्ञेय के अद्वितीय अवदान को एक सम्यक निर्मिति देती है। कहने को तो डॉ0 रामकमल राय लोहियावादी थे लेकिन अपने साहित्य में आपने ज्यादा घालमेल नहीं किया। वस्तुतः डॉ0 रामकमल साहित्य के निश्चल प्राणी थे, विनीत, विनम्र और साहित्यकारों के प्रति अनुरागी। कुल मिलाकर वर्तमान में आप साहित्य के अजातशत्रु हैं।

- कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

मुक्ति बोध : एक साहित्यिक की डायरी में यथार्थ का निरूपण

डॉ. सविता मसीहा
एसोसिएट प्राध्यापक, हिन्दी
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिवनी (म0प्र0)

गजानन माधव मुक्तिबोध का व्यक्तित्व एवं महान चितंक के रूप में उनकी रचनाएँ सामान्य जन की वेदना, पीडा, घुटन और आधुनिक साहित्य की विसंगतियों पर गहरा व्यंग्य करती है। उनकी जनसंवेदना आत्म संघर्ष की अभिव्यक्ति है। मुक्तिबोध की सृजन प्रक्रिया स्पष्टः मार्क्सवाद का आधार लेकर चली है, वही उनका सौन्दर्यशास्त्र है। उनके लेखक व्यक्तित्व को प्रखर बनाने में सर्वाधिक योगदान उनकी चर्चित कृति 'एक साहित्यिक की डायरी ने किया है – जैसा कि इनकी भूमिका में श्रीकांत वर्मा ने लिखा है – 'ये सारी डायरियॉ 57, 58 और 60 में वसुधा (जबलपुर) में प्रकाशित हुई थी।' मुक्तिबोध की डायरी में अभिव्यक्त यथार्थ का निरूपण लेखकीय काव्य, तथ्य, और सत्य की स्थापना संबंधी विचार का समावेश है।

एक प्रबुद्ध चिंतक के रूप में उनकी समीक्षा दृष्टि का धरातल पृष्ट वैचारिकता लिए हुए है। उनका सौन्दर्यशास्त्र सामाजिक चेतना, मानवीय क्रिया व्यापार और वस्तुजगत से समृद्ध है। संवेदना ज्ञान से और ज्ञान संवेदना से जुड़ा है। यही कारण है कि वे जनता के पक्षधर और संघर्ष के हिस्सेदार बने।'जनता जहाँ कहीं भी पीड़ित है। मुक्तिबोध की सहचर है और मुक्तिबोध अपना पहला जन्म अपने आत्मपरक सृजन में जीकर अपना पुनर्जन्म जनकाव्य में जीने की प्रतिश्रुत है।'

व्यंग्य शैली यथार्थ प्रेषण का सबल माध्यम है, जो स्वयं में आंतरिक सुनियोजित धारण करके चलती है। वसुधा में 'एक साहित्यिक की डायरी एक स्तम्भ था, जिसमें मुक्तिबोध ने समय–समय पर अपने स्वतंत्र विचारों को प्रस्तुत किया। 'यह डायरी शब्द भ्रम पैदा करता है और यह गलत फहमी भी हो सकती है कि मुक्तिबोध की डायरियाँ होगी। लेकिन वास्तविक यह है 'एक साहित्यिक की डायरी केवल उस स्तंभ का नाम था। जिसका अन्तर्गत समय–समय पर मुक्तिबोध को अनेक प्रश्नों करने की छूट न केवल संपादक की और से बल्कि स्वयं अपनी ओर से भी होती थी'

मुक्तिबोध की डायरी के विविध पक्ष मूलरूप से मानव अस्तित्व के प्रश्न को जीवंत करते है इन प्रश्नों में व्यक्ति निज उदासीनता जुड़ी है वे एक दार्शनिक चिंतक की भॉति 'स्व' के प्रति जागरूक होने की एक अस्तित्ववादी विचारधारा को उदभूत करते है यह उनका अंतर्ज्ञान है जो 'स्व' की स्वतंत्रता और सजगता के प्रति प्रकट होता है।

'एक साहित्यक की डायरी' किसी साहित्य विधा का स्वरूप नहीं है वरन वह मुक्तिबोध के चिंतन और मनोविश्लेषण का विविध पक्षमय प्रकटीकरण है जहाँ प्रश्न भी है और समाधान भी है, पीड़ा भी है और पीड़ाकारक पक्षों का उद्‌घाटन भी यहाँ उनका व्यक्तिव एक साहित्यकार आलोचक, कवि, दार्शनिक, मनोविश्लेषक और मानव विज्ञानी के साथ–साथ अस्तित्ववादी की यथार्थ दृष्टि के रूप में व्यक्त हुआ है मनुष्य के व्यक्तित्व का गहरा रहस्य उन्होनें समझा। जहाँ मनुष्य 'स्व' का यथार्थ विस्मृत कर जाता है, उसका व्यक्तित्व स्व से पृथक होकर एक विच्छिन्न अवस्था को प्राप्त हो जाता है, उसकी आत्मगत स्थिति बाह्म जीवन की स्थिति से अलगाव निर्मित कर लेती है मनुष्य का स्व से पार्थक्य उसके अस्तित्व से निर्वाचन है, जो उसकी मनः स्थिति को विकृत चेतना अवस्था तक पहुँचा देता है, इससे मुक्त होने के प्रयासों में प्राप्त असफलता से वह जीवन की तिक्तता और निरर्थकता को अनुभव करता है वह अस्तित्व की खोज में एक रहस्य बनाता जाता है।

मुक्तिबोध की मानवीय क्रियात्मकता इसी आत्मपीड़न और विवेकशून्य की स्थिति से उत्पन्न है, जहाँ उनकी

अभिव्यक्ति कला दर्शन की भूमि से जीवंत होकर मानव का यथार्थ बोध बन गयी।

वे रूमानी आवेग और कल्पनाशीलता से युक्त एक यथार्थवादी कवि थे, इसलिए साधारण जीवन का यथार्थ् चित्रण ही कविता में उनका मुख्य लक्षण था, कहा–असली चीज जीवन यथार्थ है, इस यथार्थ को वे सरल, और स्पष्ट रूप से नहीं, बल्कि उसकी समग्र जटिलता में अनेक बार उसके परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले पहलुओं के साथ देखने और चिन्हित करने के पक्ष में थे। उनकी कविता में यथार्थ के पहलू एक–दूसरे से उलझे दिखाई देते हैं।

बदरंग यथार्थ, विद्रूप अर्थ आ,
छाती में जाग तू भी सही है।

वे यथार्थ के चित्रांकन के लिए यथार्थ रंगों की खोज की बात ही नहीं करते वे विभिन्न रंगों के मिश्रण से और नए रंग बनाने की बात भी कहते हैं इसे विविध रंगी यथार्थ के सृजन हेतु एक कलाकार की नहीं वैज्ञानिक की भाँति सोच धारण करने की आवश्यकता है। यथार्थ चित्रण में मात्र कलाकार की ही भूमिका नहीं होती बल्कि एक वैज्ञानिक की भॉति यथार्थ की परख की जाये।

वैज्ञानिक की तरह यथार्थ को समझा जाये, और कलाकार की तरह उसे चित्रित किया जाये। उनके इस यथार्थ प्रक्षेपण में उदात्त और अनुदात्त भाव रंगों का अनूठा संयोजन हुआ है।

मेरा मन,
अंधकार प्रतिरूप, प्रदान वह करता है।
आकाश अवकाश–प्रभास व रेखाएं
रश्मियों को, रश्मि–चरित्र को, सत्य को।।

मुक्तिबोध की यह डायरी मानवीय चेतना और अंतरमंथन की यर्थाथवादी अभिव्यक्ति है, जिसमें सृजन के विभिन्न पक्ष व्यक्ति के यथार्थ से प्रत्यक्षीकरण का जीवंत जीवनानुभव प्रस्तुत करते है, यह लेखक का निजत्व व्यक्त करते युगीन यर्थाथ् है।

कला के तीन–क्षण रचना प्रणाली का विश्लेषण सिद्धांत है 'कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कृष्ट तीव्र अनुभव क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक फैण्टैसी का रूप धारण कर लेना मानों वह फैण्टैसी अपनी आँखों के सामने खड़ी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है इस फैण्टैसी के शब्द बद्व होने की प्रक्रिया का आरंभ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता'।

तीसरा क्षण–मनुष्य के व्यक्तित्व में छिपे रहस्य को खोजने का प्रयास है जिसमें मानव मन की अंधेरी रहस्यमयी भाव स्थली का दर्शन करते है' मुझे लगता है कि मन एक रहस्यमद लोक है, उसमें अंधेरा है सीढ़ियाँ गीली है सबसे नीची सीढ़ी पानी में डूबी हुई है, वहाँ अथाह काला जल है, उस अथाह जल से स्वयं को ही डर लगता है, इस अथाह काले जल में कोई बैठा है, वह शायद में ही हूँ।'

मुक्तिबोध रचना की प्रक्रिया में अनुभव को मूल स्वीकार करते है यही अनुभव अंतर में आवेग मनोभूमि को अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करता है।

'फैण्टेसी अनुभव की व्यक्तिगत पीड़ा से पृथक होकर अर्थात् उनसे तटस्थ होकर अनुभव के भीतर की ही संवेदनाओं द्धारा उत्सर्जित और प्रक्षेपित होगी। एक अर्थ में वैयात्तिक होते हुए भी दूसरे अर्थ में नितांत निव्योत्तिक होगी। इसी बीच फैण्टेसी कुछ ग्रहण करके वास्तविक पृथक स्वतंत्र बन बैठी।

'फैण्टेसी अनुभव की कन्या है और यह कन्या का अपना स्वतंत्र विकास समान व्यक्तित्व है वह अनुभव से प्रसूत है इसीलिए वह उससे स्वतंत्र है'

सौन्दर्य प्रतीति इन्ही कला के तीन क्षणों से होती है 'सौन्दर्य क्या है, अथवा सौन्दर्य प्रतीति क्या है, सौन्दर्यानुभव क्या है और वह किस प्रकार वास्तविक अनुभव से भिन्न है तो तुम्हें कला के इन तीन क्षणों के मनोविज्ञान ही का अध्ययन करना होगा' इसमें सृजन शील कल्पना का संवेदय रूप ही प्रधान है।

'फैण्टेसी में संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदनाएँ है जब वह शब्दबद्ध होती है तो उसमें नये तत्व आ जाते है जिसमें अनुभव के बिंब भावनात्मक उदेश्यसंवेदनात्मकदिशा, और मर्म प्राण उदेश्य बन जाता है यह मर्म एक उद्देश्य बन जाता है यह मर्म एक उद्देश्य पीड़ा दिशा है।

एक लंबी कविता का अंत –

कविता के सुदीर्घ रूप में विद्यमान उसकी अन्तर अभिव्यक्ति उसकी समस्याएँ और उलझने लगती है। ये जीवन के परस्पर गुंफित यथार्थ है जिन्हें कही भी छोड़कर कविता का रूप लघु नहीं किया जा सकता। लेखक की आस्था अर्थ प्रेरित नहीं होनी चाहिए। 'अनास्था का जन्म आस्था से ही होता है। अनास्था आस्था पुत्री है'

मुक्तिबोध भीड़ के प्रति व्यक्ति कवि अभिव्यक्तियों के प्रति प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति देते है।

'कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यह जानता है कि एक स्थान में एकल असंगठित जनता भीड़ नहीं है क्योंकि वह संगठित है जहाँ संगठन है वहाँ एक प्रेरणा और उद्देश्य भी है, जहाँ एक प्रेरणा और उद्देश्य है वहाँ एक स्फीत और सक्रिय चेतना है'।

'जनता समूह है वह अज्ञ है, अंधकार ग्रस्त है वह जल्दी ही भीड़ बन जाता है उसका साथ मत दो तुम सचेत व्यक्तिशाली प्राण केन्द्र हो उसमें अपने आपको विलीन मत करो'।

इस प्रतिक्रिया में जन के प्रति घृणा है और वह बुद्धिजीवियों को जनता से अलग करके रखने का एक उपाय है।

एक सच्चे लेखक की लेखकीय क्षमता उसकी अंतः शक्ति और सत्यता में होती है वह अपनी दुर्बलता से स्वयं परिचित होता है वह अपनी अभिव्यक्ति में कहाँ सफल और कहाँ असफल है वह जानता है यह उसका लेखन के प्रति सचेष्ट भाव है। लेखक स्वयं एक आलोचक है।

'उसे अपनी अक्षमता और आत्मसीमा का साक्षात बोध होता रहता है ऐसा क्यो? इसलिए कि वह अपनी अभिव्यक्ति की तुलना, जी में धड़कने वाले केवल वस्तु सत्य से ही नहीं करता, वरन अपने स्वयं के साक्षात्कार सामर्थ्य की तुलना उस वस्तु की विशालता से करता है'।

जिंदगी क्या है बस एक घुटन है जिसमें हर समय काल और युग में कोई न कोई कुंठा व्याप्त रही है।

वे कुंठा को मनोविज्ञान से प्रसूत मानते है उसे फ्रायडवाद और मार्क्सवाद की संकर संतान कहते है वे स्वयं को एक सच्चे कलाकार को वक्र मार्गी संघर्ष–गामी व्यक्ति मानते है जो अपने अंदर संपूर्ण वस्तु सत्य धारण करके चलता है तभी तो वह डबरे का सूरज है जा सूरज का संपूर्ण् प्रतिबिंब धारण करके रखता है। वे वर्तमान की सत्यता का सबसे बडा शत्रु सत्य और और उसकी दुर्बलता को मानते है।

लेखन की विवशता और उसमें प्रकटीकरण की छटपटाहट विचारों को अवरूद्ध करती है वे एक आलोचक की तटस्थ दृष्टि और लेखक के स्नेहित सहज विश्वास पूर्ण श्रृद्धामयी जीवन की वास्तविक कला का प्रश्न लेकर एक भावना और एक सूक्ष्म दृष्टि की खोज करते है। उनकी दृष्टि में आलोचक सदैव तटस्थ और निष्पक्ष नहीं होता।

'अंधी दृष्टि से अंधी आलोचना एक भयंकर चीज है'

आलोचना बुद्धि का क्षेत्र है और श्रद्धा हद्धय का।

'किसी भी व्यक्ति पर एकात्म श्रद्धा गलत है, चाहे वे अपने माता हो या पिता पहले वे मनुष्य है इस चरित्र को देखने के लिए आवश्यक निर्मल तटस्थ भाव हममें चाहिए'।

मानव मन की स्थिति विचारों की प्रतिक्रियात्मकता है।

'मन की उग्र प्रतिक्रिया ही आजकल विचार कहलाती है, विचार को कसने की कोई कसौटी Objectivity नहीं है, हम आत्म बाहय् किसी भी तत्व के प्रति विद्रोही हैं तो हमारी बुद्धि विश्वास चाहती है लेकिन विश्वास कर नहीं सकती'।

उस अंतरात्मा का प्रत्येक भाव उचित व संगतपूर्ण् हो यह भी आवश्यक नहीं।

जीवन में सफलता का महत्व प्रतिपादन उसके गौरवपूर्ण औचित्य पर निर्भर है मनुष्य को अपने जीवन के कुछ ऐसे सिद्धांतव आदर्श धारण करना चाहिए जो उसे आत्म पतन से बचायें।

जीवन के अनुभव और संवेदनाऍ यथार्थ में सदैव वैसा ही प्रक्षेपण नहीं करते अनुभवों की संवेदना अपना पृथक कार्य करती है और अनुभवों का प्रक्षेपण उसके साथ नहीं चलता वे जिंदगी की निरर्थकता को भी रूपांकित करते हैं। 'जिंदगी की निरर्थकता के बारे में यही कहा – 'खत्म हमारी जिंदगी खत्म जिंदगी में दिलचस्पी खत्म दिलचस्पी में दिल चस्पी खत्म'।

इस प्रकार इस डायरी में मुक्तिबोध ने अपनी प्रखर व पैनी दृष्टि से लेखक के जीवन का सूक्ष्म संश्लिष्ट प्रस्तुतीकरण किया है जिन्हें एक बौद्धिक व संवेदनशील रचनाकार के अतिगहन भावों विचारों का मनन कह सकते हैं। लेखक के जीवन मूल्य यथार्थ जीवन से संपृक्त होते है।

'जीवन मूल्य और कलात्मक साहित्यिक मूल्य में आवयविक संबंध है, यह न भूलना चाहिए इन्हें विकसित करने के लिए केवल साहस स्पष्ट दृष्टि, स्पष्ट लक्ष्य और स्पष्ट विचार धारा के लिए कोशिश आवश्यक है।

'यह डायरी साहित्यकार के युगबोध को संपूर्ण यर्थाथ् और विविध संदर्भों के साथ उद्धारित करती है मुक्तिबोध की जीवन मान्यताऍ जीवन दृष्टि एक दीपस्तंभ बनकर भविष्य का मार्ग निर्दिष्ट करती है यह डायरी एक अदभुत साहित्यकार का विलक्षण व्यक्तित्व प्रस्तुत करती है।

विभिन्न विद्धान के मत :

डॉ. शिवकुमार मिश्र – 'यह कृति अपनी विचार संपति में अपने कनटैन्ट में आज की जटिल जीवंत परिस्थितियों में सृजन करने वाले एक साहित्यिक के प्रखर यर्थाथबोध तथा अनुभूत जीवन वास्तव का बड़ा साफ सच्चा चित्र है, अपने रचनाकार, विचारक चिंतक की मूलभूत ईमानदारी तथा दायित्व चेतना की साहसपूर्ण खरी अभिव्यक्ति है, युग के किन ज्वलंत संदर्भो में आज का सृजन साँसे ले रहा हैं, सृजन के दौरान आज के ईमानदार रचनाकार की उन संदर्भो के प्रति क्या प्रतिक्रिया हो सकती है, इन संदर्भों के सामने आने वाले सृजन का रूप क्या है, आज के रचनाकार के युगबोध तथा दायित्व चेतना के कौन से स्तर है और वे कहाँ तक एक युग संतृप्त का परिचय देते है, आदि न जाने कितनी बातें मुक्तिबोध की प्रखर दृष्टि, गहन अनुभूति तथा पैनी लेखनी का विषय बनकर इस डायरी कही जाने वाली गघ कृति में बडे बेलौस ढंग से सामने आयी है, मुक्तिबोध् का साहित्यिक व्यक्तित्व एक साथ कितना संवेदनशील तथा कितना बौद्धिक था, साहित्यकार की आस्था उनमें कितनी अधिक जीवित तथा बलवती थी, इसका यह कृति अदभुत प्रमाण है।

डॉ. नामवरसिंह – 'एक साहित्यिक की डायरी एक व्यापक अर्थ में रचना प्रक्रिया का ग्राफ चित्र भले ही हो, वस्तुतः वह उत्तरशती की जटिल प्रक्रिया का जीवंत दस्तावेज है... जिसकी दिलचस्पी आज के परिवेश के बीच अपने को समझने में है, उनके लिए मुक्तिबोध 'एक साहित्यिक की डायरी' निश्चय ही एक सार्थक वैचारिक मानचित्र का काम देगी क्योंकि यह शुद्ध साहित्यिक' डायरी नहीं बल्कि डायरी है एक साहित्यिक की संपूर्ण साहित्यिक की'।

श्रीकांत वर्मा के अनुसार – 'एक साहित्यिक की डायरी' एक नये सौन्दर्य शास्त्र की तलाश है वे उस समय नये सौन्दर्य शास्त्र की तलाश कर रहे थे। यह हिंदी का अपना अनोखा ढ़ंग है'

शमशेर बहादुर के अनुसार – 'मुक्तिबोध जी में गहरी ईमानदारी के साथ समस्या को सहज ढ़ंग से प्रस्तुत करने की अदभुत क्षमता थी, वे अपने बचाव या किसी के भी बचाव की बात नहीं करते थे।

इस डायरी में लेखक की मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि निश्चित रूप से सामान्य बौद्धिक धरातल से समन्वय नहीं बना सकी। उसे समझने और आत्मसात करने में एक असफलता का आभास आरम्भ में होता है। यह जीवन के अप्रिय प्रसंगों और भयावह अनुभवों का प्रतिफलन है कि वह सब उनके लेखन में दुःखद भाव लेकर व्यक्त हुआ। यह उनकी जीवंतता का अदभुत प्रमाण है, जहाँ वे मन से टूटे नहीं और लेखन से परास्त नहीं हुए।

एक निर्वासित व्यक्तित्व के रूप में उनका अस्तित्ववादी दर्शन उनके जीवन और अति विलक्षण बौद्धिक धरातल पर उदभूत संवेगों का संचार करता रहता है। वे अंधेरे गहन तल में निज आत्मावलोकन कर विश्लेषण की मानसिक प्रक्रिया से संघर्ष करते है, वे यथार्थ और मिथ्या जीवन में रेखांकन करने का प्रयास करते हैं। मुक्तिबोध की व्यक्तिगत् ईमानदारी उन्हें उनके निज संवेग सूत्रों से बंधनकारी बनाकर रखती है वे इसी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति करने ईमानदारीपूर्ण प्रयास करते हैं। अपने निरर्थक् जीवन अंशों के साथ उन्होंने जीवन की वास्तविक भूमि को प्रत्यक्ष किया है जहाँ सारी मान्यताएँ और नियम क्रमशः टूट जाते हैं यहाँ कहीं न कहीं विखण्डन की पीड़ा का जन्म होता है वे मानव मन से जुड़कर उसमें अस्तित्व की बाह्य सतही स्थिति से पृथक अनंत गहराई में उसके यथार्थ की खोज करते दिखाई देते हैं। वे मानव की भौतिक स्थिति के प्रति अति सजग है पर मनुष्य अपनी मौलिकता से पृथक नैतिकता के पाप–पुण्य में भ्रमित रहता है। यही नैतिकता का अस्थिर भाव उसे दुर्बल बनाकर उसे विषाद और दुख से जोड़ता है, यह विषाद जीवन की सार्वभौम सत्ता बन सारे सुख आनंद का तिरोधान कर देता है।

संदर्भ संकेत

1. मुक्तिबोध एक साहित्यिक की डायरी – मुक्तिबोध।
2. मुक्तिबोध की आत्मकथा – विष्णुदत्त शर्मा।
3. मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदन – नंदकिशोर नवल.
4. नये कवि एक अध्ययन – डॉ. संतोष तिवारी।
5. प्रगतिवादी काव्य साहित्य – कृष्णलाल हंस।
6. मुक्तिबोध का रचना संसार – डॉ. गंगा प्रसाद विमल।

❑❑

पं. गंगारत्न पाण्डेय के साहित्य का सांस्कृतिक अनुशीलन

प्रीति पटेल
शोधार्थी
छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

श्रेष्ठ साहित्यकार पं. गंगारत्न पाण्डेय साहित्य सरोवर में अव...करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त मैंने देश के अन्य मूर्धन्य साहित्यकारों यथा मुंशी प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, वृन्दावन लाल वर्मा, अमृत लाल नागर, यशपाल, फणीश्वर नाथ रेणु आदि के साहित्य से भी काफी परिचय प्राप्त किया है। उन्हीं के परिप्रेक्ष्य में मैं विश्वास के साथ कहती हूँ कि पं. गंगारत्न पाण्डेय की मौलिकता उन्हें श्रेष्ठता की श्रेणी में ला खड़ी करती है। उनकी रचनाओं में किसी पूर्ववर्ती साहित्यकार की छाप नहीं दिखाई पड़ती है, फिर भी मुझे दुःख है कि पं. गंगारत्न पाण्डेय जी ने 'नचिकेता' (महाकाव्य) 'मेवाड़ मुकुट' (खण्ड काव्य), पुष्प पुराकृत (कहानी संग्रह), मृग जल (नाटक), 'तेरे सानिध्य में' (काव्य संकलन), नये सन्दर्भों में (काव्य संकलन), 'उन्मेष' (काव्य संकलन), इतिहास के नेपथ्यमें' (दो भागों में – उपन्यास) काया कन्था' (कहानी–संकलन), 'निहारा पथ न आये तुम' (गजल संग्रह), 'देवव्रत' (आत्मकथा) आदि विशाल साहित्य का सृजन किया, परन्तु उन्हें नोबेल पुरस्कार प्राप्त नहीं हो सका है।

वस्तुतः उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने उनकी साहित्यिक सेवाओं का संज्ञान लेते हुए उन्हें साहित्य भूषण अलंकरण से सम्मानित किया। ाउनके साहित्यिक अवदान को देखते हुए यह सम्मान अत्यन्त निम्न है। किन्तु यह उनकी महानता थी जो उन्होंने कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार किया।

भारतीय संस्कृति में नारी को देवी का पद किया गया है पाण्डेय जी ने भी अपने नचिकेता महाकाव्य में नारी को उच्च पद पर प्रतिष्ठित किया है। ऋषि वाजश्रवा रोहि... को अपने कुल की शोभा बताते हुए धर्म की अनुरागिनी बताया है।

'तुम मेरे कुल की श्री शोभा
सन्तत सुधर्म की कीर्तिलता।।'[1]

मातृ ह्रदय जो सदा ही पुत्र कल्याण की कामना से युक्त रहता है माँ रोहिणी के ह्रदय की ममता साधारण ह्रदय पाठक को भी ममत्व से युक्त कर देती है।

'नन्हा सा मेरा लाल, नाम इतना विशाल, ज्यों पूर्ण पुरुष
रोहि... सोचती मन–ही–मन, मैं कैसे ... नाम पुरुष
भव सेतु प्रणेता है होगा उना नचिकेता है, होगा
मेरा तो नन्हा लाल 'न... नाचता ह्रदय में नयनों में।'[2]

देशराग कविता में पं. गंगारत्न पाण्डेय जी ने अपनी देशभक्ति पूर्ण कर्मठता के साथ–साथ राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति दी है –

'आओ मिलकर एक बार
हम छेड़े ऐसी तान
विश्वराग के ललित राग में,
जिसका हो उत्थान।'[3]

अल्पशब्दों में समग्र अध्याय समाहित करने की कला गंगारतन पांडेय जी में कूट–कूट कर भरी हुई थी।

निम्नांकित एक पंक्ति अपने आप में जो अर्थ समोये हुए है वह मन मस्तिष्क को विचार सागर में डुबकियां लगाने के लिए पर्याप्त है–

सब अस्थिर है, सब क्षण भंगुर है।
'सब अभाव मय जीवन ही अब,
लगता मुझे भला है।
मैं प्रसन्न हूँ, मन से वैभव,
का उन्माद टला है
जिसकी जितनी जैसी निष्ठा,
मे... कर पाती बोध वहन।'[4]

कवि ने प्रकृति परिवेश और वातावरण का सुन्दर चित्रण अपने काव्य ग्रन्थों में किया है उनका प्रकृति प्रेम अनुपम है, उन्होंने वन उपवन, हिमालय, दिन–रात, प्रातः–संध्या, ऋतु, कुसुम–कलिका आदि प्राकृतिक उपादानों का मनोरम और मार्मिक चित्र खींचा है।

'पाण्डेय जी के प्रारम्भिक कवि जीवन की ये रचनाएँ स्वस्थ मानसिकता, सकारात्मक दृष्टिकोण, प्रगाढ़ देशभक्ति, उद्दाम सांस्कृतिक अभिरूचि से सम्पन्न है उनकी इन विशिष्टताओं का विकास उनके प्रौढ़ जीवन की कृतियों में पूर्ण रूप से हुआ है।'[5]

भारतीय परम्परा रही है कि हम अपने पूर्वजों – अंग्रेजों का सम्मान शब्दों और आचरण से कहरते है पाण्डेय जी ने भी संस्कृति का अनुपालन करते हुए अमर महाकवि तुलसीदास जी को अपनी भावाभिव्यक्ति के माध्यम से श्रद्धा सुमन समर्पित किये है –

'यह सौभाग्य हमारा धन्य
पाया हमने जो तुलसी–सा
विश्व वन्ध कवि, कवि कुल धन्य।।'[6]

मानव समाज के सृजन की कल्पना तथा उसे परिभाषित करने की अनुपम कला हम 'इतिहास के नेपथ्य में' उपन्यास में देखते है – 'धन्वन्तरि देवताओं के अशोभनीय व्यवहार से क्षुब्ध है अतः वह देवलोक में जाने को तैयार नहीं हैं और असुर लोक में जाने का प्रश्न ही नहीं उठता ऐसे`में वह कहाँ जाएँ? उनके सम्मुख एक विकट प्रश्न है, वह प्रभु नारायण के अत्यन्त निकट हैं फलस्वरूप वह अपनी समस्या उनके सामने रखते है, इसी मध्य देवर्षि नारद का आगमन होता है और वे प्रभु नारायण को तीसरे समाज के निर्माण का सुझाव देते हैं। देवर्षि के शब्दों में 'सुर समाज तो अमृतपान कर अमर है और असुर समाज मरणशील होते हुए भी मृत्यु–भय से मुक्त है। तो यह नवीन समाज मरणधर्मा होकर भी अमरता की प्रबल, पर असफल कामना से भ्रमित रहे, और मृत्यु भय से त्रस्त भी। यह समाज ऐसा हो प्रभु। जिसका प्रत्येक सामान्य व्यक्ति दृष्टि रखते हुए भी अन्धा रहे, सुनकर भी अनसुनी करे, बुद्धि रहते हुए भी निर्बुद्धि रहे, समझकर भी नासमझ रहे, जान–मानकर भी न जाने माने, विवेक सम्पन्न होकर भी मूढ़मति बना रहे नित्य मुक्त होकर भी बन्धनों में जकड़ा रहे।'[7]

'इतिहास के नेपथ्य में' जैसी वृहद् औपन्यासिक संरचना के परोक्ष में उनका यही मत्तव्य है कि उसकी भूमिका में वे स्वयं लिखते है –

'मैं पाठकों के सतही मनोरंजन–मात्र के लिए लेखनी नहीं उठाता। मेरे लिए साहित्य–सेवा शब्द ब्रहम की आराधना है इस आराधना में किसी इतर भाव का सम्मिश्रण अस्वीकार्य होना ही चाहिए।'[8]

पाण्डेय जी ने तत्कालिक परिवेश की परिस्थितियों पर भी कितनी कुशलता से व्यंग्य किया है –

'यह सब इसी धरती की छाती पर होता है, और भेड़ियों का,खून पीने वालों का परिवार उन्हीं तक सीमित नहीं है, जो दोनों हाथों को भी जमीन पर रखकर चलते है।'[9]

'काया कन्था' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'पंचरतन धन' समाज में साधु रूप में घूम रहे विश्वासघाती, लोभी, कामी, कृतघ्न, काशीनाथ दीक्षित पर आधारित है। जो समाज के सीधे सच्चे ह्रदय वालों की भावनाओं से क्रीड़ा करते रहते है और जब उनकी कलई खुलने वाली होती है तो रातों रात तिरोहित हो जाते है। लेखक ने सामाजिकों को सावधान रहने का इस कहानी के माध्यम से संदेश दिया है। तत्कालीन परिवेश में हो रही घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में यह कहानी सटीक प्रासंगिक है –

'कितना धूर्त और क्रूर–ह्दय का था यह आदमी? बेचारे सीधे–सादे ब्रहमण को यह प्रतिफल दे गया उसकी सेवाओं का? दीवान मोहन लाल बोले।'[10]

अस्तु पं. गंगारत्न पाण्डेय जी ऐसे मनीषी साहित्यकार हैं जिन्होंने अपनी तूलिका से समाज के सांस्कृतिक विषयों को, मानवीय संवेदनाओं को, इतिहास के अवलम्बन द्वारा तथा जीवन मूल्यों को उत्कर्ष प्रदान करने का प्रयास किया है। जो गहन विषयों को भी सहज सरल व रोचक बनाने में सिद्ध हस्तता का परिचायक है।

सन्दर्भ संकेत

1. नचिकेता, पं. गंगारत्न पाण्डेय, पृष्ठ–25
2. नचिकेता, पं. गंगारत्न पाण्डेय, पृष्ठ 96
3. उन्मेष, पं. गंगारत्न पाण्डेय, पृष्ठ 23
4. नचिकेता, पं. गंगारत्न पाण्डेय, पृष्ठ 22
5. उन्मेष, पं. गंगारत्न पाण्डेय, भूमिका से
6. उन्मेष, पं. गंगारत्न पाण्डेय पृष्ठ 18
7. इतिहास के नेपथ्य में, पं. गंगारत्न पाण्डेय, पृष्ठ 17
8. इतिहास के नेपथ्य में, पं. गंगारत्न पाण्डेय, भूमिका से
9. काया कन्था, पं. गंगारत्न पाण्डेय, पृष्ठ 64
10. काया कन्था, पं. गंगारत्न पाण्डेय, पृष्ठ 142

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

'स्वाधीनता संग्राम और हिन्दी पत्रकारिता'

डॉ. मार्तण्ड सिंह
एसो0 प्रो0 – हिन्दी विभाग
इलाहाबाद डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद

हम जिन साधनों से अपने विचारों, भावों सूचनाओं या जानकारियों को दूसरों तक पहुँचाते हैं, उन्हें जनसंचार के माध्यमों के तहत परिणित किया जाता है। मुद्रण माध्यम (पत्र–पत्रिकायें) और मुद्रण माध्यम (फिल्म, रेडियों, टी. वी. चैनल्स और इन्टरनेट) की सशक्त प्रभावशाली तथा सर्वग्राह्य सम्प्रेषणीयता का आधार होता है –'सम्प्रेषण सामग्री का सम्पादन'। क्योंकि सम्पादन एक ऐसा माध्यम है जो विषय–वस्तु को या सामग्री को विशिष्टता प्रदान करता है। यह विशिष्टता है जो कि पाठक या दर्शक या उपयोगकर्त्ता में माध्यम के प्रति सौन्दर्यबोध संचारित करती है। सौन्दर्यबोध ही माध्यम के चयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सचमुच पत्रकारिता जनभावना की यथार्थ अभिव्यक्ति है जो असहायों, दलितों, पीड़ितों और दुःखी व्यक्तियों की सहायिका के साथ–साथ शासक वर्ग की मार्गदर्शिका भी है। पत्रकारिता किसी भी समाज व राष्ट्र का दर्पण है। सत्यान्वेषण, ज्ञानवृद्धि तथा विचारों का उन्नयन पत्रकारिता का लक्ष्य है और उस दृष्टि से इसका मुख्य सोद्देश्य सेवा है।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में हिन्दी पत्रकारिता की भूमिका अविस्मरणीय रही है। तत्कालीन पत्रकारों की लेखनी ने जनता में उत्साह, स्वाभिमान एवं परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ी हुई भारतमाता की मुक्ति की प्रेरणा जागृत की। एक ओर उन्होंने आधुनिक हिन्दी पत्रकारिता के नवीन मानदण्ड स्थापित किये, वहीं हिन्दी सम्पादकों एवं पत्रकारों की संस्था की स्थापना और उसके मार्गदर्शन का कार्य किया। उस समय पत्रकारिता व्यवसाय नहीं एक मिशन था और पत्रकार वेतनभोगी कर्मचारीमात्र नहीं स्वतन्त्रता संग्राम का एक सच्चा सिपाही होता था। वह एक ओर अपनी कलम के माध्यम से राष्ट्र–निर्माण के लिए रचनात्मक कार्यों में सहयोग देता और दूसरी ओर अपनी रचनाओं से स्वतन्त्रता की मशाल को जलाये रखता था।

हिन्दी पत्रकारिता का जन्म पण्डित जुगल किशोर शुक्ल द्वारा सन् 1826 में कलकत्ता से प्रकाशित 'उदन्त मार्तण्ड' नामक पत्र से होता है। शुक्ल जी ने चिन्तन किया कि अन्य भाषा–भाषियों के लिए तो पत्र निकलता है जिसे पढ़कर उन्हें सन्तुष्टि मिलती है लेकिन हिन्दी भाषा–भाषियों के लिए ऐसा कोई पत्र नहीं – पत्र के पहले अंक का यह अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है – यह 'उदन्त मार्तण्ड' अब पहले पहल हिन्दुस्तानियों के हित हेतु जो आज तक किसी ने नहीं चलाया। इससे सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ ओ समझ लेंगे ओ पराई अपेक्षा न करें ओ अपने भावे की उपज न छोड़े इसलिए मई 1829 में हिन्दी का दूसरा पत्र 'बंगदूत' भी कलकत्ता से ही प्रकाशित हुआ। इसके बाद 1834 में 'प्रजामित्र' भी यहीं से प्रकाशित हुआ। 1844 में हिन्दी भाषी क्षेत्र से निकलने वाला पहला पत्र 'बनारस' था, इसे राजा शिवप्रसार 'सितारेहिन्द' ने निकाला था। सन् 1846 में मौलवी नासिरुद्दीन के सम्पादकत्व में 'मार्तण्ड' नामक पत्र निकला। यह हिन्दी पत्रकारिता का उद्भव काल था इस काल के अन्य प्रमुख पत्रों में 'ग्वालियर गजट', 'समाचार सुधावर्षण', 'प्रजाहितैषी', 'हिन्दी बंगवासी' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस प्रकार हम प्रथम उत्थान में पत्र–पत्रिकाओं का उद्देश्य जनता में जागरण और सुधार की भावना उत्पन्न करना था। भारतीय स्वतन्त्रता का आह्वाहन एवं अन्याय का प्रतिकार अपनी सीमाओं में इन पत्र–पत्रिकाओं ने किया था।

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की पहली साहित्यिक सशक्त अभिव्यक्ति भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850–1885) में मिलती है। भारतेन्दु जी ने जनजागरण का श्लाघनीय प्रयास 15 अक्टूबर, 1873 को 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' से प्रारम्भ

कर दिया था। परन्तु सर्वप्रथम स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार का प्रतिज्ञा–पत्र भारतेन्दु ने 23 मार्च, 1874 में 'कविवचन सुधा' में प्रकाशित किया। डॉ. रामविलास शर्मा ने अपने पुस्तक 'भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा' में ठीक ही लिखा है – 'यह प्रतिज्ञा–पत्र भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य है।'

भारतेन्दु मण्डल के सशक्त हस्ताक्षर बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने साप्ताहिक 'नागरी–नीरद' और मासिक 'आनन्द कादम्बिनी' के सम्पादन द्वारा भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम एवं हिन्दी पत्रकारिता को नई दिशा प्रदान की। भारतेन्दु मण्डल के लब्ध प्रतिष्ठ पत्रकार पं. प्रताप नारायण मिश्र ने 'हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान' एक जबान से जपने की सलाह दी है क्योंकि उनके विचारानुसार त्रिदेव के समान यही कल्याण करेंगे। अंग्रेजी राज के शोषण इन्होंने आवाज उठाई। हिन्दी प्रदेश में भारतेन्दु युग में जो राष्ट्रीय जागरण की लहर आयी है उसे 'हिन्दी प्रदीप' ने पूरी शक्ति से जीवित रखा। बालकृष्ण भट्ट 'हिन्दी प्रदीप' में लिखते हैं कि – 'राजभक्ति और प्रजा का हित दोनों कैसे निभ सकता है।'

भारतेन्दु युग में राष्ट्रीय चेतना का विकास हो चुका था तथापि राष्ट्रीयता को वाणी देने के लिए एक सशत्त भाषा की आवश्यकता थी, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बुद्धिजीवियों का आह्वाहन किया कि वे अपनी भाषा में श्रेष्ठ साहित्य की सर्जना कर अपने राष्ट और समाज को नई दिशा दें। पं. मदन मोहन मालवीय, डॉ. श्याम सुन्दर दास, महावीर प्रसाद द्विवेदी, और बालमुकुन्द गुप्त के प्रयत्न से 1900 ई. में लें, गर्वनर एटमी मेकडानल्ड ने अदालत में हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के व्यवहार के लिए आज्ञा–पत्र निकाला। 1903 में सरस्वती के प्रकाशन द्वारा तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना को समृद्धि प्रदान की थी। 'शिव शम्भू के चिट्ठे' में बालमुकुन्द गुप्त ने लार्ड कर्जन के शासन की भारतीय दृष्टिकोण से कटाक्ष करते हुए लिखते हैं – 'दिल्ली दरबार में कुछ बातों की कसक रह गयी थी बंगदेश का पार्टीशन भी एक बहुत जरूरी काम था। आचार्य द्विवेदी की तपश्चर्या की फलश्रुति थे – बाल मुकुन्द गुप्त, मैथिलीशरण गुप्त, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (समालोचक–1902) अम्बिका प्रसाद शुक्ल (इन्दु–1909)।

यदि भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में हिन्दी पत्रकारिता के योगदान को देखा जाय तो पता लगेगा कि प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति भारतीय आत्मा की प्रतिष्ठा में संलग्न था। यह प्रतिष्ठा कई स्तरों पर की जा रही थी – धर्म के स्तर पर, दर्शन के स्तर पर, राजनीति के स्तर पर। हिन्दी साहित्य की दृष्टि से यह छायावादी युग था जो गांधी युग की ही साहित्यिक उपलब्धि है। गांधी युग की पत्र–पत्रिकाओं में 'आज' (1920), 'स्वराज्य'(1920) 'कर्मवीर' (1920) 'अर्जुन' (1923) 'समन्वय' (1923) 'मतवाला' (1923) 'चाँद'(1920 / 1923), 'माधुरी' (1922), 'मर्यादा'(1923) 'कर्मवीर' (1920), 'विशाल भारत' (1928), 'हंस', 'हरिजन सेवक', 'कल्याण'(1925), 'प्रताप', 'आदर्श', 'मौजी', 'सरोज', 'साहित्य–सन्देश' का नाम अविस्मरणीय है। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में इन पत्र–पत्रिकाओं की भूमिका अप्रतिम रही है। मूल रूप से इस युग का नेतृत्व महात्मा गाँधी के हाथों में था, जिन्होंने भारत की शोषित पीड़ित और निहत्थी जनता को ब्रिटिश साम्राज्यवाद से संघर्ष हेतु सत्य, अहिंसा का नया सन्देश दिया। अतः तद्युगीन पत्रिकाओं पर गुरुतर दायित्व आ गया जिससे राजनीतिक पत्रकारिता का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। तत्कालीन पत्रिका का एकमात्र लक्ष्य स्वतन्त्रता प्राप्ति था। कांग्रेस की नीतियों और गांधी जी के विचारों से हिन्दी पत्रकारिता पूर्णरूपेण प्रभावित थी। तत्कालीन पत्रकारिता मानों बारूद का धुंआ उगलती थी।

उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ देखिए – 'राष्ट्रीय एकता के इस तेज के केवल हुंकार से ही समस्त लोक क्षुब्ध होंगे, समुद्र कांपने लगेंगे, पृथ्वी विचलित होगी और पर्वत भी हिलने लगेंगे।'

'कर्मवीर' (मध्य प्रदेश) का प्रकाशन भी इस दौर की महत्त्वपूर्ण घटना है। इसके प्रकाशक पं. माखनलाल चतुर्वेदी एक उच्च कोटि के लब्ध–प्रतिष्ठि पत्रकार रहे हैं। कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

'आपका साप्ताहिक तो दब्बू है, मैं ऐसा पत्र निकालना चाहूँगा कि ब्रिटिश चलते रूक जाय।'

हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं में इस प्रकार के अनेक लेख प्रकाशित हुए जिसका प्रभाव भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन

में नई ऊर्जा का संचरण किया। हिन्दी पत्रकारिता ने धर्म, समाज, राजनीति, साहित्य प्रभृति विभिन्न आयामों में सक्रिय सहभागिता की और मातृभूमि की स्वतन्त्रता की भावना को जनजीवन तक पहुँचाने के गुरुतर दायित्व का निर्वाह किया।

अन्त में हम कह सकते हैं कि हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में स्थापित मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है – जो पत्रकारिता त्याग, संघर्ष और आत्म–बलिदान के रूप में जानी जाती थी, वही आज सत्ता अधिकार या धनोपार्जन का साधन हो गयी। हमारे देश के पत्रकार जिनके ऊपर इन्सान की सम्वेदना, करुणा जैसे उच्चतर मूल्यों को बचाये रखने का गुरुतर दायित्व है, अपने स्वार्थ सिद्ध करने की तरकीबें ढूंढ़ने में व्यस्त हैं। इस विपरीत परिस्थितियों में यदि अपनी भाषा, संस्कृति, आजादी और अस्मिता को बचाना है तो सच को सच और झूठ को झूठ कहना ही पड़ेगा।

सन्दर्भ संकेत

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आ. रामचन्द्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र
3. साहित्य कोश भाग–1 – सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
4. आधुनिक हिन्दी कविता – प्रो. विश्वनाथ तिवारी
5. हरिश्चन्द्र मैगजीन – भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र
6. स्वतन्त्रता आन्दोलन और हिन्दी साहित्य – डॉ. कीर्तिलता

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

विष्णु प्रभाकर का नाट्य साहित्य : सामाजिक चेतना का स्वरूप

डॉ0 दमयन्ती देवी
असि0 प्रो0
उदय प्रताप सिंह महाविद्यालय, फतेहपुर

मानव एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य की विभिन्न रूचियॉ होती हैं, उसी के आधार पर मनुष्य कार्य करता है और उसी के आधार पर समाज का घटक तैयार होता है। समाज के विभिन्न घटक अपने कार्यों द्वारा समाज को अपना सहयोग प्रदान करते हैं। व्यक्ति अपने आचार–विचार से समाज की अस्मिता को सहयोग प्रदान करते हैं। एक अच्छे समाज के निर्माण में व्यक्ति के आचरण, उसका व्यक्तित्व व उसका सामाजिक परिवेश काफी हद तक निर्भर करता है।

पारिवारिक वातावरण, उसका परिवेश, उसकी समस्याएॅ सबका प्रभाव समाज पर पड़ता है क्योंकि परिवार समाज की इकाई हैं और व्यक्ति परिवार की। यह कड़ी इसी प्रकार चलती रहती है। प्रभाकर जी के नाट्य साहित्य में सामाजिक चेतना की जीवन्त अभिव्यक्ति हुई है। वे मानवतावादी सृष्टा साहित्यकार हैं।

स्वतंत्रता के पूर्व का समाज अलग–अलग राज्यों में विभाजित था। प्रत्येक राज्य के राजा अपनी अधिकृत भूमि की रक्षा के लिए प्राण तक गँवा देते थे, लेकिन अपने राज्य की भूमि का एक टुकड़ा भी दूसरे राज्य को नही जाने देते थे। पुरुषों की भॉति इस युग की नारियॉ भी शक्तिशाली चरित्र की थीं।

इस प्रकार 'धनिया' एकांकी में तत्कालीन ग्रामीण परिवेश व गरीबी की दशा को दर्शाया गया है। परवर्ती समाज की सभ्यता व संस्कृति नए रूप में उभरकर सामने आई है। आज संयुक्त परिवार एकाकी परिवार में बदल रहे हैं। विवाह जैसे धार्मिक व पवित्र बन्धन की आज के युवा वर्ग को मानो आवश्यकता ही नहीं रह गई है। ''युगे–युगे क्रान्ति'' नाटक का अनिरुद्ध कहता है – ''मैं पूछता हूॅ एक स्त्री और पुरुष को विवाह के नाम पर बॉध दिया जाए, इसके अतिरिक्त आपके शास्त्र में क्या और कोई विकल्प नहीं है।''

परिवार नियोजन के प्रभाव में नारी मातृत्व के प्रति जैसे विश्वास ही उठ गया है। ''लिपस्टिक की मुस्कान'' की रीता कहती है– ''मैं कहती हूॅ कि आजकल बच्चों की जरूरत नहीं है। विवाह की भी जरूरत नहीं है। विवाह करो, अंधाधुंध सन्तान पैदा करो, जीवन की सांसें पूरी करो, और गुलामी में मर जाओ, यह कोई जिंदगी है।'' समाज में अनेक प्रकार की समस्याएँ रहती हैं। कहीं गरीबी, कहीं बेरोजगारी, कहीं नारियों की स्वतंत्रता, कहीं उनकी दासता, कहीं पारिवारिक कलह तो कहीं समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार आदि। इसी प्रकार आर्थिक तंगी से ऊबकर 'श्वेतकमल की नीलिमा कहती है–''शैबी न लगॅूगी तो और क्या लगॅूगी! किस्मत में यही लिखाकर लाए हैं हम लोग। घर में एक–एक पैसे के लिए दॉता–किलकिल मची रहती हैं। मॉ खट–खट कर पंजर बन गई है। हमें कपड़ा तो क्या ढंग का खाना तक नसीब नहीं होता, और दीदी है कि हर तीसरे महीने नौकरी छोड़कर बैठ जाती है।''

राजनैतिक स्थिति में राजनीति से जुड़ी तमाम समस्याएॅ आ जाती है। हमारे देश के नेता जिनके हाथों में देश की बागडोर सौंप दी जाती है वही अगर अपने देश के साथ गद्दारी करेंगे तो भला देश की स्थिति कैसी होगी। 'सीमा रेखा' एकांकी की सविता कहती है–''जनता के नेता अब पुलिस की गाड़ी में ही जा सकते हैं। ;आवेश मेंद्ध जिन्होंने जनता का नेतृत्व किया, जनता के आगे होकर गोलियॉ खाईं, एक दिन जनता की ऑखों के तारे थे, वे

ही आज पुलिस के पहरे में जनता से मिलने जाते हैं।'' इसी प्रकार ये कृतियॉ सामाजिक राजनैतिक एवं आर्थिक स्थितियों के विविध पहलुओं को सफलता के साथ उजागर करती हैं।

विज्ञान कितनी भी प्रगति कर गया हो, मनुष्य के चरण भले ही दूसरे ग्रहों पर पड़ चुके हों परन्तु मन उसका अभी भी किसी न किसी प्रकार के अन्ध–विश्वास से ग्रस्त है। समय–समय पर देवी माता अब भी चमत्कार दिखाती हैं। 'बंदनी' नाटक मनुष्यों के इसी अंध–विश्वास पर गहरे चोट करता है। सामाजिक कुरीतियों का सबसे सटीक उदाहरण विष्णु जी के 'युग–संधि' एकांकी में मिलता है। इस एकांकी की सुनन्दा कहती है– ''मैं नहीं जानती थी कि जिन अभागों को मैं अपने हृदय का प्यार देकर पाल रही हूँ वे ही नाग बनकर मेरे कुल की मर्यादा को डस लेंगे। लेकिन मैं कहती हूँ मेरी चिता को यज्ञ की वेदी बनाकर भी तुम लोग विवाह नहीं रच सकोगे। उसमें से उठती हुई ज्वालाएँ तुम सब को भस्म कर देंगी। कुल नष्ट हो जाएगा, पर कुल की मर्यादा को कोई नष्ट नही कर सकेगा।'' इसी प्रकार 'अब और नहीं' नाटक की शांता कहती है– ''सारा जीवन उनकी इच्छा–अनिच्छा, विश्वास–अविश्वास से घिरी रही मैं। घर की रानी नहीं थी, दासी थी। हॉ उन्होंने मुझे अपनी इच्छाओं की दासी बना लिया था।''

जीवन मूल्य बदले जरूर हैं, भले ही वह बदलाव हमें रसातल की ओर ले गया हो। बदलाव किसी दबाव के कारण आता है और कुछ दबाव ऐसे भी हैं जिनके कारण नारी–मुक्ति के इस युग में भी वह असहाय बनकर रह गई है। उन दबावों में एक दबाव आर्थिक भी है अभी कुछ दिन पहले तक बेटी पर परिवार के पोषण का दायित्व होने की कल्पना नहीं की जा सकती थी। पिता के बाद पुत्र का यह कर्तव्य था, पर आज परिस्थिति बदल गई है। जिस परिवार में पिता और पुत्र नहीं हैं या हैं भी तो किसी कारण वश जीविका–अर्जन में असमर्थ हैं तो वहॉ पुत्री को ही भार उठाना पड़ता है। इतना ही नही ऐसी स्थिति में उसे विवाह तक नही करने दिया जाता। दूसरी ओर जब वह काम की खोज में भटकती है तो पदासीन मगरमच्छ उसे निगलने को आतुर रहते हैं। बहुत सी दुर्बल मन नारियॉ उनके चंगुल में फॅसकर नष्ट हो जाती हैं। जो उनका प्रतिकार करने का साहस करती हैं, उन्हें भयंकर यातनाओं से गुजरना पड़ता है। एक ओर परिवार की प्रताड़ना सहनी पड़ती है तो दूसरी ओर अपना जीवन जीने का अवसर भी हाथ से निकल जाता है।

मानव मूल्य अब इस प्रकार बदल गए हैं कि बच्चे अपने ही माता–पिता को चाय पर आमंत्रित करते हैं। अपने माता पिता के साथ घर में रहना उन्हें पसंद नहीं। हमारे समाज में नारी को बड़े सम्मानित रूप में देखा जाता है मनुस्मृति में कहा गया है– ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता''। विभिन्न रूप हैं नारी के–मॉ, बहन, पत्नी, प्रेमिका, बहू–बेटी, ननद, भाभी, मामी, चाची, दादी आदि मगर इन सबमें मॉ का स्थान सर्वोच्च माना गया है। सृष्टि का विस्तार नारी के बिना असम्भव है। बालक के सम्पूर्ण विकास में मॉ का योगदान सर्वाधिक होता है।

समाज के विभिन्न क्षेत्रों में नारी की भिन्न–भिन्न स्थिति होती है। प्राचीन काल में नारियों की स्थिति काफी अच्छी थी। उन्हें समाज में समान अधिकार प्राप्त थे। राजदरबारों में वे समान रूप से हिस्सा लेती थीं। शिक्षा ग्रहण करने में भी पुरुषों से कम नहीं थीं मगर मध्ययुग तक आते–आते उनकी स्थिति दयनीय हो गई। मुगलों के यहॉ आ जाने से नारियों की स्वतंत्रता बाधित हुई। स्वातंत्रयोत्तर युग में काफी सुधार हुआ है उनकी स्थिति में, लेकिन पूर्ण रूप से स्वतंत्रता अभी भी नही मिली है। नारियों को अपने अधिकारों के लिए संघर्श करना पड़ता है। आज भी समाज में उसकी स्थिति दयनीय है। चाहे उच्च वर्ग हो या मध्य वर्ग अथवा निम्न वर्ग। अन्य समस्याओं में गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, बढ़ती हुई जनसंख्या व नारी उत्पीड़न आदि हैं।

'धनिया' एकांकी जहॉ गरीबी को दर्शाता है वहीं 'कितना गहरा कितना सतही' एकांकी बेरोजगारी की समस्या लिए हुए है। 'कुहासा और किरण' में भ्रष्टाचार का कथ्य लिया गया है तो 'कमल और कैक्टस' में एक ही परिवार के दस बच्चों को दिखाकर बढ़ती जनसंख्या की समस्या दिखाई जाती है। 'डाक्टर', 'टगर', 'गान्धार की भिक्षुणी' व 'श्वेतकमल' में नारी उत्पीड़न की कहानी वर्णित है 'रात, चॉद और कुहर' एकांकी में जाति–पॉति की समस्या

दर्शाई गई है। उमा जो कि इस एकांकी की एक नारी पात्र है, कहती है ''क्या, क्या कहा.... मेरी काली छाया . ... मेरी काली छाया..... मेरी काली छाया..... काका, मेरी सारी आशाएँ तुम पर थीं, लेकिन मुझे घृणा करने में भी तुम सबके सरदार ही रहे। (जोर से) काका, मैं जा रही हूँ और कहे जाती हूँ कि अब अपनी काली छाया तुम्हारे मकान में डालने न आऊँगी, लेकिन... लेकिन...नहीं, नहीं मैं अब कुछ न कहूँगी, कुछ न कहूँगी।''

आज के युग की सबसे बड़ी समस्या है पारिवारिक विघटन। आज संयुक्त परिवार विखर कर एकाकी परिवार में बदलते जा रहे हैं, 'टूटते परिवेश' नाटक इसी समस्या को ध्यान में रखकर लिखा गया है। इस नाटक के पात्र विश्वजीत के तीन लड़के व तीन लड़कियां हैं, जो अपनी अपनी मर्जी से शादी करके अलग रहने लगे हैं। एक छोटी लड़की व लड़का उनके पास हैं। वे भी मजबूरी वश, क्योंकि वे बालिग नहीं हुए हैं, लेकिन अलग होने के लिए वे भी छटपटाते रहते हैं। दीप्ति कहती है–''वही एक बात, पैसे–पैसे आप नहीं देना चाहते तो न दीजिए। कर लूँगी अपना प्रबन्ध। नही पढ़ूंगी। लेकिन इस घर में नही आउॅगी, इस सीलन भरे घर में जहॉ हर वक्त लिजलिजे कांक्रोचों के चलने की सुरसुराहट होती है। मेरा दम घुटता है यहॉ।'' इसी प्रकार 'श्वेत कमल' की बिन्दु अपनी व अपनी जैसी प्रत्येक नारी की व्यथा को व्यक्त करती हुई कहती है – ''मै एक असहाय और असमर्थ नारी दरिन्दों के संसार में निपट अकेली। उनके नुकीले दॉत और पैने पंजे मेरे शरीर को चिथडे–चिथडे कर देना चाहते हैं। यहॉ हर नर भक्षक है और हर नारी भक्ष्य''।

विष्णु प्रभाकर एक निरपेक्ष कालजयी रचनाकार हैं जिन्हें किसी भी वाद की सीमा में बॉधा नहीं जा सकता। वे जमीन से जुड़े साहित्यकार हैं, उनके साहित्य में भारतीय परिवेश, दर्शन सभ्यता, संस्कृति, जीवन शैली व जीवन मूल्य आदि दृष्टव्य हैं, इसलिए वे अपने पात्रों का चयन भी उसी तरह करते हैं। जैसा कि हम सभी को ज्ञात है कि प्रभाकर जी भारतीय जनमानस के रूप में पगे साहित्यकार थे। उनके साहित्य में कदम–कदम पर भारतीयता और मानवीय मूल्यों की स्थापना दिखाई पड़ती है। वे सम्पूर्ण वसुधा को अपना कुटुंब मानते हैं और मनुष्य मात्र को आत्मवत देखते हैं, यही भारतीयता का निजी मूल्य है।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

फसल विविधीकरण का कृषकों की आय एवं उत्तर–प्रदेश की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव : सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. नरेन्द्र प्रताप सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग
डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

विकास के स्वाभाविक क्रम में अर्थव्यवस्था का आधारभूत ढाँचा परिवर्तित होता है तथा इसके संघटकों में परिवर्तन आते हैं। भारतीय कृषि क्षेत्र के सन्दर्भ में भी उपरोक्त कथन पूर्णतया लागू होता है। खाद्यान्न के आयात की अवस्था से लेकर आत्मनिर्भरता, एवं खाद्यान्न के आधिक्य तक के क्रम में भारतीय कृषि के स्वरूप में बहुत परिवर्तन हुआ है। विज्ञान एवं तकनीकी में प्रगति तथा वैज्ञानिक पद्धतियों के कृषि में अनुप्रयोग से खेती करने के तरीकों में अंतर आया है। आधुनिक कृषि की प्रकृति जीवनयापन से बदलकर व्यावसायिक कृषि में परिणत हो चुकी है। फसलों का चयन, खेती की पद्धति, तकनीकि का चयन, निवेश आदि निर्णय परम्पराओं तथा सामाजिक पद्धतियों के स्थान पर आर्थिक कसौटियों पर अधिक निर्भर करते हैं। फसल प्रणाली (फसल चक्र में विभिन्न फसलों के मिश्रणका समावेश) का चयन भी कृषि क्षेत्र के निष्पादन पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है। फसल विविधीकरण के उद्भव क्रम में एकल–फसल पद्धति से क्रमशः बहु–फसली, मिश्रित–फसली, फसल–आवर्तन, क्रमिक फसल, अंतर्फसली, पौध–फसली आदि पद्धतियों का चलन प्रारंभ हुआ। बदलती सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों में भारतीय कृषि क्षेत्र विभिन्न अंतसंबंधित चुनौतियों का सामना कर रहा है। पहली चुनौती बड़ी जनसंख्या की खाद्य एवं पोषण की आवश्यकता को बदलती खान–पान की आदतों के अनुरूप पूरा करना है। दूसरी चुनौती ग्लोबल वार्मिंग एवं बदलती कृषि–पारिस्थितिकी को दृष्टिगत रखते हुए प्राकृतिक संसाधनों के अनुकूलतम प्रयोग से कृषि उत्पादकता को बढ़ाना है। तीसरी चुनौती किसानों को सुनिश्चित प्रतिफल प्रदान करना और कृषि क्षेत्र की प्रगति को उत्प्रेरित करना है। चौथी चुनौती ग्लोबल वार्मिंग एवं बदलती कृषि–परिस्थितिकी को दृष्टिगत रखते हुए प्राकृतिक संसाधनों के अनुकूलतम प्रयोग से कृषि क्षेत्र की प्रगति को उत्प्रेरित करना है। चौथी चुनौती सम्बंधित क्षेत्रकों के विकास में सहायता करना है। इन चुनौतियों का समाधान कृषि पद्धतियों एवं फसल प्रणाली के विवेकपूर्ण चयन में ही निहित है। समय की मांग है कि फसल प्रणाली का चयन बाजार की मांग–पूर्ति के आर्थिक सिद्धांतों पर आधारित हो। इस दिशा में फसल प्रणाली का विविधीकरण या सामान्य शब्दों में फसल–विविधीकरण एक प्रभावी विकल्प हो सकता है। वित्तीय बाजार में जिस प्रकार पोर्टफोलियो के माध्यम से जोखिमों का अंतरण प्रभावी तरीके से किया जाता है और प्रतिफल को अधिक लाभकर बनाया जाता है, बिलकुल उसी प्रकार की भूमिका कृषि में विविधीकरण की है।

फसल विविधीकरण – फसल प्रणाली का विविधीकरण या फसल–विविधीकरण से आशय प्रचलित कृषि पद्धति में वांछित परिवर्तन करने से है ताकि फसल प्रणाली में संतुलन लाया जा सके। सामान्यतया फसल विविधीकरण का अभिप्राय कम लाभदायक प्रणाली से अधिक लाभदायक प्रणाली की ओर प्रस्थान से है। कृषि क्षेत्र में विविधीकरण की अवधारणा को दो प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है –

1. क्षैतिज विविधीकरण – क्षैतिज विविधीकरण से आशय बहु–फसली पद्धति के प्रयोग से प्रचलित कृषि प्रणाली के आधार को व्यापक करने से है। इसके अंतर्गत एक या कुछ ही फसलों की पुनरावृत्ति कि स्थान पर विभिन्न फसलों के मिश्रण को वरीयता दी जाती है। विविधीकरण में मुख्य विचार कम संसाधन–ग्राही एवं अधिक

प्रतिफल दायक फसलों को सम्मिलित करना है क्षैतिज विविधीकरण के भी कई आयाम हैं –

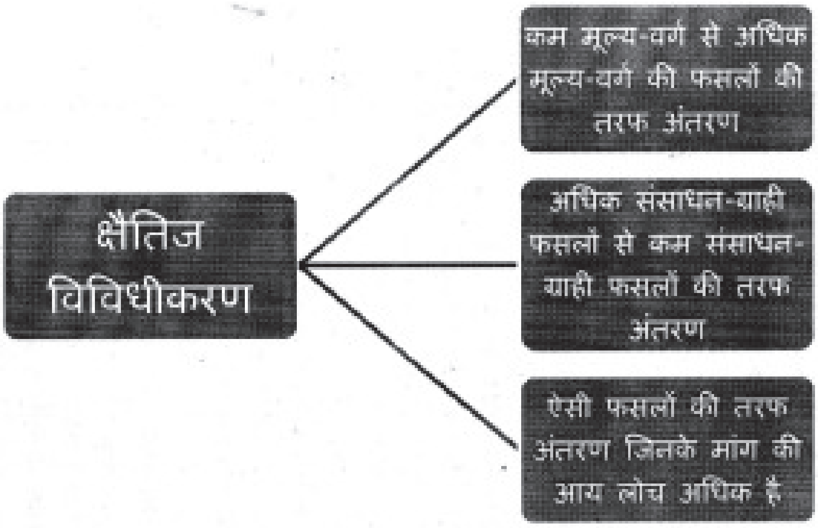

2. ऊर्ध्वाधर विविधीकरण – ऊर्ध्वाधर विविधीकरण के अंतर्गत कृषि पर आधारित सहायक क्षेत्रों (जैसे पशुपालन, बागवानी, मत्स्यपालन, कुक्कुटपालन, फल एवं खाद्य–प्रसंस्करण आदि) के विकास पर बल दिया जाता है। ताकि कृषि क्षेत्र पर पड़ने वाले अतिरिक्त भार को अंतरित किया जा सके।

फसल विविधीकरण के उद्देश्य – फसल विविधीकरण के लक्षित उद्देश्य निम्नवत हैं –

1.प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग – फसल विविधीकरण के माध्यम से फसल चक्र को अपनाकर मृदा की पोषकता को बनाये रखा जा सकता है। कुछ फसलें ऐसी होती हैं जिनमें प्राकृतिक संसाधनों यथा–भूजल, पोषक–तत्त्वों आदि का गहनता पूर्वक दोहन होता है। विविधीकरण इस प्रकार की प्रवृत्तियां का निदान है। उदाहरण के लिए, यदि फसल चक्र में ऐसे युग्मों को सम्मिलित किया जाता है जो कम सिंचाई में तैयारी हो जाती हों तो इस प्रकार का विविधीकरण प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के दृष्टिकोण से सर्वथा उपर्युक्त है।

2. मांग–पूर्ति में संतुलन – विविधीकरण में प्रायः ऐसी फसलों के उत्पादन पर बल दिया जाता है जिनकी बाजार में समुचित मांग है। ऐसी फसलों का ही उपर्युक्त मूल्य भी मिल पाता है। वैश्विक संस्कृति के संक्रमण एवं जीवन स्तर में सुधार से उपभोक्ताओं की खान–पान की आदतें एवं पोषण की प्राथमिकताएं अभूतपूर्व तरीके से बदली हैं। उपभोक्ताओं के दृष्टिकोण से भी उचित है कि उनकी मांग के अनुरूप वस्तुएँ उत्पादित की जाएँ ताकि उन्हें अतिरिक्त मूल्य न चुकाना पड़े। मांग–पूर्ति में संतुलन से ही प्राथमिक क्षेत्र का पोषणीय विकास संभव है।

3. कृषकों को लाभदायक प्रतिफल सुनिश्चित करना – विविधीकरण का एक प्रमुख उद्देश्य कृषि को लाभदायक व्यवसाय में परिणत करना है। पिछले कुछ दशकों में कृषि क्षेत्र से पलायन एवं किसानों की आत्महत्या के मामले इतने आम हो गए हैं कि नए उद्यमियों के लिए यह क्षेत्र एकदम उपेक्षित ही रहा है। ऐसे में जो लोग इस व्यवसाय से जुड़े हैं उन्हें सम्मानजनक प्रतिफल मिलने का तात्कालिक समाधान (वर्तमान तकनीकि एवं निवेश के स्तर पर) विविधीकरण में ही प्रतीत होता है।

4. कृषि पारिस्थितिकी तंत्र को सुदृढ़ करना – अलग–अलग फसलों की आवश्यकताएँ भी अलग होती हैं। कुछ फसलों को किसी विशेष पोषक तत्व की आवश्यकता होती है। यदि उसी फसल की बारम्बार आवृत्ति की जाये तो चाहे वह फसल कितनी ही लाभप्रद क्यों न हो, एक बिंदु के पश्चात उत्पादकता अनिवार्य रूप से घटने

लगती है। इसका मुख्य कारण मृदा में उस पोषक तत्व की कमी हो जाना है। यदि फसल परिवर्तित कर दी जाये तो मृदा में उन पोषक तत्वों के पुनर्स्थापन के लिए समय मिल जाता है। इस प्रकार कृषि पारिस्थितिकी तंत्र सुचारु रूप से कार्य करता रहता है।

5. प्रतिकूल जलवायवीय परिस्थितियों में प्रतिरक्षा – मानसून का अपेक्षा से कम रह जाना, तापमान का क्रमशः बढ़ते जाना, अल्पवृष्टि, रबी की फसलों के तैयार होने के समय लगभग हर साल मौसम का प्रतिकूल हो जाना आदि परिस्थितियों में प्रतिरक्षा का विवेकपूर्ण निर्णय विविधीकरण ही है।

6. फसलों के मूल्यों में उच्चावचन से प्रतिरक्षा – कृषि क्षेत्र में कॉब–वेब प्रमेय के लागू होने से प्रायः प्रत्येक वर्ष फसलों के मूल्य में उच्चावचन देखा जाता है। ऐसे में एक ही फसल को प्रतिवर्ष दोहरने से कहीं बेहतर है कि उन्हें परिवर्तित करते रहें ताकि सामूहिक प्रतिफल अधिकतम रहें।

7. कृषि क्षेत्र से अतिरिक्त भार का अंतरण – न्यायोचित तो यह है कि सकल घरेलू उत्पाद में योगदान के अनुपात में ही मानव संसाधन कृषि पर आश्रित हो, किन्तु भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि एवं सम्बंधित क्षेत्र का योगदान मूल्य–आधारित सकल घरेलू उत्पाद का 17% एवं क्रयशक्ति आधारित सकल घरेलू उत्पाद का 18.5% है जबकि लगभग तीन गुनी जनसँख्या अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। ऐसे में अतिरिक्त मानव–संसाधन को सम्बंधित क्षेत्रों में विस्थापित करके कृषि को लाभकर बनाया जा सकता है।

8. पोषणीय कृषि प्रबंधन – विज्ञान एवं तकनीकि मे कितनी ही उन्नति क्यों न हो जाये, भोजन के लिए खाद्यान्न की आवश्यकता सदैव ही रहेगी। अतः कृषि प्रबंधन निकट भविष्य के स्थान पर दीर्घकालिक नियोजन पर आधारित होना चाहिए।

फसल विविधीकरण के निर्धारक तत्व – कृषि मनुष्य के प्राचीनतम अध्यवसायों में से एक है। किस प्रकार से खेती करनी है एवं किन फसलों को उत्पादित करना है, इसका निर्णय पूर्व में सामाजिक परंपराओं पर आधारित था। कृषि में वैज्ञानिक विधियों के अनुप्रयोग से यह पद्धति तो दूर हुई है फिर भी कुछ तत्व ऐसे हैं जिनका विचार फसल प्रणाली के चयन से पूर्व अपेक्षित है।

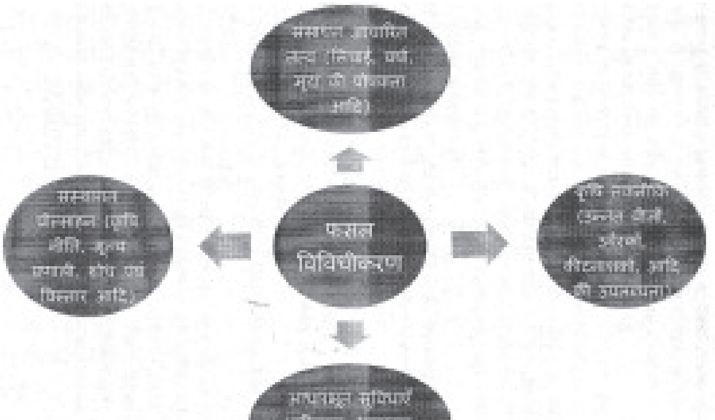

सम्बंधित साहित्य की समीक्षा – इस विषय में हुए अग्रणी शोध कार्यों में (सिंह एच. एस. 1962) ने फसल प्रणाली में आने वाले कारकों का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि विविधीकरण का मूल आधार अंतरित की गयी फसल की अवसर लागत एवं तुलनात्मक लाभ होना चाहिए। (भाटिया, 1965) ने फसल संकेंद्रीकरण एवं

विविधीकरण के सूचकांक विकसित करके कम विविधीकृत क्षेत्रों की क्षमताओं के दोहन पर बल दिया। (श्रीवास्तव एवं मुखोपाध्याय, 1997) ने अपने अध्ययन में गेहूँ–चावल गहनता वाली फसल प्रणाली में उत्पादकता के स्थिर हो जाने के मुख्य कारणों में प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण, मृदा गुणवत्ता में ह्रास, जल प्रबंधन में समस्याएँ, कीटों एवं खर–पतवार प्रबंधन में समस्याएँ आदि की मुख्य वजह एकल–फसल प्रणाली बताया। (भारतीय रिजर्व बैंक, 2007) ने अपनी रिपोर्ट में विविधीकरण को प्रोत्साहित करने वाले कारकों को चिन्हित किया है जिनमें संसाधन, तकनीकि, अवसंरचना, संस्थागत सुविधाएँ, मूल्य–नीति तथा बाजार से सम्बंधित तत्व मुख्य भूमिका निभाते हैं। (सिंह, अली एवं वेंकटेश, 2009) ने क्रमिक एवं मिश्रित अंतः फसली प्रणालियों में दालों को एक मुख्य फसल के तौर पर शामिल करने पर बल दिया। (झा, कुमार एवं मोहंती, 2009) ने बागवानी एवं पशुपालन आधारित विविधीकरण का विश्लेषण करके यह निष्कर्ष निकाला कि फलों एवं सब्जियों पर आधारित विविधीकरण से कृषकों को अधिक प्रतिफल मिल सकता है क्योंकि इन उत्पादों की मांग की आय–लोच अधिक होती है। (डे एवं चट्टोपाध्याय, 2010) ने अपने अध्ययन में निष्कर्ष निकला कि छोटे पैमाने के कृषकों द्वारा अधिक विविधीकृत फसल प्रणाली अपनाई जाती है यदि उन्हें अवसंरचनात्मक सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाएँ। (सिंह, 2012) ने अपने अध्ययन में स्थापित किया कि किसानों के सामाजिक–आर्थिक स्तर एवं फसल–विविधीकरण को लेकर प्रतिक्रियात्मकता में महत्त्वपूर्ण अंतर्संबंध है। (अग्रवाल, 2013) ने अपने अध्ययन में पाया कि विविधीकरण के कारण वर्षा में अनियमितता होने पर भी उत्पादन उस अनुपात में प्रभावित नहीं हुए। (अख्तर एवं आचार्य, 2015) अपने अध्ययन में स्पष्ट किया कि सिंचाई की सुविधा फसल–प्रणाली के विविधीकरण की मुख्य निर्धारक है। इस प्रकार सम्बंधित साहित्य की समीक्षा करने पर निम्न बातें स्पष्ट हो जाती हैं। विविधीकरण की वजह से बेहतर जलवायवीय प्रतिरक्षा, किसानों को लाभदायक प्रतिफल, कुशल कृषि–पारिस्थितिकी प्रबंधन, एवं कृषि क्षेत्र का संपोषणीय विकास आदि संभव हैं।

बाधाएँ – यद्यपि कृषि क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं का समाधान फसल–विविधीकरण में संनिहित है। तथापि इस व्यवस्था को अपनाने में कुछ व्यावहारिक समस्याएँ भी हैं। प्रमुख समस्याओं में अवसंरचना सुविधाएँ जैसे सिंचाई के साधनों की उपलब्धता बहुत बड़ी बाधा है। एक और समस्या नई फसलों को उत्पादित करने के लिए आवश्यक जानकारी का अभाव भी है। इसके लिए कृषि शोध एवं विस्तार सेवाओं की सामान्य कृषकों तक पहुँच सुनिश्चित करना बड़ी चुनौती है। वर्तमान में सरकारें इस दिशा में प्रयत्नशील हैं फिर भी इन प्रोत्साहनों के प्रति कृषकों की प्रतिक्रिया भी बहुत उत्साही नहीं है। जिसका प्रमुख कारण संस्थागत अवरोध हैं।

निष्कर्ष – एक कल्याणकारी राज्य में कृषि के योगदान को कभी भी नाकारा नहीं जा सकता। वर्तमान स्वरूप में कृषि की उत्पादकता एवं लाभदायकता को बढ़ाने का एक उपर्युक्त विकल्प विविधीकरण की अवधारणा को व्यापक स्तर पर लागू करने में है। प्रदेश के कई क्षेत्र जहाँ सिंचाई के संसाधन सुलभ हैं तथा जहाँ पर उपज को बाजार तक पहुँचाने के साधन सहजता से उपलब्ध हैं, उन क्षेत्रों में विविधीकरण वृहद स्तर पर प्रचलित है। यद्यपि प्रदेश के विशाल भूभाग एवं विविधतापूर्ण भौगोलिक परिस्थितियों में इसे प्रचलित करना मुश्किल है फिर भी कुछ क्षेत्रों जैसे केन्द्रीय मैदानी क्षेत्र, भाभर और तराई क्षेत्र पश्चिमी मध्य मैदानी क्षेत्र आदि जहाँ जलवायवीय परिस्थितियाँ अनुकूल हैं, फसल विविधीकरण को प्राथमिकता के आधार पर प्रोत्साहित किया जा सकता है।

सन्दर्भ संकेत

1. जगबीर कौशिक. (अगस्त 2011). योजना एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन हेतु बेहतर प्रशासनिक रणनीति. कुरुक्षेत्र, पृ. 28–32.
2. जितेन्द्र द्विवेदी. (मार्च 2011) जैविक खेती खाद्य सुरक्षा की सुनिश्चितता कुरुक्षेत्र पृ. 8–11.
3. दिव्या श्रीवास्तव (जनवरी 2012) कृषि विकास में सूचना–संचार तकनीकि की भूमिका। कुरुक्षेत्र, पृ. 15–20.
4. बृजेश कुमार. (जुलाई 2011). बेहतर कृषि प्रबंधन समय की आवश्यकता, कुरुक्षेत्र, पृ. 3–6

5. सुभाष सेतिया, (दिसम्बर 2010), गाँवों में बेहतर प्रशासनः आवश्यकता एवं चुनौतियाँ कुरुक्षेत्र, पृ.9–14.
6. सुरेन्द्र कटारिया. (2011 अगस्त) गाँवों में बेहतर प्रशासनः आवश्यकता एवं चुनौतियाँ कुरुक्षेत्र, पृ. 9–14.
7. Akhter, R., & Acharya, R. (2015). Changes in Cropping Pattern in Jammu and Kashmir. International Journal of Advanced Research in Education and Technology,88-91.
8. Bhatia, S.S. (1965). Patterns of Crop Concentration and diversification in India. Economic Geography, 39-56.
9. De, U.K.,& Chattopadhyay, M. (October 2010). Crop diversification by poor peasants and role of infrastructure: Evidence from West Bengal. Journal of Development and Agricultural Economics, 340-350.
10. Department of Agriculture & Cooperation, Crops Division. (2013-14). Crop Diversification Program in Haryana, Punjab& Western Uttar Pradesh. New Delhi : Krishni Bhavan.
11. Jha , B., Kumar, N., & Mohanty, B.(2009). Pattern of agricultural Diversification in India. Delhi: Institure of Economic Growth, University of Delhi Enclave, North Campus.
12. Reserve Bank of India.(2007), Cropping Patterns and Diversification in India. Pune: College of Agricultural Banking.
13. Singh, H. S.(1962). Changes in Cropping Pattern: Economic Criteria. the Economics Weekly, 951-954.

❑❑

समाज में परिवारों के मध्य अन्तर्पीढ़ी संघर्ष का समाजशास्त्रीय अध्ययन

सुमन झा
शोधार्थी
पं0 जे0एल0एन0पी0जी0 कालेज, बॉदा (उ0प्र0)

संयुक्त प्रणाली भारत में अति प्राचीन है। इस प्रणाली में परिवार के विभिन्न सदस्यों को शारीरिक , मानसिक, आर्थिक व सामाजिक सहयोग आपने ही परिवारिक सदस्यों द्वारा प्राप्त होती है। सत्ता पीढ़ी लिंग व सापेक्ष आयु पर आधारित होती थी और पुरानी पीढ़ी के वृद्ध पुरूष के हाथों में होती थी। परिवार का वयोवृद्ध पुरूष इस अर्थव्यवस्था का संचालन कर सभी की आवश्यकताओं को पूरा करते थे, परन्तु आज के आधुनिक युग में स्त्रियॉ भी पुरूषों के समान परिवार के दायित्वों को संभाल रही है। परिवार की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि समस्त गति विधियों से सम्बन्धित निर्णयन की जिम्मेदारी परिवार के वयोवृद्ध पुरूष (कुलपिता) पर होती थी, आज यह जिम्मेदारी पुरूषों पर ही नहीं, बल्कि आज यह जिम्मेदारी स्त्रियों पर भी हैं वह ही यह निश्चय करते थे कि बच्चों को कहां और कितनी शिक्षा दी जाये और उन्हें क्या व्यवसाय करना हैं जीवन साथी का चुनाव भी उन्हीं के हाथों में था, क्योंकि पहले परिवार की सत्ता पुरूषों के हाथ में रहती थी, पिता व पुत्र तथा माता एवं पुत्री के बीच संबन्ध स्नेह की अपेक्षा भय तथा आदर पर आधारित था । छोटे द्वारा अपने से बड़ों से बहस करना या जबाब देना बुरा व्यवहार गिना जाता था।

साहित्यिक पुनरावलोकन :– पीढ़ियों का संघर्ष आज की ज्वलंत समस्या है। पाश्चात्य शिक्षा पद्धति, अर्थ प्रधान समाज तथा अनेक प्रकार के सामाजिक मनोवैज्ञानिक कारणों से नई व पुरानी पीढ़ियों में संघर्ष बढ़ता ही जा रहा है। जिसे हम अन्तर्पीढ़ी संघर्ष कहते है। विभिन्न पीढ़ियों से संबन्धित लोगों को अलग–अलग नाम दिये गये हैं। जहॉ आजादी से पहले पैदा हुये लोगों को परम्परावादी करार दिया गया है वहीं इसके बाद 1965 और 1980 के बीच पैदा हुये उन्हे जनरेशन एक्स और 1980 से 1999 को जनरेशन वाई के नाम से जाना जाता है। यहां कुछ ऐसी चीजें है जो स्पष्ट रूप से इन पीढ़ियों के बीच अंतर को दिखाती हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में लगातार नये – नये विकास हो रहे, जिससे लोगों के विश्वासों, विचारों और उनके समग्र व्यवहार में काफी परिवर्तन आ गया है और जीवन जीने का तरीका भी परिवर्तित हो गया है। अब वर्तमान में लोग अपने तरीके से जीवन जीना चाहते है। उन्हें किसी भी प्रकार का बंधन नहीं पसंद है।

अंतर पीढ़ी संघर्ष पुरानी और नयी पीढ़ी की विभिन्नता, अलगाव अथवा मूल्यों की दूरी को दर्शाता है यह अवलोकन करने पर पाया गया है कि नयी व पुरानी पीढ़ी में काफी अंतर पाया गया है। जिससे समाज में अंतर्पीढ़ी संघर्ष उत्पन्न हो रहा है। वर्तमान अध्ययन में यह पाया जाता है कि पुरानी पीढ़ी परम्परागत है तो नयी व युवा पीढ़ी आधुनिकता को लिये हुये है।

पीढ़ी अलगाव क्या है?

जनरेशन गैप आम तौर पर बच्चों और उनके माता – पिता के बीच संघर्ष का कारण है। जनरेशन गैप के द्वारा समाज में काफी बदलाव हुये है। पहले समाज में संयुक्त परिवार की प्रथा थी, परन्तु आज अलग परिवार बसाने की प्रथा शुरू हो गयी।

प्रतिष्ठित समाजशास्त्रियों जैसे कार्ल मैनहेम ने पीढ़ियों के बीच मतभेदों को देखा की कैसे विभिन्न

स्थितियों में पीढ़ियों ने एक – दूसरे से खुद को अलग किया ।

पीढ़ी अलगाव संचार का अलगाव है जो कि कुछ गलत कहानियों से उत्पन्न होती है। यह अलगाव युवा और वृद्ध दोनों के बीच का अलगाव होता है। यह एक तरफा नहीं होता। युवा स्वतंत्र और आपने पर निर्भर है तो बुजुर्ग बुद्धिमान और अनुभवी होते हैं। वृद्ध और युवा पीढ़ी के मध्य एक अच्छे संचार की आवश्यकता है। पीढ़ी अलगाव की समस्या एक सर्वव्यापी समस्या है, जो कि पृथ्वी पर रहने वाले सभी व्यक्ति इस अपरिवर्तित समस्या का सामना करते है।

माता पिता की पीढ़ी :– ज्यादातर अभिभावक स्वतंत्रता के समय तथा उसके पहले जन्में हुये है। और स्वतंत्रता के बाद जन्में हुये लोग आधुनिक पीढ़ी के माने जाते हैं। पुरानी पीढ़ी के लोग मेहनती और अनुभवी होते थे, वे प्रतिदिन की रोटी के लिए बहुत मेहनत करते थे, परन्तु आज की पीढ़ी उसके विपरीत हैं। वे आराम चाहती है। पुरानी पीढ़ी अपनी आर्थिक स्थिति को देखते हुये अपनी इच्छाओं ओर भूख तक से समझौता कर लेते थे। वे अपने माता – पिता की सभी प्रकार की बातों को सुनते थे और अपनी सभी इच्छाओं को त्याग देते थे।

वर्तमान पीढ़ी के लोग :– जब मशीनीकरण का आविष्कार हुआ तब वर्तमान पीढ़ी के बच्चों का जन्म हुआ। आज हमारे राष्ट्र ने हर क्षेत्र में बहुत से आविष्कार किये। आज समाज का वैज्ञानीकरण हुआ है। जिसके कारण माता – पिता ज्यादा से ज्यादा कमाने लगे और अपने बच्चों को बहुत ही सुविधाओं के साथ पाला, बच्चों के साथ किसी भी प्रकार की कमीं नहीं रखी और ये आशा भी करने लगे कि वे मेरी बातों को सुनेगें, मुझे समझेंगें, परन्तु आज की युवा अर्थात आधुनिक पीढ़ी स्वतंत्र रहना चाहती है वे आने तौर – तरीके से आपने जीवन को जीना चाहते हैं माता – पिता चाहते है कि जिस तरीके से मैने बच्चों को पाला – पोषा है ठीक उसी प्रकार हमें भी सारी सुविधायें प्राप्त हो, परन्तु वर्तमान पीढ़ी यह नहीं कर पाती , वे स्वयं स्वतंत्र रहना चाहती है। वे किसी प्रकार के बंधन को नहीं पसंद करती ।

पीढ़ी अलगाव का सामना :– यह पीढ़ी अलगाव माता – पिता और बच्चों में देखने को मिलता है। शिक्षक और विद्यार्थियों के मध्य भी यह अलगाव देखने को मिलता है, परन्तु अलगाव का कोण शिक्षक और विद्यार्थी में काफी कम होता है क्योंकि वे अपना ज्यादा – ज्यादा समय एक साथ नहीं बिताते है। यह समस्या संचार के अलगाव को दर्शाती है दोनों पीढ़ियां एक दूसरे को नहीं समझना चाहती है। जिससे संघर्ष उत्पन्न हो जाता है तथा नई अर्थात युवा पीढ़ी अपने माता पिता से अलग रहना पसंद करती है अथवा स्वतंत्र रहना चाहती है वे नहीं चाहती कि पुरानी पीढ़ी उन पर बंधन बने। जिससे अलगाव उत्पन्न होता है यह दो रिस्तों के बीच का अलगाव है।

युवा पीढ़ी किसी भी प्रकार का समझौता नहीं चाहती, वे अपनी इच्छाओं का हनन भी नहीं कर सकती है। वे पुरानी पीढ़ी के अपेक्षा अधिक इच्छावान हैं। दोनों पीढ़ियों पुरानी व नई पीढ़ी की सोच में भी बहुत अधिक अंतर है, इसी अंतर के कारण दोनों पीढ़ियों के मध्य संघर्ष उत्पन्न हो जाता है । जो कि समाज की सबसे बड़ी समस्या बन के रह गयी है, यह समस्या पूरे भारत वर्ष के अलगाव अन्य देशों तथा स्थानों पर भी देखने को मिलती है।

पुरानी व नई पीढ़ी में काफी अंतर है। दोनों के विचार मूल्य, अभिवृत्ति, सोच सभी में काफी अन्तर है। जिसके कारण निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। यह संघर्ष समाज की अत्यन्त गम्भीर समस्या है। जो कि पूरे विश्व भर में हर क्षेत्र में फैली हुई है। पुरातन और नूतन के बीच चलने वाला यह सतत संघर्ष पीढ़ी अंतराल को जन्म देता है । औसतन 25 से 30 वर्षों के दौरान एक पीढ़ी का स्थान दूसरी पीढ़ी ले लेती है और इसी दौरान मनोवृत्तियों में आए बदलावों को भी पीढ़ी अंतराल की श्रेणी में रखा जाताा है।

सैद्धान्तिक परिपेक्ष्य :– भारतीय संस्कृति की कहानी सतत् विकास समन्वय और सन्तुलित समृद्धि का अनुपम उदाहरण है। भारत में नयी पहचान पाने के लिए पुरानी पहचान मिटाना आवश्यक नहीं है समन्वयता, सहिष्णुता, परिवर्तनशील, समायोजन आदि यहॉं की प्रमुख सांस्कृतिक विशेषताएं रही है।

औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिकरण, शिक्षा व संचार साधनों के परिणाम स्वरूप आज तेजी से संक्रमित हो रहे समाज में अनेको भारतीय संस्थाएं भी प्रभावित हुई हैं और इन सभी परिवर्तनो के द्वारा परिवार, व्यक्ति और समाज के मापदण्डों, मूल्यों आदर्शों आदि में परिवर्तन कर दिये हैं, जिसके द्वारा अन्तर्पीढी संघर्ष की समस्या तेजी से बढ़ रही है।

आधुनिक शिक्षा :– आधुनिक शिक्षा ने व्यक्ति को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है। शिक्षा से न केवल व्यक्तियों की अभिवृत्तियॉ बदलती है वरन विश्वास, आदर्श और मूल्य भी बदलते है। पुरानी पीढ़ी के लोगों का समाजीकरण और उनके व्यक्तित्व का विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के जि पर्यावरण में हुआ, आज यह काफी कुछ बदल चुका है। वर्तमान में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं। अब प्रदत्त के बजाए अर्जित प्रस्थितियों का महत्व बढ़ा हैं वर्तमान पीढ़ी आने जीवन का स्वयं निर्णय लेने की क्षमता रखती है एवं कुछ स्वयं निर्णय ले रही है अतः वह नहीं चाहती कि पुरानी पीढ़ी उसमें कोई अनावश्यक हस्तक्षेप या व्यवधान उत्पन्न करें। आधुनिक शिक्षा लोकतंत्र, प्रजातंत्र और समाजतंत्र के मूल्यों को आगे बढ़ाती है। पुरानी पीढ़ी अपने परम्परागत और दकियानूसी विचारों और मूल्यों से जुड़े रहते हैं नयी युवा पीढ़ी की अपेक्षा पुराने लोग आज भी परम्परागत मूल्यों और नियमों से ज्यादा जुड़े है। यह पूरी तरह से प्रकट करती है कि यह पीढ़ियों के संघर्ष के लक्षण की स्थिति है।

आधुनिकीकरण :– योगेन्द्र सिंह (1973) ने बताया कि पारम्परिक संस्थाओं का स्वरूप अक्षुण्ण हो सकता है, परन्तु आधुनिकीकरण को समाहित करने के लिए उनमें तात्विक रूप से भारी बदलाव आ सकता है। इस अर्थ आधुनिकीकरण प्रक्रिया ने भारत में एक विशिष्ट रूप धारण किया है। पारम्परिक संस्थाओं ने परिवर्तन की प्रक्रिया के दौरान अनुकूलन की क्षमता को प्रदर्शित किया है।

डा0 योगेश अटल की मान्यता है कि भारत में परम्परा और आधुनिकीकरण साथ – साथ चल रही है। नई शिक्षा और नये व्यवसायों के कारण लोग नगरों में आकर रहते है। स्थान की दूरी ने पारिवारिक दूरी अधिक नहीं बढ़ाई है और सदस्यगण विवाह, त्यौहार, उत्सव, जन्म, मृत्यु और छुट्टियों के अवसर पर मिलते है। विवाह पर खर्च चाहे केन्द्रीय परिवार के परन्तु विवाह निमंत्रण पत्रिका (निमंत्रण कार्ड) पर पितृवंशीय कुल के बुजुर्ग लोगों के नाम अंकित रहते है।

लिंगभेद :– आज भी भारतीय समाज में लिंग भेद की भावना प्रबल रूप से दृष्टि गोचर होती है। सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि यद्यपि स्त्रियों व पुरूषों को संविधान द्वारा समानता उपलब्ध है और किसी प्रकार का लैंगिक भेदभाव नहीं है फिर भी आप तक परम्परागत मानसिकता, लिंगभेद से दूर नहीं हो सकी है और समाज मं प्रत्येक स्थान पर महिलाओं पर पुरूषों की वरीयता आज भी प्रभावी प्रतीत होती है और इसी कारण आज भी अनेक परिवार में अन्तर्पीढ़ी संघर्ष हो रहे है।

Ganrade and Sinha (1971:6) ने यह अनुमान लगाया कि तीव्र गति से परिवर्तित होती सामाजिक व्यवस्था में युवाओं के विचार अपने अभिभावकों से अत्याधिक भिन्न है और वे अपने अभिभावकों को मूल्यों का अनुपालन नहीं कर रहे है।

डॉ0 एस0 सी0 दुबे (1990) ने परिवार, जाति स्थानिकता धर्म आदि के सन्दर्भ में भी आधुनिकता के उल्लेख किया है परिवार में अब सामूहिकता की जगह व्यक्तिवाद उभर रहा है। जाति विवाह व्यवसाय, संस्तरण, कर्मकाण्ड व पवित्रता की धारणा में पविर्तन हुआ है। अन्तः विवाह की धारणा यद्यपि अभी दृढ़ है।

अतः भारतीय सामाजिक व संस्कृतिक परि दृश्य को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि समाज में हो रहे तीव्र संक्रमण के बावजूद भी परम्परात्मक मूल्य अभी भी, जनमानस पर अपनी अमिट छाप, छोड़े हुए हैं। यद्यपि शिक्षित युवाओं (नई पीढ़ी) के विचारों, विश्वासों मूल्यों, अभिवृत्तियों आदि में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है फिर भी उनमें परम्परागत मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धताएँ आज भी काफी हद तक कायम है।

संस्कारहीनता के कारण पीढ़ियों के मध्य दरारें पैदा होती जा रही है, जिस कारण समाज में नयी व पुरानी पीढ़ी के मध्य संघर्ष उत्पन्न हो रहे है। संघर्ष के कई कारण है, जिससे पुरानी और नयी पीढ़ी के मध्य संघर्ष पैदा हो रहे हैं –

1. संस्कार विहीन शिक्षा।
2. आर्थिक परिस्थितियॉं।
3. यंत्रवत जीवन शैली।
4. समाजिकता।

अन्तर्पीढ़ी संघर्ष को कम करने के उपाय : – इसके कारण निवारण के लिये दोनों ही पक्षों को विवेकयुक्त कदम उठाने चाहिए। नई पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी के प्रति अच्छा व्यवहार तथा उनका सहयोग करना चाहिए उनकी सभी प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए और पुरानी पीढ़ी को भी नई पीढ़ी के साथ तालमेल बनाकर चलना चाहिए। जिससे समाज में पीढ़ियों के मध्य संघर्ष कम हो जायेगें।

संदर्भ संकेत

1. Bhatt, Anil (1975) Caste class and Politics: Delhi Manohar Book Service.
2. Damle, Y.B. (1971) Intergenerational conflict - Elite students and areas of conflict with parents in gangrade K.P. and Sinha M.P.
3. Davis, K. (1950) "The Sociology of Parent - Youth Conflict" American Sociological Review vol 05; pp-523-535
4. Dubey S.C. (1990) Traditions and Developments vikas publishing house, New Delhi.
5. Gangrade K.P.A sinha M.P. (1971) Intergeneraional conflict in India Nachiketa Pub Bombay.
6. Gangrade, K.D. (1974) "Crisis of Values: A study of Intergeneration conflict: A study in Generation Gap". Social Chermge Vol 4(1) pp. 18.27.
7. Gangrade, K.D. (1975) "Crisis of Values: A study in Generation Gap". Chetana Publications, New Delhi
8. Gupta M.L. And Vimlesh (2014) समाजशास्त्र : साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
9. Hayal, P.S. (1984) "Generation Gap: Comperison of Atlitudinal modernity of College students and their Parents". Unpublished Ph.D. Thesis Karnatak University Dharwad.
10. Jonnson, E.S. (1978) "Good" relationships between older mothers and their daughters : A causal model. The cerontologist, 18, 301-306
11. Kapadia K.M. (1966) Marriage and family in India Oxford University Press, Mombay.
12. Mahantesh H.B. (2005) "Intergenerational Conflict : A Sociological Study of Generation Gap". Unpublished Ph.D. Thesis Karnatak University Dharwad.
13. Reddy, S.K. (1983) "Generation Gap : Attitudes of Youth and Adults towards Authoritarianism." Journal of Psychlolgical Researches. Vol 27 (1) PP-45-47.
14. Rege M.P. (1971) Intergenerational Conflict - A the oretical perspective in Gangrade K.D. and Sinha M.P. Nachiketa Pub. Bombay.

❑❑

योग का उपयोग

डॉ0 निर्मल कौशिक
निर्देशक – कर्मशीला संस्कृत विकास मंच
163, आदर्श नगर, ओल्ड कैंट रोड, फरीदकोट–151203

आजकल मानव समाज में 'योग' अथवा 'योगा' बहुत प्रचलित हो रहा है । योग शब्द ही अंग्रेजी भाषा में योगा हो गया है । इसी आकारान्त योगा के कारण विदेशों में भी 'योग' का प्रचलन बढ गया है और भारतीय योग विश्वभर में गौरवान्वित हो गया है । 'योग' शब्द का अर्थ है जोडना । लेकिन प्रश्न यह उठता है कि 'योग' किससे जोडता है । हम प्रायः देखते है कि श्रीमद्भगवद्गीता का प्रत्येक अध्याय किसी न किसी योग शब्द से संयुक्त है जैसे प्रथम अध्याय : अर्जुन विषादयोग, दूसरा सांख्य योग, तीसरा कर्मयोग । इसी प्रकार अठारहवाँ अध्याय –मोक्ष सन्यासयोग आदि । इससे स्पष्ट होता है कि जो अध्याय जिस विषय से जुडा है उसी के अनुसार अध्याय का नाम योग सहित रखा गया है । इसी प्रकार जो भक्ति से जुडता है भक्ति योग जो ज्ञान से जुडता है ज्ञान योग आदि । केवल जुडना ही काफी नही है बल्कि जुडने के माध्यम से कर्म में कुशलता प्राप्त करना है। गीता में भगवान श्री कृष्ण स्वयं कहते हैः

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते
तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् । 2/50

अर्थात् हे अर्जुन! समबुद्धि युक्त पुरूष पुण्य और पाप दोनो को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात उनसे मुक्त हो जाता है । इससे तू समत्वयोग में लग जा। यह समत्वयोग ही कर्मो में कुशलता है ।

महर्षि पतञजलि ने हजारो वर्ष पूर्व ईसा पूर्व की द्वितीय शताब्दी में योग को एक दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया था । उन्होने 'सूत्र शैली' में योग दर्शन, योग दर्शन सूत्र अथवा पतंजलि योगदर्शन के रूप में इसे उपलब्ध करवाया है । बाद में इन सूत्रों के भाष्य भी लिखे गए । इन भाष्यों पर अनेक टीकाएं भी लिखी गई।

योग जीवन में क्रियात्मक रूप में कार्य करता है । योग आम आदमी के जीवन को कलात्मक रूप में निरोगी रखने का माध्यम है । योग केवल आसन ही नही है । 'स्वामी रामदेव जी के शब्दों में योग वह विद्या है जो हमें स्वस्थ जीवन जीने की कला सिखाती है और असाध्य रोगो से बचाती है । यह आत्मिक चेतना है जिससे हमारे अन्दर और बाहर सब कुछ परिवर्तित हो जाता है । प्रणायाम करने से हमारे शरीर को आक्सीजन, रक्त व उर्जा प्राप्त होती है । योगासन स्वास्थ्य, शक्ति एवं दीर्घायु प्रदान करते हैं । योगासन करने से केवल शरीर ही नही मन और मस्तिष्क भी पुष्ट होता है । वास्तव में योग शरीर से आत्मा और आत्मा से परमात्मा तक के साक्षात् अनुभव की आध्यात्मिक प्रक्रिया है । इससे मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है । अतः योग इहलोक और परलोक दोनो के लिए उपयोगी है ।

योगासन करने से पूर्व कुछ सावधानियां भी अपेक्षित हैं । शौचादि से निवृत होकर ही आसन करें। भोजनादि खाने के छः सात घण्टे बाद खाली पेट ही आसन करें। आसन करते समय जल्दबाजी न करें । आसन करने के बाद ठंडी या गर्म हवा में न जाए । आसन करते समय ढीले वस्त्र पहनें । दरी, चादर व कम्बल पर ही आसन करें केवल जमीन पर नही।

स्त्रियाँ गर्भावस्था व मासिकधर्म की स्थिति में आसन न करें। आसन के बाद मूत्रत्याग अवश्य करें। आसन करते समय मध्य में अथवा अन्त में शवासन अवश्य करें। सबसे महत्वपूर्ण बात है कि आसन नियमित रूप से करें।

आरम्भ में आसन किसी प्रशिक्षित योगाचार्य के देखरेख में ही करें अन्यथा लाभ की जगह हानि भी हो सकती है।

योग एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है आत्मा और शरीर की शुद्धि का पर्याय ही योग है । योग आत्मा परमात्मा के मिलन का एक साधन है । पद्मासन, सिद्धासन, सर्वांग आसन जैसे आसन तो सिद्ध पुरूष अपनी साधना के लिए भी करते हैं । पद्मासन का अभ्यास करने वाले साधक के जीवन में एक विशेष आभा प्रकट होती है । इस आसन के द्वारा अनेक योगी, संत, साधक महापुरूष हो गये हैं । श्रम और पीडा से रहित एक घण्टा पद्मासन पर बैठने वाले व्यक्ति का मनोबल बढ़ता है । इसी प्रकार सिद्धासन को भी अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है । अतः योग एक साधना है अलौकिक सिद्धियों को प्रदान करने वाले इस आसन का नाम सिद्धासन पडा है । सिद्धयोगियों का यह प्रिय आसन है । इस आसन के निरन्तर अभ्यास करने से शरीर की समस्त नाडियों का शुद्धिकरण होता है । प्राण तत्व स्वभाविक रूप से उर्ध्वगामी होता है पाचन क्रिया नियमित होती है ।

योगश्चितवृति निरोधः तदा द्रष्टुः स्वरूपे
अवस्थानम् अभ्यास वैराग्यभ्याम् तन्निरोध।

चित्त की वृत्तियों को रोक कर द्रष्टा के स्वरूप में स्थित होने का ही नाम योग है। मन की चंचल वृत्तियों को अभ्यास और वैराग्य द्वारा ही रोका जा सकता है। योग के आठ अंग है जो शरीर इन्द्रियों और चित्त को शुद्ध करते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा अभ्यास योग करने से आत्मा का परमात्मा से योग हो जाता है। इन्हे अष्टांग योग भी कहा जाता है।

1. यम – यह पांच प्रकार का है।

अहिंसा	–	हिंसा न करना – हिंसा के विषय में नही सोचना
सत्य	–	मन, वचन, कर्म से सत्य पालन
ब्रह्मचर्य	–	मन व इन्द्रियों पर नियन्त्रण
अपरिग्रह	–	आवश्यकता से अधिक संग्रह न करना
अस्तेय	–	चोरी अथवा अपहरण नही करना

2. नियम – भी पांच प्रकार का है ।

शौच	–	मन–शरीर की शुद्धि करना
सन्तोष	–	पुरूषार्थ से प्राप्त वस्तुओं में सन्तुष्ट होना
तप	–	दुख सुखादि से संघर्ष करना
स्वाध्याय	–	धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करना
ईश–ध्यान	–	ईश्वर का ध्यान–स्मरण

यम और नियम का पालन करने से मानव का परित्र निर्माण होता है और मानवीय गुणो का विकास होता है ।

3. आसन – आसन मन–शरीर को सुन्दर, सुडौल और स्वस्थ बनाते है । महर्षि पतंजलि ने स्थिर सुखासनम् कहा है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आसन ही सर्वोतम विधि है । क्योंकि शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्– अर्थात् शरीर ही सब धर्मों का साधन है । यही मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है । कुछ पशु पक्षियों का वृक्षों का अनुकरण करते हुए उनकी अवस्था के अनुरूप ही आसनों के नाम रखे गए है । जैसे– मयूर आसन, सर्पासन, ताडासन, मत्स्यासन, कुक्कटासन आदि ।
4. प्राणायाम– प्राण वायु के श्वास–प्रश्वास अर्थात् सांस अन्दर लेने और बाहर निकालने की प्रक्रिया प्राणायाम है । यह कुम्भक, रेचक पूरक तीन प्रकार का होता है।

5. प्रत्याहार – बर्हिमुखी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करके चंचल मन व इन्द्रियों को नियन्त्रित करना ही प्रत्याहार कहलाता है ।
6. धारणा – किसी देश (स्थान) पर चित्त को लगाना धारणा कहलाता है जैसे – नासिका के अग्रभाग, भ्रू–मध्य अथवा किसी बाद्य वस्तु मूर्ति आदि में चित्त को लगाना ही धारणा कहलाता है ।
7. ध्यान – जब चित्तवृतियों एकाग्र होकर ध्येय के प्रति लग जाएं । मन के संकल्प–विकल्प सब कर स्थिर हो जाए तो इसे ध्यान कहते है ।
8. समाधि – जिस समय आत्मा में ईश्वर यां किसी अन्य वस्तु का ध्यान न रहे उसे समाधि कहते हैं । इसमें ध्याता, ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी में ध्येय ही शेष रह जाता है।

योग की क्रियाएँ नियमित रूप से करने से आलस्य दूर होता है, क्षमता बढती है और कार्य करते समय शरीर के समूचे नाड़ीतन्त्र को वायु, रक्त व उर्जा प्राप्त होती है। इससे शरीर के सभी जोड़ों व मासपेशियों को लचीलापन व सबलता प्राप्त होती है। योग की ध्यान अवस्था में मन, मस्तिष्क और शरीर की सभी वृतियां दूर हो जाती है। योग विधिवत रूप से करने पर शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास होता है। विद्यार्थियों को योग और प्राणायाम अवश्य करना चाहिए।

आत्मा और परमात्मा के संयोग हेतु अनेक मार्गों में 'योग' भी एक लोकप्रिय मार्ग माना गया है । इससे स्वास्थ्य लाभ तो होता ही है साथ ही आत्मा का परिष्कार भी होता है । संस्कारों का उद्‌गम भी होता है । योग का उपयोग तभी है जब हम इसे किसी योग्य प्रशिक्षित आचार्य व शिक्षक की देख रेख में ही करें। पुस्तकें पढ़कर या दूरदर्शन से देखकर योग करने से आपको इसका विपरीत प्रभाव भी हो सकता है । केवल आसन न करें प्राणायाम भी करें और नियमों का पालन करते हुए इसे नियमित रूप से करें तभी योग का उपयोग होगा।

❑❑

भारत में महिलायें और उनका राजनीतिक सशक्तिकरण (भारत के सन्दर्भ में)

डॉ0 अभिलाश सिंह यादव
असि0 प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान
महामाया राजकीय महाविद्यालय, धनूपुर हण्डिया, इलाहाबाद

कुल जनसंख्या का लगभग आधा हिस्सा होने के कारण महिला और विकास का अंतरंग संबंध है। कोई भी समाज तब तक विकास नही कर सकता जब तक उसका आधा हिस्सा दलित शोषित अथवा अविकसित है। विकास से तात्पर्य गरीबी का अंत, उत्पादकता में वृद्धि और परिणामतः सामाजिक व व्यक्तिगत जीवन की गुणवत्ता में सुधार है। विकास के मानकों में अच्छी शिक्षा, स्वास्थ्य और पोषण की व्यवस्था के साथ–साथ जनता की आर्थिक स्थिति में सुधार, क्रय–शक्ति का विकास और कल्याणकारी सामाजिक सेवाओं तक उनकी पहुंच इत्यादि कहे जा सकते हैं।

समाज में स्त्री अथवा पुरुष की अवस्थिति उसके द्वारा प्रयुक्त राजनीतिक, वैधानिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकारों की संपूर्णता और उनके परिणाम द्वारा निर्धारित होती है। महिलाओं की अवस्थिति के निर्धारण का निम्नलिखित संकेत उपयोगी हो सकता है–

स्त्री–शिशु जीवन दर, मातृ–जीवन दर, स्त्री–साक्षरता दर, स्त्री की विवाह की आयु, स्त्री पुरुष अनुपात, परिवार और समाज में महिला की अवस्थिति, महिलाओं की रोजगार–दर, महिलाओं के संपत्ति अधिकार, देश के राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन में महिलाओं की सहभागिता, सामाजिक बुराइयों जैसे सती, तलाक, घरेलू दुर्घटनाएं, बलात्कार दहेज, मृत्यु इत्यादि की घटना–दर और महिलाओं का सामाजिक एवं वैयक्तिक शोषण। इन संकेतकों के सम्मिलित स्वरुप से 'जीवन की गुणवत्ता' का अनुमान लगाया जा सकता है। विकास में महिलाओं की उचित भूमिका के लिए यही आवश्यक नहीं है कि उन्हें कार्य का अधिकार दिया जाए, उससे भी ज्यादा आवश्यक है कि उनके द्वारा किए गए कार्य का उचित मूल्यांकन किया जाय।

भारतीय महिला की अवस्थिति का इतिहास अत्यन्त जटिल और विविधायुक्त है यह इतिहास के पन्ने पलटने से स्पश्ट हो जाता है। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक संरचना पे परिवर्तनों के साथ बदलती रही है। कुछ अपवादों को छोड़कर भारतीय नारी अपने पिता, भ्राता, पति और पुत्रों के माध्यम से जीवन जीती है। अधिकांशतः वह ''अपने जीवन'' और परिवार के जीवन में भेद नहीं कर पाती, कानून की दृष्टि से स्त्री की स्थिति पुरुष के समकक्ष है किंतु दैनिक व्यवहार में जाति पितृसत्तात्मक परिवार संस्था, धार्मिक परम्पराएँ तथा सत्तावादी सामाजिक मूल्यों का प्रभाव अभी भी बहुत व्यापक है जो महिलाओं की निर्भरता की स्थिति और निम्न स्थिति का आधार है। भारत में स्त्री–पुरुष अनुपात में स्त्रियों की संख्या निरन्तर कमी आयी है। शिक्षा जो विकास का एक महत्वपूर्ण मापदंड है, से संबंधित आंकड़े भी महिलाओं की पिछड़ी स्थिति के द्योतक है। रोजगार के क्षेत्र में दर महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं की जा सकती है। राजनीतिक सहभागिता और निर्गमन के क्षेत्र में महिलाओं पर कोई वैधानिक और संविधानिक प्रतिबन्ध नहीं है। फिर भी लोकसभा, राज्य सभा और राज्य विधान सभाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बहुत कम है। प्रशासनिक क्षेत्र में भी महिलाओं का प्रतिशत पुरुषों से कम है। महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अपराधों में कमी आने के बजाय निरंतर वृद्धि हो रही है।

स्वतंत्रता के समय से ही भारतीय नेतृत्व ने इस तथ्य को पहचाना कि महिलाएं राष्ट्र के विकास के लिए अत्यंत

महत्वपूर्ण मानवीय संसाधन है जिसका पूर्ण और प्रभावी उपयोग और विकास राष्ट्रीय प्रगति के लिए अनिवार्य है। इसका आधार समाज वैज्ञानिक का यह विचार था कि किसी भी राष्ट्र में महिलाओं की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और कोई राष्ट्र उसकी अवहेलना नहीं कर सकता। यदि महिला शक्ति का उचित पोषण और नियंत्रण किया जाय तो वह राष्ट्र को प्रगति की ओर ले जाने वाली महान शक्ति बन सकती है। महिलाएं तब तक विकास में सार्थक भूमिका नहीं निभा सकती जब तक उनके व्यक्तित्व का विकास न किया जाय और व्यक्तित्व का विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक विकास की क्रियाओं का लाभ महिलाओं तक न पहुँचाया जाय। इस प्रकार महिलाओं को एक ही समय पर विकास प्रक्रिया का सक्रिय सहभागिता भी बनना था और उस प्रक्रिया से आने वाले परिवर्तन का दूत भी।

इस धारणा के अनुरुप ही भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 16 के अन्तर्गत महिलाओं को समान अधिकार प्राप्त हैं। किंतु समान अधिकारों के उपभोग के लिए समान शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक स्तर की भी आवश्यकता होती है जो भारत में नहीं था। परिणामस्वरुप विकास का जो मॉडल भारत में अपनाया गया उससे महिलाओं की स्थिति में बहुत कम परिवर्तन आ सका और वे विकास में समान सहभागी नहीं बनाई जा सकीं। वास्तव में हमने विकास के परिचयी मॉडल को ही कुछ संशोधनों के साथ पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से लागू किया जिससे कुछ विशिष्ट वर्गों की आर्थिक स्थिति अवश्य सुधरी, उपभोक्ता संस्कृति भी बढ़ी परन्तु विशाल जनसंख्या, जिससे महिलाएं भी सम्मितिल हैं, की समस्याओं जैसे गरीबी, बेरोजगारी, शोषण, कुपोषण, निरक्षरता, शक्तिहीनता आदि का समाधान नहीं हो सका।

ऐसा नहीं है कि महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने का प्रयास न किया गया हो। स्वतंत्रता के पश्चात् से ही महिलाओं को कमजोर वर्ग मानते हुए उनके कल्याण को लक्ष्य बनाया गया। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में महिलाओं की समस्याओं के समाधान के लिए अलग–अलग नीति बनायी गयी।

महिला सशक्तिकरण से देश का बदलाव – मानव सभ्यता के विकास में महिलाओं की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सभ्यता के प्रारम्भिक युगों में ऐतिहासिक साक्षों से प्रमाणित होता है कि मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था रही है। जिसमें महिलाओं की स्थिति तथा भूमिका सर्वोच्च होती थी। लेकिन धीरे धीरे मातृसत्ता के स्थान पर पुरुष सत्ता की स्थापना होती गई। नारी की स्थिति दासों जैसे हो गई। इस प्रकार नारी मानव जाति में सर्वप्रथम शोषण का शिकार हुई। आज वैश्वीकरण के युग में जबकि दुनिया संचार क्रांति, तकनीकि प्रगति तथा उदारीकरण के कारण छोटी हो गई है ''वैश्विक ग्राम'' के रुप में, तब भी नारी का शोषण तथा अपमान हो रहा है। जिस किसी भी समाज या देश में ये घिनौने कृत्य हो रहे हैं, वह कभी भी उत्थान तथा प्रगति नहीं कर सकता है। इसलिए महिला सशक्तिकरण करके ही देश में बदलाव लाया जा सकता है। महिलाओं की जनसंख्या दुनिया में पुरुषों के लगभग बराबर है। इसीलिए उन्हें 'आधी दुनिया' कहा जाता है। ज्ञान, क्षमता तथा कार्य कुशलता में महिलाएं किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं है। ऐसी स्थिति में महिला शक्ति तथा विकास के संसाधन के रुप में उनकी उपेक्षा करके कोई भी राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकता है।

महिला सशक्तिकरण का आशय है, महिला का बिना अपना सम्मान तथा गरिमा को गवाएँ स्वयं अपने से सम्बन्धित तथा देश के प्रगति से सम्बन्धित किसी भी मामले में बिना किसी पर निर्भर हुए स्वतः निर्णय लेना। कहने का तात्पर्य है कि किसी महिला को सशक्त तभी कहा जा सकता है जब वह परिवार में, समाज में तथा देश में किसी भी मुद्दे तथा समस्या का अपने स्व–विवेक तथा निर्णय क्षमता के बल पर सही एवं उचित समाधान कर सके, तो हम कह सकते हैं कि महिला सशक्तिकरण हो रहा है। महिला सशक्तिकरण का मतलब पुरुश वर्चस्व को चुनौती देकर महिला सत्ता की स्थापना करना नहीं है बल्कि पुरुष तथा महिला के बीच लिंग असमानता तथा विभेद को समाप्त करना है। एक–दूसरे की गरिमा तथा प्रतिष्ठा का सम्मान करते हुए समानपूर्वक व्यवहार करना है। नारी को उपभोग की वस्तु समझने की मानसिकता को समाप्त करना है। पुरुष तथा नारी में क्षमता, ज्ञान तथा विवेक

के मामले में कोई भेद नहीं है। नारी भी वह सभी काम कर सकती है, जो पुरुष कर सकते हैं, तो नारी को दोयम दर्जे की सामाजिक स्थिति क्यों प्राप्त हो? महिला सशक्तिकरण का अर्थ पुरुष तथा नारी का समानतापूर्ण सहः अस्तित्व है, प्रभुत्व व वर्चस्व संघर्ष नहीं। दोनों एक दूसरे के पूरक तथा सहचर है। दोनों मिलकर समाज तथा राष्ट्र में बदलाव ला सकते हैं, जैसा कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान स्वतंत्रता की लड़ाई में महिलाओं की भूमिका को देखा जा सकता है। कस्तूरबा गॉधी, अरुणा आसफ अली, बासंती देवी, मीरा बेन, सरोजनी नायडू तथा एनी बेसेन्ट आदि महिलाओं ने स्वतंत्रता की लड़ाई के साथ–साथ गाँधी जी के 'रचनात्मक कार्यक्रमों' जो नए राष्ट्र निर्माण के लिए चलाए जा रहे थे, में बढ़चढ़कर भाग लिया। चाहे राष्ट्रीय स्कूलों की स्थापना हो, छुआछूत एवं अस्पृश्यता का विरोध करना हो, नशाबन्दी उम्मूलन हो या साफ–सफाई का मामला हो या फिर धरना प्रदर्शन एवं आंदोलन करना हो या फिर जेल जाना हो। हर जगह महिलाओं ने अपनी महती भूमिका निभाई है। महिलाओं की क्षमता तथा कार्यकुशलता को देखकर गाँधी जी ने कहा था कि नारी को अबला कहना नारी का अपमान करना है। नारी अबला नहीं सबला है।

आज के दौर में भी महिलाओं ने हर क्षेत्र में अपनी क्षमता तथा कुशल नेतृत्व के झण्डे गाड़ रही है। चाहे राजनीति का क्षेत्र हो, आर्थिक क्षेत्र हो, सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र हो, खेलकूद तथा विज्ञान एवं तकनीकि का क्षेत्र हो। राजनीतिक क्षेत्र में आज महिलाएँ राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री बन रही हैं। भारत में श्रीमती इन्दिरा गॉधी के कुशल नेतृत्व तथा साहसपूर्ण निर्णय क्षमता के बगैर 1971 में पाकिस्तान से युद्ध नहीं जीता जा सकता था, जबकि अमेरिका सहित पश्चिमी यूरोपीय देश पाकिस्तान की मदद कर रहे थे। लेकिन इन्दिरा गाँधी ने केवल भारत को विजयी बनाया बल्कि पूर्वी पाकिस्तान को अलग करके एक नए देश 'बंग्लादेश' का निर्माण भी करवाया, न केवल राजनीतिक क्षेत्र में बल्कि इन्दिरा गाँधी ने आर्थिक नीतियों को समाजीकरण का जामा पहनाते हुए देश की आर्थिक नीतियों में भी बदलाव किया। 16 प्रमुख बैंकों का राश्ट्रीयकरण करके तथा प्रीवी पर्स को समाप्त करके अर्थव्यवस्था को नई दिशा दी। आर्थिक क्षेत्र में नैना लाल किदवई, इन्दिरा नूयी, चन्द्रा कोचर, इन्दुजैन, सावित्री जिन्दल, आदि महिलाएँ व्यवसाय तथा कारोबार में वैश्विक स्तर पर अपने कीर्तिमान स्थापित कर रही है। विज्ञान तथा तकनीकी के क्षेत्र में भी महिलाएँ किसी से पीछे नहीं हैं।

टेसी थामस ने अग्नि–द्वितीय मिसाइल का प्रोजेक्ट डायरेक्टर का काम संभाला, तो कल्पना चावला तथा सुनीता विलियम्स ने अमेरिकी अन्तरिक्ष यात्री के रुप में नाम कमा चुकी है। झारखण्ड की रहने वाली प्रेमलता अग्रवाल ने मई 2013 में विश्व के सातों महाद्वीपों के सर्वोच्च पर्वत शिखरों का सफल आरोहण करने का गौरव प्राप्त किया।

लेकिन इन सबके बावजूद दुनिया में महिलाओं की स्थिति तथा भूमिका में गिरावट ही देखी जा रही है। उक्त जो भी कार्य महिलाओं ने किया तथा सफलता अर्जित की वह केवल उच्च वर्ग की महिलाओं ने किया। आर्थिक रुप से संपन्न तथा बड़े घर की पढ़ी लिखी महिलाओं ने, जबकि वास्तविकता यह है कि आज बड़े पैमाने पर महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न, अश्लील हरकतें तथा छेड़खानी, आफिस एवं सार्वजनिक स्थानों पर दुराचार, तेजाब फेंकना, सम्मान के नाम पर हत्याकर देना, कन्या भ्रूण हत्या, पाकिस्तानी 14 वर्षीय बालिका मलाला–युसुफजई की इसीलिए हत्या करने का प्रयास किया गया क्योंकि वह लड़कियों की शिक्षा की मुहिम की मसाल लेकर खड़ी हो गयी थी। अवैध देह व्यापार, दहेज के कारण जला देना। आज बाजार ने प्रिंट मीडिया तथा इलेक्ट्रानिक मीडिया के माध्यम से महिलाओं की अश्लील तथा उत्तेजक तस्वीरें अपने उत्पाद के साथ प्रचार तथा विज्ञापन के रुप में प्रस्तुत कर रहा है। ऐसी स्थिति में महिला सशक्तिकरण की बात बेईमानी लगती है। जबकि वास्तविक महिला सशक्तिकरण तभी हो सकता है जब इसके लिए प्रयास ग्रास रुट पर किया जाय अर्थात् समाज के हासिए पर खड़ी अन्तिम महिला को जब उसकी रुचि तथा पसंद के अनुसार आगे बढ़ने का अवसर मिले तथा वह स्वतंत्रतापूर्वक अपने विषय में सोच सके तथा आत्मसम्मान एवं गरिमायुक्त जीवन जी सकें। तभी हम महिला सशक्तिकरण के लक्ष्य

को प्राप्त कर सकते हैं। दुनिया में महिला साक्षरता, स्वास्थ्य तथा रोजगार आदि की विषमता को दूर करके ही महिला को सशक्त तथा समर्थ बनाया जा सकता है। क्योंकि 'सबलता' तथा 'सुयोग्यता' ही नारी सशक्तिकरण का मूलाधार है। इसके लिए निम्न प्रयास करने की जरुरत है–

1. महिला आरक्षण विधेयक को पास करना चाहिए जिससे राजनीति में उन्हें 33 प्रतिशत की भागीदारी प्राप्त हो सके। अभी तक संसद में महिलाओं की भागीदारी केवल 8–10 प्रतिशत तक ही है।
2. दहेज के कारण हत्या के लिए कठोर कानून की जरुरत है।
3. महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न, छेड़खानी तथा अश्लील हरकत करने वाले को सजा देने के लिए फास्टट्रैक अदालत का गठन होना चाहिए जो बिना अत्यधिक समय गवाएँ शीघ्र ही निर्णय दे सकें।
4. कन्या भ्रूण हत्या जैसे गंभीर अपराध को रोकने के लिए जो नियम तथा कानून बने हैं उनका कठोर से पालन किया जाए। इस मामले में महिलाओं को स्वयं आगे आना होगा तथा कन्या भ्रूण हत्या पर अपनी सहमति को साहस के साथ रोकना होगा।
5. पारिवारिक हिंसा को रोकने के लिए पारिवारिक अदालतों के द्वारा शीघ्र कार्यवाही करने तथा शीघ्र निर्णय लेने की जरुरत है।
6. महिला को आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर प्रदान करने के लिए उन्हें नौकरियों में विशेष छूट हो। पढ़ने लिखने के लिए प्रोत्साहन दिया जाए। कमजोर लड़कियों को छात्रवृत्ति तथा निःशुल्क शिक्षा दी जाय।
7. राष्ट्रीय महिला आयोग को और अधिक चुस्त–दुरुस्त बनाने की जरुरत है जिससे वह शीघ्र ही किसी मामले कों संज्ञान में ले सके तथा शीघ्र कार्यवाही करने में मदद कर सके।
8. महिलाओं की अश्लील तस्वीरों को ब्राण्ड के रुप में मीडिया द्वारा पेश करने पर तत्काल रोक लगे। फिल्मों एवं टी.वी. सीरियलों में महिलाओं को अश्लील तथा उपभोग की वस्तु के रुप में प्रस्तुत करने पर रोक लगे। महिलाओं को एक स्वस्थ समाज के निर्माण के शिल्पकार के रूप में दिखाया जाए।

अन्त में निष्कर्ष स्वरुप कहा जा सकता है कि महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सुरक्षा पर विशेष ध्यान देने की जरुरत है। महिलाओं को जागरुक करके, पढ़ने–लिखने तथा रोजगार का सम्मानजनक अवसर प्राप्त होना चाहिए जिससे वह अपने हम तथा अधिकार की लड़ाई स्वयं वह लड़ सके। इसमें मीडिया, स्वयं सहायता समूह तथा न्यायालय आदि बेहतर भूमिका निभा सकते हैं। तभी महिलाएँ वास्तविक रूप में सक्षम हो सकती है। तभी हर कोई महिलाओं का सम्मान करेगा। यह लड़ाई परिवार के स्तर पर, समाज के स्तर पर तथा राष्ट्र के स्तर पर महिलाओं को स्वयं लड़ना होगा। तभी सामाजिक बदलाव का रास्ता निकलेगा तभी कोई देश प्रगतिशील एवं उन्नत राष्ट्र बन सकेगा।

संदर्भ सूची

1. सुषमा यादव, राम अवतार शर्मा–भारतीय राजनीति (ज्वलंत प्रश्न)
2. मीरा देसाई–भारतीय समाज में नारी।
3. सुशीला सहाय–राष्ट्र के विकास में नारी का योगदान और उसकी समस्याएं।
4. आशा रानी ब्होरा– भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार।
5. अमर उजाला, झांसी संस्करण सन् 2014
6. दैनिक जागरण, इलाहाबाद संस्करण जुलाई–15
7. इंडिया टूडे– दिल्ली संस्करण।

❑❑

हिन्दी साहित्य और मूल्य परक शिक्षा

डॉ0 विवेक सिंह
डायट प्रवक्ता
भदोही, (उत्तर प्रदेश)

किसी भी देश की प्रगति उसकी आर्थिक सम्पन्नता से नहीं अपितु वहाँ के राष्ट्रीय चरित्र, शैक्षिक स्तर और आम आदमी की खुशहाली से मापी जानी चाहिए। शिक्षा राष्ट्र और राष्ट्र के नागरिकों के मूल्य निर्माण की वह सतत् प्रक्रिया है, जिससे व्यक्ति और देश दोनों का कायाकल्प किया जा सकता है। शिक्षालयों में पदार्पण करते ही छात्रों में एक विशिष्ट चेतना, जिज्ञासा, स्फूर्ति एवं महत्वाकांक्षा की संवेगात्मक तीव्रता जाग उठती है – ऐसी स्थिति में 'मूल्य' ही वे आधार स्तम्भ अथवा मानदण्ड है जो जीवन को सुमार्ग की ओर अग्रसारित करते हैं। प्रकारान्तर से हम कह सकते हैं कि 'उन्हें ही जीवन का मूल्य माना जाना चाहिए जिससे मानव का उत्कर्ष सम्भव हो। विविध मूल्यों के संघर्ष के बाद भी एक बड़ा मूल्य बचा रहता है जो एक प्रकार से सबका मूल तत्व है वह है–''मानव मूल्य''।

इस संदर्भ में सर्वप्रथम प्रश्न यह उठता है कि साहित्य में मानव मूल्यों से क्या तात्पर्य है। साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब है। अतः साहित्य के मूल्य जीवन के मूल्यों से भिन्न नहीं है। दोनों के मूल्य ''वागर्थाविव'' संपृक्त है। सम्प्रति सम्पूर्ण विश्व जिस नये आर्थिक संगठन का हिस्सा बनता जा रहा है ऐसे में नेता, अफसर, पूँजीपति तीनों मिलकर संवेदना और करूणा जैसे उच्चतर मूल्यों को भूखे भेड़िये की तरह चबा रहे हैं।

मूल्य से अभिप्राय मानवीय क्रियाओं में अच्छाई–बुराई अथवा शुभ–अशुभ से है। किसी भी साहित्य में शिक्षा का उद्देश्य स्वतंत्र नहीं है, वह इस बात पर निर्भर है कि मानव जीवन का उद्देश्य मानव का सबसे बड़ा पुरुषार्थ क्या है? जीवन आपने आप में मूल्यवान नहीं है, बल्कि किस प्रकार का होता है उसी प्रकार से उसका मूल्य भी समझा जाता है। अतः मनुष्य के लिए मूल्य प्रत्यक्ष इच्छा की पूर्ति एवं जैविक तथा शारीरिक हित से अधिक उच्च एवं विस्तृत होना चाहिए। इसी आधार पर विद्वान एकमत हो जीवन मूल्यों की चर्चा में लोकहित (लोक कल्याण) को ही सर्वोच्च मूल्य स्वीकार करते हैं। इस सम्बन्ध में उनकी स्पष्ट धारणा है कि इस मूल्य में जीवन की सर्वांगींणता का भाव निहित रहता है। लोक कल्याण की भावना में स्व कल्याण भी समाविष्ट है। इसी आधार पर गोस्वामी तुलसीदास भी सर्वजन हित की पुष्टि करते हैं।

मूल्य के प्रत्यय की पुष्टि पाश्चात्य विचारक अर्बन के कथन से हो जाती है– ''मानवीय मूल्य की उचित कल्पना, आत्मानुभूति तथा आत्मसिद्धि के प्रत्यय को सम्मिलित किये बिना नहीं हो सकती।''

प्रो0 मैकेन्जी के अनुसार– ''मूल्य से हमारा आशय उस विचार से है जो एक विचारशील प्राणी के चिन्तन का परिणाम हो। इस प्रकार स्वयं में मूल्य की परिभाषा विचारपूर्ण चुनाव के सीधे लक्ष्य के रूप में दी जाती है।'' अन्य अनेक विचारकों ने भी जीवन मूल्य को किसी न किसी शास्त्र का आधार लेकर व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। इसमें कुछ ऐसे दार्शनिक विचारक भी हैं जो दर्शन, साहित्य समाज एवं विज्ञान में से किसी एक को आधार नहीं मानते। अधिकांश पाश्चात्य विचारक जीवन मूल्यों के संदर्भ में संस्कृति का आश्रय अवश्य लेते हैं। सामान्य पाश्चात्य विद्वानों (स्पेन्सर, रसल, नीत्शे, विलियम जेम्स आदि) ने दार्शनिक मतों की विवेचना करते समय संस्कृति की व्यापकता को सिद्ध करने का प्रयास किया है। लेखक के अनुसार मूल्यों की सिद्धान्त एवं प्रयोग में समस्त प्रकार की अनुभूति का नाम ही संस्कृति है। वस्तुतः जीवन मूल्य को किसी एक परिभाषा में बांधना उसकी वास्तविकता को छूना मात्र नहीं होगा। फिर भी हम जीवन मूल्य को समझने के लिए हिन्दी साहित्य के माध्यम से कुछ धारणायें अवश्य बना सकते हैं :–

भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों दृष्टियों से मूल्यों की चर्चा करने के पश्चात् साहित्य के संदर्भ में उनकी विवेचना किये बिना किसी भी कृति की दृष्टि से आलोचना करना भूल होगी। साहित्य और मानव मूल्यों को एक धरातल पर लाया जा सकता है या नहीं? अथवा साहित्य के संदर्भ में जीवन मूल्यों से क्या अभिप्राय है?इस पर विचार एवं चिन्तन करना अपसंस्कृति के प्रभाव एवं दबाव के प्रसार को रोकने के लिए आवश्यक है।

साहित्य निश्चय ही आत्मभिव्यक्ति है। इसीलिए सृजन प्रक्रिया के अंतरंग क्षणों में साहित्यकार जीवन मूल्यों और उनके विकास की सम्भावना पर विचार करता है। सच्चा कवि या साहित्यकार परम्परा से जुड़े रहने पर भी सामयिक समस्याओं या परिस्थितियों के प्रति सजग रहता है। इसीलिए राम और कृष्ण के भक्तिकालीन स्वरूप को ज्यों का त्यों ही प्रस्तुत नहीं किया, वरन समकालीन परिस्थितियों के अनुरूप अभिव्यक्ति में भी अन्तर स्पष्ट परिलक्षित होता है। भक्तिकालीन भक्त कवियों ने राम और कृष्ण हिन्दी काव्य परम्परा की रूपरेखा प्रस्तुत कर दोनों अवतारों के युग सापेक्ष स्वरूप को उद्घाटित करने का प्रयास भी किया है।

भक्तिकालीन रामकाव्य में जीवन मूल्यों का सिंहावलोकन तुलसी द्वारा रचित 'रामचरित मानस' एवं अन्य ग्रंथो के आधार पर कह सकते हैं। गोस्वामी जी ने सामयिक परिस्थितियों का आंकलन करते हुए भी जिन मूल्यों का प्रतिपादन किया है वे शाश्वत और सार्वजनीन हैं। उन्होंने समाज की संरचना का आदर्श रामराज्य के माध्यम से प्रस्तुत किया। इसमें संघर्ष वैमनस्य, स्वार्थपरता और छीनाझपटी का स्थान नहीं। तुलसी का संदेश सामंजस्य और समन्वयमूलक है। सदाशयता और सद्भावना को हृदयस्थ करके विचारों को प्रकट किया है। ये विचार मंच से उपदेश देने के लिए नहीं है। इस बात को बहुत कम लोग समझते हैं कि सद्भावना का वातावरण निर्मित करने के लिए तुलसी ने जितने कार्य किये, उन्होंने अपनी आदर्श कथा में उसे चित्रित किया–

''राजघाट सबविधि सुन्दर बर, मज्जहिं तहाँ बरन चाहिरहुँनर।।''

अर्थात् कोई जातिगत वर्णगत भेद नहीं है। ऐसे अनेक शाश्वत सत्यों से भरी तुलसी की रचना धर्मिता शताब्दियों की मोहताज नहीं है।

हमारी पूरी मध्यकालीनता में नानक, तुकाराम, कबीर या जायसी, सूर, तुलसी, मीरा और तमाम संत और सन्त भक्त कवि हमारी क्षीण होती जातीय अस्मिता को इतिहास के उस घुटन में इसी तरह धूप आकाश और हवा प्रदान करते रहे हैं। ये संत और संत कवि अपने समय की सामाजिक चेतना के प्रतिनिधि थे और सामाजिक मूल्यों का निर्वाह कर रहे थे। इनकी और इनके शब्दों की व्याप्ति जन–जन में थी। केवल इन्हीं के मूल्यों की वजह से इतिहास की इतनी निर्मम मार सहकर भी तब का समाज जीवित रह सका था। कुम्भनदास तब लिखते हैं कि–

''संतन को कहाँ सीकरी सो काम।''

मध्यकाल हो या हमारा आज का समय, इतिहास की मार और ऐतिहासिक दबाव सदा एक से ही होते हैं। तब यदि मनुष्य को अपनी संस्कृति अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए ऐसी प्रखर वाणी की आवश्यकता थी तो क्या ऐसी वाणी, ऐसे शब्द और ऐसे कविता की आज आवश्यकता नहीं है जो हमारे लिए धूप खुला आकाश और ताजी हवा हो सके?

नए मूल्यों की जननी नई परिस्थितियाँ होती हैं। समय परिस्थिति एवं परिवेश में बदलता रहता है, मान्यताएँ तथा परम्पराएँ बदलती हैं, परिणामतः मानव मूल्य भी परिवर्तित होते हैं। इसी नयी परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में नए मानव मूल्यों की तलाश की गयी। सारी बातों को छोड़कर मूल्य बोध का आधार लघु मानव को माना गया। यहाँ 'लघुमानव' का तात्पर्य सामान्य मानव या साधारण मनुष्य से है। कविवर अज्ञेय के अनुसार–

''मानव मूल्यों का उद्गम साधारण मानव को मानना ठीक है।''

डॉ0 लक्ष्मीकान्त वर्मा ने ''लघुमानव'' तथा वात्स्यायन अज्ञेय ने 'साधारण मानव को वर्तमान मूल्य बोध का आधार–बिन्दु माना है। नयी परिस्थितियाँ और नूतन परिवेश मान्यताओं में परिवर्तन ला देता है।

इसके उपरान्त 'आधुनिक–जीवन की अस्त–व्यस्तता का प्रभाव' भी साठोत्तरी कथा– साहित्य में प्रतिबिम्बित हो रहा है। आधुनिक–जीवन की ''अस्त–व्यस्तता'' का अर्थ है– ''जैसा हम मन से सोचते हैं, वैसा व्यावहारिक जीवन में नहीं हो पाता हैं'' यही मानसिक अस्त–व्यस्तता है।

वाह्य परिवेश के सन्तुष्टिकरण में जुड़ा व्यक्ति आज अर्न्तटूटन का दर्द भोग रहा है। मानसिक तनाव की स्थिति को हम सभी साठोत्तरी उपन्यासों के पात्रों में देखते हैं।

डॉ0 देवराज के उपन्यास ''पथ की खोज'' की 'साधना', नरेश मेहता के 'डूबते मस्तूल' की 'रंचना', मोहन राकेश के 'अंधेरे बन्द कमरे' की सुषमा आदि–आदि अन्तर्टूटन की मनोव्यथा से उत्पीड़ित हैं उषाप्रियंवदा के 'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास की राधिका अन्तर्टूटन की मनोव्यथा से पीड़ित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'मूल्यगत–संक्रमण' के विविध कारणों में एक प्रमुख कारण आधुनिक–जीवन की अस्त–व्यस्तता भी है।

वर्तमान युग में नारी को पुरुष के समकक्ष लाने हेतु और कन्धे से कन्धा मिला पर कार्य करने के लिए हमारे–'भारतीय–संविधान' में उसे समानाधिकार, समान–सम्मान, समान–प्रशासनिक–सेवाओं में अधिकार, मद–दान, पदाधिकार, सम्बन्ध विच्छेदाधिकार आदि का उल्लेख कर दिया गया है।

इतने पर भी भारतीय समाज पुरुष–प्रधान है और औरत को नजर अंदाज (अनदेखी) कर जाता है। घर और समाज में पुरुष 'सर्वेसर्वा' है और नारी नगण्या है। इसके प्रति मूल्यवादी साठोत्तरी कथाकारों में पीड़ा और संवेदना है।

आज नारी अपनी स्वाधीनता की पुरुष से मांग कर रही है। उदाहरणार्थ अश्रेय के बहु–चर्चित उपन्यास 'नदी के दीप' में रेखा और गौरा स्त्री–स्वातंत्र्य की मांग करती है। मन्नू भंडारी के 'एक इंच मुस्कान' की नायिका 'रंजना' नारी के ऊपर चढ़ाये जा रहे अत्याचारों का विरोध एवं प्रतिशोध करती है। डॉ0 देवराज के उपन्यास 'पथ की खोज' की 'आशा' स्त्री–स्वाधीनता की प्रबल आवाज उठाती है। 'शिवानी' के 'चौदह फेरे' उपन्यास की 'अहिल्या' स्वी–स्वातंत्र्य का पूर्ण समर्थन करती है।

इस प्रकार निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि मूल्य से अभिप्राय मानवीय क्रियाओं में अच्छाई–बुराई अथवा शुभ–अशुभ से है। किसी भी साहित्य में शिक्षा का उद्देश्य स्वतंत्र नहीं है वह इस बात पर निर्भर है कि मानव जीवन का उद्देश्य मानव का सबसे बड़ा पुरुषार्थ क्या है। मानव को मानवीय मूल्यों की सिद्धि के योग्य बनाना ही शिक्षा का उद्देश्य है। भूमण्डलीकरण की देहरी पर कदम रखते ही आधुनिकता की कोख से उपजी विसंगतियों ने छात्रों को अकेला, असहाय, स्वार्थी और लोभी बनाकर उसकी संवदना शक्ति ही छीन लिया जो आज के शिक्षक के समक्ष एक बड़ी चुनौती है क्योंकि गुरू के प्रयत्नों से ही 'असतो माँ सद्गमय, तमसो माँ ज्योर्तिगमय' यानि शिष्य का सोया शिष्यत्व जगेगा और संपूर्ण जीवन में – सत्यम–शिवम–सुन्दरम्' की अभिव्यक्ति होगी।

संदर्भ संकेत

1. मानव मूल्य और साहित्य – डॉ0 धर्मवीर भारती।
2. आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य– डॉ0 हुकुमचन्द।
3. आधुनिक हिन्दी साहित्य – डॉ0 बच्चन सिंह।
4. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में मानव–मूल्य और उपलब्धियाँ– डॉ0 भगीरथ बड़ोले।
5. आज का भारतीय साहित्य– संपादक अज्ञेय।
6. कविता की उर्ध्वयात्रा– डॉ0 रामकमल राय।
7. दस्तावेज (109) सं0 डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी।

❑❑

इटावा जिले में कृषित भूमि के वितरण एवं रूपान्तरण प्रतिरूप का भौगोलिक विश्लेषण

डॉ0 प्रेम प्रकाश राजपूत
एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग
तिलक महाविद्यालय, औरैया (उ0प्र0)

डॉ0 निरुपमा
पूर्व शोध छात्रा, भूगोल विभाग
एम0एल0एस0 उत्कृष्ट, महाविद्यालय, ग्वालियर

मानव के अधिकांश कार्य भूमि पर संचालित होते हैं और भूमि एक सीमित संसाधन है।[1] जीविकोपार्जन का मुख्य स्रोत भूमि है। अतः भूमि उपयोग का विश्लेषण करने के पूर्व भूमि संसाधन आधर का मूल्यांकन करना परम् आवश्यक जान पड़ता है[2] क्योंकि इस क्षेत्र का अन्यत्र करने के उच्च स्तर का आधार निःसदेह सम्पन्न भमि संसाधान आधार ही है।[3] भूमि मानवीय संसाधन हेतु एक महत्वपूर्ण श्रेणी में आता है क्योंकि जो कृषि सहित सभी मानवीय क्रियाकलापों का मूल आधार है।[4] वर्तमान समय में मानव की सभी आवश्कतायें संसाधनों के द्वारा पूर्ण होती है।[5] उनमें भूमि का स्थान सर्वोपरि है। वास्तव में भूमि उपयोग भौगोलिक अध्ययन का एक प्रमुख पहलू है। मानव ही भूमि को कृषि योग्य बनाता है।[6] मानवीय सभ्यता और उसकी आवश्यकताओं में परिवर्तन के अनुसार भूमि उपयोग का स्वरूप परिवर्तित होता रहता है।[7] कृषि भूमि उपयोग का वितरण एवं उसका परिवर्तनशील प्रतिरूप की अध्ययन कृषि विकास हेतु परम आवश्यक होता है क्योंकि इसके द्वारा किसी भी क्षेत्र के भूत एवं वर्तमान के आधार पर भावी भूमि उपयोग की लाभकारी योजना का निर्माण किया जा सकता है।[8] कृषि में मशीनीकरण, नवीन कृषि प्रौद्योगिकी, हरित क्रान्ति, कृषि पैकेज कार्यक्रम को अपनाने के कारण भूमि उपयोग का प्रतिरूप बदल रहा है।[9] भूमि उपयोग के रूपान्तरण पर अनेकों अध्ययन हुये हैं फिर भी ओम जी[10] के अध्ययन के अनुसार भूमि उपयोग रूपान्तरण पर जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव व दृष्टिगत होता है जो वर्तमान अध्ययन में भी परिलक्षित होता है।

अध्ययन के उद्देश्य – प्राकृतिक संसाधनों में भूमि एक महत्वपूर्ण संसाधन है जिसके बिना जीवन असम्भव है। भूमि संसाधन में भी इसका हिस्सा कृषित भूमि अपने आप में महत्वपूर्ण स्थान रखती है क्योंकि खाद्यानों की इसे जननी कहा गया है। लेखक द्वय ने इटावा जनपद की कृषित भूमि के वितरण प्रतिरूप को जानने के लिये अध्ययन हेतु चुना है।

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य निम्न हैं–

1. अध्ययन क्षेत्र में कृषित भूमि के वितरण को जानना।
2. कृषित भूमि के रूपान्तरण को प्रकाश में लाना तथा इसका विश्लेषण करना।

अध्ययन क्षेत्र – उत्तर प्रदेश का इटावा जिला कानपुर मण्डल के पश्चिम में स्थित है जिसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 2451 वर्ग कि0मी0 है। यह जिला उत्तर प्रदेश के दक्षिण के पश्चिम में 26024′ उत्तरी अंक्षाशों से 27015′ उत्तरी अक्षांश तक तथा 78045′ पूर्वी देशान्तर से 79022′ में मध्य अवस्थित है। इटावा जिले के पूर्व में क्रमशः औरैया, पश्चिम में आगरा एवं फिरोजाबाद, उत्तर में मैनपुरी तथा दक्षिण में मध्य प्रदेश का भिण्ड जिला स्थित है। (मानचित्र क्रमांक 01) प्रशासनिक दृष्टि से इटावा जिले में 5 तहसीलें क्रमशः जसवन्तनगर, इटावा, भरथना, चकरनगर तथा सैफई और 8 विकासखण्ड क्रमशः जसवन्तनगर, बसरेहर, बढ़पुरा, ताखा, भरथना, महेवा, चकरनगर तथा सैफई हैं। जिले में 686 आबाद ग्राम और 8 गैर आबाद ग्राम हैं, तथा 75 न्याय पंचायत, 420 ग्राम पंचायत हैं और पंचायत घरों की संख्या 261 है। भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार इटावा जिले की जनसंख्या 1581810

(जिसमें 53.47 प्रतिशत पुरुष एवं 46.53 प्रतिशत स्त्रियाँ) है, और जनसंख्या घनत्व 638 व्यक्ति वर्ग किलोमीटर है। कुल जनसंख्या में से ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या क्रमशः 76.80 प्रतिशत एवं 23.20 प्रतिशत है। जिले में कुल 79.99 प्रतिशत साक्षर व्यक्ति हैं जिसमें 87.64 प्रतिशत पुरुष एवं 71.16 स्त्रियाँ साक्षर हैं। यहाँ का अधिक भू–भाग समतल है। जहाँ 61.4 प्रतिशत भू–भाग पर कृषि की जाती है।

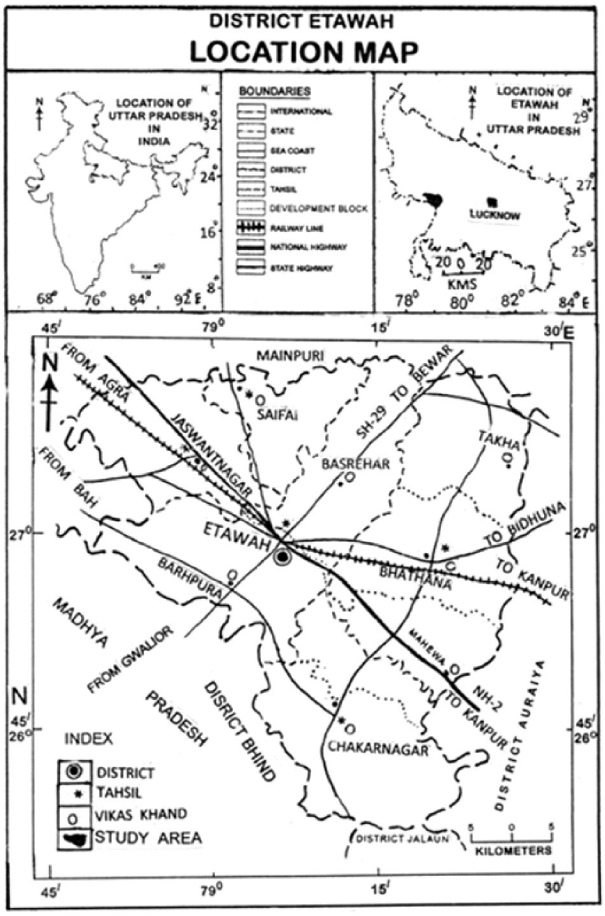

शोध विधि तंत्र – प्रस्तुत शोध पत्र के उद्देश्यों को प्राप्त करने में द्वितीयक आंकड़ों की सहायता ली गयी है। इन तथ्यों को जिले की विभिन्न जनगणना हस्तपुस्तिकाओं, गजेटियर, सांख्यिकी पत्रिकाओं, प्रतिवेदनों, पुस्तकों आदि एवं राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र इटावा में प्राप्त किया गया है। विभिन्न तथ्यों को स्पष्ट करने हेतु तालिकाओं का प्रयोग किया गया है। अध्ययन हेतु सभी विकास खण्डों को जीवनक्षम्य इकाई के रूप में लिया गया है। यहाँ पर जनसंख्या सम्बन्धी आकड़े वर्ष 2001 एवं 2011 के प्रस्तुत किये गये हैं। प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषणात्मक पद्धति से अध्ययन किया गया है।

कृषि भूमि का वितरण और इसके क्षेत्रफल में रूपान्तरण – प्राचीन अभिलेखों में, जो सीमित हैं, प्रागैतिहासिक काल में जिले की वास्तविक कृषित भूमि के क्षेत्रफल का विवरण नहीं मिलता है, परन्तु प्राचीन किलों व अन्य अधिवासों के अवशेषों व खण्डहरों से यह संकेत मिलता है कि यह क्षेत्र बहुत पहले से आबाद रहा है व तभी से यहाँ की भूमि भी जोती जाती रही है।[12] इटावा जिले में कृषित भूमि के रूपान्तरण के विवरण में सिंचाई सुविधाओं के

विकास, कृषि की सामाजिक आर्थिक दशाएं,[13] प्राकृतिक कारक एवं जनसंख्या वृद्धि में कृषित भूमि के रूपान्तरण में अहम भूमिका निभायी है। कृषित भूमि में वह भूमि सम्मलित है जिस पर कृषि कार्य किया जा रहा है अर्थात् इस भूमि पर जिले की अधिकांश जनसंख्या का भरण–पोषण आधारित है। अध्ययन क्षेत्र की कृषित भूमि के वितरण प्रतिरुप को तालिका 01 से जाना जा सकता है।

तालिका क्रमांक 01

इटावा जिले में विकास खण्डवार शुद्ध कृषित भूमि (प्रतिशत में)

क्र0सं0	विकास खण्डों का नाम	वर्ष 2000–01	वर्ष 2010–11
1	जसवन्तनगर	74.68	72.49
2	बसरेहर	72.37	71.33
3	बढ़पुरा	49.38	47.31
4	ताखा	66.92	65.70
5	भरथना	71.56	67.99
6	महेवा	71.93	70.35
7	चकरनगर	43.24	44.14
8	सैफई	77.27	66.61
	ग्रामीण योग	63.76	61.61
	नगरीय योग	12.63	20.41
	कुल योग	63.46	61.40

स्रोत– इटावा जिले की सांख्यिकीय पत्रिका, वर्ष 2000–01 व 2010–11 पृष्ठ संख्या 49.

उपरोक्त तालिका के निष्कर्षानुसार वर्ष 2000–01 एवं 2010–11 में क्रमशः 63.46 तथा 61.40 प्रतिशत भूमि शुद्ध कृषित है। शुद्ध भूमि के विकासखण्ड वितरण से स्पष्ट है कि वर्ष 2000–01 में 50 प्रतिशत से कम जिले के बढ़पुरा एवं चकरनगर विकासखण्ड सम्मिलित हैं। इन विकासखण्डों में जंगली भूमि एवं वनों की अधिकता होने के कारण शुद्ध कृषित भूमि कम है। 50 से 70 प्रतिशत के मध्य जिले का मात्र एक विकासखण्ड ताखा सम्मिलित है। विकासखण्डों (जसवन्तनगर, बसरेहर, भरथना, महेवा, सैफई) में 70 से अधिक कृषित भूमि है क्योंकि ये समतल मैदानी भाग में विस्तृत हैं।

वर्ष 2010–11 में शुद्ध कृषित भूमि का क्षेत्रफल 50 प्रतिशत से कम है। वे बढ़पुरा एवं चकरनगर में निम्न समूह में दो विकासखण्ड हैं 70 प्रतिशत से अधिक कृषित भूमि धारण करने वाले विकासखण्ड जसवन्तनगर, बसरेहर, महेवा हैं। इसके अतिरिक्त जिले के शेष विकासखण्डों (ताखा, भरथना, सैफई) में 50 से 70 के मध्य कृषित भूमि है।

कृषित भूमि के क्षेत्रफल में रूपान्तरण – इटावा जिले के पूर्व वर्णित सामान्य भूमि उपयोग की रूपरेखा के अध्ययन से सुस्पष्ट है कि शुद्ध कृषित भूमि में पर्याप्त तथा कुछ क्षेत्रों में क्रान्तिकारी रूपान्तरण हुए हैं। इस रूपान्तरण का मुख्य कारण जनसंख्या की उत्तरोत्तर बढती हुई आवश्यताएं हैं जिनमें खाद्य पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि, आवास निर्माण एवं परिवहन मार्गों का प्रसार प्रमुख है। इसके अतिरिक्त परती भूमि में कमी, कृषि कार्य में बढ़ता यन्त्रीकरण प्रयोग, ऊसर एवं बीहड़ भूमि में सुधार, किसान सेवा केन्द्र, कृषि साहित्य, सरकारी लाभकारी योजनाएं एवं बढ़ती साक्षरता आदि भी कारक हैं। चन्देल (1991) के अध्ययन में ऐसा पाया गया।[14] इटावा में जिले

में वर्ष 2000–01 के अर्न्तगत शुद्ध भूमि 149433 हेक्टेयर थी जो 2011–11 में बढ़कर 147548 हेक्टेयर हो गई अर्थात 10 वर्षीय अन्तराल में 1885 हेक्टेयर भूमि की कमी आकलित की गई जो 1.26 प्रतिशत हैं। इस सम्पूर्ण वृद्धि की कालिक विखण्डन करने से महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आते है। इस ऋणात्मक रूपान्तरण का मुख्य कारण जिले में कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि एवं परती भूमि के क्षेत्रफल में वृद्धि का होना है क्योंकि जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ आवासों एवं परिवहन मार्गों का विकास तीव्र गति से होने के कारण जिले की अधिकतर कृषित भूमि कृषि अयोग्य क्षेत्रफल में रूपान्तरित हो गई। अब लगभग चकबन्दी का कार्य समाप्त हो चुका है। इस योजना के अर्न्तगत प्रत्येक गांव में हरिजन बस्तियों के लिए भूमि आवंटित की गई। इसके अतिरिक्त चारागाह, कब्रिस्तान, यातायात एवं लघु उद्योगों के स्थापना हेतु भी भूमि छोड़ी गयी। इस प्रकार शुद्ध कृषित भूमि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इसके रूपान्तरण को तालिका 02 से जान सकते हैं।

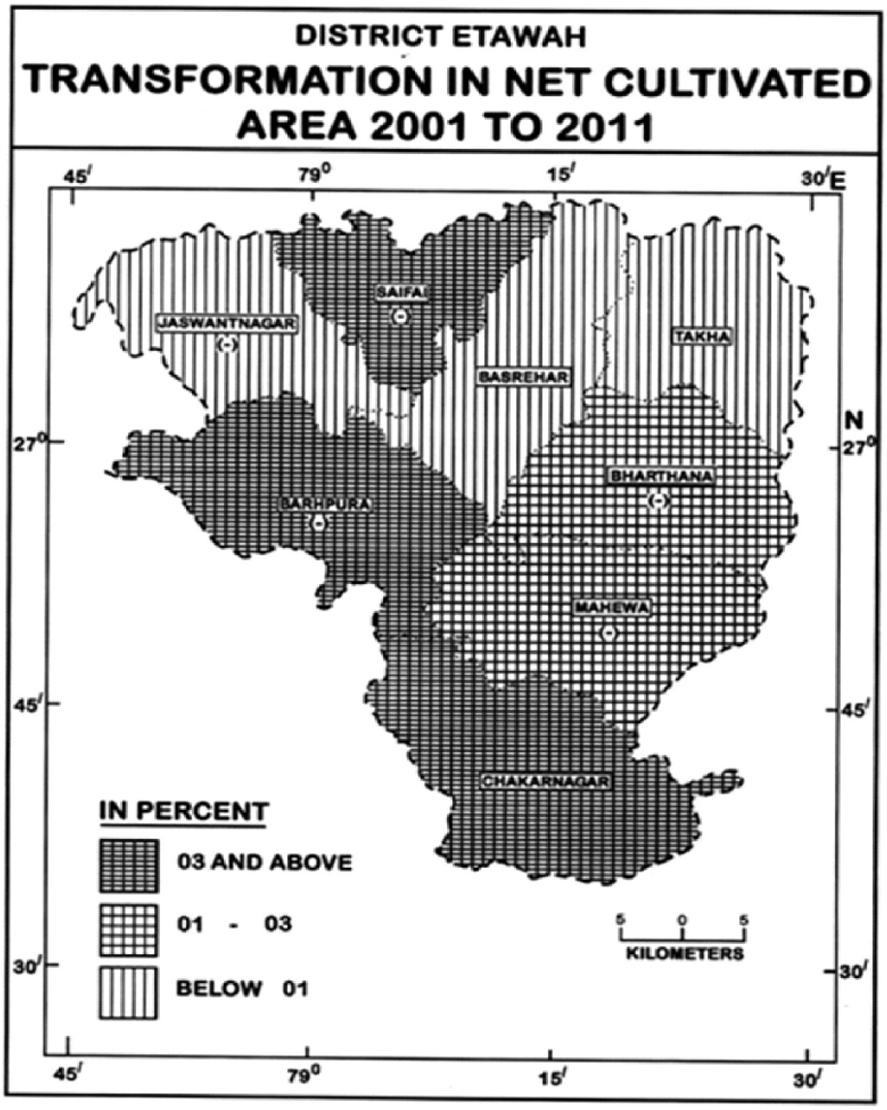

तालिका क्रमांक–02

इटावा जिले में विकास खण्डवार शुद्ध कृषित भूमि के क्षेत्रफल में रूपान्तरण

क्र0सं0	विकास खण्डों का नाम	2000–01 वर्ष का क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)	2010–11 वर्ष का क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)	2000–01 से 2010–11 में रूपान्तरण
1.	जसन्तनगर	18982	18865	–0.61
2.	बसरेहर	19616	19794	+0.90
3.	बढ़पुरा	19033	13548	–28.81
4.	ताखा	18340	18345	+0.02
5.	भरथना	18535	18082	–2.44
6.	महेवा	23172	22919	–1.09
7.	चकरनगर	16309	16836	+3.23
8.	सैफई	15266	13912	–8.86
	ग्रामीण योग	149253	147301	–1.30
	नगरीय योग	180	247	+37.22
	कुल योग	149433	147548	–1.26

स्रोत– जिले के विकासखण्ड मुख्यालयों से संकलित समंक पृष्ठ संख्या 49.

तालिका 02 एवं मानचित्र क्रमांक 02 से स्पष्ट है कि वर्ष 2000–01 से 2010–11 की दस वर्षीय अवधि में इटावा जिले के तीन विकासखण्ड बसरेहर, ताखा, तथा चकरनगर धनात्मक हैं और चार विकासखण्ड जसवन्तनगर, बढ़पुरा, भरथना, महेवा, सैफई ऋणात्मक कोटि में हैं। धनात्मक कोटि में भरथना महेवा एवं सैफई रूपान्तरण की मध्यम कोटि में समाहित थे जिसका मान –2.44, –1.09, –8.86 है। ऋणात्मक उच्च कोटि में विकासखण्ड बढ़पुरा जिसका मान –28.81 था और निम्न ऋणात्मक कोटि में विकासखण्ड जसवन्तनगर था जिसका मान 0.61 था।

सकल कृषित भूमि के क्षेत्रफल में रूपान्तरण–जलवायु, दोमट मिट्टी एवं सिंचाई की पर्याप्त सुविधाओं के फलस्वरूप अध्ययन क्षेत्र में कृषि सघनता से की जाती है। इस सघन कृषि के अर्न्तगत एक खेत में एक ही वर्ष में कई फसलों का उत्पादन कर लिया जाता है। समय एवं स्थान की रूपान्तरणशील दशाओं के परिणामस्वरूप सकल कृषित भूमि, शुद्ध कृषित भूमि तथा बहुफसली भूमि में सदैव रूपान्तरण होता रहता है जिसके फलस्वरूप कृषि उत्पादन सदैव समान नहीं रहता। वर्ष 2000–01 तथा 2010–11 में सकल कृषित भूमि का क्षेत्रफल क्रामशः 231620, 242336 हेक्टेयर है। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि जिले में सकल कृषित भूमि में निरन्तर वृद्धि हुयी। तथा 2000–01 से 2010–11 के दशक में जिले के सकल क्षेत्रफल में 4.62 प्रतिशत की वृद्धि हुयी। जिले की प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक दशाओं के सुदृढ़ होने के फलस्वरूप यह वृद्धि सम्भव हो सकी क्योंकि स्वतन्त्रता प्रप्ति के पश्चात भूमि सुधार योजना के अन्तर्गत बंजर भूमि का आंवटन भूमिहीनों को अधिक किये गए जिससे बंजर भूमि का अधिकांश भाग शुद्ध कृषित भूमि में रूपान्तरित होता गया। इसके साथ ही जिले में सिंचित साधनों के पर्याप्त विकास के फलस्वरूप सकल कृषित भूमि में आशातीत वृद्धि। इसके अतिरिक्त कभी–2 भंयकर सूखा एवं बाढ़ के कारण जिले के सकल कृषित भूमि में अधिक वृद्धि नहीं हो पाती है। इस हेतु तालिका 03 एवं मानचित्र क्रमांक 03 को अवलोकित किया जा सकता है।

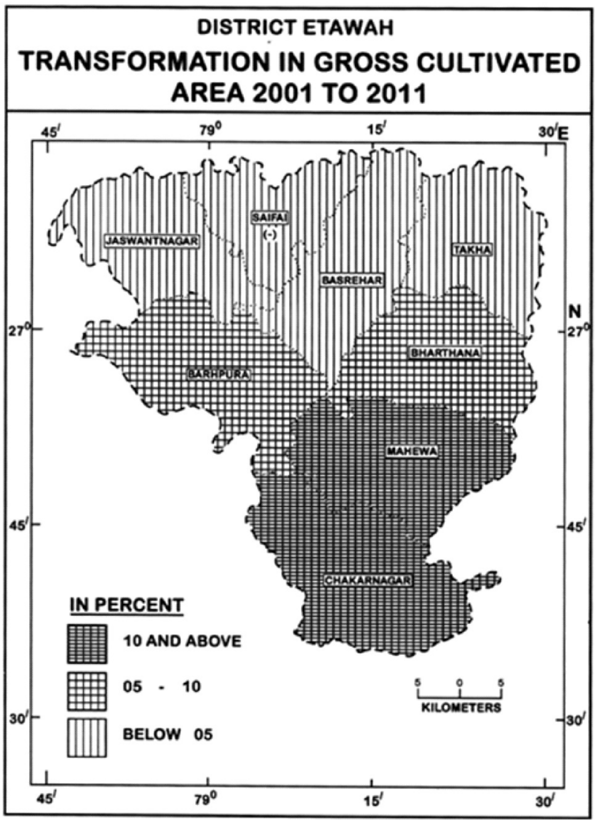

क्र0सं0	विकास खण्डों का नाम	2000–01 वर्ष का क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)	2010–11 वर्ष का क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)	2000–01 से 2010–11 में रूपान्तरण
1.	जसवन्तनगर	30826	31052	+0.73
2.	बसरेहर	32270	33334	+3.29
3.	बढ़पुरा	26658	28225	+5.87
4.	ताखा	29640	29710	+0.23
5.	भरथना	30726	32821	+6.81
6.	महेवा	35972	39974	+11.121
7.	चकनगर	18772	20900	+11.33
8.	सैफई	26520	25956	−2.12
	ग्रामीण योग	231384	241947	+4.57
	नगरीय योग	236	364	+54.23
	कुल योग	231620	242336	+4.62

स्रोत– इटावा जिले की सांख्यिकीय पत्रिका, वर्ष 2000–01 व 2010–11 पृष्ठ संख्या 49

तालिका 03 एवं मानचित्र 03 से स्पष्ट है कि वर्ष 2000–01 से 2010–11 के दशक में सकल कृषित भूमि

में जिले के सात विकासखण्ड (जसवन्तनगर, बहरेसर, बढ़पुरा ताखा, भरथना, महेवा, चकरनगर धनात्मक तथा केवल एक विकासखण्ड सैफई ऋणात्मक में है जिसमें धनात्मक रूपान्तरण में विकासखण्ड चकरनगर, महेवा उच्च कोटि में था तथा शेष तीन विकास खण्ड बसरेहर, बढ़पुरा, तथा भरथना मध्यम उच्च कोटि में थे जिसका मान 3. 29, 5.87, 6.81 प्रतिशत रहा। ऋणात्मक रूपान्तरण में जिले का सैफई –2.12 प्रतिशत विकासखण्ड रूपान्तरण की उच्च कोटि में था।

सन्दर्भ संकेत

1. तिवारी, वी0के0 एवं पाण्डेय एन0 (2006). भूमि संसाधन : समस्याएं एवं रणनीतियाँ. राष्ट्रीय सेमीनार की प्रोसीडिंग– शीर्षक–सस्टेनेबिल मैनेजमेन्ट ऑफ लैण्ड रिसोर्स थ्रो लैण्ड केअर मूवमेट. राज्य भूमि उपयोग बोर्ड, नियोजन विभाग, उ0प्र0 सरकार– लखनऊ, पृष्ठ–75.
2. श्रीवास्तव, डी0एस0 (1993). कृषि के परिवर्तनशील प्रतिरूपों का भौगोलिक अध्ययन. नई दिल्लीः क्लासिकल पब्लिसिंग कम्पनी, पृष्ठ–56.
3. रेले, वी0 (1985). लैण्ड रिसोर्स. इकोनोमिक्स पृष्ठ–2.
4. सिंह, बी0एन0 (2010). भूमि उपयोग प्रारूप, परिवर्तन एवं भूमि उपयोग क्षमता : मऊ जनपद का एक भौगोलिक अध्ययन. रूहेलखण्ड भौगोलिक शोध पत्रिका (धामपुर–बिजनौर), अंक–08 जुलाई, पृष्ठ–85.
5. श्रीवास्तव, पी0 एवं पाठक, आर0, (2011). भूमि उपयोग एवं पोषण : ग्राम चीतेपुर का एक प्रतीक अध्ययन. रिसर्च स्ट्रेटजी (कानपुर) अंक 1, पृष्ठ–49.
6. ओमजी एवं राजपूत, प्रेम प्रकाश (2012). भूमि उपयोग का बदलता स्वरूप : औरैया जनपद (उ0प्र0) एक प्रतीक अध्ययन. रूहेलखण्ड भौगोलिक शोध पत्रिका, (धामपुर–बिजनौर) अंक 8, पृष्ठ 109.
7. पंकज (2008). जनपद देवरिया (उ0प्र0) में भूमि उपयोग प्रारूप में परिवर्तन. उ0प्र0 ज्योग्राफिकल जनरल (कानपुर) अंक 13, पृष्ठ–105.
8. श्रीवास्तव, डी0एस0 (1993). कृषि के परिवर्तनशील प्रतिरूपों का भौगोलिक अध्ययन. नई दिल्ली : क्लासिकल पब्लिसिंग कम्पनी, पृष्ठ–74.
9. कमलेश, एस0आर0 गुप्ता, के.सी. (2000). रायगढ़ जिले के भूमि उपयोग में परिवर्तन. उत्तर प्रदेश भूगोल पत्रिका, (गोरखपुर) अंक 36, संख्या 1–2, पृष्ठ–58.
10. ओम जी (2017). जनसंख्या वृद्धि और इसका भूमि उपयोग रूपान्तारण पर प्रभाव. विद्यावार्ता (बीड–महाराष्ट्र) अंक 20, संख्या 08, पृ0 37–39.
11. निरूपमा एवं तोमर, एस0एस0 (2017). जल संसाधनों का कृषि विकास पर प्रभाव : इटावा जिला उ0प्र0, का एक प्रतीक अध्ययन. ग्लोबल जनरल फार रिसर्च एनालिसिस. (अहमदाबाद) अंक 6, संख्या 1, पृष्ठ–52–53.
12. शर्मा, सुरेश चन्द्र (1970). जिला इटावा (मध्य भाग–यमुना दाब) में भूमि उपयोग. उ0प्र0 भूगोल पत्रिका (गोरखपुर) अंक 6, संख्या–1, पृष्ठ–17.
13. राजपूत, प्रेम प्रकाश (2011). ग्रामीण क्षेत्रो में ऊर्जा उपयोगः संकट एवं समाधान.गोरखपुर : वसुन्धरा, प्रकाशन, पृष्ठ–49
14. Chandel, R.S. (1991). Agricultural Change in Bundelkhand Region. Varanasi: Star Distributors, P. 81

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

वैदिक वाङ्मय में पुनर्जन्म एवं मोक्ष की अवधारणा

डॉ0 रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी
एसो0 प्रोफेसर एवं अध्यक्ष – संस्कृत विभाग
रामस्वरूप ग्राम, उद्योग पी0जी0 कालेज, पुखरायाँ, कानपुर देहात

पुनर्जन्म एवं मोक्ष, वैदिक वाड्.मय का प्रमुख विषय है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में पुनर्जन्म एवं मोक्ष से सम्बन्धित चिन्तन यत्र–तत्र–सर्वत्र विद्यमान है। दर्शनों में चाहे आस्तिक हों या नास्तिक, केवल चार्वाक–दर्शन को छोड़कर सभी दर्शनकारों द्वारा पुनर्जन्म एवं मोक्ष के सम्बन्ध में चिन्तन किया गया है। मोक्ष आर्यजनों का परम पुरुषार्थ रहा है। पुनर्जन्म, जन्म एवं मरण रूप बन्धन है तथा मोक्ष बन्धन का अन्त है। स्वर्ग प्राप्ति से भी जन्म एवं मरण की समस्या का निदान नहीं होता – ''ते तं भुक्त्वा स्वर्ग लोक विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति[1(क)], 'तस्माद् लोकात् पुनरेति अस्मै लोकाय कर्मणे[1(ख)]'' पुण्य के क्षीण हो जाने पर मनुष्य को पुनः मृत्युलोक में आना पड़ता है। मोक्ष ही वह एक मात्र साधन है जो जन्म–मरण के बन्धन से मुक्ति दिला सकता है। स्थूलदेह विनश्वर है। इसके छः भावविकारों का प्रत्यक्ष अनुभव सभी को होता है। – ''अस्ति जायते वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते विनश्यति'' (यास्काचार्य)। ''सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते'' (कठोपनिषद1/1/6)।

विविध ग्रन्थों में 'पुनर्जन्म' शब्द की व्युत्पति तथा उसके विभिन्न नामों का उल्लेख किया गया है। ' जननमिति जन्म ' पैदा होने का नाम जन्म है। ' जनी प्रादुर्भावे दिवादि आत्मने सेट, धातुसे ' सर्वधातुभ्यो मनिन् से उणादि मनिन् प्रत्यय होने पर 'जन्म' शब्द बनता है। इसी के पर्यायवाचक 'जनुः जननं, जनिः उत्पत्तिः, उद्भवः[2] ये प्रसिद्ध है। पुनः–जन्म त्र पुनर्जन्म। 'सह सुपा'[3] से समास है। इसके अन्य नाम–पुनर्जन्म, गतजन्म, पुनर्भव, परलोक, प्रेत्यभाव इत्यादि हैं। इनमें 'पुर्नजन्म का प्रयोग सब उपनिषदों की सारभूत 'श्रीमद्भगवद्गीता' में मिलता है – ''मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते''[4]। 'गतजन्म' का प्रयोग भी गीता में है – ''अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः। कथमेतद् विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति।।[5]''

अर्जुन ने पूछा – 'गत जन्म में आपने यह अव्यय योग विवस्वान्को कहा था, यह मैं कैसे जानूँ ?' इसपर भगवान्ने कहा– '' बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ![6]'' ''जन्म कर्म च मे दिव्यम्'' (गी0 4/9)। तेरे और मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं।' 'मेरा जन्म दिव्य हुआ करता है।' उपनिषदों में भी पुनर्जन्म बताया गया है– ''स इतः प्रयन्नेव (मरकर) पुनर्जायते।''[7] (फिर जन्म लेता है।) ''जन्म–जन्म पुनः पुनः''[8], ''पुनरावृत्तिरहितां मुक्तिम्''[9]। यहाँ पर मुक्ति से अन्यत्र पुनर्जन्म माना गया है। पुनर्जन्म का अन्य नाम 'पुनर्भव' के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवतपुराण में उल्लेख है– ''क्षणार्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम्''[10] यहॉ 'अपुनर्भव' मुक्ति का नाम है। 'प्रश्नोपनिषद्' में भी 'पुनर्भव' का नाम है– ''तस्माद् उपशान्ततेजाः पुनर्भवम्।''[11] कालाग्निरूद्रोपनिशद् में भी है – ''तत्समाचरेन्मुमुक्षुर्न पुनर्भवाय।''[12]

पुनर्जन्म का अन्य नाम 'परलोक' भी है। इससे भी पुनर्जन्म के विषय में प्रकाश पड़ता है। 'परलोक' शब्द उपनिषद् में भी दिखता है – ''अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वषमापद्यते मे''![13]

यद्यपि 'परलोक' इससे भिन्न स्वर्ग आदि लोकों का नाम है, तथापि 'परलोक' शब्द भी पुनर्जन्म को सिद्ध करता है य क्योंकि मरकर पुनर्जन्म केवल मनुष्यलोक में हो– ऐसा नहीं हैं, किंतु स्वर्ग आदि अन्य लोकों में भी हुआ करता है–यह इससे सूचित होता है। इसके अतिरिक्त पुनर्जन्म केवल मनुष्यों में ही नहीं होता, किंतु पशुयोंनि में भी होता है, पक्षी योनि में भी होता है। कीट्–पतंड्.गादि योनियों में भी होता है। देव–गन्धर्वादि योनियों में भी होता है। उसमें भी पशु, पक्षी, कीट, पतड्.ग मनुष्यलोक में होते हैय और स्थूल शरीर होते है। देव–गन्धर्व आदि स्वर्गादि लोकों में

होते है। वे वहाँ सूक्ष्मकाय भी होते है और कामरूप भी होते है। गरूड़ आदि पक्षी, नन्दी, बैल, सिंह आदि भी वहाँ होते है पर दिव्य। आकाश में जो तारा मण्डल दिख रहा है, यही 'द्युलोक' या 'परलोक' है। परलोक को न मानने वालो को उपनिषद् ने 'नास्तिक' कहा है। 'पुनः पुनर्वषमापद्यते मे।' इस रूप से उसकी निन्दा की है। इस निन्दा वाक्य से भी उपनिषद् ने पुनर्जन्म को प्रमाणीकृत किया है क्योंकि कठोपनिषद् के वक्ता को 'मृत्यु'[14], 'यम'[15], 'वैवस्वत'[16] (सूर्य का पुत्र) तथा 'अन्तक'[17] कहा गया है। ये नाम कोश[18] के अनुसार मृत्यु देवता के हैं। अमरकोश में यद्यपि मृत्यु मरने का नाम है[19] तथापि यमराज के मृत्यु के अधिष्ठाता होने से 'मृत्यु' नाम भी उसका है। इसलिये मेदिनी कोष में 'मृत्यु' नाम भी उसका है। इसलिये मेदिनीकोष में 'मृत्युर्ना मरणे यमे।'[20] 'मृत्यु' भी यम का नाम कहा गया है। अथर्ववेद में भी परलोक का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। ''आप्नोति इमं लोकम्, आप्नोति अमुम्''[21] यहाँ पर 'इमं लोकम्' इस 'इदम्' शब्द से हमारा लोक सूचित होता है और 'अमुम्' इस 'अदस्' शब्द से आमुत्रिक लोक (परलोक) सूचित होता हैय क्योंकि –

''इदमस्तु संनिकृष्टे समीपतरवर्ति चैतयो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टे तदिति परोक्षे विजानीयात्।।''

इस प्रसिद्ध शास्त्रीय उक्ति से 'इदम्' शब्द का निकटता में तथा 'अदस्' शब्द का इस लोक से बहुत दूरी बताकर इस लोक और परलोक का परस्पर भेद बता दिया गया है।

''इमं च लोकं परमं च लोकम्।''[22]

यहाँ पर 'परमलोक' का 'परलोक' अर्थ है, जैसे कि –

''यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे।''

यहाँ पर 'परम' शब्द 'पर' वाचक है। जैसे श्रुति में परलोक का वर्णन है, वैसे स्मृति में भी है –

'परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन्[23], नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः[24], 'परलोकं नयत्याशु,[25]। परलोक के सदृश 'प्रेत्यभाव' भी पुनर्जन्म का समानार्थक है। 'प्रेत्यभाव', प्रेत्यभवनं प्रेत्यभावः 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'इण्' धातु से 'क्त' प्रत्यय के योग से 'प्रेत' शब्द निष्पन्न होता है। प्रकर्षेण इतः अर्थात् अच्छी प्रकार से लाया हुआ अर्थ है। इसका दूसरा नाम 'परेत' भी है। इसमें परा उपसर्ग है। यह 'परा–दूरम् इतः' अथवा 'परलोकम् इतः' अर्थात् अच्छी तरह से गये हुये का नाम प्रेत है। वह इससे भिन्न होकर अन्य लोक में जाकर फिर उत्पन्न होता है – यहीं इसका प्रकर्ष से गमन है। अमरकोश में परास–प्राप्तपंचत्व–परेत–प्रेत संस्थिताः। मृत–प्रमीतौ त्रिश्वेते,[26] ये नाम मृतक के है। इसमें तीसरा नाम 'परेत' है और चतुर्थ नाम प्रेत है।

प्रेत शब्द का उल्लेख उपनिषदों में बहुतायत आया है। कठोपनिषद् में येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये। तथा ईशावास्योपनिषद में तांस्ते प्रेत्या भिगच्छन्ति ये के चात्म हनोजनाः से स्पष्ट है। यहाँ पर प्रेत्य शब्द मरणवाचक है। वेदों में भी प्रेत शब्द का उल्लेख है। अथर्ववेद के ''इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उ पत्वा मर्त्य प्रेतम्।''[27] में मृतक को कहा जा रहा है कि– 'हे मर्त्य–मरणधर्मा मनुष्य! इयं नारी – यह तुम्हारी स्त्री पतिलोकं वृणाना – पारलौकिक पतिलोक को चाहती हुई प्रेतं त्वा–मरे हुये तुम्हारे पास उपनिपद्यते– सतीधर्म के लिये लेटी है। इसमें प्रेत मृतक का नाम है।

'प्रेत' एक योनिविशेष भी है। जैसे कि– 'प्रेतः प्राण्यन्तरे मृते।'(अमरकोश 3/3/59) 'भूत–प्रेत' शब्द उक्त योनि विशेष में भी प्रसिद्ध है। 'मेदिनीकोश' में भी कहा है – ' प्रेतो भूतान्तरे पुंसि मृते स्याद् वाच्यलिङ्गकः। (अमर कोश की सुधाव्याख्या में) इस प्रकार शौनककृत 'ऋग्विधान' में भी कहा है – 'भूतप्रेतादिचौरादिव्याघ्रादीनां च नाशनम्।'[28]

यहाँ प्रेत्य–मृत्वा भावः – पुनर्जन्म इति 'प्रेत्यभाव अर्थात् मरकर फिर जन्म – यह अर्थ स्पष्ट है।

इस संसार में हिन्दुओं को छोड़कर शेष सभी जातियाँ ईसाई, मुसलमान, पारसी तथा यहूदी आदि पुनर्जन्म एवं मोक्ष के सिद्धान्त को नही मानती। भारत वर्ष में हिन्दुओं में भी बृहस्पति–प्रचारित चार्वाक आदि कई मत पुनर्जन्म एवं मोक्ष के सिद्धान्त को नहीं मानते। यह सर्वदर्शन संग्रह में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है –

''न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलैकिकः।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्र फलदायिकाः।।'' (चार्वाकदर्शन 22)

यहाँ पर परलोक जाने वाला आत्मा चार्वाक के मत में नहीं है – यह कहा गया है। इसलिये नास्तिक लोग अनुमान भी उपस्थित करते हैं – ''तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा, देहातिरिक्ते आत्मानि प्रमाणाभावात्।'' यह चेतन देह ही आत्मा है, इससे भिन्न आत्मा नहीं है।' इसलिये चार्वाक लोगों की यह उक्ति सुप्रसिद्ध है –

यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।। (चार्वाकदर्शन 23)

'जब तक जीना है सुखपूर्वक जीते रहिये। ऋण करके घी पीते रहिये। देहके भस्म हो जाने पर पुनर्जन्म नहीं होता, अतः ऋण चुकाना नहीं पड़ेगा।'

कई लोग माता–पिता को जन्म का कारण मानते हैं। उनके शुक्र–शोणित के योग से संतान स्वयं ही हो जाती है, कोई भिन्न आत्मा नहीं है। तब पूवर्जन्म और पुर्नजन्म का प्रश्न ही नहीं उठता। बहुत से पाश्चात्य विद्वानों ने भी आर्य जाति के मान्य वैदिक ग्रन्थों में भी ऐसा सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि ''पुनर्जन्म का यह सिद्धान्त प्राचीन समय का नहीं है, क्योंकि वैदिक संहिता ग्रन्थों में इसे नहीं माना गया है। इस सिद्धान्त को बाद में साम्राज्यवादी क्षत्रियों ने स्वीकार करके साम्राज्यवाद एवं कैपिटेलिस्टवाद के आश्रय रूप से प्रवृत्त किया है, क्योंकि छान्दोग्योपनिशद् के अश्वपति–जैविलि–संवाद में एवं श्रीमद्भगवद्गीता (2/22) में भी उसी का अनुसरण किया गया है। 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय' आदि श्लोक श्रीकृष्ण एवं अर्जुन के संवाद में बताये गये हैं। यह भी क्षत्रियों का सिद्धान्त है, जो कि क्षत्रियों द्वारा ही समर्थित है। ''

बेबर का मत है कि ऋग्वेद में जमान्तर एवं मोक्ष की बात नहीं है। यह बात परवर्ती युग में हिन्दू धर्म दर्शन में प्रविष्ट की गई है। क्योंकि यह बात पहले–पहल छान्दोग्य उपनिषद् में मिलती है। बृहदारण्यक–उपनिषद् में भी तद्नुरूप उल्लेख है।

मैकडोनेल महोदय ने अत्यन्त दुःख के साथ अपना मत प्रकट किया है कि 'इस मतवाद के ग्रहण करने का फल यह हुआ है कि वैदिक आशावाद, जो पहले स्वर्ग में चिरस्थायी सुख की आशा करता था, वह एक मृत्यु से दूसरी मृत्यु के बीच निःसीम दुःखमय जीवन प्रवाह के एक विशादमय दृश्य में परिवर्तित हो गया।........... ऋग्वेद में इस विषय का (जन्मान्तर का) कोई संकेत भी नहीं मिलता। केवल अन्तिम मण्डल में दो स्थलों में मृत आत्मा के जल या उद्भिज्ज में जाने की बात पायी जाती है।................ सम्भवतः आर्य औपनिवेशिक लोगों ने भारत के आदिम निवासियों से इस विषय की प्रथम शिक्षा प्राप्त की होगी। मोक्ष के तत्व सभी दर्शनों में है। मोक्ष का सिद्धान्त देहान्तर प्राप्ति के सिद्धान्त के समान ही प्राचीन है। मोक्ष से जन्मान्तर की समाप्ति हो जाती है।

" By the acceptance of this doctrine the Vedic optimism, which looked forward to a life of eternal happiness in heaven, was transformed in to the gloomy prospect of an interminable series of miserable existence leading from one death to another. X X X The Rgveda contains no trace of it beyond a couple of passages in the last book, which speak of the soul of a dead man as going to waters or plants. X X X

It seems more probable that the Aryan settlers received the first impulse in this direction from the aboriginal inhabitants of India. Common to all the systems of philosophy and as

old as that of transmigration is the doctrine of salvation which put an end to transmigration." (Macdonell, " History of Sanskrit Literature" pp. 388-9)

विन्टरनिट्ज के मत से 'आत्मा के देहान्तर तथा अनन्तकाल व्यापी जन्म–जन्मान्तर की धारणा दुःखमय है. .... इस विश्वास ने परवर्ती काल के समस्त दार्शनिक चिन्तन को प्रभावित किया है। तथापि ऋग्वेद में इसका कोई चिह्न नहीं मिलता।[29] मिशनरी श्री फर्कुहर साहेब के मत से ' वेद मन्त्रों में देहान्तर प्राप्ति का कोई सन्धान नहीं है।[30]

अपने देश के आधुनिक विद्वानों में से भी कुछ महानुभावों ने इनके सुर में अपना सुर मिलाने में कोई संकोच नहीं किया। वरन् यहाँ तक कह दिया कि 'पुनर्जन्म की बात का बीज आर्य लोग जो आदिम निवासियों के सम्पर्क में आयें, उनके प्रभाव से उद्भूत हुआ है, अथवा 'पुनर्जन्मवाद असभ्य जाति या द्राविड़ी सभ्यता से लिया गया है।

परन्तु कतिपय पाश्चात्य एवं पौरस्त्य आधुनिक विद्वानों का यह मत अत्यन्त भ्रामक एवं निराधार है। यहाँ यह प्रमाणित करने का प्रयास किया जा रहा है कि न केवल ऋग्वेद में ही वरन सम्पूर्ण वैदिक वाड्.मय में पुनर्जन्म एवं मोक्ष सम्बन्धी चिन्तन विद्यमान है। ऋग्वेद में केवल जन्मान्तर का ही उल्लेख नहीं, बल्कि देहत्याग के बाद आत्मा की परलोक में गति तथा पुनः इस लोक में जन्म लेने तथा मोक्षवाद सम्बन्धी चिन्तन विद्यमान है। वेद समस्त ज्ञान के मूलस्रोत है जो ऋग्वेद संहिता में नही है, वह वैदिक वाड्.मय में अन्यत्र भी नहीं है। आत्मा अमरता जन्मान्तर, मुक्ति आदि के विषय में जो मन्त्र भाग में बीज के रूप में – सूत्र के आकार में हैं, वही क्रमशः ब्राह्मण आरण्यक, उपनिषद् में विकसित है और पश्चात् पुराण, इतिहास और स्मृति ग्रन्थों में विस्तृत रूप में उपबृंहित हुये हैं। स्थानाभाव से केवल कुछ ही ऋक्–मन्त्रों का उल्लेख किया जाता है। ऋग्वेद में यह उल्लेख है कि कर्म के अनुसार ही संस्कार बनते है तथा उन्ही संस्कारों के अनुसार ही आगामी शरीर प्राप्त होता है –

''ये अर्वाञ्चरताँ उ पराच आहुर्य पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति।।''[31]

'जो नीचे थे, वे ऊपर पहुँच जाते है और जो ऊपर थे वे नीचे आ जाते हैं। इन्द्र अर्थात् इन्द्रियों का स्वामी जीवात्मा जिन कर्मों को करता हैं, वे धुरे की भांति युक्त होकर इसे लोक–लोकान्तरों में एक योनि से दूसरी योनि में जाते है।'

''अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृत्स्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।।[32]''

'मृत शरीर का जीवात्मा उस शरीर से निकलकर अपनी स्वधाओं के अनुसार धारण करने वाली कृतियों तथा स्वधृतियों के अनुसार, वृत्तियों और स्वभावों के अनुकूल अमर होता हुआ भी मर्त्य शरीर को अपना सयोनि बनाकर विचरण करता है, अर्थात् एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर को धारण करता हुआ चला जाता है।' पस्त्यों (अपस्त्यायन्ति संघीभूय तिष्ठन्ति जीवा यत्र, गृहमिति शब्दकल्पद्रुमे) गृहों, योनियों तथा लोकों के मध्य में ध्रुव जीव को भी एजत्–हिला देने वाली क्रिया है, वह यही स्वधाएँ हैं, भोगेच्छा, कर्म, वृत्ति और उनसे बने हुये स्वभाव है। यही इस प्राण धारण करने वाले, वेगशाली जीव को सुला देते हैं, परमात्मा से विमुख कर देते हैं, प्रमाद में डाल देते है। 'आत्मा की पवित्रता पर स्वधा ही आवरण डालती है, उसे मलिनता की ओर ले जाती है और नीची–ऊँची योनियों के दुःख–सुख दिखाती, अनुभव कराती है।

''अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विशूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेश्वन्तः।।''[33]

इस अनिपद्यमान, ऊर्ध्व स्थान पर विराजमान, गोपा, इन्द्रियों के पालक जीव को मैने अधः एवं ऊर्ध्व, अवर एवं परले पथों से विचरण करते हुये देखा है। यह कभी अनुकूल, कभी प्रतिकूल, कभी सम, कभी विषम दशाओं को अपनाता हुआ, ऊँची–नीची योनियों में बसता हुआ भुवनों के अंदर बार–बार आया–जाया करता है। संध्रीची

धारण करने वाली अवस्था है तो विशूची निम्न प्रवाही विचलन, विरेचन एवं निष्कासन की अवस्था है।

''य ईं चकार न सो अस्य वेद इ ददर्श हिरूगिन्नु तस्मात्।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश।।''[34]

जननी के गर्भ में झिल्ली और अज्ञान से ढका हुआ जीवात्मा अनेक जन्म धारण करता है। यह बहुप्रजा अनेक जन्मों तथा संततियोंवाला बनता है और घोर–से–घोर दुर्गति में पड़ता है। इस दुर्दशा में यह जो कुछ करता है, उसे स्वयं भी नहीं जानता और जो कुछ देखता है, वह भी इससे छिपा हुआ ही रहता है। उदात्त आत्मा का कैसा अधःपतन है। अधोगति में पड़ा हुआ क्लेशाक्रान्त जीव व्याकुल होता हुआ इसीलिये प्रभु से प्रार्थना करता है –

''न विजानामि यदि वेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसवा चरामि।
यदा मागव् प्रथमजा ऋतस्या दिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः।।''[35]

मैं नही जानता, मैं क्या हूँ। क्या मैं यह शरीर हूँ ? शरीर के साथ सयोनि, समानधाम बनकर मुझे शरीर के अतिरिक्त अपना अस्तित्व सूझ नहीं पड़ता। मैं अपने इन विचारों से बिलकुल दब गया हूँ, अच्छी तरह बँध गया हूँ। अब तो प्रभू ही कृपा करें, ऋत की प्रथमजा को प्राप्त करावें। तभी इस वाणी का भाग भोग्य बन सकेगा, समझ में आ सकेगा। जीव जलचर तथा वानस्पत्य योनियों में भी जाता है, इसका समर्थन निम्नांकित मन्त्रो से होता है–

''अप्स्वग्ने सधिष्टव सौशधीरनु रूध्यसे गर्भे सन् जायसे पुनः।।''[36]

मन्त्र के दो अर्थ है – एक अग्निपरक है जो विज्ञान के अन्तर्गत आता है। दूसरा आत्मपरक है, जो पुनर्जन्म से सम्बन्ध रखता है। विज्ञान के अनुसार अग्नि जहाँ बाहर है, वहॉ जलों तथा औषधियों के अंदर भी है। जल से विद्युत रूप अग्नि आजकल बाहुल्य से पैदा की जाती है और उससे घरों में रोशनी ही नहीं होती, रोटी आदि भी पकायी जाती है, पंखा चलाया जाता है, बड़ी–बड़ी फैक्टरियाँ बिजली से चलती है, रेले चलती है आदि–आदि। औषधियाँ आग्नेय हैं, यह रसायन में ही नहीं, अन्नादि में भी सत्य है। काष्ठ और विशेषतः शमी तथा पीपल की लकड़ी में अग्नि छिपी रहती है। वह इनके गर्भ में रहती हुई प्रकट भी हो जाती है। बाँसों की पारस्परिक रगड़ से भी वन की दावाग्नि भड़क उठती है।

पुनर्जन्म के सम्बन्ध में आत्मा जलचरों की योनियों में भी जाती हुई मानी गयी है। वृक्षों, वनस्पतियों तथा औषधियों में जीवात्माओं की स्थिति अन्तः संज्ञ है– ऐसा मनुद्वारा स्वीकृत है। इनके गर्भ में रहकर जीव पुनः मानव–योनि में आता है। भोग योनियों के उपरान्त उसे मानव–योनिकी कर्मभूमि प्राप्त होती है–

''प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने।
संसृज्य मातृभिश्टवं ज्योतिश्मान् पुनरासदः।।''[37]

इस मन्त्र के भी पूर्व जैसे दो अर्थ है – एक अग्निपरक, दूसरा आत्मपरक। अग्नि भस्म होकर जलों तथा पृथ्वी रूपी योनिको प्राप्त होकर पुनः माताओं के साथ मिलती है और ज्योतिर्मान् अर्थात् प्रज्वलित रूप में उपस्थित हो जाता है। अग्नि की माताएँ अर्थात् अग्नि को मान देने वाली सूर्य की किरणें है, जल है, काष्ठ है। आत्मा जब शरीर को छोड़ता है, तब शरीर तो भस्म हो जाता है, परन्तु आत्मा प्राणादि को लिये हुये जलीय अथवा पार्थिव योनिको प्राप्त होकर पुनः माताओं को संसर्ग कर उनके गर्भ में आता है। आत्मा स्वयं ज्योतिर्मान् है। उसका यह ज्योति रूप बुद्धिमान् मानव के रूप में पुनः प्रकट होता है। विभिन्न योनियों में जाने के कारण पर प्रकाश डालते हुये मनु कहते है –

''इन्द्रियाणां प्रसड्.गेन धर्मस्यासेवनेन च।
पापान् संयाति संसारान् अविद्वांसो नराधामः।।''[38]

'इन्द्रियों के वशीभूत, धर्म सेवन से रहित अज्ञानी अधम नर पापमयी योनियों को पाते है।' किंतु जो धर्मपरायण

हैं, इन्द्रियों को संयम में रखने वाले है, वे ज्ञाननिधि, प्रभु–प्रेमी नर ऊर्ध्वलोकों में जाते है। सांख्य (1/1) सूत्र के अनुसार 'मनुष्य का परम पुरुषार्थ त्रिविध दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति करने में निहित है।'' ऊर्ध्वलोकों की गतियाँ भी अनेक हैं, परन्तु उनमें दो प्रमुख है – पितृयाण तथा देवयान। पितृयाण पथ के पथिक परोपकारी, आदर्शचरित्र भद्रपुरुष होते है। देवयान पथ पर वैज्ञानिक एवं दार्शनिक चलते है। इन दोनों में सत्कर्म और ज्ञान–प्रकाश का अन्तर है। पितरों की दिशा दक्षिण तथा देवों की दिशा उत्तर है। इस आधार पर उन्हे दक्षिणायन तथा उत्तरायण–मार्ग भी कहा जाता है। एक को चान्द्रमस' तथा दूसरे को 'सौर्यायण' ज्योति भी कहते है। गीता ने इन्हें कृष्ण तथा शुक्ल गति का नाम दिया है। ये दोनों ही गतियाँ ब्रह्मलोक से ऊपर नहीं जाती, ऐसा गीता का मत है।

गीता के आठवें अध्याय में जो देवयान तथा पितृयाण का वर्णन है उसका स्रोत छान्दोग्य उपनिषद् में और छान्दोग्य का स्रोत वेद में है। वेद कहता है–

''द्वे सृती अश्रृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च।।''

ऋ0 10/88/15, यजु0 9/47

'मर्त्य मनुष्य अपने शुभ कर्मो के अनुसार पुण्य का फल भोगने के लिये मार्गों से जाते है – एक पितृयाण से और द्वितीय देवयान से। पिता द्यौ और माता पृथ्वी के बीच में यह सब जो गतिशील है, इन्ही दोनों मार्गों में समा जाता है। छान्दोग्य–उपनिषद्ने शिष्ट मानवों के भाग किये हैं। एक ग्राम में वास करके लोकोपकार के कार्यो में संलग्न रहते है, दूसरे अरण्य में रहते हुये श्रद्धा सहित तप का जीवन व्यतीत करते हैं। इन्हें 'वैखानस' भी कहा जाता है। एक लोकसंग्रही है लोक मंगल विधायक है। दूसरे तपस्वी या आत्मसाधक है। एक चन्द्र या पितृलोक को तो दूसरे ब्रह्मलोक को जाते है। एक का पन्थ पितृयाण है तो दूसरे का देवयान है।

'तत् ये इत्थं विदुः। ये च इमे अरण्ये श्रद्धा तप इति उपासते ते अर्चिशम् अभिसम्भवन्ति। अर्चिशो अहः। अह्नः आपूर्यमाणपक्षम्। आपूर्यमाणपक्षात् यान् शडुदङ्.डे.ति मासॅास्तान्। मासेभ्यः संवत्सरम। संवत्सरात् आदित्यम्। आदित्यात् चन्द्रमसम्। चन्द्रमसो विद्युतम्। तत्पुरुषोऽमानवः स एजान् ब्रह्म गमयति। एश देवयानः पन्था इति।[39]

'जो अरण्य में श्रद्धा और तपका अनुष्ठान करते हैं, वे अर्चिके सम्मुख हो जाते है। अर्चि से दिन, दिन से शुक्लपक्ष, शुक्लपक्ष से छः उत्तरायण मासों को, मासों से संवत्सर को, संवत्सर से आदित्य को, आदित्य से ऊर्ध्वस्थानीय 'महः' नामके चन्द्रमा को, चन्द्रमा से 'तपः' नामकी विद्युत को प्राप्त करते है। तब वह विद्युत–मानव पुरुष इन्हे ब्रह्मलोक में ले जाता है। यह देवयान पन्थ है।' विद्युत–पुरुष का वर्णन–विद्युतः पुरुषादधि–यजु0 32/2 में भी है।

'अथ ये इमे ग्रामे इष्टापूर्ते दत्तम् इति उपासते ते धूममभिसम्भवन्ति। धूमात्रात्रिम्। रात्रेः अपरपक्षम्। अपरपक्षाद्यान् शड् दक्षिणैति मासाँस्तान्। न एते संवत्सरम् अभिप्राप्नुवन्ति। मासेभ्यः पितृलोकम्। पितृलोकात् आकाशम्। आकाशाच्चन्द्रमसम्। एश सोमो राजा। तद्देवानामन्नम्। तं देवा भक्षयन्ति।[40]

'तस्मिन्यावत्सम्पातम् उशित्वा अथ एतमेव अध्वानं पुनः निवर्तन्ते।'

छान्दो0 उप0 5/10/5

'जो ग्राम में इष्टापूर्त तथा दान का अनुष्ठान करते हैं, वे धूम को सामने पाते हैं। धूम से रात्रि, रात्रि से कृष्णपक्ष, कृष्णपक्ष से छः दक्षिणायन मासों को प्राप्त करते है। मासों से यह संवत्सर को प्राप्त नही करते, किंतु पितृलोक को जाते है। पितृलोक से आकाश और आकाश से चन्द्रमा को जाते हे। यह सोम राजा है। यह देवों का अन्न है। देव उसे खाते है। वेद ने भी कहा है। 'सोमेन आदित्याः बलिनः।' सोमसे ही आदित्यों को बल प्राप्त होता है। 'जब तक उनके सम्पात का समय नहीं आता, तब तक वे इस चन्द्रमा में वास करके पुनः उसी मार्ग से पृथ्वी पर लौट आते है।'

'तत् ये इह रमणीयचरणाः अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिम् आपद्येरन्। ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वा। अथ ये इह कपूयचरणाः अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिम् आपद्येरन्। श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डाल–योनिं वा।' छान्दो0 उप0 5/10/7

'इनमें जो रमणीय आचरण के अभ्यासी होते है, वे रमणीय योनि को प्राप्त करते हैं – ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य योनिको। जिनके चरित्र कुत्सित होते हैं, वे कुत्सित योनि को प्राप्त करते है, – श्वान या सूकर या चाण्डाल योनिको। '

'अथ एतयो पथोः न कतरेण च न। तानि इमानि क्षुद्राणि असकृत् आवर्तीनि भूतानि भवन्ति। जायस्व म्रियस्व इति एतत् तृतीयं स्थानाम्। तेन असौ लोको न सम्पूर्यते। तस्मात् जुगुप्सेत। तदेव श्लोकः।'

छान्दो0 उप0 5/10/8

स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबंश्च गुरोस्तल्पमावसन् ब्रह्महा च एते पतन्ति चत्वारः पंचमश्चाचरंस्तैरिति।

छान्दो0 उप0 5/10/9

'जो पितृयाण तथा देवयान–दोनो पथों में से किसी के भी योग्य नहीं होते, वे ये क्षुद्र भूत है, जो बार–बार आवर्तन अर्थात् जन्म मरण के चक्र में पड़ते है। पैदा हुये और मरे–ऐसा इनका तीसरा स्थान है। ऐसे प्राणियों से उस लोक की सम्पूर्ति नहीं होती। सब इनसे घृणा करते है। इस पर यह श्लोक है– स्वर्ण की चोरी करने, वाले, शराब पीने वाले, गुरू की शय्यापर सोने वाले (गुरू पत्नी से व्यभिचार करने वाले) और ब्रह्महत्यारे ये चार तो पतित होते ही हैं, पाँचवे वे भी पतित होते हैं जो इनका साथ देते हैं।'

अपाङ्. प्राङ्. एति स्वधया गृभीतो अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विशूचीना वियन्तान्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्।।

ऋ0 01/164/38, अथर्व0 09/10/16

अमर जीवात्मा मरणधर्मा शरीर के साथ संयुक्त होता है। इसका कारण स्वधा–अपने को धारण करने की भावना। स्वधा से गृहीत हुआ जीव 'सु' अच्छी, किंतु 'अधा' नीची प्रकृति से प्रपंच में पड़ता है। प्राकृतिक वैभव देखने में आकर्षक है, पर उसका उपभोग निर्बलता का भी जनक है। जीव इस वैभव के उपभोग में रूचि लेने लगता है। इसीलिये वह शक्तिहीनता का आखेट बनता है।

वस्तुतः वेदो में अप्रत्यक्ष जगत की पहेली का हल निकालने के बारे में महर्षि दीर्घतमा का 'अस्यवामीय सूक्त' (ऋग्वेद 1/164) अत्यधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। इस सूक्त का 38 वाँ मन्त्र एक अमर्त्य तत्व का वर्णन करता है – 'एक अमर तत्व दूसरे मरणशील तत्व के साथ एक स्थान पर रहकर अपनी शक्ति से बंधकर आगे–पीछे जाता है। इन दोनो तत्वों में से एक तत्व को तो मनुष्य प्रत्यक्ष देखते है और दूसरे को नही देख पाते।' इस मन्त्र में अमर तत्व का संकेत आत्मा की ओर है और मरणशील का संकेत शरीर की ओर। इस मन्त्र में आये हुये अपाङ्. और प्राङ्. ये दोनों शब्द क्रमशः पुनर्जन्म और मोक्ष के वाचक है। पुनर्जन्म और मोक्ष दोनों ही हालतों में आत्मा को इस शरीर में आना ही पड़ता है परन्तु जो आत्मा इस शरीर में आकर प्रकृति के तमोगुण या रजोगुण से बंध जाता है, वह अपाङ्. अर्थात् पीछे की तरफ पृथ्वी पर लौटता है, यही वस्तुतः पुर्नजन्म है। पर जो आत्मा इस शरीर में आकर भी धार्मिक प्रवृत्ति का ही रहता है। वह प्राङ्. अर्थात् आगे बढ़ता जाता है। दूसरे शब्दों में वह मोक्ष की तरफ बढ़ता चला जाता है।

ऋग्वेद में (10/88/15) दो मार्ग–देवयान तथा पितृयान का वर्णन किया गया है। पूवर्जन्म के चक्र में पड़ा हुआ आत्मा पितृयाण से गमन करता है और मोक्ष का अधिकारी आत्मा देवयान से। देवयान का मार्ग ही तत्वज्ञानी को स्वर्ग की ओर ले जाता है। यज्ञ करते हुये जो याजक चैतन्याग्नि पर आरोहण करते है। वे नाक की पीठ से

द्युलोक की ओर जाते है, उन्हीं उत्तम कार्य करने वालों को नभ में स्वर्ग ले जाने वाला देवयान का मार्ग दिखायी देता है। वेदों में इसे नाक तथा उपनिषदों में सूर्यद्वार कहा गया है –

''सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः सः पुरुषो ह्यव्ययात्मा।''

मण्डकोपनिशद् 01/2/11

अर्थात् राग–द्वेश से रहित सुकृतीजन सूर्यद्वार से उस लोक को जाते है, जहाँ वह अव्यय और अमृत पुरुष रहता है। यह अमृतत्व प्राप्ति ही मोक्ष है।

ऋग्वेद में मोक्षलोक की दिव्यता का बड़े सुन्दर शब्दों में वर्णन है। उस मोक्ष लोक में अजस्र ज्योति है। वहाँ के लोक ज्योतिर्मय है। वहाँ काम निकाम स्वधा तृप्ति तथा आनन्द है। वहाँ सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। (ऋग्वेद 09/113/7–9) उपनिषदों में भी 'मोक्ष लोक' का वर्णन इसी प्रकार किया गया है। यह मोक्ष लोक अनेक दिव्य भावनाओं से परिपूर्ण है। वहाँ अन्धकार का नाम भी नहीं है। यही शाश्वत ज्योति है, यही सत् है, यही अमृत है–

''असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमय।'' (बृहदा0 उप0 1/3/29)

इस प्रकार पितृयाण पुनर्जन्म का कारण बनता है और देवयान मोक्ष का।

जो लोग ब्रह्म से संलीन है वे तत्काल मुक्ति प्राप्त करते है। उनके प्राण का उत्क्रमण नही होता –

''न तस्य प्राणा ह्युत्क्रामन्ति।'' बृहदा0 उप0 4/4/6

''अत्रैव समवलीयन्ते।'' बृहदा0 उप0 3/2/11

ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के उन्सठवें सूक्त के बारहवें मन्त्र में मोक्ष का प्रसंग आया है। उर्वारूक (ककड़ी) जैसे पकने पर अपने आप वृंत से टूट जाती है। उसी प्रकार हम शिव की उपासना से श्रेय प्राप्त करें तथा संसार के बन्धन अर्थात् जन्म मृत्यु के पाश से मुक्त होकर अमृतत्व प्राप्त करें –

''त्रयम्बकं यजामहे सुगन्धिंपुश्टि वर्धनम्।
उर्वारूकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।''

यह मन्त्र शुक्ल यजुर्वेद 3/60 में भी द्रष्टव्य है।

''श्रीमद्भगवद्गीता के अष्टम अध्याय में अक्षरब्रह्मयोग का प्रतिपादन करते हुये जन्म–मृत्यु के पथ से अनावृत्ति प्राप्त करने के विषद उपाय बताये गये है।''[41] ऋग्वेद में यह उल्लेख है जो उस परम प्रभु को जान लेते है, वे शीघ्र ही मोक्ष पद को प्राप्त कर लेते है।

''य इत् यत् विदुस्ते अमृततत्वमानशुः।''[42]

अथर्ववेद में भी यह उल्लेख आया है।[43]

आत्मतत्व जिज्ञासा एवं आत्मबोध के द्वारा ही दृश्य प्रपंच का अस्तित्व जो द्रष्टा का बन्धन कहा गया है, वह नष्ट होता है और साधक को मैं ही सर्वाधिष्ठान पर ब्रह्म हूँ, 'सर्वाधिष्ठान ब्रह्म मैं ही हूँ।' यह जानने में समर्थ होता है तथा उससे वेदों की वह अमृतमयी वाणी समझ में आ जाती है। जिसके द्वारा समस्त वेद मोहनिद्रा में सोये हुये जीवो को जाग्रत करने के लिये दृढ़तापूर्वक कहते है कि संसार में परमेश्वर के सिवा और कुछ नहीं है। वह परमेश्वर स्वर्ग, पृथ्वी एवं अन्तरिक्ष रूप निखिल विश्व में पूर्णरूप से व्याप्त है, वह सम्पूर्ण जगत का सूर्य अर्थात् प्रकाशक है तथा वह स्थावर जंड्.गम का आत्मा है।[44] उसे जानकर ही प्राणी मुक्त होता है अर्थात् वह बारम्बार जन्म मृत्यु रूप महा भयंकर बंधन से सदा के लिये छुटकारा पा जाता है। इसके अतिरिक्त मुक्त होने का अन्य कोई उपाय नहीं है –

''वेदाह मेतं पुरूशं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽ नाय।।''

शु0यजु0 31/18, श्वेता0 उप0 3/8

वह परमात्मा शरीरादिरूप से परिणत पृथिव्यादि पंचभूतों के भीतर पुरुष अर्थात् पूर्ण परमात्मा सत्ता स्फूर्ति प्रदान करने के लिये प्रविष्ट हुआ है तथा इस अधिष्ठान पुरुष के भीतर वह भूत–भौतिक जगत अर्पित है अर्थात् अध्यारोपित है।[45] इसलिये कहा गया है कि जब जीवात्मा सम्पूर्ण भूतों में आत्मा को तथा आत्मा में सम्पूर्ण भूतों को अभेद रूप से देखने लगता है तब वह जीवात्मा संसार से सर्वथा मुक्त हो जाता है।[46] साधक जब समझ जाता है कि संसार आत्मा में फैला हुआ है और आत्मा परमात्मा एक है – यह जानकर कि अधिष्ठान में अध्यस्त की सत्ता अधिष्ठान रूप होती है, तब वह सर्वात्मभाव को प्राप्त हो आत्मा में फैले संसार को आत्मरूप से देखने लगता है और मुक्त हो जाता है, क्योंकि पुरुष सब कुछ ब्रह्म ही है 'मैं ही ब्रह्म हूँ' – इस प्रकार एक भाव का आश्रय लेकर सम्पूर्ण भूतों में स्थित परमात्मा को भजता है। वह सब प्रकार का व्यवहार करता हुआ भी पुनः संसार में उत्पन्न नही होता है।[47]

अतएव यह स्पष्ट है कि पाश्चात्य एवं कतिपय पौरस्त्य आधुनिक विद्वानों का वेदो के सन्दर्भ में पुनर्जन्म एवं मोक्ष सम्बन्धी अवधारणा अत्यन्त भ्रामक एवं निराधार है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में पुनर्जन्म एवं मोक्ष सम्बन्धी चिन्तन विद्यमान है। वैदिक भारतीय मानस दुःखवादी नहीं है। चिरप्रफुल्ल और आशावादी है, क्योंकि शास्त्रसम्मत मार्ग पर चलते हुये तथा शुद्ध आचरण करते हुये कभी न कभी भगवत्साक्षात्कार तथा जन्म मृत्यु के पाश से मुक्ति अवश्यम्भावी है। यह सत्य है कि आत्यान्तिक ब्रह्मवादी और आत्यन्तिक लोकवाद दोनो ही विनाशक है। इसलिये भारत के अधिकाँश लोगों ने आत्यान्तिक लोकवादी चार्वाक को और आत्यान्तिक मोक्षवादी बौद्धधर्म को स्वीकार नहीं किया। भारत में चार्वाक तो कभी फूला–फला ही नहीं और बौद्धधर्म भी बरसाती नदी की तरह जितनी तेजी से फैला, उतनी ही तेजी से उतर भी गया। अन्त में रह गया वेदों और अन्य वैदिक दर्शनों का वह समन्वयवाद ही।

वेदों का यह समन्वयवाद शाश्वत है, सनातन है और अभेद्य है।

सन्दर्भ संकेत

1. (क) श्रीमद् भगवद्गीता 9/21, (ख) शतपथ ब्रा0 14/7/2/8
2. अमरकोश 1/4/30
3. अष्टाध्यायी 2/1/4
4. श्रीमद्भगवद्गीता 8/16
5. तदेव 4/4
6. तदेव 4/5
7. ऐतरेयोपनिषद् 4/4
8. गर्भोपनिषद 4
9. मुक्ति कोपनिषद् 1/20
10. श्रीमद् भागवत पुराण 4/24/57
11. प्रश्नोपनिषद 3/9
12. कालाग्निरूद्रोपनिषद् 4
13. कठोपनिषद् 1/2/6
14. तदेव 1/1/4
15. तदेव 1/1/5

16. तदेव 1/1/7
17. तदेव 1/1/26
18. अमरकोश 1/1/58–59
19. तदेव 2/8/116
20. अमरकोश की सुधा व्याख्या 2/8/116
21. अथर्व0 9/11/13
22. तदेव 19/54/5
23. मनुस्मृति 4/238
24. तदेव 4/239
25. तदेव 4/243
26. अमरकोश 2/8/117
27. अथर्व 18/3/1
28. ऋ0 वि0 8/7/14
29. " Of the dismal belief in the transmigration of the soul and eternal rebirths-the belief which controls the whole philosophical thoughts of Indians in letter centuries-there is in the Rgveda as yet no trace to be found." (Winternitz, "History of Indian Literature." P.68)
30. There is no trace of transmigration in the hymns of the Vedas. (Farquhar, "An Outline of the Religions and Literature of India" Page 33)
31. ऋग्वेद 1/164/19
32. तदेव 1/164/30
33. तदेव 1/164/31
34. तदेव 1/164/32
35. तदेव 1/164/37
36. यजुर्वेद 12/36
37. तदेव 12/38
38. मनुस्मृति 12/52
39. छान्दोग्योपनिषद् 5/10/1–2
40. तदेव 5/10/3–4
41. श्रीमद् भगवद् गीता 8/23–28
42. ऋग्वेद 1/164/23
43. अथर्ववेद 9/10/1
44. आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुशश्च।। ऋग्वेद 1/115/1, शु0 यजु0 7/42
45. पञ्चस्वन्तः पुरुष आ विवेष तान्यतः पुरुशे अर्पितानि। शु0 यजु0 23/52
46. यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति। सर्वभूतेशु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते। शु0 यजु0 40/6
47. यस्मानि सर्वाणि भूतान्यात्मेवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपष्यति।। शु0 यजु0 40/7

❑❑

कालीदास के साहित्य में लोककल्याण की भावना

डॉ0 आशारानी पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफेसर–संस्कृत
दयानन्द गर्ल्स पी0जी0 कालेज, कानपुर

संस्कृत भाषा में आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक साहित्य का सुन्दर प्रणयन हुआ है परन्तु सहृदयों के द्वारा श्लाघ्य एवं सर्वजन अभिनन्दनीय काव्यमार्ग ही है। काव्य रूपी वाटिका को संवारने एवं सज्जित करने का श्रेय व्यास, भास, बाल्मीकि, कालिदास प्रभृति कालजयी और विश्व की मंगलकामना से सम्पोषित उनकी अमर कृतियों को जाता है। इन कवियों की श्रेणी में महाकवि कालिदास का काव्य ऐसा मनोहारी दर्पण है जिसमें भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति अपने स्वाभाविक रूप में प्रतिबिम्बित होकर युग–युगान्तर के लिए प्राणवती हो गई है।

संस्कृत साहित्याकाश में महाकवि कालिदास अप्रतिम सूर्य है। कालिदास की कालजयी कृतियों में राष्ट्रमंगल के साथ लोकमंगल की पावन भावना समाहित है, तथा उनमें दिव्य जीवन के संदेश मुखरित है। इस महान राष्ट्र की उच्चसंस्कृति उनके काव्य में मूर्तवती होकर जन–जीवन को निरन्तर प्रेरित करती आ रही है। बाल्मीकि, व्यास आदि भारतीय ऋषियों द्वारा सुचिन्तित तथ्यों को कवि ने मनोभिराम शब्दों में जन–जीवन के हृदय में उतारने का समीचीन प्रयास किया है। उनकी कविता का प्रणयन मानव हृदय की शाश्वत प्रवृत्तियों तथा भावों का आलम्बन लेकर किया गया है। यही कारण है कि इसके भीतर ऐसी उद्दीप्त एवं उदात्त भावना विद्यमान है, जो भारतीयों को ही नहीं अपितु मानव मात्र को प्रेरणा तथा स्फूर्ति प्रदान करती रहेगी। इस भारतीय कवि की वाणी में इतना रस है, इतना ओज भरा हुआ है कि दो सहस्त्र वर्षों के दीर्घकाल ने भी उसमें किसी प्रकार का फीकापन नहीं आने दिया। उसकी मधुरिमा आज भी उसी प्रकार भावुकों के हृदय को रसमय करती है, जिस प्रकार उसने अपने उत्पत्ति के क्षण में किया था।

कालिदास की कृतियों में जन–जीवन में नैराश्यवाद का कोई स्थान नहीं है। जो जीवन अभ्युदयपूर्ण एवं रमणीय लोकमंगल की पावन कामनायुक्त हो उसमें निराशा का क्या स्थान? यह जीवन निरर्थक एवं सारहीन कभी नहीं है। इन्दुमती के प्रयाण पर निराश एवं विषण्ण अज को समझाते हुए वशिष्ठ कहते हैं कि यदि जीवन श्वास लेता हुआ एक क्षण के लिए भी जीवित रहता है तो यह उसके लिए परम लाभ है– सौभाग्य का विषय है। क्योंकि मृत्यु तो शाश्वत सत्य, और अनिवार्य है–

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृति जीवित मुच्यते बुधैः।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुननु लाभवान सौ।।[1]

अतः कालिदास का यह जीवन सन्देश है कि इस जीवन को ईश्वर का महान वरदान मानकर इसे सफल बनाने हेतु धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का सामंजस्य स्थापित करना चाहिए।

वास्तव में मनुष्य का जन्म विषयवासना का दास बनने हेतु नहीं अपितु तपस्या और भोग को साधन मानकर परमात्मा से आत्मा के एकीकरण हेतु हुआ है तथा काम और धर्म के परस्पर संघर्ष में काम को दबाकर उसे धर्मानुकूल बनाने का प्रयास अवश्य करना चाहिए। तभी मानव का कल्याण हो सकेगा। इसीलिए कवि, धर्म को त्रिवर्ग का सार मानते हैं– त्रिवर्ग सारः प्रतिभाति भामिनी।

जीवन सुखों तथा दुःखों की क्रमबद्ध श्रृंखला है। इस विषय में उनका स्पष्ट अभिमत है कि ये जीवन में क्रमशः चक्रनेमि की भांति आते–जाते रहते हैं अतः मनुष्य को दुःखों से द्रवित एवं सुखों से गर्वित नहीं होना चाहिए। यक्ष

के माध्यम से कवि इसी शाश्वत सत्य का उद्घाटन करता है –

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमि क्रमेण।।

साहित्य समाज का दर्पण है। अतः मानव जीवन का समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। समाज की उन्नति के लिए व्यक्ति को सतत सचेष्ट रहना चाहिए। कालिदास का मन्तव्य श्रुति एवं स्मृतियों की पद्धति पर आधारित आदर्श समाज की संरचना का है। कालिदास के इप्सित समाज के व्यक्ति त्याग के लिए धन संचय, यश के लिए विजय की कामना सत्य भाषण के लिए मितभाषी तथा सन्तानोत्पति के लिए ही विवाह करते थे–

त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यश से विजिगीषूर्णां प्रजायै गृहमेधिनाम।।[2]

कालिदास के अनुसार जीवन में त्याग, तप, यज्ञ, अध्ययन एवं दान का समावेश अपरिहार्यतः होना ही चाहिए। उनके द्वारा ऋषियों के पावन आश्रम में ये दिव्य जीवन आदर्श सदैव अनुप्राणित होते चिन्हित किये गये हैं।

उनका विश्वास था कि तपोवन में पोषित अकृत्रिम सभ्यता ही मानव का सच्चा कल्याण कर सकती है, क्षुद्र कोटि के स्वार्थ का निवारण त्याग से ही सम्भव है, तथा मानव की वास्तविक उन्नति तपस्या से ही हो सकती है। तपोवन कालिदास के काव्य की प्रेरणा के स्त्रोत रहे हैं। रघुवंश में वशिष्ठ का आश्रम भी बहुत शान्त और मनोहर है। शाकुन्तल में धर्मारण्य तथा तपोवनों की हमारी आत्माओं को शुद्ध करने की क्षमता का अनेकशः उल्लेख उपलब्ध होता है। प्रथम अंक में दुष्यन्त कहता है आओ हम लोग पुनीत आश्रम के दर्शन से स्वयं को पावन करें। पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे। शाकुन्तल में तपस्वियों की महिमा का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्य तेजोऽभिभवाद्वमन्ति।।[3]

महाकवि द्वारा वर्णित इन आश्रमों में प्रेम एवं विश्वबन्धुत्व भाव के कारण जीव हिंसा सर्वथा वर्जित थी। कवि द्वारा वर्णित सभी आश्रम सामान्यत यज्ञ स्थान तपः स्थान, शिक्षा संस्थान के रूप में, आर्यावर्त में ही नहीं अपित समस्त भारतवर्ष में अवस्थित होकर साधारण गृहस्थ धर्मों में पराड.मुख नहीं थे। ये सामयिक परिस्थिति के अनुसार बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय की उदात्त भावनावश युगधर्म का निर्वाह करते हुए सम्पूर्ण राष्ट्र के भौतिक एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष में महत्वपूर्ण योग देते थे। रघुवंश, कुमार संभव, अभिज्ञान शाकुन्तलम जैसी उत्कृष्ट कृतियाँ इन पावन आश्रमों की गौरव गरिमा से अभिमण्डित है।

कालिदास का यह संदेश है कि प्रत्येक मानव को तपोवन के शान्त वातावरण और प्रकृति की गोद में बैठकर तपश्चरण कर अपने अभीष्ट की प्राप्ति करना चाहिए। आधुनिक आश्रमों में जीवित दिनचर्या एवं संस्कृति को कालिदास के आश्रमों से अवश्य शिक्षा लेनी चाहिए जहाँ आज शान्ति की अपेक्षा अशान्ति का प्रेम की अपेक्षा घृणा का वातावरण पनप रहा है।

व्यक्तिगत जीवन में कवि आत्मसंयम तथा आत्मशुद्धि पर बल देता है। एतदर्थ वह बिल्कुल भोर या ब्रह्मबेला में सोकर उठने को आवश्यक बतलाता है। रघुवंश में वह कहता है कि रात्रि के अन्तिम प्रहर में उठने से मन शान्ति तथा स्फूर्ति का अनुभव करता है– 'पश्चाद्यामिनीयामात्प्रसादमिव चेतना'

महाकवि ने संध्या, ध्यान, अर्चना पूजा इत्यादि सुखी जीवन के लिए अपेक्षणीय बतलाए हैं किन्तु आज दूरदर्शन की अपसंस्कृति से प्रभावित वैश्विक समाज अव्यवस्थित दिनचर्या के अधीन होकर विभिन्न रोगों से ग्रसित हो रहे हैं जबकि महाकवि की लोक कल्याणकारी दृष्टि उक्त समस्याओं का निराकरण करती हुई दिखलाई पड़ती है। इसी प्रकार कवि श्रेष्ठजनों के प्रति आदर भाव से युक्त होने को प्रेरित करता है क्योंकि जो पूज्य एवं अराध्य है उनके प्रति तनिक भी अनादर भाव से मनुष्य का सुख–सौख्य खण्डित हो जाता है।

प्रति बध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यक्तिक्रमः।[4]

कालिदास द्वारा चित्रित नरपति भारतीय समाज का अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करते हैं। वे शैशव में विद्या का अभ्यास करते हैं, यौवन में विषय के अभिलाषी है, वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति धारण करके सारे प्रपंच से मुँह मोड़कर निवृत्ति मार्ग के अनुयायी बनते हैं तथा अन्त में योग द्वारा अपना शरीर छोड़कर परम पद में लीन हो जाते हैं यह आदर्श लोक में स्थापित करना महाकवि की अपनी विशेषता है–

शैशवेभ्यस्तपविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।[5]

शैशवेऽभ्यस्तपविधानां यदि इस प्रथम पंक्ति पर सम्यक चिन्तन किया जाय तो प्रतीत होता है कि उस समय शिक्षा एक तपस्चर्या के समान थी और विद्यालय एवं विश्वविद्यालय शैक्षिक एवं अनुशासन की दृष्टि से अत्यन्त उच्चादर्श युक्त थे। किन्तु वर्तमान समय में विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय एवं दयनीय हो गयी है। आज छात्र अध्ययन से पूर्णरूपेण विरत होकर प्रतिदिन हड़ताल, छात्र–आन्दोलन एवं भ्रष्ट नेताओं के निर्देशन में उत्पात करके अकारण ही धन, जन एवं शक्ति का क्षय कर रहे हैं। इस समस्या से ग्रस्त शिक्षार्थी हेतु उपर्युक्त वाक्य के अनुपालन से ही इस विश्वव्यापी विषम समस्याओं का समाधान स्वतः हो सकता है।

किसी भी राष्ट्र के समुन्नत विकास में शिक्षा की एक अहम् भूमिका होती है। और कविकुल शिरोमणि भी शिक्षा का परम लक्ष्य जीवन की परिष्कृति तथा अंलकृति दोनों को मानते हैं। इनका मन्तव्य है कि जैसे प्रकाश की शिखा से दीपक, गंगा से तीनों लोक, और विद्वान सुसंस्कृत वाणी से पूत एवं अलंकृत होता है–

प्रभामहत्या शिखयेवदीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च।।[6]

शिक्षक शिक्षा की धुरी है और वही शिक्षक सर्वश्रेष्ठ है जिसमें ज्ञान तथा शिक्षण दोनों ही गुण विद्यमान हैं–

शिलष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरूपस्य,
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव।।[7]

सार्थक शिक्षा की कसौटी यह है कि जिस प्रकार अग्नि मे तपाये जाने पर स्वर्ण श्यामवर्णीय नहीं बनता, उसी प्रकार ऐसी शिक्षा परीक्षा काल में मंद नहीं पड़ती। माल विकाग्निमित्र में कवि की दृष्टि दर्शनीय है–

उपदेशं विदुः शुद्धं सन्तस्तमुपदेशिनः।
श्यामाय ते न युहंमासु या कांचनमिवाग्निषु।।[8]

विद्या की सार्थकता अभ्यास द्वारा उसे व्यवहार सुलभ बनाना है इसी भाव को कवि ने रघुवंश में कुछ इस प्रकार दर्शाया है –

"विद्यामभ्यासनेनेव प्रसादयितुमर्हसि"[9]

महाकवि ने आचार्य अथवा गुरु को परमब्रह्म सदृश चित्रित किया है। और शिक्षा तभी फलीभूत होगी तब शिष्य गुरु की आज्ञा को अक्षरशः शिरोधार्य करेंगे। महाकवि ने गुरु महिमा का वर्णन करते हुए रघुवंश में एक स्थल पर इस प्रकार कहा है–

"आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया।"[10]

महाकवि की लोक कल्याणकरी दृष्टि समाज के प्रत्येक पहलू पर अपनी गहन छाप छोड़ती है।

परिवार व्यक्ति और समाज को जोड़ने वाली एक प्रमुख कड़ी है, और समाज की केन्द्रीय इकाई भी। परिवार का वातावरण शिशु के अपरिपक्व एवं निर्मल बुद्धि पटल पर बहुत से बिम्ब अंकित करता है, जो शनैः शनैः विभिन्न संस्कारों के माध्यम से उसके व्यवहार को निर्धारित करते हैं। परिवार की सुख समृद्धि प्रत्येक सदस्य के पारस्परिक व्यवहारों के सामंजस्य पर निर्भर करती है। दूसरे परिवार से आई हुई नववधू जब परिवार के संस्कारों और आदर्शों

के अनुकूल आचरण नहीं करती तब पारस्परिक गृह– कलह के कारण पारिवारिक वातावरण अशान्तिपूर्ण एवं विखण्डित हो जाता है। सम्प्रति यह समस्या अधिकांशतः आज प्रत्येक परिवार में व्याप्त होती जा रही है। महाकवि के द्वारा प्रतिपादित एवं महर्षि कण्व के मुखार बिन्दु से निःसृत वाणी पतिग्रहगमनोत्सुक नवविवाहित स्त्रियों की सभी आपदाओं को दूर करने वाली है –

शुश्रूस्व गुरुन कुरु प्रियसखी वृतिं सपत्नीजने,
भर्तुविप्रकृतानि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी,
यान्त्येव गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।[11]

महाकवि ने नारीत्व के आदर्शों को उभारने का जो उद्योग किया है वह उनके काव्य का प्रमुख वैशिष्टय है। भारतवर्ष में कन्याओं के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिभंगी पाई जाती है। जब तक वे पितृ ग्रह में रहती हैं, तब तक दीपशिखा की भाँति उसे उद्‌भासित करती है, और परिवार की सीमित परिधि में प्रेम, प्रसन्नता, औत्सुम्य, तथा आनन्द की कूल्याएँ प्रवाहित करती रहती हैं। और उन्हें परिवार के प्रत्येक सदस्य का असीम प्यार उपलब्ध होता है। लेकिन फिर भी भारतीय पिता कन्याओं को अन्य की धरोहर समझता है और उसके लिए उचित एवं योग्य वर की खोज पर अपरमित संतोष का अनुभव करता है। कालिदास ने इस लोकादर्श की प्रतिष्ठा अभिज्ञान शाकुन्तल में की है। शकुन्तला को महर्षि कण्व के आश्रम में जो प्यार मिला है, वह प्रत्येक भारतीय कुटुम्ब के लिए स्पर्धा एवं अनुकरण की वस्तु है। कण्व को शकुन्तला के आसन्न वियोग पर गहरी वेदना हुई है और उनकी यह टिप्पणी अत्यन्त सार्थवती है कि पीडयन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैं। पुनः उसे पतिग्रह भेज कर उनकी अन्तरात्मा अत्यन्त निर्मल हो गयी–

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतु,
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।।[12]

कालिदास लज्जा, प्रेम, सेवा, चरित्र, शील, तप और संयम को ही नारी का प्रमुख आभूषण मानते हैं। सुवर्ण, रत्न, एवं मणि आदि को नहीं। तपोवन के जीवन के पक्षपाती होने के कारण कविकुलचूड़ामणि मानव के सहज एवं स्वाभाविक गुणों का ही आदर करते हैं। वे कृत्रिम साधनों से क्षणिक रूप सौन्दर्य के पक्षपाती नहीं है। शकुन्तला अपने वल्कल वस्त्रों में ही सुन्दर दिखाई दे रही है।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी।
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतिमाम।[13]

तपस्या एवं प्रेम के समन्वित धरातल पर ही प्रेम के अंकुर स्फुटित होते हैं, कालिदास की यह दृढ़ मान्यता थी। उनके शाकुन्तल एवं कुमार सम्भव दोनों का लक्ष्य था तपस्या एवं प्रेम का समन्वय। वासना जन्य अथवा केवल शारीरिक आकर्षण पर आधारित प्रेम स्थायी नहीं होता। तपस्या की अग्नि में ही तपकर प्रेमरूपी सुवर्ण निखर उठता है। पार्वती का दिव्य सौन्दर्य, कामदेव का अनुपम पराक्रम तथा बसन्त का सम्पूर्ण मादक प्रभाव भी तपस्वी शिव को प्रभावित नहीं कर सका। किन्तु पार्वती का घोर तप, और समाधि उन्हें शिव का बना देती है। कालिदास ने पार्वती के तप का रहस्य विशेष रूप से प्रकट किया है–

इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभि, रात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः[14]

पार्वती की तपस्या का फल था 'तथा विधं पति' अर्थात मृत्युंजय रूप महादेव/तथाविद्यं प्रेम का तात्पर्य है, दिव्य, अलौकिक और उत्कष्ट कोटिका प्रेम। कालिदास ने तथाविद्यं से गम्भीर अर्थ की अभिव्यंजना की है। महादेव ने पार्वती को सम्मान की उच्च स्थान की पराकाष्ठा को प्राप्त कराया है। भारतीय कन्याओं हेतु यह गौरव की

अनुकरणीय साधना है। इसी सन्दर्भ में गौरी पूजा का रहस्य महान स्वार्थ त्याग के पीछे अर्न्तनिहित तप के प्रभाव की अभिव्यक्ति है।

इदानीम पाश्चात्य संस्कृति के चकाचौंध एवं दूरदर्शन के द्वारा प्रसारित विभिन्न नाटकों से प्रभावित हुआ युवा वर्ग दैहिक आकर्षण को ही प्यार की पराकाष्ठा मानता है। ऐसे भ्रमित युवा वर्ग के लिए शिव पार्वती, दुष्यन्त–शकुन्तला, यक्ष–यक्षिणी का प्रेम, आदर्श एवं प्रेरणादायि हो सकता है। यह कवि की अपनी विशेष प्रकार की लोक कल्याणकारी दृष्टि की परिमित है जो वह विश्व समाज, को समर्पित करता है महाकवि कालिदास भारतीय संस्कृति के चरम आदर्श के प्रति विश्व को उन्मुख करने में समर्थ हुए है।

कालिदास भारतीय जीवन के सच्चे प्रवक्ता एवं वैतालिक है। भारत वर्ष की आत्मा उनके भीतर प्राणवान है आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक की आत्मा में कविवर पूर्णरूपेण अपने स्वाभावित माधुर्य के साथ सुरक्षित संरक्षित पल्वित एवं पुष्पित है। भारत की माटी से, उसके गिरिकानन से, उन्हें प्रगाढ़ अनुराग है, इसलिए अपने साहित्य को अपनी ललित कल्पना के रंगों से रंजित कर उन्होंने उसके अत्यन्त प्राणवान, भव्य एवं मनोरम चित्र अंकित किए हैं। इसके साथ ही साथ उनकी रचनाओं में जीवन, समाज, शिक्षा, राजतंत्र, नारीत्व, पुरुषत्व, प्रभृति सभी विषयों से सम्बन्धित विषयों के उच्चादर्शों की अभिव्यक्ति हुई है।

इस प्रकार से कालिदास के साहित्य के सम्यक विवेचनोपरान्त हम निःसन्देह रूप से कह सकते हैं कि आज की स्वार्थपूर्ण उपभोक्तावादी संस्कृति, संस्कारविहीन सभ्यता, पतनोन्मुखी मानव मूल्य जिस प्रकार से मानव अस्तित्व के समक्ष एक चुनौती उपस्थित कर रहे है ऐसे में हम कालिदास के साहित्य में निहित लोक कल्याणकारी तत्वों का ग्रहण कर समाज को श्रेष्ठतम बना सकते हैं।

अतः वर्तमान समय में कालिदास के साहित्य का सिंहावलोकन करने की अतीव आवश्यकता है। लोक कल्याण की भावना से भावित उनका विचार द्रष्टव्य है –

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्व कामनावाप्नातु सर्व सर्वत्र नन्दतु।।

सन्दर्भ संकेत

1. रघु0 8/87
2. रघु0 1/7
3. तपोवनों की संस्कृति... – 2/7
4. रघुवंश 1/79
5. रघुवंश 1/8
6. कुमार सम्भव 1/28
7. विशेषयुक्ता माल–1/16
8. मालवि0–2/9
9. रघु 1/88
10. रघुवंश – 14/46
11. अभिज्ञान शा0 4/18
12. अभिज्ञान शा0 4/22
13. अभिज्ञान शा0 1/19
14. कुमार सं0 5/2

❑❑

''लोकहित में सौमनस्यता''– वैदिक परिप्रेक्ष्य में

डॉ. पूजा श्रीवास्तव
असि. प्रो. – संस्कृत विभाग
महिला महाविद्यालय (परा0), किदवई नगर, कानपुर

आज के वैज्ञानिक युग में वेदों का अध्ययन व अनुशीलन अपरिहार्य है। इसमें कदापि सन्देह नहीं कि पुनीत वैदिक विचार धारा शाश्वत जीवन दृष्टि एवं अवदात मानवीय अभीत्साओं की संवाहिका है। जो आधुनिक युग में भी प्रेरक मूल्य बोध प्रदान करने में सक्षम है तथा आने वाले समय में भी इसी भाँति अविरत आशा, उत्साह एवं स्फूर्ति की संदेश वाहिनी रहेगी। मानव जीवन परमात्मा की अद्भुत अलौकिक देन है। ईश्वर ने मानव को अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ बनाने के लिये मेधा, प्रज्ञा आदि विशिष्ट गुण प्रदान किये जिससे वह श्रेष्ठ जीवन जीकर अपने नैतिक गुणों व सदाचार से युक्त कार्यों के द्वारा दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त कर सकें। इस जीवन का आधार सौमनस्यता अर्थात् पारस्परिक सहयोग एवं सेवा विनियम है। चित्त की प्रसन्नता, दूसरों के प्रति आदर का भाव और भलमन साहत ये तीनों ही चीजे सौमनस्य में समाई हुई है। लोकहित में सौमनस्यता का महत्वपूर्ण योगदान है। सौमनस्य शब्द संस्कृत के (सुमनस्+ष्यञ्) सुमनस् से व्युत्पन्न है।[1] इसका अर्थ है सद्भावना, हार्दिक प्रेम और सामंजस्य।

अर्थवेद में सौमनस्य के विषय में अनेकों मन्त्र प्राप्त होते है। सौमनस्य का तात्पर्य हृदय की एकता और विचारों में एकता का होना है अर्थात् व्यक्ति–व्यक्ति के व्यवहारों में मेल हों। सभी एक–दूसरे के साथ मिलन सार वृत्ति रखे। उनके मन में एक–दूसरे प्रति दूरी का भाव न हों। यदि मनुष्य में एक दूसरे के प्रति सद्भाव या प्रेम की भावना हो तो न सिर्फ हमारी कई मुश्किलें हल हो जाती है बल्कि जीवन के लिये तय किये गये लक्ष्य को प्राप्त करने में भी आसानी हो जाती है।

सहृदयं सांमनस्यमविंद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यव,
जातं वत्समिवाध्न्या।[2]

जब सद्भावना होगी तभी मन में एकता होगी और तभी विचारों में साम्य होगा तत्पश्चात ही सब एक सूत्र में पिरोये जा सकेंगे। अथर्ववेद के निम्न मन्त्र में शुद्ध सद्भावना के वातावरण में एकत्व के भाव को व्यक्त करते हुए कहा गया है कि–

ज्यायस्वन्तश्चित्तनो मा वियौष्ट
अन्यौ अन्यस्मै वल्गु वदन्त एव,
स ध्री चीनान् वः संमनसस्कृणोमि।[3]

ऋग्वेद के एक मन्त्र में[4] कहा गया है कि शुभ विचार सब ओर से हमारे पास आये। अर्थात् हम जितने शुभ विचारों को सुनेंगे या मनन करेगें, उनसे हृदय में सद्गुणों की पृष्ठभूमि तैयार होगी। ऋग्वेद व यजुर्वेद में कहा गया है–

भद्रे कर्णेभिः शृणुयाम देवाः,
भद्रं पश्येमाश्रभिः यजत्राः।[5]

अर्थात् हम शुभ देखें और शुभ वचन ही सुनें। इसका तात्पर्य है कि हम जैसा देखते और सुनते हैं, उसी प्रकार का कार्य करने में प्रवृत्त होते हैं। यदि हम अच्छी बातें सुनेंगे, अच्छा देखेंगे तो हमारे काम भी अच्छाई की ओर जायेंगे। यदि बुरा देखेंगे तो बुराई की तरफ अग्रसर होंगे।

एक दूसरे के प्रति बुनियादी आदर व सद्गुणों का होना भी सौमनस्ता को व्यक्त करता है। सद्गुणों से ही जीवन में वास्तविक मधुरता आती है। मुख से मीठा बोलने वाला कभी किसी का अप्रिय नहीं होता। इसीलिये वैदिक आर्य चाहता है कि 'मेरी वाणी माधुर्य रस से पूर्ण हो।' मधुमतीं वाचमुदेयम्। मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।[6] यहाँ तक कि वह आवागमण में भी मधुरता की कामना करता है– 'मेरा चलना–फिरना मंगलमय हो मेरा दूर–गमन भी मधुर हो।' मैं मधुर वाणी का प्रयोग करूँ और मधुर दर्शनों से युक्त रहूँ।

वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधु संदृशः
शुभानैर्वो चैस्तन्नों हरिवो यन्ते अस्मे।[7]

ऋग्वेद में कहा गया है– विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः।[8] अर्थात् हम सदा ही अपने को प्रसन्न रखे। मन की प्रसन्नता सत्वशुद्धि का परिणाम होती है। प्रसन्नता से ही समस्या का समाधान मिलता है। प्रसन्नता से मन में निर्मलता और स्वच्छता दोनो आती है। ऋग्वेद के श्लोकों में सुभाषित दिया है कि प्रसन्नचित रहने वाला व्यक्ति हमेशा आगे बढ़ता है –

क) ओऽम् तरत् सा मन्दी धावति धारया सुतस्यान्धसः तरत् स मन्दी धावति।

ख) क्रीडन्तस्त्वा सुमनसः सपेम।[10]

इसका अभिप्राय है कि प्रसन्न चित्त या हंस मुख व्यक्ति संसार रूपी सागर में कभी नहीं डूबता। वह बड़ी–बड़ी विपत्तियों और बाधाओं को भी हँसते हुए सहन कर लेता है। ऋग्वेद में कथन है कि यदि मनुष्य अपने अन्दर के सभी दुर्गुणों और दुर्विचारों को भगाना चाहते है। तो सदा मन को प्रसन्न व शुद्ध रखें। भगवद्गीता में भी मन की प्रसन्नता को महत्व देते हुये कहा गया है कि चित्त प्रसन्न रहने से सारे दुःख दूर हो जाते हैं, जिसको प्रसन्नता प्राप्त होती है उसकी बुद्धि तुरन्त स्थिर हो जाती है

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्यपोय जायते।
प्रसन्नाचेततो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।[11]

आज के समय में मनुष्य के अन्दर इस तरह के भावों का अभाव दिखलाई देता है। हर क्षेत्र में चाहे वह राजनीति हो, पारिवारिक हो या सामाजिक मनुष्य एक–दूसरे को नीचा दिखाने के लिये हर पल तैयार रहता है। उसके अन्दर विभिन्न प्रकार के मतभेदों, विचार भेद आदि ने अपना ऐसा प्रभुत्व जमाया हुआ है जिससे मनुष्य–मनुष्य में अविश्वास व अनादर का भाव हर पल दृष्टिगोचर होता है। सुख और शान्ति अनाचारपूर्ण निकृष्ट विचारों से कभी प्राप्त नहीं हो सकती। उत्कृष्ट विचार सदा शुभ मार्ग की ओर अग्रसर करते हैं। शुभ कर्म तभी सम्भव है जब मन को कुटिलता और पाप से मुक्त रखा जाए। जब तक कुविचार रूपी असुर हमारे हृदय में बैंठे रहेंगे, तब तक हम किसी भी प्रकार की आत्मिक उन्नति नहीं कर सकते। मन की पवित्रता ही सात्विक गुणों का आधार होती है।

वेदों में इसीलिए ऐसी कामना की गई है कि हम उत्कृष्ट और शुभ जीवन के लिये प्रयत्नशील हों। उदायुषा स्वायुषोदस्थाम्।[12] यजुर्वेद में सद्भावना व लोकहित का उपदेश देते हुये कहा गया है कि हम परस्पर एक–दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें। हम स्वयं दूसरों को अपना भाई या मित्र समझें। परस्पर एक–दूसरे को मित्रवत् समझें और सब लोग आपस में मित्र की दृष्टि से देखें।[13] यह वह सद्गुण है जिसके द्वारा मनुष्य में विश्व बन्धुत्व की भावना

जागृत होती है। जहाँ परस्पर प्रेम की भावना होती वहाँ समाज स्वतः ही सभ्य और सदाचार पूर्ण हो जाता है तथा देश निरन्तर उन्नति करता है।

अथर्ववेद के एक मन्त्र में अति सुन्दर बात कही गई है कि हम ऊँच–नीच या बड़े–छोटे का भेदभाव न करते हुये परस्पर प्रेम से बोलें और किसी प्रकार का हार्दिक मनमुटाव न रखें। जब हृदय में एकता होगी तभी सामनस्य विशाल रूप लेगा। और तभी यह सौमनस्य समाज में व्याप्त होगा। अतएव अथर्ववेद[14,15] में कहा गया है। कि हमारा यह सौमनस्य अपने और पराये सभी के साथ स्थापित हो, सभी व्यक्ति परिचित या अपरिचित हार्दिक एकता के गठबंधन में बंध जायें, हम अपने विचारों से संगठित होने का अनुभव करें, इसके लिए आवश्यक है कि हमारे मन में सात्विकता और पवित्रता हों, तभी कल्याण के मार्ग को अपनाया जा सकता है। इसीलिए वैदिक समाज में लोगों को निर्देश था कि परस्पर एक दूसरे से प्रेम करो,[16] सत्य नियमों में सदा जागरूक रहो[17] ऋग्वेद में यह उपदेश है कि –''हम सब एक साथ चले, एक साथ बोलें, हमारे मन सामनस्य से युक्त हो, हमारी मन्त्रणाएँ, स्वभाव, समितियाँ एक विचार वाली हों। हमारे मन समान हो। हम समान विचार से समष्टिगत निर्णय लें, हमारे हृदय मन और हमारे विचार सह अस्तित्व की भावना से ओत–प्रोत हो।''

सं गच्छध्वं सं वदध्वं
सं वो मनोसि जानताम्
समानो मंत्रः समितिः समानी,
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानी व आकृतिः समाना हृदयानि वः
समानमस्तु वो मनो, यथा वः सुसहासति।।[18]

प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र में भी ''धियो यो नः प्रचोदयात्''[19] वाक्य में मन व बुद्धि को कल्याण कारी कार्यों में प्रेरित करने की प्रार्थना की गई। वास्तविक रूप में यदि देखा जाये तो यह कल्याणकारी बुद्धि ही मनुष्यता की सर्वोच्च सम्पत्ति है। इसी के द्वारा मनुष्य में परस्पर सौमनस्य रहता है। इसलिये वेद में यह प्रेरणा दी गई है कि मनुष्य निश्छल भाव से दूसरों की भावना का आदर करते हुये सब ओर से मनुष्य की रक्षा करें।[20] पारस्परिक सहयोग, सामंजस्य एवं आदान–प्रदान से भूगोल का भी हित होता है और द्युलोक का भी कल्याण होता है। पारस्परिक सहयोग से मानव प्रत्येक स्थान पर सफल होता है। वैदिक आर्य परस्पर मैत्री–भाव की आकांक्षा रखते थे। जिससे सौमनस्य और सौहार्द बना रहे। देवताओं से भी मित्रता करने की अभिलाषा रखता था।

सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।

वर्तमान समय में यदि प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से वेदों में वर्णित इन शाश्वत सद्गुणों का अनुसरण करने का प्रयास करें तथा आज के बच्चों में भी इन वैदिक विचारों के बीज को डालें तो आज भी हमारा समाज भ्रष्टाचार और अनाचार, दुःख दारिद्रय आदि दोषों से रहित सदाचार प्रगतिशील समाज का रूप धारण कर सकता है। जहाँ सम्पूर्ण विश्व एक घोसलें के समान हो जाता है।

सन्दर्थ संकेत

1. 2204 : मानस – मूल्यपरक शब्दावली का शब्द कोशः [https :// books. google.co.in.]
2. अथर्ववेद – 3.30.1
3. अथर्ववेद – 3.30.5

4. ऋग्वेद् – 1.89.1 – आ नो भद्राः कृते वायन्तु विश्वतः।
5. यजुर्वेद – 25.21, ऋग्वेद–1.89.8
6. अथर्ववेद – 16.2.2
7. अथर्ववेद – 1.34.3
8. ऋग्वेद – 6.75.8
9. ऋग्वेद – 9.58.1
10. ऋग्वेद – 4.4.9
11. भगवद्गीता – 2.65
12. यजुर्वेद – 4.28
13. यजुर्वेद – 36.18 – मित्रस्थ चक्षुषा समीक्षा महे
मित्रस्य मा चक्षुषा
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
14. अथर्ववेद – 7.52.1
15. अथर्ववेद – 7.52.2
16. अथर्ववेद – 3.30.1 – अन्यो अन्यम् अभि हर्यत् –1
17. ऋग्वेद – 9.61.24 – व्रतेषु जागृहि
18. ऋग्वेद – 10.191.2,3,4
19. ऋग्वेद – 3, 62, 10
20. ऋग्वेद – 6.75.14 – पुमान् पुमासं परिपातु विश्वतः।
21. अथर्ववेद – 19.15.6

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

समावेशी शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2006

श्रीमती रीमा शर्मा
शोधार्थी पी–एच0डी0 (शिक्षाशास्त्र)
जीवाजी वि0वि0, ग्वालियर

समावेशी शिक्षा का विकास – समावेशी शिक्षा एक आधुनिक शिक्षा प्रणाली है साधारण शब्दों में जब हम सभी बालकों को उनके धर्म, जाति, संस्कृति उनकी क्षमता और निर्योग्यता के आधार पर कक्षा में अलग–अलग न करके विभिन्न संसाधनों का प्रयोग करके सबको साथ एक समान शिक्षा देते है। तो ऐसी व्यवस्था समावेशी शिक्षा कहलाती है।

समावेशी शिक्षा का अभिप्राय ऐसी शिक्षा प्रणाली से है जिसमें सभी छात्रों को बिना किसी भेदभाव के सीखने सिखाने के समान अवसर मिले सर्वप्रथम विकलांग एवं विशिष्ट योग्यता वाले बालको के लिये अलग शिक्षा की व्यवस्था की गयी थी लेकिन भारतीय संविधान किसी भी प्रकार के भेदभाव को मान्यता प्रदान नहीं करता है। ऐसे में समावेशी शिक्षा प्रचलन में आयी जो भिन्न–भिन्न आवश्यकता वाले बालको को समान बालको के साथ अध्ययन करने का अवसर प्रदान करती है। समावेशी शिक्षा का उद्देश्य सभी प्रकार के बालकों को एक समान शैक्षिक अवसर प्रदान करना है। ताकि बालक आत्मनिर्भर होकर मुख्य धारा में शामिल हो सके।

समावेशी शिक्षा की जड़े कनाड़ा और अमेरिका से जुड़ी हुयी है। अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर समावेशी शब्द का प्रादुर्भाव 90 के दशक के मध्य में हुआ यूनेस्को द्वारा 1994 में सलामांका (स्पेन) में विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं पर एक विश्व सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें सभी बालको को एक समान शिक्षा सुलभ कराने का प्रण लिया गया इस सम्मेलन में शामिल 92 देशों की सरकार एवं 25 अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों ने शिक्षा को एक मौलिक अधिकार मानने का प्रस्ताव पारित किया। प्रत्येक बालक की अभिरूचि, योग्यता, आवश्यकता एवं सीखने की क्षमता अलग–अलग होती है। इस उद्घोषणा के साथ सलामांका सम्मेलन का समापन किया गया। वर्ष 2000 में डाकर (सेनेगल) में आयोजित विश्व शिक्षा मंच में भी वंचित बालको के लिये समावेशी शिक्षा की वकालत की गयी। इस सम्मेलन में सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा प्राप्ति के लिये वर्ष 2015 तक समावेशी शिक्षा के लिये विशेष रणनीति बनाने पर विचार किया गया। शिक्षा का समावेशीकरण यह बताता है कि विशेष शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अशक्त या विकलांग बालक को एक सामान्य छात्र के समान शिक्षा प्राप्ति के अवसर मिलने चाहिये।

भारत सरकार ने 1994 में ही सलामांका वक्तव्य पर हस्ताक्षर कर अपने देश में भी समावेशी शिक्षा को लागू करने का निर्णय लिया गया। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने 2005 ई0 में 14 से 18 वर्ष के निशक्त बालकों के लिये (निशुल्क बालकों एवं युवाओं के लिये समावेशी शिक्षा नामक) एक विस्तृत कार्य योजना का निर्माण किया गया।

इस योजना के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है।

1. समावेशी शिक्षा के माध्यम से विकलांग बालको को मुख्यधारा में लाना।
2. विद्यालय में ऐसे सभी बालको का प्रवेश सुनिश्चित करना।
3. सामाजिक सहभागिता के माध्यम से बालको के अधिगम एवं अन्य क्षमताओं का विकास करना।
4. उच्च शिक्षा में विकलांगों से सम्बन्धित अनुसंधान कार्य को बढ़ावा देना।
5. विकलांग बालकों के लिये विशेष पाठ्यक्रम संसाधन एवं शिक्षण विधियों का निर्माण करना।

6. विकलांग बालकों की समस्या व उसके समाधान तथा अधिकारों के प्रति बालकों के अभिभावकों एवं समाज को जागरूक करना।
7. उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिये विकलांग बालकों को निरंतर प्रोत्साहित करना।
8. ऐसे बालको के जीविकोपार्जन के लिये शिक्षा का उन्नयन करना।

समावेशी शिक्षा एक दृष्टिकोण ही नहीं बल्कि माध्यम भी है यह सीखने की चाह रखने वाले सभी बालकों को अवरोधो के बाबलूद भी आगे बढ़ने को प्रेरित करती है। समावेशी शिक्षा सभी बच्चों को तरह–तरह की भिन्नताओं के बाबजूद उन्हें पठन–पाठन का एक समान अवसर प्रदान करती है। पहले समावेशी शिक्षा की परिकल्पना सिर्फ विशेष प्राचीन समय में विशेष योग्यता वाले बालकों के लिये अलग से शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी। ऐसे बालकों को निम्न श्रेणी में विभाजित किया जाता सकता है।

1. हियरिंग इम्पेयरमेंट (सुनने वालो की दिक्कत)
2. मेटल रिटार्डेशन (मानसिक पिछड़ापन)
3. लोकोमोटर इम्पेयरमेंट (शारीरिक व मांसपेशीय विकार)
4. विजुअल इम्पेयरमेंट (दृष्टि सम्बन्धी परेशानी)
5. लर्निंग डिसएबिलिटीज (सीखने सम्बन्धी विकार)

वर्तमान शिक्षा पद्धति उपरोक्त अक्षमताओं के आधार पर बालकों में भेदभाव नहीं करती है। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था विशेष विद्यालय या कक्षा जैसे समप्रत्यय को स्वीकार नहीं करती है। अब विकलांग बच्चों को भी सामान्य बच्चों की तरह ही शैक्षिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 2006

विकलांग व्यक्तियों की शिक्षा के लिये सुनिश्चित किया गया है। कि प्रत्येक विकलांग बच्चे की स्कूल स्तर की शिक्षा के लिये उपयुक्त पहुँच हो इसके लिये असमर्थ व्यक्तियों की शिक्षा के लिये राष्ट्रीय नीति 2006 में निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखा गया है –

1. प्राइमरी, माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा स्तर पर विकलांग बच्चों की संख्या तथा शिक्षा जारी रखने की वार्षिक समीक्षा करने के लिये अलग व्यवस्था की जायेगी।
2. विकलांग बच्चों की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिये प्रत्येक राज्य/संघ राज्य क्षेत्र में समावेशी शिक्षा के मॉडल स्कूल स्थापित किये जायेगें।
3. अनेक विकलांग बच्चे जो समावेशी शिक्षा में शामिल नहीं हो सकते, को विशेश स्कूलों में शैक्षिक सेवायें मिलती रहेंगी। विशेष स्कूल मुख्यधारा की समावेशी शिक्षा में शामिल होने के लिये विकलांग बच्चों को तैयार करने में सहायता करेगे।
4. विभिन्न विकलांग बच्चों के लिये पाठ्यक्रम तथा मूल्यांकन पद्धति का विकास किया जायेगा जिनमें उनकी आवश्यकताओं तथा क्षमताओं का ध्यान रखा जायेगा।
5. 6 वर्ष की आयु तक के विकलांग बच्चों की पहचान की जायेगी तथा इसके बाद उनका आवश्यक उपचार किया जायेगा ताकि वे समावेशी शिक्षा में भाग ले सके।
6. मानसिक रूप से अपंग बच्चों के लिये मनोवैज्ञानिक पुनर्वास केन्द्रो में सुविधायें प्रदान की जायेगी।
7. कुछ स्कूल विकलांग बच्चों का नामांकन नहीं करते है ऐसा मुख्य रूप से स्कूल अधिकारियों तथा शिक्षकों की विकलांग व्यक्तियों की क्षमता के बारे में क्षमता की कमी के कारण होता है। और विकलांग बच्चों को समावेशी शिक्षा में शामिल करने के लिये स्कूल के शिक्षको, प्राचार्य तथा अन्य कर्मचारियों से जानकारी प्रदान

करने के लिये विशेष कार्यक्रम आयोजित किये जायेगे।

8. विकलांग व्यक्तियों के लिये उच्च शिक्षण संस्थाओं में 3 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की जायेगी। विकलांग छात्रों की शैक्षिक जरूरतों को ध्यान में रखते हुये विकलांगता केन्द्र स्थापित करने के लिये विश्वविद्यालयों, कॉलेजो, व्यवसायिक संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान की जायेगी। उन्हें विकलांग छात्रों के लिये कैम्पस में कक्षा छात्रावास तथा अन्य सुविधायें प्रदान करने के लिये प्रोत्साहित किया जायेगा।
9. सभी स्कूलों को सभी प्रकार के विकलांग बच्चों के लिय बाधामुक्त बनाया जायेगा। ताकि सभी बच्चों की इन स्कूलों तक पहुँच हो।
10. शिक्षण का माध्यम तथा उसकी पद्धति को सामान्य तथा बाधित बच्चों के अनुकूल बनाया जायेगा ताकि सभी बच्चों का शैक्षिक विकास सम्भव हो सके।
11. राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयों तथा दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों को लोकप्रिय बनाया जायेगा तथा उनका विस्तार देश के अन्य भागों में किया जायेगा।
12. विद्यालयों को ऐसी जगहों पर स्थापित किया जायेगा जो विकलांग क्षेत्र की सुविधा के अनुसार हो ओर जहाँ से यात्रा दूरी कम हो।
13. स्कूलों में माता–पिता अध्यापक परामर्श तथा शिकायत निवारण प्रणाली की स्थापना की जायेगी।
14. सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा वर्तमान में सहायता दिये जा रहे विशेष स्कूल बढ़ती हुई समावेशी शिक्षा के लिये संसाधन केन्द्र बन जायेगे। मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा आवश्यकता के अनुसार नये विशेष विद्यालय खोले जायेगे।
15. विकलांग बच्चों के प्रबन्ध सम्बन्धी मुद्‌दों पर एक मॉड्‌यूल अध्यापकों के प्रवेश तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शामिल होना।

सन्दर्भ संकेत

1. उपाध्याय, डॉ0 राधावल्लभ– निर्देशन एवं परामर्श– अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा 2016, पृष्ठ 156
2. पाठक डॉ0 पी0डी0– शिक्षा मनोविज्ञान– श्री विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा– पृ0 627
3. लाल रमन बिहारी, पलोड सुनीता– अधिगमकर्ता का मनोविज्ञान एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया– आर0लाल, पब्लिकेशन्स मेरठ पृ0 242
4. शर्मा मीनाक्षी, सक्सैना बीना– समावेशी विद्यालयों का निर्माण– राखी प्रकाशन आगरा, पृष्ठ 110
5. समावेशी शिक्षा एक वास्तविकता– (योजना) अप्रैल 2013 नई दिल्ली पृष्ठ 17–20
6. गर्ग बी.– सर्वशिक्षा अभियान– कॉमनवेल्थ पब्लिकेशन लि0 दिल्ली 2012
7. भार्गव महेश– विशिष्ठ बालक शिक्षा एवं पुनर्वास– एच0पी0 भार्गव बुक हाउस आगरा, 2015
8. श्रीवास्तव अखिलेश कुमार– समावेशी विद्यालयों का सृजन– राखी प्रकाशन लि0 आगरा 2017, पृष्ठ 129
10. ठाकुर यतीन्द्र– समावेशी शिक्षा– अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा 2016 पृष्ठ 46

❑❑

प्रयोगवाद और गिरिजाकुमार माथुर

डॉ. शुभा बाजपेयी
निश्चित मानदेय–प्रवक्ता, हिंदी विभाग
एस.एन.सेन. कॉलेज, कानपुर

जीवन के हर क्षेत्र में प्रयोग का बड़ा महत्व है। प्रारम्भ से ही मनुष्य अपने जीवन को उन्नत बनाने के लिए प्रयत्न करता रहा है। आदिम युग से आज तक सभ्यता के विकास की यात्रा के मूल प्रयोग और परीक्षण ही है। हर दिशा में ज्ञान प्राप्त करने की लालसा मनुष्य में विद्यमान रहती है। फिर वह चाहे आत्मगत हो चाहे बाह्यगत। शरीर से लेकर आत्मा तक और प्रकृति से पुरुष तक को जानने की जिज्ञासा मनुष्य में बड़ी सहज है। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयोग आवश्यक है। जीवन की आवश्यकताएँ प्रयोग के लिए प्रेरणा देती हैं। मनुष्यता की इस उन्नत यात्रा का बीज प्रयोग है और फल अद्युनातन ज्ञान–विज्ञान आदि। इतना ही नहीं जब–जब जीवन के किसी क्षेत्र में रूढ़ियाँ पैर तोड़कर डेरा जगा लेती है। तब–तब प्रयोग उसे ध्वस्त करने में सहायक सिद्ध होता है।''[1]

साहित्य में जो भी नयी धारा प्रवाहित होती है ''अथवा जो भी नये मोड़ परिलक्षित होते हैं। उनका मूलाधार प्रयोग ही हेता है। शंकर देव अवतरे के अनुसार प्रयोग और कुछ भी नहीं है, वह साहित्य की ऐतिहासिक विवशता है। यही उसका प्रयोजन है। विभिन्न देशकाल की सीमाओं में इन प्रवृत्तियों की प्रेरणा से साहित्य में जाने–अनजाने आलोचनात्मक मोड़ आते हैं वे प्रयोग हैं व उन प्रयोगों का उसी दृष्टि से यथार्थ–मूल्यांकन भी प्रयोग है। इस प्रकार के स्वरूप में ही उसका प्रयोजन निहित है।''[2]

अज्ञेय के अनुसार – ''प्रयोग सभी काल के कवियों ने किये हैं'' यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है।[3] प्रयोगवादी काव्य अपने परिवेश की उपज है। नवीन मूल्यों के प्रति एक नयी आस्था व मूल्यों के नवीन प्रतिमानों का बोध देने का आग्रह प्रयोगवादी कविता में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। श्री अज्ञेय जी लिखते हैं कि– ''कुछ वर्ष पूर्व के लेखकों ने अपने को नैतिक खण्डहर के बीच खड़ा हुआ पाया उसके पुनर्निर्माण की तत्कालिता का बोध नये कवियों को है। मूल्यों के मूल श्रोत के बारे में आज जितना आग्रह है उतना पहले कभी नहीं था। इतना अवश्य है कि मानव के बाहर मूल्यों के किसी अधिदैविक श्रोतों का आग्रह आज नहीं है तथा मानव मूल्यों का उद्‌गम भी साधारण मानव से है, किसी काल्पनिक आदर्श अथवा प्रतीक पुरुष से नहीं।''[4]

विराट विघटन और नये मूल्य बीच का उदय इन दोनों के तनाव के मध्य लेखन/प्रयोगवाद इस विघटन तथा नवीन मूल्यों की स्थापना को वाणी देने के लिए अनिवार्य था।

आधुनिक जीवन की तीव्र गति से संचालित कविता ने कुछ ही वर्षों में कितनी ही करवटें ली हैं। प्रत्येक दशक में उसके दृष्टिकोण, संवेदन तथा शिल्प सभी में बहुत भेद परिलक्षित होता है। युग विशेष के काव्य में स्वाभाविक अनुभूतियों, नवीन दृष्टिकोण और नवीन चेतना का स्फुरण हुआ करता है तथा इस नवीन स्फुरण में कविता परम्परागत लीक को छोड़कर नया पथ ग्रहण करती है और काव्य जगत में नवीन परिवर्तन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। यही कारण है कि हिंदी कविता में भी समय–समय पर नवीन प्रवृत्तियाँ विकसित होती रहीं एवं उक्त प्रवृत्तियों को 'वाद' भी कहा गया। हिंदी कविता इन वादों के बीच ही जन्मी, पनपी और एक विराट अक्षय वट की तरह अपनी जड़ों को देशान्तर तक फैला चुकी है। इस संदर्भ में छायावाद, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद आदि कुछ नाम उल्लेखनीय हैं। डॉ. विनयमोहन शर्मा के शब्दों में ''आधुनिक हिंदी कविता में एक नये वाद का स्वर सुनाई देने लगा है'' और वह है प्रयोगवाद। इस प्रकार की रचनाओं में आत्मपरक भावनाओं व परस्पर विचारों के साथ सामंजस्य स्थापित करने का दावा किया जाता है। शैली की अभिनवता, नूतन, प्रतीक, कल्पनाएँ, प्रचलित पद तथा

नवीन छन्दों का सृजन इनकी विशेषता बतायी जाती है।''[5]

प्रयोगवाद हिन्दी साहित्य की आधुनिकतम प्रवृत्ति है। जिस प्रकार प्रगतिवाद को छायावाद की प्रतिक्रिया कहा जाता है उसी प्रकार 'प्रयोगवाद' प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया है।

तार सप्तक के सात कवियों (अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा) में गिरजा कुमार माथुर भी सम्मिलित हैं, अतः उन्हें निस्संकोच रूप से प्रयोगवादी कवि कहा जा सकता है। साथ ही 'तार सप्तक' के प्रथम संस्करण में अपने वक्तव्य में स्वयं माथुर जी ने लिखा है कि ''ध्वनि विध ाान में मेरे प्रयोग मुख्यतः स्वर ध्वनियों के हैं।.... जहाँ जिस वस्तु को इंगित करना होता है, वहाँ उस ध्वनि का उतना ही प्रयोग है।'' इसी प्रकार 'तारसप्तक' के दूसरे संस्करण में 'पुनश्च' शीर्षक से माथुर जी ने जो अपना विस्तृत वक्तव्य दूसरी बार दिया है उसमें उन्होंने पुनः यही लिखा है कि आधुनिक बोध की काव्य धारा को प्रारम्भ हुए अब चौथाई शती बीत चुकी है। तार सप्तक जिसकी प्रथम समवेत अभिव्यक्ति थी, जो चेतना निम्न सन् 1939–40 में उदित हुआ था, वह अब तक हिंदी कविता का सम्पूर्ण क्षितिज आच्छादित कर चुका है और अनेक तीखे संघर्ष तथा विरोध ी आघातों के पार आकर अपनी विलग सत्ता स्थापित कर चुका है। कविता की जिस चेतना का प्रादुर्भाव सन् 1939–40 में हुआ था, उसने पिछली समस्त मान्यताओं को बदल डाला व अभूतपूर्व बौद्धिक नवोन्मेष को जन्म दिया। पूरी की पूरी मर्यादा प्रतिस्थापित कर दी गयी। इतनी बड़ी तात्विक क्रांति हिंदी की कविता में कभी नहीं आयी थी।' माथुर जी का कथन है कि ''मुझे गर्व है कि मैं उस क्रांति बिन्दु पर लेखनी लिए उपस्थित था और मुझ पर तथा मेरे कुछ थोड़े से सहधर्मियों पर आधुनिकता का वह नया उठता हुआ आलोक प्रथम बार पड़ा था।... वास्तव में प्रयोगशीलता के साथ हिंदी साहित्य में 'आधुनिकता' का समारम्भ हुआ था, व पिछले पच्चीस वर्ष के काव्य विकास को इसी रूप में समझा जाना उचित है।''

श्री माथुर के उक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें प्रयोगों पर पूर्ण आस्था रही है व उन्होंने स्वयं ही प्रयोगवादी काव्यधारा के साथ अपना घनिष्ठ सम्बन्ध होना स्वीकार किया है। इस प्रकार उन्हें प्रयोगवादी कवि समझना अनुपयुक्त नहीं जब पड़ता व डॉ. नगेन्द्र का तो यही स्पष्ट मत है कि ''नये युग की तीसरी प्रवृत्ति है, प्रयोगवाद, जिसका नाम बाद में चलकर नई कविता पड़ गया। इस नई प्रवृत्ति का विकास करने में 'गिरिजा जी' का बहुत बड़ा योगदान है ''साथ ही डॉ. इन्द्रनाथ मदान भी यही कहते हैं कि 'प्रयोगवादी कवियों में अज्ञेय के अतिरिक्त गिरिजा कुमार माथुर आदि के नाम लिये जाते हैं। इसी प्रकार अज्ञेय जी ने 'आज का भारतीय साहित्य में लिखा है' अब जिसे नई कविता कहा जाने लगा है, उसके रूप व मुहावरे के विकास में गिरिजा कुमार माथुर का निश्चित योग रहा है। किन्तु अपने अमेरिका प्रयास से लौटकर उन्होंने जो कविताएँ लिखी हैं, उससे यही ज्ञात होता है कि वे प्रयोग की एक बंधी लीक में पड़ गए हैं' और उस लीक को अति की सीमा तक ले जा रहे हैं।

अधिकांश समीक्षकों के सोद्देश्य श्री माथुर ने भी प्रयोगवाद व नयी कविता को पृथक–पृथक न मानकर दोनों को एक ही माना है' तथा काव्य की प्रगति को लेखा–जोखा प्रस्तुत करने के पश्चात् यही कहा है कि उसे प्रयोगवाद या नयी कविता के विलग निकायों में देखना असंगत है। इस प्रकार यदि श्री माथुर को 'नयी कविता' के कवियों में स्थान प्रदान किया जाता है, तो उनका प्रयोगवादी काव्य धारा से भी सहज ही सम्बन्ध स्थापत हो जाता है और स्वयं कवि के उद्गारों तथा अन्य कई विचारकों के मतों को ध्यान में रखकर हम श्री गिरिजा कुमार माथुर को प्रयोगवाद या नयी कविता के कवियों में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करने के पक्ष में है। कुछ समीक्षक श्री माथुर को किसी भी काव्य प्रवृत्ति से सम्बन्धित न मानकर श्री विशम्भर मानव के शब्दों में यही कहते हैं कि ''वास्तविक स्थिति यह है कि मंजीर के रचनाकाल में ये छायावाद से प्रभावित रहे। नाश और निर्माण पर प्रगतिवाद का स्पष्ट प्रभाव पाया जाता है। 'धूप के धान' व शिला पंख चमकीले' प्रयोगवाद से प्रभावित काव्य कृतियाँ हैं।''

श्री गिरिजा कुमार माथुर जी विचारधारा अन्य प्रयोगवादी समीक्षकों से कुछ पृथकता रखती है। वे नकेनवादियों की तरह जटिलता को काव्य का प्राणतत्व नहीं मानते और न अज्ञेय की तरह उसे कलाकार की विशालता व आपधर्म के रूप में स्वीकार करते हैं। वे दुरूहता को श्रेष्ठता का निकष नहीं मानते वह ये भी स्वीकार

करने में आपत्ति है कि श्रेष्ठ साहित्य दुरूहता से संपृक्त होता है। उनका विचार है कि अत्यंत जटिल अनुभवों को अत्यन्त सहज और सर्वग्राह्य रूप में व्यक्त करना तथा जटिलताओं के मूल में निहित सार्वजनिक सत्य के सूत्रा को प्रकट करना श्रेष्ठ साहित्य का लक्षण है। वे मानते हैं कि यदि कवि मानस में जटिलता विद्यमान है, तो उसका प्रभाव अभिव्यंजना के उपकरणों की अस्वाभाविकता, अपूर्णता, भग्नता तथा रूप व्यक्तित्व–विहीनता में लक्षित किया जा सकता है। फलतः भाषा रूपित व कृत्रिम हो जाती है। प्रतीक, श्रम साध्य चेष्टित व निरर्थक हो जाते हैं, उपमान तारतम्य विहीन हो जाते हैं तथा छन्द के नाम पर भ्रष्ट गद्य भी नहीं मिलता[7] माथुर के विचार पार्थक्य के कारण ही सम्भवतः अज्ञेय ने उन्हें कवि न मानकर गीतकार कहा है।[8]

अतः श्री माथुर की प्रयोगवादी कविताओं में यथार्थ बोध व सामाजिक दृष्टिकोण की प्रधानता है। व्यक्ति को समाज के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा गया है। वर्तमान समाज की आर्थिक विषमताओं को कवि ने प्रस्तुत किया है। उन्हें कृत्रिम आवरणों में छिपाने का प्रयास नहीं किया है। समाज के शोषित व तिरस्कृत लोगों के प्रति कवि की पूर्ण सहानुभूति है। क्योंकि वे बहुसंख्यक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। गांवों की शस्यश्यामला भूमि, किसानों, मजदूरों व इन सबसे बढ़कर मध्यवर्गीय क्लर्क के जीवन के अभावों व विषमताओं का चित्र तथा कवि के यथार्थबोध का ही परिचायक है। 'नाश और निर्माण' की मंशीन का पुर्जा, नामक कविता इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस कविता में एक ओर उच्च वैभव का चित्रण है, तो दूसरी ओर अल्प आमदनी वाले 'क्लर्क' की दिनचर्या का चित्रण है, जो सर्दी, गर्मी की परवाह किए बिना सुबह यत्रतत्र उठता है, फटे कपड़ों से कड़कड़ाती सर्दी का सामना करता हुआ, बगल में मोटी फाइलें समाप्त हो गयी हैं। जीवन भावहीन मशीन बन गया है–

शीत हवा में ठंडे सात बजे हैं
ठिठुरन से सूरज की गरमी हुई है
सारा नगर लिफाफों में सिकुड़ा सोता है,
पर वह मजबूरी से कांपता उठ आया है।
x x x x
रफू किया उसका वह स्वेटर
तीन सर्दियाँ देख चुका है,
उसका जीवन, जीवन हीन मशीन बन गया
जोड़ों के दिन की मिठास
अब जहर हुई।''[9]

माथुर जी ने जहाँ अभावग्रस्त जीवन का चित्राण किया है, वहीं वह आशा भी व्यक्त की है कि जीवन की विषम परिस्थिति को मानव–संघर्ष द्वारा अपने अनुकूल बना सकता है। अपने कठोर परिश्रम द्वारा जीवन को फिर सुखी व समृद्ध बना सकता है। वस्तुतः मानव जीवन संघर्ष का जीवन है अपने प्रयत्नों के द्वारा मनुष्य कमजोर तथा विषम अर्थव्यवस्था को भी अपने अनुकूल बना सकता है क्योंकि इस भौतिक संसार में प्रतियोगिता की प्रधानता है। प्रतियोगिता में कमजोर नष्ट हो जाते हैं और साहसी तथा संघर्षरत विजयी होते हैं। संघर्ष को कवि ने अणुबम के रूप में माना है–

''ज्वालामुखी के दीप–सा
संघर्ष का यह लोक है
हिलती हुई धरती यहाँ
हिलती हुई आधार है।
x x x x
संघर्ष का अणुबम यहाँ जांचा गया''

व्यक्ति मानव की प्रतिष्ठा माथुर जी के काव्य की महत्वपूर्ण विशेषता है। उन्होंने अपने काव्य में लघुमानव की प्रतिष्ठा की है और न अति मानव की। एक साधारण मध्यवर्गीय मनुष्य को उसकी दुर्बलताओं, सबलताओं सहित काव्य में प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही व्यक्ति के महत्व को स्वीकारा है, क्योंकि सामाजिक चेतना व व्यक्ति चेतना को अलग–अलग रखकर नहीं देखा जा सकता है। इस विषय में माथुर जी के विचार प्रस्तुत हैं ''नयी कविता का क्रमशः विकसित स्वर व्यक्ति पावनता और सामाजिक गरिमा की आकांक्षा का ही स्वर है। उसने निराकार समूह समष्टि का पक्ष ग्रहण नहीं किया, यद्यपि इकाई को सामाजिक संदर्भ से अलग नहीं देखा और न दूसरी और आत्मलीन एकान्तिक व्यक्तिवादिता को ही स्वीकार किया। वह केवल एक जीत का पक्ष लेती है। इकाई रूप आदमी का।

''विकृत हो गये हैं सभी मूल्यमान
सिर्फ घूमता है
रेजगारी–सा इंसान।''

माथुर जी की रचनाओं में व्यक्तित्व की सहज अभिव्यक्ति तो मिलती है किन्तु उसका अहंवादी रूप प्रायः नहीं पाया जाता है। अज्ञेय व मुक्तिबोध की रचनाओं की भांति माथुर जी की रचनाओं में भी यथार्थवाद आदि छटा देखने को मिलती है। कवि ने सामाजिक कल्याण, व्यक्ति की अवमानता किस प्रकार विसर्जित हो गयी है, इसका चित्रण माथुर जी के 'कोणार्क' पर तीसरा पहर कविता में किया है।

''मैं अंकित हो गया हूँ सम्पूर्ण
हर मूर्तित स्थिति में
घटित हुआ हूँ मैं
अब अपना कुछ नहीं है शेष
और अब मैं नहीं हूँ।''[11]

इस प्रकार कवि का मैं समष्टि का घोतक है। यह केवल अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा में ही संलग्न न रहकर उस बहुसंख्यक वर्ग के प्रति भी अपनी कल्याणकारी भावना तथा सहानुभूति प्रकट करता है, जिसने सारे जीवन दुःखों व अभावों को सहा है। इस रूप में माथुर जी का योगदान सर्वथा मौलिक है। उन्होंने अपने दुःख–दर्द से अधिक समाज की पीड़ा को मुखरित किया है।

निष्कर्षतः व्यक्ति के जागरूक व्यक्तित्व और निर्माणोन्मुखी क्षमताओं का चित्रण माथुर जी के काव्य में सर्वत्रा देखा जा सकता है। जो प्रयोगवादी कविता में विशेष रूप से अलग उठ खड़ी होती है।

संदर्भ संकेत

1. प्रयोगवादी काव्य डॉ. पवन कुमार मिश्र, पृ. 6
2. हिंदी साहित्य में काव्य रूपों का प्रयोग, पृ. 11
3. तार सप्तक, पृ. 75
4. आज का भारतीय साहित्य, पृ. 403
5. गिरिजा कुमार माथुर और उनका काव्य, डॉ. दुर्गाशंकर मिश्रा, पृ. 73
6. गिरिजा कुमार माथुर, धूप के धान, पृ. 11–12
7. अज्ञेय– आज का भारतीय साहित्य, पृ. 393
8. गिरिजा कुमार माथुर नयी कविता की वर्तमान स्थिति नयी कविता, पृ. 5–6
9. वही, पृ. 40
10. जो बंध नहीं सका, माथुर, पृ. 87
11. गिरिजा कुमार माथुर नयी कविता, 5–6, पृ. 41

❑❑

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय स्त्री की स्थिति

सुरेन्द्र प्रताप सिंह खरे
शोधार्थी पी–एच0डी0 (इतिहास)
विक्रम विश्वविद्यालय (उज्जैन)

सृष्टि की रचना में पुरुष और स्त्री एक–दूसरे के पूरक बनाये गये है। जब भी पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की एक भूमिका को पहचाना गया एवं उसके गुणों और क्षमताओं का पूरा उपयोग हुआ। फलस्वरूप नारी को एक सम्मानजनक स्थिति प्राप्त हुई। जहाँ समाज ने स्त्री के चारों ओर परम्पराओं की दीवार खड़ी की वहाँ वे शक्तिहीन और निष्क्रिय हो गई। भारतीय इतिहास के लम्बे दौर में समाज का परिवेश एक समान नहीं रहा है। परिणामस्वरूप किसी काल में नारी को समाज में उचित स्थान मिला तो किसी काल में उसे रसातल पर पहुँचा दिया गया। प्रस्तुत लेख में भारत में स्त्रियों की स्थिति में सुधार और गिरावट के क्रम पर एक विहंगम दृष्टि डालने का प्रयास किया गया है।

प्राचीन काल में नारी का समाज में गौरवपूर्ण स्थान था। उसे समाज का सम्मानित और पूजनीय अंग माना जाता था। नारी को पुरुशों के समान अधिकार व दर्जा प्राप्त था। राधा के साथ कृष्ण तो राम के साथ सीता पूजनीय थी। स्त्री के अभाव में पुरुष को अपूर्ण माना जाता था।

पूर्व वैदिक काल – यह काल भारत का सर्वाधिक गौरवशाली काल रहा है। यद्यपि उस समय पितृ प्रधान परिवार थे किन्तु महिलाओं को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। परिवार का मुखिया पुरुष महत्वपूर्ण निर्णय लेते समय स्त्री की सलाह को महत्व देता था। पर्दा प्रथा का अभाव था। महिलाएँ बिना किसी रूकावट के त्यौहारों, मेलों व विभिन्न सार्वजनिक समारोह में उन्मुक्तता से भाग लेती थी। वे बिना किसी हिचकिचाहट के पुरुषों के साथ वाद–विवाद एवं धार्मिक उत्सवों में भाग लेती थी। शिक्षा के क्षेत्र में भी पुत्र और पुत्री में अन्तर नहीं किया जाता था। दोनों को उपनयन संस्कार एवं शिक्षा के समान अधिकार प्राप्त थे। इस कारण उस काल में कई महिलाएँ शिक्षक, दार्शनिक, कुशल वक्ता और प्रसिद्ध कवियित्री के रूप में जानी गयी, जिनमें लोपा मुद्रा, घोषा, अपाला, विस्वारा आदि महिलाओं के नाम इतिहास में उल्लेखित है, जिन्होंने ऋग्वेद और मंत्रों की रचना की। उस समय बाल विवाह के स्थान पर स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी, जिसमें स्त्री को पति चयन के निर्णय का अधिकार था। लड़के और लड़कियाँ स्वतंत्रतापूर्वक साथ शिक्षा ग्रहण करते थे। लड़की जब तक चाहे अविवाहित रह सकती थी। विधवा स्त्री चाहे तो पुनर्विवाह कर सकती थी। सती प्रथा का उस काल में अभाव था। परन्तु इस काल में स्त्रियों को उत्तराधिकार एवं सम्पत्ति का अधिकार पूर्णरूप से प्राप्त नहीं था। इसी कारण शिक्षा के क्षेत्र को छोड़कर राजनीति और प्रशासन में तुलनात्मक रूप से उनकी भूमिका नहीं के बराबर थी। इस प्रकार वैदिक काल में नारी का स्थान संतोषजनक था। समाज में उसे उच्च स्थान प्राप्त था। उत्तर वैदिक काल : समानता से असमानता की ओर उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों के सन्दर्भ में परम्पराएँ यथावत रही। शिक्षा के क्षेत्र में स्त्री में स्त्री पूर्ण स्वतंत्र थी। वह दर्शन का अध्ययन कर सकती थी। मैत्रेयी उत्तर वैदिक काल की महान दार्शनिक रही है। उनके पति याज्ञवल्क्य के मध्य वार्तालाप उपनिषद के विचारणीय पृष्ठ है। गार्गी ने दार्शनिकों की परिषद् के समक्ष उच्च ज्ञान के विषय पर भाषण दिया था। इससे स्पष्ट होता है कि उत्तर वैदिक काल में स्त्रियाँ ज्ञान के प्रति जागरूक थी। परन्तु उत्तर वैदिक काल में मनुस्मृति से ज्ञात होता है कि मनु स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार के पक्षधर नहीं थे। उनके अनुसार बचपन में स्त्री पिता के, युवाकाल में पति के और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहती है, परन्तु वे यह भी मानते थे कि जहाँ स्त्रियों का आदर होता है, वहाँ खुशहाली बनी रहती है।

बौद्ध एवं उत्तर बौद्ध काल : कुछ अग्रणी महिलाएँ : बौद्ध काल में समाज में स्त्रियों की स्थिति के सम्बन्ध में स्पष्ट विवेचना नहीं मिलती है, परन्तु गुप्त काल में प्रभावती गुप्त जो कि चन्द्रगुप्त की पुत्री थी, लम्बे समय तक अपनी राजधानी की संरक्षक रही। राजा हर्ष की बहन राज्यश्री विधि निर्माण में सहायक थी। इसी काल में कश्मीर, उड़ीसा और आन्ध्र प्रदेश में स्त्रियों ने शासन किया। दसवीं शताब्दी में रानी दि्ददा ने कश्मीर पर 22 वर्षों तक शासन किया। कई स्थानों पर स्त्रियाँ प्रान्तों की राज्यपाल व गाँव की मुखिया रही। कवियित्री, गणितज्ञ एवं नृत्यांगनाओं के रूप में स्त्रियों ने महत्वूपर्ण भूमिका का निर्वाह किया। इससे स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में स्त्रियों की स्थिति सम्मानजनक थी। स्त्रियाँ पुरुषों के समान शिक्षा ग्रहण करती थी एवं वाद–विवादों में खुलकर भाग लेती थी। विवाह के क्षेत्र में नारी को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी परन्तु राजनीति में उनका दखल बहुत सीमित था। इस प्रकार उत्तर वैदिक काल में समाज के विकास में स्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही परन्तु मध्यकाल तक आते–आते नारी की सामाजिक स्थिति में गिरावट आने लगी।

मुगल काल : मुस्लिम आक्रमण और नारी की स्थिति में बदलाव – मुगल आक्रमण के पश्चात् हिन्दू नारी की स्थिति निरन्तर दयनीय होती चली गयी। परन्तु उच्चकुलीन राज परिवारों में कई महिलाओं के ऐसे ही उदाहरण मिलते है जब स्त्रियों ने समाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह किया।

दिल्ली सल्तनत और महिलाएँ – मध्ययुगीन भारतीय इतिहास में सर्वप्रथम सल्तनत काल के अन्तर्गत कुछ मुस्लिम स्त्रियों ने समाज के विविध क्षेत्रों में योगदान दिया। दिल्ली के सुल्तानों के रनिवासों में सुल्तान की माँ एवं उनकी बेगम का महत्वपूर्ण स्थान होता था। उन्हें 'मल्के जहाँ', 'मखदूमें जहाँ' की उच्च पद्‌वियाँ दी जाती थी। इन सबमें इल्तुतमिश की पत्नी शाह तुर्कान ने राजनीति में अपने प्रभाव को बनाये रखने के लिए रजिया की हत्या का षड़यंत्र किया। इसी तरह इल्तुतमिश की पुत्री रजिया ने गद्‌दी पर बैठने के बाद सारी सत्ता अपने हाथों में केन्द्रित कर ली। वैसे तो आम स्त्रियों की दशा इस काल में दयनीय थी, पर राजघरानों में स्त्रियों का वर्चस्व था। पर्दा प्रथा का प्रचलन प्रारम्भ हो गया परन्तु दक्षिण भारत के हिन्दु समाज पर मुस्लिम प्रभाव न होने के कारण पर्दा प्रथा का अभाव था। फिरोज तुगलक पहला सुल्तान था, जिसने स्त्रियों को पर्दा करने के लिए बाध्य किया। रजिया की क्षमताओं से प्रभावित होकर पुत्र होते हुए भी उसके पिता ने उसे गद्‌दी पर बिठाया पर रूढ़िवादी तुर्की अमीर स्त्री को सुल्तान पद पर नहीं देख सके। रजिया को अपदस्थ कर दिया गया। तत्पश्चात् अल्लाउद्‌दीन के शासनकाल में स्त्रियों को बढ़ावा नहीं मिला, परन्तु अपनी पत्नी कमला देवी के प्रभाव के कारण सुल्तान ने देवगिरी पर आक्रमण के आदेश दिये। इससे स्पश्ट है कि राजनीति के महत्वपूर्ण निर्णय लेते समय मुगल शासकों द्वारा स्त्रियों की राय को सम्मान दिया जाता था।

मुगलकाल : रनिवास और राजनीति – सल्तनत काल के बाद मुगलकाल में स्त्रियों की दशा अपेक्षाकृत अधिक संतुलित थी। अपने पूर्वज तैमूर और चंगेज खाँ के अनुरूप बाबर ने अपनी स्त्रियों को राजनीति में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रोत्साहित किया। बाबर की दादी एहसान दौलत बेगम, बाबर की पत्नी माहिम बेगम और दूसरी पत्नी मुबारिका बेगम ने राजनीति में अपनी योग्यता और कार्यक्षमता से प्रशासन संचालन में योगदान दिया। तत्पश्चात् हुमायूँ के काल में चचेरे भाई सुल्तान मिर्जा की पत्नी ने काबुल की राजनीति में गहरी रूचि प्रदर्शित की। इसके पश्चात् अकबर के काल में उनकी सौतेली माँ माहचूचक बेगम अकबर की प्रमुख दाई महाम अनगा ने राजनीति के संचालन में अकबर को सहायता दी। अकबर के ही काल में रानी दुर्गावती ने राज्य प्रशासन का संचालन किया। अकबर के पश्चात् जहाँगीर के काल में भी राजनीतिक निर्णयों में स्त्रियों की प्रभावी भूमिका रही। बादशाह भी उनकी अवज्ञा नहीं कर पाते थे। जहाँगीर के काल में रनिवास के प्रभाव की पराकाष्ठा उस समय हुई जब शासन के समस्त कार्य नूरजहाँ की सलाह से होने लगे। शारजहाँ के काल में मुमताज महल, उनकी पुत्री जहाँआरा ने भी राजनीति में अपना वर्चस्व बढ़ाया। औरंगजेब के काल में उनकी बहिन रोशनआरा का असाधारण प्रभाव था। शाही

मोहर रोशनआरा के अधिकार में थी। उसने बड़ी चतुराई से शासन का संचालन किया। इससे स्पश्ट है कि राजनीति के दांव–पेचों और षड़यंत्रों में स्त्रियों की प्रभावी भूमिका होती थी। वे राजनीतिक निर्णय लेती थी और प्रशासकीय मामलों में हस्तक्षेप करती थी। उनके कहने पर जगीरें दी जाती थी और शाही चिन्हों के माध्यम से वे अपने निर्णयों को लागू करती थी। इस प्रकार मुस्लिम शासकों के काल में शाही खानदानों में स्त्रियों की भूमिका राजनीति से पूरी तरह जुड़ी हुई थी।

मुगलकाल और समान्य महिलाएँ – मुगलकाल में आम स्त्रियों की स्थिति सम्मानजनक नहीं थी। मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से स्त्रियों की सम्मानजनक स्थिति में गिरावट आती गयी। पर्दा प्रथा, बहुविवाह प्रथा, सती प्रथा जौहर जैसी सामाजिक कुप्रथाएँ इसी काल की देन है। सती प्रथा केवल हिन्दु समाज में व्याप्त थी, पर पर्दा प्रथा का हिन्दू और मुस्लिम सभी स्त्रियों को कठोरता से पालन करना होता था। सामान्य वर्ग की स्त्रियों के लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। उच्चकुलीन परिवार आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण स्त्रियों के लिए घर पर ही अध्ययन की व्यवस्था कर देते थे, परन्तु पाठशालाओं में जाकर अध्ययन करना उस काल में एक दिवास्वप्न था। ऐसा नहीं कि केवल हिन्दु महिलाएँ मुस्लिम शासकों के कारण पिछड़ी या अशिक्षित रही। मुस्लिम स्त्रियाँ भी धनी एवं शासक वर्ग द्वारा भोगविलास की वस्तु समझाी जाती रही, जिनका दायित्व घर की चारदीवारी एवं मातृत्व था। हिन्दू महिलाएँ मुस्लिम शासकों के भय के कारण प्रतिबन्धित थी। इस प्रकार तत्कालीन मुगलकालीन समाज में आम स्त्री का योगदान समाज एवं प्रशासनिक क्षेत्र में नगण्य रहा। उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि कुछ महिलाओं ने घर से बाहर निकलकर प्रशासनिक और राजनीतिक भूमिकाओं को स्वीकार किया, परन्तु ये गिने–चुने उदाहरण राजकुल से संबंधित महिलाओं के है। आम स्त्री के समाज में ऊपर उठकर राजनीतिक दायित्वों का निर्वहन करने के उदाहरण मध्यकाल में प्राप्त नहीं है।

आधुनिक काल में स्त्रियाँ – 1757 के प्लासी के युद्ध से आधुनिक काल का प्रारम्भ माना जाता है। यह काल स्वतंत्रता आन्दोलन एवं अंग्रेजी शासन का काल था। इस काल में कई उदाहरण ऐसे मिलते है। जब नारी ने राजनीति को न केवल प्रभावित किया बल्कि इतिहास की धारा को मोड़ दिया। 1857 की क्रान्ति में स्त्रियों ने आन्दोलनकर्ता के रूप में नवीन भूमिका का निर्वाह किया। बेगम हजरत महत स्वतंत्रता आन्दोलन की प्रेरणा स्त्रोत थी। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अपने पति गंगाधर राव की मृत्यु के पश्चात् झाँसी के प्रशासन से संबंधित युगान्तकारी राजनीतिक निर्णय लिये। रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों का खुलकर विरोध किया। इसके पश्चात् रामगढ़ की रानी के पति की मृत्यु के बाद जब अंग्रेजों ने अधिकार जमाना चाहा तो रानी ने अंग्रेजों को चुनौती दी और युद्ध में भाग लिया। इससे अतिरिक्त 1857 के विद्रोह में अन्य कई स्त्रियों ने भाग लिया, जिनमें, रानी दिगम्बर कौर, ठकुरानी बद्री, रानी टीकरी (गया) रानी जैतपुर, रानी जिन्दन गुजरांवाला आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने अंग्रेजों के विरोध में अपनी आवाज बुलन्द की।

19वीं शताब्दी का सामाजिक सुधार और नारी उत्थान – 1857 की क्रान्ति के पश्चात् भारतीय समाज में पाश्चात्यीकरण, समाज सुधार आन्दोलन, राष्ट्रीय चेतना जैसे कई तत्वों का समावेश हुआ, जिन्होंने भारतीय स्त्रियों में जागृति की भावना का संचार किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती, एनी बीसेण्ट, राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस जैसे समाज सुधारकों ने स्त्रियों की समानता और शिक्षा की ओर ध्यान केन्द्रित किया। समाज सुधार आन्दोलनों के द्वारा स्त्रियों की भागीदारी सभी क्षेत्रों में बढ़ाने के प्रयास किये जाने लगे एवं स्त्रियों से संबंधित कुप्रथाओं का पुरजोर विरोध किया गया। इन सुधार आन्दोलनों ने नारी को 'व्यक्ति' के रूप में समाज में स्थापित करने का प्रयास किया। थियोसोफिकल सोसायटी के माध्यम से महिला शिक्षा पर बल देते हुए स्त्रियों के लिए अलग स्कूल खोले गये। श्रीमती एनी बेसेण्ट ने महिलाओं से संबंधित कुप्रथाओं का विरोध किया। इन सभी समाज सुधारकों ने भारतीय संस्कृति की महत्मा बताते हुए स्त्री शिक्षा पर बल दिया और न केवल स्त्रियों की सामाजिक

स्थिति बदलने पर अपितु उनमें राजनीतिक जागरूकता उत्पन्न करने का प्रयास भी किया।

19वीं शताब्दी का सामाजिक सुधार और नारी उत्थान – 1857 की क्रान्ति के पश्चात् भारतीय समाज में पाश्चात्यीकरण, समाज सुधार आन्दोलन राष्ट्रीय चेतना जैसे कई तत्वों का समावेश हुआ, जिन्होंने भारतीय स्त्रियों में जागृति की भावना का संचार किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती, एनी बेसेण्ट, राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस जैसे समाज सुधारकों ने स्त्रियों की समानता और शिक्षा की ओर ध्यान केन्द्रित किया। समाज सुधार आन्दोलनों के द्वारा स्त्रियों की भागीदारी सभी क्षेत्रों में बढ़ाने के प्रयास किये जाने लगे एवं स्त्रियों से संबंधित कुप्रथाओं का पुरजोर विरोध किया गया। इन सुधार आन्दोलनों ने नारी को 'व्यक्ति' के रूप में समाज में स्थापित करने का प्रयास किया। थियोसोफिकल सोसायटी के माध्यम से संबंधित कुप्रथाओं का विरोध किया। इन सभी समाज सुधारकों ने भारतीय संस्कृति की महत्मा बताते हुए स्त्री शिक्षा पर बल दिया और न केवल स्त्रियों की सामाजिक स्थिति बदलने पर अपितु उनमें राजनीतिक जागरूकता उत्पन्न करने का प्रयास भी किया।

कांग्रेस की स्थापना और स्त्री जागरण – 1855 में कांग्रेस की स्थापना हुई। चूंकि इससे पूर्व ही समाज सुधारकों ने नारी चेतना का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। अतः कांग्रेस के माध्यम से स्त्रियों को राजनीति का एक मंच प्राप्त हुआ। सन् 1990 में पहली बार श्रीमती गांगुली कांग्रेस के मंच से वक्ता के रूप में स्थापित हुई। स्त्रियाँ कांग्रेस के अधिवेशनों में खुलकर भाग लेने लगी। 1905 में लॉर्ड कर्जन के द्वारा बंग भंग की घोषणा के साथ ही स्त्रियाँ, जो अब तक केवल अधिवेशनों में भाग लेती थी, बंग भंग आन्दोलन के कारण राष्ट्रीय दायित्वों का निर्वाह करने की ओर उन्मुख हुई। स्त्रियों ने गली–मौहल्लों में सभाएँ आयोजित कर अनाज और धन एकत्रित करना प्रारम्भ किया। स्त्रियों के संगठन बने। बंगाल में क्रन्तिकारी साहित्य और पर्चे वितरीत करने में स्त्रियों ने सहायता की। बंगाल के साथ–साथ पंजाब में भी स्त्रियों ने राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेना प्रारम्भ किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर की भतीजी श्रीमती सरला देवी ने पंजाब और बंगाल के क्रान्तिकारियों को जोड़ने का प्रयास किया। स्वदेशी वस्तुओं की बिक्री बढ़ाने के लिए कार्य हुए। जलियावाला काण्ड का स्त्रियों ने खुलकर विरोध किया।

विदेशों में सक्रिय भारतीय महिलाएँ – श्रीमती श्यामजी कृष्ण वर्मा, सुश्री एन. चट्टोपाध्याय, श्रीमती बी0के0 कामा ने भारत के बाहर रहते हुए देश की स्वतंत्रता के लिए कार्य किया। श्रीमती कामात ने देश के नवयुवकों को संगठित करते हुए संदेश दिया कि ''भारत भारतीयों के लिए है'' इन महिलाओं ने विदेश में रहकर क्रान्तिकारी गतिविधियों का समर्थन किया एवं क्रान्तिकारी नेताओं से सम्पर्क रखते हुए उनके माध्यम से क्रान्तिकारी गतिविधियाँ सम्पन्न की।

गाँधी युग एवं महिला सत्याग्रही – गाँधी ने महिलाओं को राजनीति और अहिंसात्मक आन्दोलन में भाग लेने के लिए सर्वाधिक योग्य पाया। गांधी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में महिलाओं को रचनात्मक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया। गाँवों में खादी प्रचार, छुआछूत का अन्त, शिक्षा का प्रसार एवं स्वदेशी वस्तुओं के उपयोगी के लिए महिलाओं को जागृत किया। 1930 के जन आन्दोलन में स्त्रियों ने बढ़–चढ़कर भाग लिया। सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में प्रदर्शन किये गये। लीलावती मुंशी, कमला देवी चट्टोपाध्याय, सरोजिनी नायडू ने अन्य महिलाओं के साथ नमक बनाकर उसे बेचने का प्रयास किया। इलाहाबाद में नेहरू परिवार की महिलाओं ने राजनीति में सक्रिय भाग लेकर आन्दोलन को एक दिशा प्रदान की। श्रीमती स्वरूप रानी नेहरू, उमा नेहरू, कमला नेहरू इनमें प्रमुख थी। गुजरात में कस्तूरबा गाँधी के नेतृत्व में महिलाओं ने शराब और विदेशी कपडों की दुकानों पर धरने दिये। कलकत्ता में शान्ति हूमायूँ कबीर और उर्मिला दास ने धरना देने के कार्यक्रमों का नेतृत्व किया। स्त्रियों के इस प्रकार के कार्यों से सरकार ने उन पर अत्याचार भी किये परन्तु स्त्रियाँ बढ़–चढ़कर राजनीतिक गतिविधियों और आन्दोलनों में भाग लेती रही। कई स्त्रियाँ जेल भी गयी। इनमें धनी, निर्धन, शिक्षित, अशिक्षित सभी महिलाएँ शामिल थी। स्त्रियों ने प्रभातफेरी के द्वारा लोगों में जागरूकता लाने के प्रयास किये। गांधी के इन आन्दोलनों ने महिलाओं

को आगे बढ़ने और सत्याग्रही बनने का अवसर दिया। इसमें समाज के प्रत्येक वर्ग की स्त्रियाँ शामिल थी। जहाँ गांधी युग से पूर्व हिन्दू अभिजन स्त्रियाँ राजनीति से जुड़ी थी, वहीं गांधी युग के पश्चात् सभी वर्ग की स्त्रियाँ आन्दोलन के माध्यम से राजनीति की पृष्ठभूमि में खड़ी हो गई।

उग्रवादी राजनीति और क्रान्तिकारी स्त्रियाँ – अधिकांश स्त्रियाँ गांधी के रचनात्मक आन्दोलन से जुड़ी थी फिर भी बंगाल में और 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में उग्रवादी राजनीति में लिप्त स्त्रियों के कुछ नाम भी दृष्टिगत होते है। 1905 में बंग भंग के समय उग्रवादी सोसायटी बनी। कल्पना दत्त, अल्पा भट्टाचार्य, कमलादास गुप्ता, लतिया घोष जैसी स्त्रियों ने 100 महिलाओं का ऐसा समूह बनाया जो बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियों का संचालन करता था। इन स्त्रियों ने गुप्त गतिविधियों में भाग लेकर कहीं–कहीं अपनी उपस्थिति दर्ज कराई।

इस प्रकार भारत के ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में स्त्रियों की दशा का विश्लेषण करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि स्त्रियाँ राजनीति और प्रशासन में भागीदारी से प्रत्येक काल में वंचित रही है। जिन स्त्रियों ने इतिहास के विविध कालों में अग्रणी भूमिका का निर्वाह किया, उनकी संख्या नगण्य के समान है। जो स्त्रियाँ राजनीति, शिक्षा अथवा अन्य किसी क्षेत्र में सफल हुई है, वे सामाजिक और आर्थिक स्तर की दृष्टि से अन्य स्त्रियों की तुलना में अधिक सम्पन्न पृष्ठभूमि से रही है। आम स्त्री की स्थिति एवं सुरक्षा का प्रश्न सदैव ही चिन्ताजनक रहा है। भारतीय स्त्री ने इतिहास के विभिन्न कालों में कई उतार–चढ़ावों को देखा और समाज व राजनीति में अपना सम्मानजनक एवं गरिमापूर्ण स्थान ढूंढने का प्रयास भी किया है। यह प्रयास आज भी जारी है क्योंकि स्त्रियों की पिछड़ी दशा के लिए जो कारक विगत काल खण्डों में विद्यमान थे, वे आज भी कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में कुछ अंश तक विद्यमान हैं। इसी कारण संवैधानिक व्यवस्था, आरक्षण की व्यवस्था, सामाजिक समानता के प्रयासों के बाबजूद भी स्त्री उत्थान एवं विमर्श का प्रश्न बनी हुई है।

सन्दर्भ संकेत

1. ए.एस. अल्तेकर, The Position of Women in Hindu Civilization. बनारस, 1956,पृ. 338
2. मुखर्जी, राधा कुमुद, हिन्दू सभ्यता, पटना, राजकमल, प्रकाशन, 1975, पृ. 91
3. शास्त्री शाकुन्तला राव, Women in the Vedic Age. Bombay, भारतीय विद्या भवन, 1952, पृ. 6
4. देसाई नीरा, Women in Modern India. बम्बई, वोरा एण्ड कम्पनी, 1957, पृ. 12
5. शर्मा राधाकृष्ण, Nationalism, Social Reforms and Indian Women. बम्बई, वोरा एण्ड कम्पनी, 1957 पृ. 4
6. मजूमदार ए.के, Elements of Indian Culture. इलाहाबाद, पृ. 6
7. कुरैशी आई. एच, Administration of the Sultan of Delhi लाहौर, 1942, पृ. 65
8. रिजवी, सैयद अतहर अब्बास, आदि तुर्ककालीन भारत, अलीगढ़, 1957 पृ. 33
9. अशरफ के.एम., Life and Conditions of the Peoples of Hindustan पृ. 139
10. मिश्रा रेखा, Women in Mughal India. दिल्ली, पृ. 16–17
11. मनमोहन कौर, Role of Women in Freedom Movement जालंधर, 1958, पृ. 76
12. मनमोहन कौर, Role of Women in Freedom Movement. जलंधर, 1958

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

लोकतन्त्र में महिलाओं का बदलता मुकाम

गौरी
शोध छात्रा – राजनीति विज्ञान
डी0 वी0 कालेज उरई (जालौन)

योगेन्द्र सिंह
असि0प्रोफे0–हिन्दी विभाग
एम0जे0एच0 महाविद्यालय, आटा कालपी,जालौन

संसदीय लोकतन्त्र की स्थापना की विशेषता है कि कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। अर्थात व्यवस्थापिका से ही कार्यपालिका का निर्माण होता है तथा कार्यपालिका के प्रति उत्तरदायी होती है। 'भारतीय संविधान में अनुच्छेद 325 व 326 के अनुसार प्रत्येक वयस्क नागरिक को जो पागल या अपराधी न हो मताधिकार प्रदान किया गया है। तथा किसी नागरिक का धर्म, जाति, वर्ग, संप्रदाय, लिंग भेद के आधार पर भेदभाव के कारण मताधिकार से वंचित नही किया जा सकता। भारत सार्वभौम वयस्क मताधिकार स्वतन्त्रता के पश्चात् लागू संविधान की देन है क्योंकि स्वतन्त्रता से पूर्ण भारत में भारतीय शासन अधिनियम 1935 में केवल 13 प्रतिशत लोगों को मताधिकार प्राप्त था।

वर्तमान समय में अधिकांश लोकतन्त्रों की प्रकृति अप्रत्यक्ष और प्रतिनिधिमूलक ही है। यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि लोकतन्त्र का आधार सहभागिता है और सहभागिता ने प्रतिनिधित्व को प्रोत्साहित किया । इसी श्रृंखला में प्रतिनिधित्व को वयवहारिक रूप देने में मताधिकार की अवधारणा पोषित हुई यद्यपि सहभागिता प्रतिनिधित्व और मताधिकार लोकतन्त्र को सफल बनाने में महत्वपूर्ण है किन्तु उपरोक्त तीनों अवधारणाओं की व्युत्पत्ति लोकतन्त्र के मौलिक तत्व स्वतन्त्रता व समानता में ही हुई अतः यह कहना अनुचित नही होगा कि लोकतन्त्र और प्रतिनिधित्व सहभागिता एवं मताधिकार में परस्पर घनिष्ठ और अनन्य सम्बन्ध होता है। इसीलिये सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार और निश्चित अन्तराल पर स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनावों को लोकतन्त्र की अन्य आवश्यक शर्तों के रूप में गिना जाता है। इसी कारण आज सहभागिता बढ़ाने के अनेकानेक प्रयास किये जा रहे है। दरअसल, प्रतिनिधियों पर प्रभावी नियन्त्रण रखने व उन्हें शक्ति के दुरूपयोग करने से रोकने के लिये भी नागरिकों की सक्रिय भागीदारी पर बल दिया जा रहा है। यह माना जाता है कि लोकतन्त्र की समस्याओं यथा नौकरशाहीकरण, भ्रष्टाचार, केन्द्रीयकरण, पारदर्शिता और जबाव देही आदि के समाधान के रूप में सहभागिता बढ़ायी जाये। किन्तु वैविध्यपूर्ण राज्य में सहभागिता बनाये रखने का व्यवहारिक रूप प्रतिनिधित्व के माध्यम से लोगों को मताधिकार देकर लोकतन्त्र को मुकम्मल बनाया गया। 21वीं सदी में हम लोकतन्त्र के जिस स्वरूप से वाकिफ है वास्तव में वह सदियों से चली आ रही विकास प्रक्रिया का ही परिणाम है ठीक इसी प्रकार से मताधिकार से सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार तक का सफर आसान नही रहा।

ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के आधार पर मताधिकार का अर्थ है मत देने का अधिकार । आधुनिक समय में लोकतन्त्र ने समानता के सिद्धान्त के आधार पर सभी नागरिकों को राजनीतिक समानता के रूप में 'एक व्यक्ति एक वोट' का अधिकार दिया है वह वयस्क मताधिकार पद्धति कही जाती है। परन्तु इस सिद्धान्त को विकसित होने और स्वीकृति प्राप्त करने में सदियां बीत गयी। स्पष्टतः लोकतन्त्र में मुख्य संघर्ष मताधिकार के विस्तार पर आधारित है। सर्वप्रथम इग्लैण्ड में राजनीतिक सुधारकों में इसके लिये लम्बे समय तक संघर्ष किया। इसमें प्रमुख नाम जेरमी बेन्थम का हैं। ध्यातव्य है कि इग्लैण्ड 1950 तक बहुलमत प्रचलित रहा। जिसमें कुछ नागरिक साधारण नागरिक के रूप में तो वोट देते ही थे साथ ही वे विशिष्ट वोट भी करते थे जिसका आधार उनकी सम्पत्ति तथा विश्वविद्यालयी स्नातक शिक्षा भी। संघर्ष के प्रारम्भिक दौर में उदारवादियों द्वारा यह मांग रखी गयी कि मताधिकार को जन्म के आधार पर नही बल्कि सम्पत्ति के आधार पर प्रदान किया जाये। यह मांग उदारवादियों द्वारा उस दौर

में रखी गयी जिसमें मताधिकार वंशानुगत विशेषाधिकार के रूप में प्राप्त था। तब आज के वयस्क मताधिकार की संकल्पना नही थी। अतः उस दौर में सम्पत्ति के आधार पर मताधिकार को समानता से जोड़कर देखा गया। समय के साथ–साथ निर्धनों द्वारा सम्पदा के आधार को विषमता पूर्ण ठहराकर सार्वजनीन मताधिकार की मांग की गयी। गौरजलब है कि प्रारम्भिक रूप में मताधिकार केवल पुरुषों को प्राप्त था इसमें महिलाओं को किसी भी आधार पर शामिल नहीकिया गया था।

महिलाओं के विषय में मताधिकार का संघर्श प्रायः सभी लोकतान्त्रिक देशों में पुरुषों के मुकाबले लम्बा चला। संयुक्त राज्य अमेरिका में मताधिकार के रूप में पुरुष–स्त्री को 1919 में समानता प्राप्त हुई। इग्लैण्ड ने महिलाओं को 1928 में मताधिकार दिया, फ्रांस ने 1945 में। भारत ने संविधान लागू होने के साथ ही समान रूप से मताधिकार प्रदान किया । किन्तु स्वीट्जरलैण्ड में महिलाऐं 1978 तक इन्तजार करती रही। सहभागिता लोकतन्त्र का प्राण है। विकसित लोकतन्त्र में निश्चित रूप से नागरिकों की सक्रिय राजनीतिक सहभागिता अधिक होती है। इसीलिये सच्चे अर्थो में लोकतन्त्र की स्थापना के लिए सर्वजनीन वयस्क मताधिकार को स्वीकृत किया गया। वयस्क मताधिकार से अभिप्राय उस विशेष अवस्था से है जिसे प्राप्त करने पर प्रत्येक नागरिक को देश की निर्वाचन प्रक्रिया के अनुसार मताधिकार दिया जाता है। वयस्क होने से अभिप्राय यह मान लेना है कि उस अवस्था में प्रत्येक नागरिक में पूर्ण राजनीतिक समझ का विकास हो जाता है और वह अपने मताधिकार का प्रयोग उचित ढंग से करने में समर्थ यूनान में प्राचीन समय में स्तन्त्रता जनों को ही मताधिकार प्राप्त था, दासों महिलाओं को नही अतः यह सर्वजनीन नही था। प्राचीन यूनान में वयस्क पद्धति में एक अवस्था और निहित थी वह यह कि नागरिक के राजनीति से निवृत्ति के साथ ही उसका मताधिकार समाप्त हो जाता था। किन्तु आधुनिक लोकतन्त्र में सर्वजनीन वयस्क मताधिकार के साथ यह ताउम्र प्राप्त रहता है। वयस्क मताधिकार में जाति, धर्म, लिंग, व्यवसाय, शिक्षा, सम्पत्ति सम्बन्धी कोई योग्यता नही है और न ऐसे किसी आधार पर किसी वोट के महत्व को कम या ज्यादा का अन्तर रखा जाता है। वयस्कता की आयु निर्धारण में किसी सर्वमान्य मान्यता नही बल्कि यह देश का अपना निर्णय है। सन् 2014 चुनाव में भारतीय मतदाताओं की संख्या लगभग 81 करोड़ की इतनी विशाल मतदाताओं की संख्या वाले भारत में लोकतन्त्र का कुशल संचालन वैश्विक स्तर पर अद्वितीय उदाहरण है।

भारत जैसे विविधता पूर्ण देश में जहां अनेक धर्म, जाति, सम्प्रदाय के लोग अपनी–अपनी भाषा संस्कृति को धारण करते है वहाँ पर लोकतन्त्र की सफलता नित नये कीर्तिमान स्थापित कर रही है। निश्चिय ही इस सफलता का स्रोत भारतीय संवधिान है और इसका श्रेय संविधान निर्माताओं को ही दिया जाना चाहिये। प्रारूप समिति के अध्यक्ष डा0 भीमराव अम्बेडकर वयस्क मताधिकार के प्रबल समर्थक थे। सन 1928 में डा0 अम्बेडकर ने साइमन कमीशन के मध्य वयस्क मताधिकार की पुरुजोर वकालत की। भारतीय संविधान में समान रूप से वयस्क मताधिकार सम्बन्धी उपबन्ध भारतीय संविधान निर्माताओं की दूरदर्शिता और लोकतन्त्र में उनकी पूर्ण आस्था, समर्पण को प्रदर्शित करता है। वे मताधिकार सम्बन्धी मतभेदों और मताधिकार सम्बन्धी वैश्विक संघर्ष आन्दोलनों से बखूबी परिचित थे। वास्तव में मताधिकार किसे दिया जाए, इसका आधार क्या हो इस पर मतैक्य वयस्क मताधिकार की संकल्पना से पूर्व नहीं था। प्रथमतः यह प्राकृतिक अधिकार है जो सबको प्राप्त होना चाहिये। दूसरा मताधिकार एक विशिष्ठ अधिकार है जो उन्ही को प्राप्त होना चाहिये जो इसकी उपयोगिता समझे। इस सम्बन्ध में मोन्टेस्क्यू का कहना है कि ''प्रतिनिधियों को चुनने के लिये मत देने का अधिकार राज्य के उन निवासियों को छोड़कर, जितनी दशा इतनी हीन हो कि उनकी अपनी कोई इच्छा ही न हो, सबको प्राप्त होना चाहिये। मताधिकार से सम्बन्धित तीसरा मत यह उठा कि सह नैसर्गिक अधिकार न मानकर एक ऐसा राज्य प्रदत्त पद माना गया जो सम्पत्ति, शिक्षा, धर्म, नस्ल, लिंग आदि योग्यता के आधार पर दिया जाता रहा। योग्यता के आधार पर विभिन्न देशों में मताधिकार ने उन लोगों में गहरा असन्तोष उभरा जिन्हें यह प्राप्त न हो सका। इसी असन्तोष से नारीवादी आन्दोलन को और तेज किया। पश्चिम में सर्वप्रथम नारीवादी चेतना का आगाज फ्रांसीसी क्रान्ति के समय पुरुषों के लिये स्वतन्त्रता

समानता और बन्धुत्व आरक्षित किया गया और विंडिकेशन ऑफ राइट्स ऑफ मैन' नामक पुस्तक की रचना हुई। इसी पुस्तक के जवाब में मेरी वुल्सटनक्राफ्ट ने विंडिकेशन ऑफ राइट्स ऑफ वूमन की रचना कर अधिकारों की मांग कर नारीवादी आन्दोलन का नेतृत्व किया फ्रांस क्रांन्ति के बाद भी महिलाओं की स्थिति में विशेष सुधार नही हुआ इसलिए महिला आन्दोलन जो आर्थिक अधिकारों की माँग से आरम्भ हुआ क्रमिक रूप से 5 मार्च 1848 में सभी पुरुषों को समान रूप से वयस्क मताधिकार दिये जाने के बाद से राजनीतिक अधिकारों की मांग से जुड़ गया। 16 मार्च 1848 में महिलाओं ने अन्तरिम सरकार के सदस्यों को मांग–पत्र दिया जिसमें कहा गया कि दो प्रकार की स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व नही हो सकते। क्रान्ति में आधी आवादी (महिलाऐं) ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। किन्तु रिपब्लिक 1870–1939 तक रिपब्लिक सिद्धान्त पूरी तरह स्थापित हो चुकें थे। सरकार ने ढांचे पर विवाद, फार्ट प्रिसिंपल पर तीव्र वहसों ने महिलाओं को दरकिनार कर दिया ।

1909 में फिर Jeanne -Elizabeth Schmahl ने फ्रेंच यूनियन फार वीमेन्स सफ्रेज स्थापना की। इस संगठन ने महिला मताधिकार का मुद्दा उठाया। अन्ततः 1936 में फ्रांस के नये राष्ट्रपति Leon Blum ने अपनी पापुलर फ्रंट की सरकार में न केवल महिलाओं को शामिल किया गया बल्कि अबतक दक्षिणपंथी भी महिलाओ के वोट में अपना राजनीतिक भविष्य देखने लगे थे। 1944 में फ्रांसीसी महिलाओ को राजनीतिक कानूनी समानता के रूप में मताधिकार की प्राप्ति हुई। इग्लैण्ड में 17वी सदी में सुधारों में महिलाओं ने महिलाओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण पर प्रश्नचिन्ह लगाना शुरू किया इसमें जेन एंगर की पुस्तक protection for woman, to defend them against the scandalous reports, लंदन में छपी जिसेमं वाइबिल की नारीवादी व्याख्या की गयी, की बड़ी भूमिका नही। 1642 में हाऊस ऑफ कामन्स मे स्त्री–पुरुष समान अधिकार पर प्रतिवेदन दिया गया। अगले वर्ष महिलाओं को राजनीति व कानून में दोयम दर्जा दिये जाने के विरोध में यह प्रदर्शन हिंसक बन गया। 18वी सदी में वार्ताओं, लेखों आदि के माध्यम से महिलाओ को समान राजनीतिक, कानूनी अधिकार दिये जाने की वकालत होने लगी। अंग्रेज विचारको में वेन्थम ने अपनी पुस्तक 'A plan for parliamentary reform' में महिलाओ को मताधिकार देने के साथ उन्हें समान स्तर प्रदान करने की पैरवी की। जान स्टुअर्ट मिल ने सब्जैक्शन ऑफ वूमन पुस्तक में लिखा कि लिंग पर आधारित कानूनी अधीनता हमेशा से गलत थी। अब यह समाज में सबसे बड़ी बाधा थी। क्योंकि आधी आवादी को घर से बाहर समाज के लिये कोई योगदान देने की स्वतन्त्रता नही थी। इसलिये अब पूर्ण समानता पर आधारित व्यवस्था को इस असमान व्यवस्था का स्थान लेना चाहिये।

मिल 1865 सांसद बने और मताधिकार कानून में सुधार करने के लिये प्रचार प्रसार किया। इसी वर्ष इग्लैण्ड में पहली महिला मताधिकार समिति का गठन हुआ। मिल ने सांसद में भी महिला मताधिकार पर भाषण दिया। वे महिला मताधिकार की राष्ट्रीय सोसाइटी के अध्यक्ष रहे। मड मार्च ने भी महिला मताधिकार के लिये सांसदों पर आरम्भ से ही दबाव बनाने की नीति अपनायी। इग्लैण्ड में ऐमिलाइन पांखस्ट ने इसे नेतृत्व देकर, 10 फरवरी 1910 को क्रासपार्टी कन्सिलिएशन समिति के 54 सांसदों के समझौता विधेयक के 2nd reading को बहुमत से पारित करवाया बिल स्त्री मताधिकार का समर्थन प्रस्ताव था। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् 1918 में क्वालिफिकेशन ऑफ वीमन एक्ट पास कर दिया गया। जिसके तहत् तीस वर्ष की ग्रहस्थ महिला को जो विश्वविद्यालयी डिग्री धारक हो, मताधिकार दिया गया। अन्ततः 1928 में जनप्रतिनिधि एक्ट ने इग्लैण्ड में महिलाओं को समान मताधिकार प्रदान किया गया।

अमेरिका में नारी अधिकारों के लिये संघर्ष साराह ग्रीम्क और एजीलीना ग्रिंक वेल्ड ने आरम्भ किया। अमेरिका समाज में व्याप्त असमानता के परिवेश में नारीवादी स्त्री मताधिकार के साथ वे सभी अधिकार मांग रही थी जो पुरुषों को मिले थे। इस दिशा में मार्गेट फुल्लर की पुस्तक Woman in the Nineteeth century एक गम्भीर कृति है। फुल्लर पहली महिला थी जिन्हें विश्वविद्यालयी पुस्तकालय में संग्रहीत पुस्तकें पढ़ने का अवसर मिला।

1848 में पहला नारी अधिकार सम्मेलन अमेरिका में हुआ। जिसमें 'डिक्लेरेशन ऑफ सेंटीमेंट' पेश किया गया। दूसरा सम्मेलन (1850) में नारी की प्रकृति तथा स्त्रीत्व का पूर्ण विकास हो वे सभी अधिकारों की मांग रखी गयी। इस दिशा में 1852 में हुआ सम्मेलन महत्वपूर्ण था क्योंकि इसमें कहा गया कि यदि नारी को सरकार चलाने के लिये कर देना कर्तव्य है तो फिर उसे सरकार, प्रशासन के गठन में भी सक्रिय भूमिका क्यों नही दी जाती है। नेशनल वीमेन सफ्रेज एसोसिएशन के साप्ताहिक पत्र **'The Revolution'** में महिला अधिकारों की मांग लगातार जारी रही। वही 1877 के सम्मेलन में महिला मताधिकार सम्बन्धी संशोधन का मसौदा तैयार किया गया। फरवरी 1890 राष्ट्रीय महिला मताधिकार संघ (NWSA) का पहला वार्षिक सम्मेलन आयोजित हुआ। 1917 में न्यूयार्क राज्य में महिलाओं को मताधिकार प्राप्त हुआ। 26 अगस्त 1920 को अमेरिका के 36 राज्यों में महिलाओं को मताधिकार दिया गया।

उपरोक्त वर्णन यह स्पष्ट करता है कि स्थानीय, समुदाय, राज्य–राष्ट्र एवं विश्व स्तर पर प्राचीन समय से नारियों के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार होता रहा है। शारीरिक, वौद्धिक, आर्थिक रूप से कमजोर बताकर महिलाओं को निर्णयन प्रक्रिया में शामिल नही किया गया चारित्रक दुर्व्यवहार का भय दिखा कर महिलाओं पर आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक प्रतिबन्ध आरोपित किये गये फिर इन्ही क्षेत्रों में उनकी निर्योग्यताओं को गिनाया गया। समानता, स्वतन्त्रता को लोकतन्त्र का आधार बताने वाले समान अधिकार के पुरोधा देशों में भी नारी को मताधिकार व राजनीतिक सहभागिता से लम्बे समय तक वंचित रखा गया। यही वजह रही कि महिलाएँ जो सत्ता के ऊँचे पायदान पर पहुँची उनकी संख्या बहुत कम है। कालचक्र अपनी गति से चलता रहा। किन्तु राजनीतिक क्षेत्र में निर्णयन की प्रक्रिया में पुरुषों को ही वर्चस्व रहा अन्य देशों की अपेक्षा भारतीय महिलाओं को मताधिकार के लिये आन्दोलन नही करने पड़े। उन्हें आजादी के बाद समान रूप से राजनीतिक अधिकार प्रदान किये गये। स्वतन्त्रता से पहले भारत में 1935 अधिनियम के तहत् सीमित मताधिकार दिया गया, उसमें भी महिलाओं को भी मताधिकार दिया गया। भारत में 1917 में महिलाओं का प्रतिनिधि मण्डल एस मांटेग्यू से मिला और मताधिकार की मांग रखी।

'त्रवणकोर व मद्रास ने क्रमशः 1920 और 1921 में सीमित मताधिकार (पढ़ी लिखी) महिलाओं को दिया। 1931–32 में लार्ड लोथियन समिति ने महिलाओं के मताधिकार के लिये किसी भी भाषा में पढ़ी लिखी व किसी की पत्नी होने जैसी बेढंगी शर्तें रखी गयी।

'भारतीय संविधान अनुच्छेद 14 में कानूनी समानता, अनुच्छेद 15 (3) में जति, धर्म, लिंग एवं जन्म स्थान आदि के आधार पर भेदभाव न करना, अनुच्छेद 16 (1) में अवसरों की समानता, अनुच्छेद 19 (1) में समान रूप से अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, अनुच्छेद 21 में स्त्री एवं पुरुष दोनों को प्राण एवं दैहिक स्वाधीनता से वंचित न करना, अनुच्छेद 23–24 में शोषण के विरुद अधिकार अनुच्छेद 25–28 में धार्मिक स्वतन्त्रता, अनुच्छेद 29–30 में शिक्षा एवं संस्कृति का अधिकार अनुच्छेद 32 संवैधानिक उपचारों का अधिकार, अनुच्छेद 39 (घ) में पुरुषों एवं स्त्रियों की समान कार्य समान वेतन का अधिकार दिया। अनुच्छेद 40 पंचायती राज, जिसमें 73वें और 74वें संशोधन द्वारा 33 प्रतिशत महिलाओ को आरक्षण दिया गया। अनुच्छेद 41 में बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी, और अन्य अनर्ह अभाव की दशाओं में सहायता पाने का अधिकार, अनुच्छेद 42 में प्रसूति सहायता प्राप्ति की व्यवस्था, अनुच्छेद 47 पोशाहार, जीवन स्तर एवं लोक स्वास्थ्य में सुधार करना सरकार का दायित्व है। अनुच्छेद 51 (क) (3) भारत के सभी लोगों ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध हो।

उपरोक्त संवैधानिक उपबन्धों के परिणाम स्वरूप ही देश के राजनीतिक परिवेश में महिलाओं की भूमिका आजादी के बाद से अपेक्षाकृत कम रही किन्तु अब महिलाओं में राजनीतिक चेतना का तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। जिसका सुबूत पिछले चुनावों में महिलाओं की सक्रियता के आंकड़े है। तथापि देश की आधी आबादी राजनीति में अभी भी हाशिये पर है। महिलाओं की सामाजिक व राजनीतिक स्थिति में जो घिरावट मध्यकाल वे शुरू हुई

वह लगातार जारी रही। इसलिये भारत में राजनीतिक स्तर पर महिलाओं की भागीदारी नगण्य रही। भागीदारी बढ़ाने के लिये 1997 में एक अंतर संसदीय सम्मेलन दिल्ली में आयोजित किया गया। पाकिस्तान, चीन, नेपाल, बांग्लादेश और अफगानिस्तान, और सब–सहारा के कुछ पिछड़े देशों की संसदों में भी महिलाओं की भागीदारी भारत से अधिक है। विश्व की सांसदों में नारी संख्या के सर्वे में भारत का 103वां स्थान है। 1971 में विश्व मानचित्र पर उद्भूत बांग्लादेश में भी प्रत्येक पांच में से एक सांसद महिला है। नेपाल में प्रत्येक तीसरी सीट पर महिला सांसद विराजमान है।

वैश्विक स्तर पर संसद में महिला भागीदारी के अनुसार देशों का क्रम

देश	स्थान
नेपाल	35वां
अफगानिस्तान	39वां
चीन	53वां
पाकिस्तान	64वां
अमेरिका	72वां
इंग्लैण्ड	56वां

उपरोक्त सारणी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता के बाद भी राजनीति में महिला भागीदारी की बात केवल सैद्धान्तिक है। व्यवहारिक रूप में महिलाएँ हर क्षेत्र में गैरबराबरी का दंश झेलती है। अब तक की लोकसभाओं में महिला प्रतिनिधित्व कम रहा।

सन्दर्भ संकेत

1. श्याम सुभाष (2003) 'निर्वाचन हमारा संविधान' नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया PP. 221
2. नारायण इकबाल 2002 'मताधिकार, निर्वाचन तथा प्रतिनिधित्व : शासन के सिद्धान्त जयपुर ग्रन्थ विकास प्रकाशन P.P. 142, 145
3. चंदन संजीव : 'महिला मताधिकार के राजनीतिक संदेश'
4. नारंग ए एस 2003 भारत में लोकतन्त्र : एक परिचय 'भारत में लोकतन्त्र समस्याएँ और चुनौतियाँ NCERT. P. 1.4
5. लैंगिक भेदभाव (2016 जनवरी 21) दैनिक जागरण P.P. 15
6. झा ज्योत्सना (2016 जनवरी 21) 'वजहों पर हो प्रहार' दैनिग जागरण P.P. 15
7. कुमारी डा0 रंजना (2016 जनवरी 21) सुधार की जगें सुध दैनिक जागरण P.P. 15

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

स्वस्थ समाज हेतु हमें अपनी सोच के दायरे को विस्तृत करना होगा

अनीता यादव
शोधछात्रा
सी.एस.जे.एम. विश्वविद्यालय, कानपुर

स्वतंत्रता के वर्षो बाद भी हमारी सोच का दायरा संकुचित ही रहा। हमारी सोच, हमारी दृष्टि, हमारा नजरिया, हमारी धारणा, हमारी मानसिकता में परिवर्तन नहीं हुआ है। ऐसा नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति एक जैसा है। जिन विद्वतजनों के सहयोग व योगदान से हमारे देश व समाज में गतिशीलता आयी है। उसे नकारा नहीं जा सकता, लेकिन ऐसे लोग समाज में कम ही मिलते है जो उसे नकारा नहीं जा सकता, लेकिन ऐसे लोग समाज में कम ही मिलते है जो निस्वार्थ रूप से एक स्वस्थ समाज की कल्पना करते हो और उसके व्यावहारिकता में लाकर समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन करते हो हमारा शैक्षिक स्तर तो बढ़ गया लेकिन सामाजिक समानता में आज भी हम पीछे छूट गये है। जो हमारी ओछी मानसिकता के कारण है। हम सामाजिक, छूट गये है। जो हमारी ओछी मानसिकता के कारण है। हम सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और भौतिक प्रगति तो चाहते है अपितु अपनी सोच के दायरे को बढ़ाने की खिदमत नहीं करते है, क्योंकि हमारी स्वार्थी दृष्टि किसी भी क्षेत्र में अछूती नहीं है। किसी भी कार्य को करने से पूर्व अपना भला पहले चाहते है। यही सोच हमें समाज के प्रति कर्त्तव्य विमुख करती है जो हमारी अस्वस्थ सोच का परिणाम है हम अच्छे समाज की कल्पना तो करते है लेकिन स्वयं के दायित्व को निभाना हमें अच्छा नहीं लगता। हमें स्वच्छ वातावरण तो चाहिए। परन्तु पेड़ लगाना हमें पसन्द नहीं है। हमें सरकारी सुविधाएँ तो चाहिए लेकिन टैक्स जमा करना नहीं चाहते। हम स्वच्छ भारत की वकालत तो करते है लेकिन स्वच्छता के प्रति अपना कर्त्तव्य भूल जाते है। हम अस्पृश्यता व सामाजिक समानता पर बड़े–बड़े भाषण देते है लेकिन स्वयं वैचारिक अस्पृश्यता से आज भी नहीं निकल पाये।

मैं आपके सामने एक घटना का जिक्र करना चाहती हूँ। '1937 ई. में पहली बार एसेम्बलियों का चुनाव हुआ था। उस समय भारत–पाकिस्तान एक थे। कराची की सीट दलितों के रिजर्व कॉन्स्टीट्यूएंशी थी उस सीट पर 'मालू' नाम के दलित प्रत्याशी 'चुनाव जीत गये थे उस समय उनका स्वागत जुलूस कांग्रेसियों ने निकाला था जिसमें सबसे पहले विचार हुआ कि इनका स्वागत कैसे किया जाये। तो लोगों ने सुझाया कि इनका स्वागत घोड़े पर बैठाकर किया जाना चाहिए। वहाँ उपस्थित स्वर्ण लोगों ने इसका तुरन्त विरोध किया और कहा कि एक दलित का घोड़े पर बैठाकर स्वागत किया ही नहीं जा सकता। अन्ततः इस बात का निर्णय हुआ कि उनको 'गधे' पर बैठाकर घुमाया जाय और स्वागत किया जाय। ऐसा ही हुआ। उस समय यह खबर 'लन्दन टाइम्स' में छपी थी कि भारत में दलितों का स्वागत कैसे किया जाता है?' आज हमारा देश विचित्र विभीषिकाओं से घिरा हुआ है जिसकें विषय में यही कह सकते है कि प्रत्येक जाति वर्ग, धर्म, प्रेम, सुरक्षा भाई चारा सद्भाव का संदेश देता है तो फिर इतनी हिंसा क्यों हैं। क्या इसलिए कि जब हम कोई राष्ट्रीय पर्व मनाये तो देश के प्रति अपना व सद्भावनाओं को व्यक्त करें। तो सदैव ध्यान रखना चाहिए कि 15 अगस्त या 26 जनवरी केवल एक दिन का प्रतिबिम्ब नहीं बल्कि स्वतंत्रता को याद दिलाने वाला एक अविस्मरणीय अवसर है। जिसे सार्थक बनाने के लिए प्रतिपल सावधान रहने की आवश्यकता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि कुछ पाना आसान है लेकिन उसे सजोकर रखना और विकसित करना उतना ही कठिन है। अपने कर्त्तव्य का पालन ही स्वतंत्रता के उल्लास को सार्थक करता है। आजाद होने के उपरान्त भी हमारा देश जाति की जकड़न से या वैचारिक अस्पृश्यता से मुक्त हो पायेगा। क्या हम जाति विहीन

समाज का निर्माण कर सकते है। अगर हम ये नहीं कर सकते तो जातिगत संघर्ष न हो व एक दूसरे के सम्मान का ध्यान तो रख ही सकते है। वर्तमान भारत की स्थिति को देखकर मन विचलित हो उठता है आज जातिवाद ने हमारे समाज को जकड़ लिया है। जिसका विपरीत प्रभाव हमारे देश पर पड़ रहा है। इसी प्रकार धार्मिक सद्भाव, आर्थिक समानता, समाजिक न्याय आदि पर गौर करने की आवश्यकता है। आज हमारे समाज की सबसे बड़ी समस्या भ्रष्टाचार व शिक्षित बेरोजगारी है जिसने समाज में अनेक विसंगतियों को जन्म दिया है। भ्रष्टाचार की समस्या व मनुष्य का लालच कही न कही हमारी ही व्यवस्था की उदासीनता का परिणाम है। जो हमारे समाज को दिन प्रतिदिन खोखला कर रहा है जिससे समाज में असमानता बड़ रही है। जिससे धनवान व निर्धन के बीच एक खाई बन चुकी है। जिसका भर पाना आसान नहीं है।[1]

'भारत की राजनीतिक, आर्थिक–सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति पर जरुर विचार करें। कुछ लोगों को देश प्रेम एक भावात्मक स्थिति लगती है। लेकिन यह एक भौतिक सच्चाई है आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा था कि देश प्रेम कोई अमूर्त वस्तु नहीं है। भूमि, पर्यावरण, कृषि, श्रम, पुरातत्त्व स्थापत्व कला आदि सबके विषय में जानना और सबके प्रति अपनी आत्मीयता स्थापित करना ही देश प्रेम है'[2]

आज हमें ऐसे व्यक्तित्व व साहित्य सृजन की आवश्यकता है, जो हमारे बीच प्रेम, आत्मीयता, सद्भाव को विकसित करें। जिससे हमारे समाज में भाई–चारा व नैतिकता की उन्मुख हो एक स्वस्थ समाज का निर्माण करने में अग्रसर हो जिससे समाज में भाई–चारे का विकसित हो जिससे हम स्वस्थ समाज का स्वप्न साकार कर सकते है।

'मस्जिद में गीता मिले, मन्दिर मिले कुरान
विश्व गुरु हो जायेगा फिर से हिन्दुस्तान'[3]

जिस साम्प्रदायिक सौहार्द की कामना हमारे साहित्यकार करते है उसकी अनूठी मिशाल समाज में देखने को मिल जाती है। भले ही उसकी संख्या कम हो। उत्तर प्रदेश के औरेया गाँव महतेपुर में सौहार्दपूर्ण आस्था की जो गंगा वह रही है, उसमें हिन्दू आचमन और मुस्लिम बजू एक साथ कर रहे है'

'यह गाँव कई पीढ़ियों से साम्प्रदायिक सौहार्द का मिसाल बना है। यहाँ दोनों सम्प्रदाय के लोग गंगा जमुना सभ्यता को आत्मसात कर सभी त्योहार आपस में मेल–मिलाप के साथ मनाते है।'[4] अगर हम अपनी वैचारिक संकीर्णताओं से निकल कर समाज के प्रति अपने नैतिक कर्त्तव्यों का निर्वहन करने लगे तो हमारा समाज ही नहीं अपितु देश भी प्रगति के मार्ग पर शीघ्र अग्रसर हो सकता है। स्वामी विवेकानन्द जी ने जाति–पाति, भेदभाव, ऊँच–नीच का कड़े शब्दों में विरोध किया है। और समाज को निरन्तर एक नई चेतना देने का प्रयत्न किया व मानव–मानव बीच आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित किये जिससे समाज में नव चेतना का संचार हो सके और जन–जीवन जागृति व समानता का भाव जाग्रत करना ही उनका मूल कर्त्तव्य था।

'ऐसा मार्ग चुने हम जहाँ हो सब एक समान,
ऊँच–नीच का भेद न हो सबको मिले सम्मान,

आज हमारा देश मानसिक संकीर्णताओ से जकड़ा हुआ है। जिसे दूर करने के लिए देश के प्रत्येक नागरिक को अपने बौद्धिक सामाजिक मानसिक दायरों को विस्तृत करना होगा तभी हम एक स्वस्थ समाज की कल्पना कर सकते है।

सन्दर्भ संकेत

1. डॉ. अम्बेडर की विरासत और हमारे समय की चुनौतियों प्रो. तुलसीराम, पृ. सं. 81 सितम्बर 2015
2. स्वतंत्रता एक उत्तरदायी आचरण है, समकालीन साहित्य समाचार, पृ. सं. 4 अंक 8 अगस्त 2018
3. हिन्दी साहित्य में साम्प्रदायिक सौहार्द की भावना – डॉ. सुमन सिंह, पृ. 102 कृतिका जनवरी – जून 2017
4. दैनिक जागरण – 23 सितम्बर 2010, पृ. 9

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

स्वामी विवेकानन्द और सामाजिक परिवर्तन

डॉ0 प्रतिमा यादव*

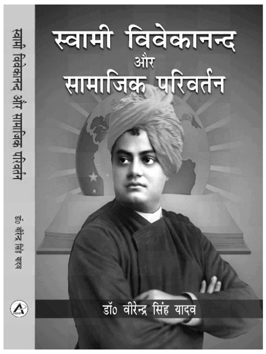

स्वामी विवेकानन्द जी महान देशभक्त व समाज सुधारक थे। आपको भारतीय समाज की पतित हुई दशा तथा समाज में व्याप्त कुरीतियों को देखकर बहुत कष्ट होता था। स्वामी विवेकानन्द ने जीवन भर भारत में फैली बुराईयों को दूर करने का प्रयत्न किया। स्वामी विवेकानन्द ने समाज में फैली कुरीतियों का जमकर विरोध किया। स्वामी विवेकानंद जी यह कहते नहीं अघाते थे कि कि पाखण्डी पण्डितों और पुरोहितों ने धर्म के नाम पर स्वार्थ का विकास कर हिन्दू धर्म को कलंकित कर दिया स्वामी विवेकानन्द धर्म की संकीर्णता और रूढ़िवादिता को समाप्त करने के हिमायती थे। विवेकानन्द के विचारों में रूढ़िवादिता का कोई स्थान प्राप्त नहीं था।

पन्द्रह अध्यायों, चार खण्डों एवं 258 पृष्ठों में विभक्त प्रतिभा एवं वैदुष्य से विभूषित डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा संपादित प्रस्तुत पुस्तक स्वामी विवेकानन्द और सामाजिक परिवर्तन के सृजन एवं अनुभवों पर उनके विचारों का सम्यक् अध्ययन एवं विवेचन को प्रस्तुत पुस्तक में विश्लेषित किया गया है।

स्वामी विवेकानन्द ने भारत की गरीबी से दुखी होकर कहा कि भारतवर्ष के गरीबों और निम्न वर्ग के लोगों की दशा का स्मरण कर मेरा हृदय फट जाता है। वे दिन पर दिन नीचे गिरते जा रहे हैं। निर्दय समाज के द्वारा अपने ऊपर होने वाले आघातों का यह अनुभव तो करते हैं पर वे जानते नहीं है कि यह आघात कहाँ से किये जा रहे हैं। वे यह भूल गये हैं कि वे भी मनुष्य हैं। जब तक करोड़ों मनुष्य भूख और अज्ञान में जीवन बिता रहे हैं तब तक मैं उस प्रत्येक मनुष्य को देशद्रोही मानता हूँ जो उनके व्यय से शिक्षित हुआ और उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देता।''

स्वामी विवेकानन्द जी दलितों और गरीबों को देखकर बड़े दुखी होते थे। आपने उनको ऊँचा उठाने के लिये और सहायता देने के लिये अपने देश वासियों तथा अन्य मिशनरियों को प्रेरणा दी। भारतवासियों को सम्बोधित करते हुए आपने कहा कि ''आओ हममें से प्रत्येक व्यक्ति दिन और रात उन करोड़ों पद दलित भारतीयों के लिये प्रार्थना करें जो गरीबी, पुरोहितों के छल और नाना अत्याचारों द्वारा जकड़े हुए हैं उन्हीं के लिये दिन रात प्रार्थना करो। मैं उच्च और धनिकों की अपेक्षा उनको उपदेश देने की चिन्ता करता हूँ।'' आपने आगे कहा कि ''मैं दार्शनिक नहीं हूँ। तत्ववेत्ता नहीं हूँ। कोई सन्त भी नहीं हूँ। मैं दरिद्र हूँ और दरिद्रों को प्यार करता हूँ। दरिद्रता और अज्ञान के गर्त में सदा से डूबे हुए इन बीस करोड़ नर–नारियों के दुखों को कौन अनुभव करता है। मैं उसी को महात्मा कहूँगा जो इनके दुखों का अनुभव करता है। किसके हृदय में उनके दुखों के लिये टीस होती है उन्हें न कहीं प्रकाश मिलता है न शिक्षा। उन्हें प्रकाश कौन देगा, कौन उनको शिक्षा देने के लिये उनके द्वार द्वार भटकेगा।

स्वामी विवेकानन्द जी महान देशभक्त व समाज सुधारक थे। आपको भारतीय समाज की गिरती हुई दशा को देखकर तथा समाज में व्याप्त कुरीतियों को देखकर बहुत कष्ट होता था। आपने जीवन भर भारत में फैली बुराईयों को दूर करने का प्रयत्न किया। जो नारी, देश के निर्धनों और दरिद्रों तथा निरक्षर और दीन–दुखियों को देखकर अत्यन्त दुःखी होते थे। स्वामी जी नारियों की समस्याओं का एक मात्र कारण अशिक्षा मानते थे। आपके अनुसार चरित्र का गठन, ब्रह्मचर्य का पालन और पवित्रता उनकी शिक्षा के प्रमुख अंग होने चाहिए। जन समुदाय की अवहेलना को वह एक राष्ट्रीय पाप मानते थे। आपका कहना था कि ''जब तक भारत का जन समूह पूरी तरह शिक्षित नहीं हो जाता, भली प्रकार उनका पेट नहीं भर पाता उन्हें अच्छा संरक्षण नही मिलता। तब तक कोई राजनीति सफल नही हो सकती।''

वास्तव में देखा जाए तो समाज में कुछ ऐसे महापुरुष होते हैं जो सम्मान पाकर गौरवान्वित होते हैं तो कुछ ऐसे भी महापुरुष होते हैं जिनका सम्मान कर समाज स्वयं गौरवान्वित होता है। स्वामी विवेकानन्द जी की रचनाओं एवं विचारों को पढ़कर हर पाठक यह गर्व महसूस कर गौरवान्वित होता है।

सम्पादक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

पुस्तक का नाम – स्वामी विवेकानन्द और सामाजिक परिवर्तन

प्रकाशन – अर्पण पब्लिकेशन्स, 4831/24 प्रह्लाद गली, अंसारी रोड,नई दिल्ली.110002

ISBN : 978-93-86468-61-1 मूल्य – रू 995.00 पृ0 – 258 संस्करण : 2018

* निदेशक–पंडित कुंजी लाल दुबे राष्ट्रीय संसदीय विद्यापीठ भोपाल, मध्य प्रदेश

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

स्वामी विवेकानन्द और धर्म दर्शन

डॉ0 भावना यादव*

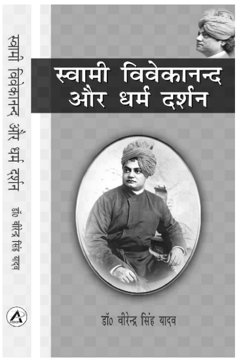

युवा आलोचक डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव का मानना है कि स्वामी विवेकानन्द के धर्म तथा दर्शन के चिन्तन में व्यवहार की आधारशिला वेदान्त की शिक्षाएँ थीं। वेदान्त के आधार पर आप एक ऐसा दर्शन विकसित करना चाहते थे जो समस्त संघर्षों को दूर करके मानव जाति को बहुमुखी संम्पूर्णता के उस स्तर को उठा सके जो उसका लक्ष्य है। इसके लिए आपने ज्ञान और आपसी प्रेम को जरूरी बताया। स्वामी विवेकानन्द प्रत्येक संस्कृति की अच्छाईयों को आदर की दृष्टि से देखते थे और उन्हें स्वीकार तथा सीखने में संकोच नहीं करते थे। स्वामी विवेकानन्द जी वेदान्त दर्शन पर अत्यधिक बल देते थे। स्वामी जी ने वेदान्त दर्शन के अन्तर्गत इस तथ्य को प्रस्तुत किया कि ''वेदान्त ऐसे ईश्वर में विश्वास नहीं करता जो स्वर्ग में तो मुझे आनन्द देगा, पर इस जगत में मुझे रोटी भी नहीं दे सकता।''

स्वामी विवेकानन्द जी का दर्शन मूलतः अद्वैत वेदान्त से अनुप्राणित है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार प्रत्येक जीव में ईश्वरीय सत्ता विद्यमान है। प्रत्येक प्राणी दैवीय है। इस धरा पर ईश्वर जीव रूप में ही अस्तित्वमान है। इसके अतिरिक्त ईश्वर का कोई दूसरा रूप नहीं है। जीवन का लक्ष्य इस दिव्यता या ब्रह्म भाव का प्रकाशन है। स्वामी विवेकानन्द के अन्य दार्शनिक विचारों को निम्नलिखित बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मनुष्य का अन्तिम उद्देश्य आत्म–साक्षत्कार है और योग सभी प्रकार के ज्ञान की सर्वोत्तम विधि है। मनुष्य परमात्मा का अंश है तथा उसमें जन्म से ही पूर्णता विद्यमान है। मनुष्य के जीवन का आधार आध्यात्मिकता है। आपके अनुसार आध्यात्मिकता नष्ट होने का अर्थ है, समाज व राष्ट्र की नींव का हिल जाना। स्वामी विवेकानन्द प्रत्यक्ष मानव में ही ईश्वर के दर्शन करते हैं। स्वामी विवेकानन्द का विचार था कि संघर्ष से व्यक्ति में चैतन्य का विकास होता है। संघर्ष के अभाव में व्यक्ति अन्धकार में रहता है। विरोधी तत्वों में समन्वय स्थापित करने के लिये आपने जीवनभर संघर्ष किया और समन्वयवाद का सन्देश दिया। पुस्तक की मान्यता है कि स्वामी विवेकानन्द का वेदान्त दर्शन तीन मुख्य स्तम्भों पर आधारित था : (1) मानव की वास्तविक प्रकृति (2) जीवन का लक्ष्य उस ईश्वरीय प्रकृति की अनुभूति है और (3) समस्त धर्मो का मूल लक्ष्य समान है। इस दृष्टि से विवेकानन्द जी के अनुसार वेदान्त संसार त्यागने का उद्देश्य नहीं है बल्कि समस्त विश्व को ब्रह्ममय करने का पाठ सिखाता है। स्वामी विवेकानन्द जी ईश्वर को निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में स्वीकार करते थे। आप सत्य की अनुभूति के लिए ज्ञान, भक्ति और कर्मयोग तीनों का ही समन्वय आवश्यक मानते थे।

स्वामी विवेकानन्द चाहते थे कि भारत अपनी वास्तविक शक्ति को पहचाने। उसे दूसरे देशों के आदर्श को नहीं अपनाना है क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र का अपना–अपना आदर्श होता है जो उसकी रीढ़ की हड्डी (Backbone) का काम करता है। किसी की रीढ़ की हड्डी, राजनीति होती है, किसी की सामाजिक संस्कृति, किसी की बौद्धिक संस्कृति इत्यादि। किन्तु हमारी भारत माता (Mother India) का आधार, उसकी रीढ़ की हड्डी केवल धर्म है। भारतीय जीवन शैली की यही धुन है, यही उसकी नींव है। उसकी अस्मिता का एकमात्र कारण है– मानव जाति का अध्यात्मवाद। सत्रह अध्यायों, चार खण्डों एवं 200 पृष्ठों में विभक्त युवा आलोचक डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा संपादित प्रस्तुत पुस्तक में स्वामी विवेकानन्द के धर्म दर्शन के सृजन एवं अनुभवों पर उनके विचारों का सम्यक् अध्ययन एवं विवेचन को विश्लेषित किया गया है। इसमें कोई दो राय नहीं कि स्वामी विवेकानन्द इस युग के पहले भारतीय हैं, जिन्होंने हमें हमारे देश की आध्यात्मिक श्रेष्ठता और पाश्चात्य देशों की भौतिक श्रेष्ठता से परिचित कराया और हमें अपने भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास के लिए सचेत किया। स्वामी विवेकानन्द इस युग के ही नहीं वरन विश्व प्रसिद्ध महापुरुषों में से एक थे।

प्रस्तुत पुस्तक स्वामी विवेकानन्द और उनके धर्म दर्शन को व्याख्यायित करती उनके विचारों के विविध पक्षों को उजागर करने का कार्य करती नजर आती है। आशा है कि अध्यात्म, साहित्य में रूचि एवं शोध करने वाले छात्रों को यह पुस्तक पसंद आएगी।

सम्पादक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

पुस्तक का नाम – स्वामी विवेकानन्द और धर्म दर्शन

प्रकाशन – अर्पण पब्लिकेशन्स, 4831/24 प्रह्लाद गली, अंसारी रोड, नई दिल्ली.110002

ISBN-978-93-86468-62-8 मूल्य – रू 995.00 पृ0 – 200 संस्करण : 2018

* सहायक प्राध्यापक–राजनीति विज्ञान विभाग, शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

स्वामी विवेकानन्द के विचार

डॉ0 विजय कुमार वर्मा

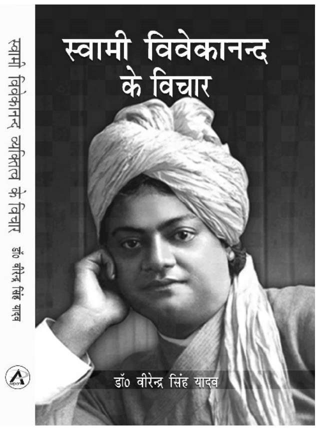

प्रस्तुत पुस्तक में सम्पादक का मानना है कि स्वामी विवेकानन्द के विचारों में मानव सेवा का उच्चादर्श विद्यमान है। आपके आदर्श आज भी उतने ही व्यावहारिक हैं जितने तत्कालीन समय में थे। स्वामी विवेकानन्द ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि पढ़ने – लिखने का अर्थ यह नही कि अपना ही भला किया जाए, मनुष्य को पढ़–लिखने के बाद मनुष्य मात्र की भलाई करनी चाहिए। स्वामी विवेकानन्द ने भारत की जनता की दरिद्रता को स्वयं अपनी आँखों से देखा था । स्वामी विवेकानन्द चाहते थे कि पढ़े– लिखे और सम्पन्न लोग दीन– हीनों की सेवा करें, उन्हें ऊँचा उठाने के लिए प्रयत्न करें, समाज सेवा करें। समाज सेवा से इनका तात्पर्य दया या दान से नहीं था , समाज सेवा से इनका तात्पर्य दीन–हीनों के उत्थान में सहयोग करने से था , उठेंगे तो वे स्वयं ही। स्वामी विवेकानन्द शिक्षा द्वारा ऐसे समाज सेवियों की टीम तैयार करना चाहते थे। स्वामी विवेकानन्द आध्यात्मिक दृष्टि से भी समाज सेवा को बहुत महत्व देते थे। आप मनुष्य को ईश्वर का मन्दिर मानते थे और उसकी सेवा को ईश्वर की सेवा मानते थे।

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा द्वारा मनुष्य के नैतिक एवं चारित्रिक विकास पर भी बल दिया। नैतिकता से इनका तात्पर्य सामाजिक नैतिकता और धार्मिक नैतिकता दोनो से था और चारित्रिक विकास से तात्पर्य ऐसे आत्मबल के विकास से था जो मनुष्य को सत्य मार्ग पर चलने में सहायक हो और उसे असत्य मार्ग पर चलने से रोके। इनका विश्वास था कि ऐसे नैतिक एवं चारित्रिक मनुष्यों से ही कोई समाज अथवा राष्ट्र आगे बढ़ सकता है, ऊँचा उठ सकता है।

स्वामी विवेकानन्द के जीवन का परम ध्येय उस ईश्वर के विरुद्ध संघर्ष करना है जो परलोक में आनन्द देने के बहाने इस लोक में मुझे रोटियों से वंचित रखता है। जो विधवाओं के आँसू पोंछने में असमर्थ है। जो माँ–बाप से हीन बच्चे के मुख में रोटी का टुकड़ा नहीं रख सकता है। वास्तविक शिव की पूजा निर्धन और दरिद्र की सेवा है। रोगी और कमजोर की सेवा है।'' स्वामी विवेकानन्द के ह्रदय में दरिद्रों और पीड़ितों के प्रति असीम पीड़ा और छटपटाहट थी। आप ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने दरिद्र तथा पीड़ित अछूतों के लिए दरिद्र नारायण की नवीन संज्ञा से विभूशित किया।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, हे भारत, क्या तू दूसरों की संस्थाओं की नकल पर निर्भर रहेगा और दूसरे की प्रशंसा पाने के लिए व्यग्र रहेगा और पद के अधिकार के लिए मूढ़, दासता घृणित नृशंसता में फंसा रहेगा? क्या तू इस प्रकार की निर्लज्ज कायरता से स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता है, जिसके योग्य केवल वीर होते है? यह न भूल कि तेरा समाज महानता की भ्रांति में भूला हुआ है। अपने गिरे हुए गरीब, अज्ञ भंगी, मेहतर को भूल वे तेरे रक्त मांस है वे तेरे भाई है। हे वीर, साहस कर, गर्वित हो कि तू भारतीय है और बड़े गर्व के साथ यह कह मैं भारतीय हूँ और हरेक भारतीय मेरा भाई, भारत की भूमि मेरे लिए सर्वोच्च स्वर्ग है, भारत की भलाई मेरी भलाई है। इस सन्दर्भ में रोमाँ रोलाँ ने इस जागरण की ओर इंगित करते हुए लिखा है कि ''.....सर्वप्रथम यहीं से भारत की उन्नति शुरू हुई। उसी दिन से इस दीर्घकाय कुम्भकर्ण की नींद टूटने लगी।. ..... स्वामी विवेकानन्द के निधन के तीन साल बाद नयी पीढ़ी ने जो बंगाल का विप्लव तथा तिलक एवं गाँधी का आन्दोलन शुरू होते हुए देखा, वह तथा आज के भारत के संगठित जन–आन्दोलन विवेकानन्द के ही सशक्त आवाहन का फल है।'' स्वामी विवेकानन्द भारतीय जनजागरण एवं स्वाधीनता–संग्राम के अग्रदूत हैं।

बीस अध्यायों, तीन खण्डों एवं 274 पृष्ठों में विभक्त प्रतिभा एवं वैदुष्य से विभूषित डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा संपादित प्रस्तुत पुस्तक स्वामी विवेकानन्द के सृजन एवं अनुभवों पर उनके विचारों का सम्यक् अध्ययन एवं विवेचन को प्रस्तुत पुस्तक में विश्लेषित किया गया है।

सम्पादक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

पुस्तक का नाम – स्वामी विवेकानन्द के विचार

प्रकाशन – अर्पण पब्लिकेशन्स, 4831/24 प्रह्लाद गली, अंसारी रोड, नई दिल्ली. 110002

ISBN - 978-93-86468-67-3 मूल्य–रू–995.00 पृ0–274 संस्करण : 2018

* असिस्टेंट प्रोफेसर–समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग– डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

स्वामी विवेकानन्द और मानवतावाद

डॉ0 उत्तरा यादव*

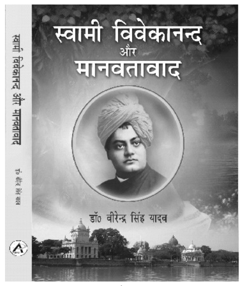

अठारह अध्यायों, पाँच खण्डों एवं 266 पृष्ठों में विभक्त प्रतिभा एवं वैदुश्य से विभूषित डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा संपादित प्रस्तुत पुस्तक स्वामी विवेकानन्द के मानवतावाद सम्बन्धी उनके विचारों का सम्यक् विश्लेषण करती है। स्वामी विवेकानन्द के विचारों में मानव सेवा का उच्चादर्श विद्यमान है। आपके आदर्श आज भी उतने ही व्यावहारिक हैं जितने तत्कालीन समय में थे। आपका स्पष्ट विचार था कि ''जब पड़ोसी भूखा मरता है तब मंदिर में भोग चढ़ाना पुण्य नहीं पाप है। जब मनुष्य दुर्बल और क्षीण हो तब हवन में घृत जलाना एक अमानुषिक कर्म है। मेरे जीवन का परम ध्येय उस ईश्वर के विरुद्ध संघर्ष करना है जो परलोक में आनन्द देने के बहाने इस लोक में मुझे रोटियों से वंचित रखता है। जो विधवाओं के आँसू पोंछने में असमर्थ है। जो माँ–बाप से हीन बच्चे के मुख में रोटी का टुकड़ा नहीं रख सकता है। वास्तविक शिव की पूजा निर्धन और दरिद्र की सेवा है। रोगी और कमजोर की सेवा है।'' स्वामी विवेकानन्द के हृदय में दरिद्रों और पीड़ितों के प्रति असीम पीड़ा और छटपटाहट थी। आप ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने दरिद्र तथा पीड़ित अछूतों के लिए दरिद्र नारायण की नवीन संज्ञा से विभूषित किया।

स्वामी विवेकानन्द सार्वभौम मानव में विश्वास रखते थे। इस हेतु स्वामी विवेकानन्द ने युवकों का आह्वान करते हुए कहा कि ''आज हमारे देश को जिन चीजों की आवश्यकता है वे हैं–लोहे की मांस पेशियां, स्पात की तंत्रिकाएं, प्रखर संकल्प जिसका कोई प्रतिरोध न हो सके, जो अपना काम हर प्रकार से पूरा कर सके चाहे मृत्यु से साक्षात्कार ही क्यों न करना पड़े, यह है हमें जिसकी आवश्यकता है और हम तभी सृजन कर सकते हैं, तभी सामना कर सकते हैं और तभी शक्तिशाली बन सकते हैं। जबकि हम धार्मिक एकता के आदर्श का साक्षात्कार कर लें सबकी एकता के आदर्श की अनुभूति कर लें।'' इस प्रकार राष्ट्रवाद को आध्यात्मिक या धार्मिक सिद्धान्त को स्वामी विवेकानन्द के राजनीतिक चिन्तन का सबसे महत्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है।

स्वामी विवेकानन्द राज्य के निर्माण में समानता के सिद्धान्त पर बल देते हैं। आपके अनुसार आदर्श राज्य वही होगा जिसमें सभी वर्ग समान हों। अपनी इसी विचाराधारा के कारण स्वामी विवेकानन्द मानवतावादी कहलाये। आपने देश के सभी निवासियों के लिए 'समान अवसर के सिद्धान्त का समर्थन किया। आपने लिखा कि ''यदि प्रकृति में असमानता है तो भी सबके लिए समान अवसर होना चाहिए अथवा यदि कुछ को अधिक तथा कुछ को कम अवसर दिया जाये तो दुर्बलों को सबलों से अधिक अवसर दिया जाना चाहिए।''

अंत में पुस्तक की मान्यता कुल मिलाकर यह है कि स्वामी विवेकानन्द को भारतीय समाज की बुनियादी एकता को मजबूत करने और पाश्चात्य समाज के बीच भारत की एक अलग एवं नई छवि बनाने के लिए हमेशा याद किया जायेगा । उठो, जागो और तब तक मत रुको जब तक लक्ष्य को न प्राप्त कर लो कहने वाले स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को स्वयं में इस तरह आत्मसात किया कि उनके बारे में एक बार गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर ने कहा था कि अगर भारत को जानना है तो विवेकानन्द को पढ़िए । उनमें आप कुछ सकारात्मक ही पायेंगे नकारात्मक कुछ भी नहीं। स्वामी विवेकानन्द इस युग के पहले भारतीय हैं, जिन्होंने भारत की आध्यात्मिक श्रेष्ठता और पाश्चात्य देशों की भौतिक श्रेष्ठता से परिचित कराया और हमें अपने भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास के लिए सचेत किया। स्वामी विवेकानन्द इस युग के ही नहीं वरन विश्व प्रसिद्ध महापुरुषों में से एक थे।

इस सम्पादित पुस्तक को ज्ञानवर्धक उपयोगी एवं जनसामान्य की समझ लायक बनाने के लिए अनेक विद्वतजनों के लेखों को सम्मिलित किया गया है। स्वामी विवेकानन्द और मानवतावाद नामक प्रस्तुत पुस्तक में स्वामी विवेकानन्द के मानवतावाद से सम्बन्धित विचारों के विभिन्न समकालीन भारतीय एवं वैश्विक मुद्दों को उठाकर उसके समाधान की कोशिश करने का विनम्र प्रयास किया गया है। सम्पादक अपने इस प्रयास में कितना सफल हुआ है, इस पुस्तक के पढ़ने वाले ही बता सकते हैं। आशा है कि मानवतावादी विचारधारा में रूचि रखने वाले पाठकों को यह कृति अवश्य पसंद आएगी।

सम्पादक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

पुस्तक का नाम – स्वामी विवेकानन्द और मानवतावाद

प्रकाशन – अर्पण पब्लिकेशन्स, 4831/24 प्रह्लाद गली, अंसारी रोड, नई दिल्ली–110002

ISBN : 978-93-86468-65-9 मूल्य – रू 995.00 पृ0 – 266 संस्करण : 2018

* एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, महिला पी0जी0 कॉलेज, अमीनाबाद, लखनऊ।

स्वामी विवेकानन्द और भारतीय समाज

डॉ0 अनुपमा यादव*

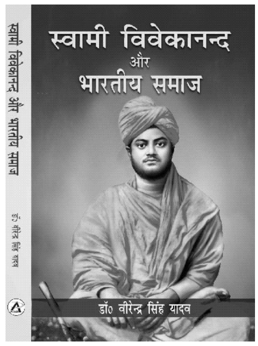

स्वामी विवेकानन्द ने मूल रूप से एक धार्मिक चिन्तक और सुधारवादी होते हुए भी धर्म सुधार के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु समाज सुधार पर जोर ही नहीं दिया उसे अनिवार्य भी बताया। सामाजिक सुधारों के प्रति आपके विचार सजग और स्पष्ट थे। सामाजिक कार्यों के प्रति आपकी लगन इसी तथ्य से स्पष्ट होती है कि आपने सामाजिक सेवा कार्यों को अध्यात्म–साधना के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार किया। स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था का गहन अध्ययन करके सामाजिक विषमताओं और बुराईयों के उन्मूलन के उपाय भी बताये। आप सामाजिक संगठन और सामाजिक मामलों में धर्म को सम्मिलित करने के विरुद्ध थे। और इसी कारण आप जात–पात सम्प्रदायवाद और छुआ–छूत तक सब तरह की विषमताओं के विरूद्ध थे।

स्वामी विवेकानन्द ने भारत में विद्यमान जाति व्यवस्था की कटु आलोचना करते हुए उसके अनुदारवादी एवं प्रगति विरोधी रूप पर प्रहार किया था। इसके साथ ही उसके उन्मूलन की आवश्यकता पर बल भी दिया। आपके मतानुसार यह एक ऐसी व्यवस्था है जो अपने कठोर बन्धनों के कारण मनुष्य को ऊपर उठने के अवसर और साधन प्रदान नही करती है। एक यथार्थवादी चिन्तक होने के नाते विवेकानन्द यह अच्छी तरह से समझते थे कि यह व्यवस्था लम्बे समय तक कायम रहने के कारण भारत में इतनी रम चुकी है कि इसका पूर्णतः उन्मूलन व्यवहारिक व्यक्ति से सम्भव नही है अतः जातिगत, संकीर्ण, रूढ़िवादी भेदभावों को मिटाने के लिए तथा जातीय समानता स्थापित करने के लिए हर जाति को स्वयं को ब्राह्मण घोषित करके देव भाषा संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ कर देना चाहिए।

प्रस्तुत पुस्तक की मान्यता है कि स्वामी विवेकानन्द जी प्रत्येक व्यक्ति के साथ समान व्यवहार का समर्थन करते थे लेकिन आप साम्यवादी चिन्तन की 'पूर्ण समानता' की मान्यता को असंभव मानते हैं। आपके शब्दों में ''सच्ची समानता न तो कभी रही है और न ही इस पृथ्वी पर कभी स्थापित हो सकती है। हम सभी लोग यहाँ एक समान कैसे हो सकते हैं? इस असंभव समानता का अर्थ है–पूर्ण मृत्यु।'' अब प्रश्न है कि मनुष्य–मनुष्य में अन्तर क्यों है ? एक पागल व्यक्ति ही यह कह सकता है कि हम सभी समान मानसिक व्यक्ति के साथ जन्म लेते हैं।''

कोई भी व्यक्ति, जाति या राष्ट्र केवल उस स्थिति में ही उन्नति कर सकता है जब व्यक्तियों को दो प्रकार की स्वतन्त्रताएँ प्रदान की जाएँ–विचार की स्वतन्त्रता और कार्य की स्वतन्त्रता। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में, ''विचार व कार्य की स्वतन्त्रता ही जीवन, विकास व खुशहाली की एकमात्र शर्त है। जहाँ इसका अस्तित्व नहीं है, वहाँ व्यक्ति, प्रजाति और राष्ट्र का आवश्यक रूप से पतन होगा।'' एक राष्ट्रवादी अपने राष्ट्र की शक्ति क्षेत्र व प्रभाव का विस्तार करना चाहता है।

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा संपादित प्रस्तुत पुस्तक बीस अध्यायों, पाँच खण्डों एवं 234 पृष्ठों में विभक्त है। इस पुस्तक में स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय समाज के बारे में अपने अनुभवों एवं विचारों का सम्यक् अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है। नई सदी के भारत के भविष्य के बारे में इशारा करती प्रस्तुत पुस्तक की मान्यता है कि सर्वकल्याण में आस्था रखने के कारण स्वामी विवेकानन्द व्यक्तिवादी नैतिकता के दृष्टिकोण को अस्वीकार करते हैं। आप व्यक्ति की स्वतंत्रता के समर्थक हैं लेकिन वास्तविक स्वतंत्रता, स्वयं के स्वार्थों की पूर्ति में नहीं बल्कि दूसरों के हित के लिए अपने निजी हितों के परित्याग में अन्तर्निहित होती है।

प्रस्तुत पुस्तक में देश के विभिन्न प्रान्तों के उच्च शिक्षा जगत से सम्बद्ध प्राध्यापकों, शिक्षाविदों, बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों, अध्यात्म चिन्तकों, मनोवैज्ञानिकों एवं वैज्ञानिकों के सार्थक चिन्तन, मनन एवं गम्भीर विचारों को रखा गया है जिसमें स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय समाज से सम्बद्ध विचारों को रखा गया है। आशा है कि भारत के नीति नियन्ताओं एवं शोध छात्रों को यह पुस्तक अवश्य पसंद आएगी।

सम्पादक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

पुस्तक का नाम – स्वामी विवेकानन्द और भारतीय समाज

प्रकाशन – अर्पण पब्लिकेशन्स,4831/24 प्रह्लाद गली,अंसारी रोड,नई दिल्ली.110002

ISBN : 978-93-86468-63-5 मूल्य – रू 995.00 पृ0 – 234 संस्करण : 2018

* सहायक प्राध्यापक–राजनीति विज्ञान,शासकीय स्नातकोत्तर महा., भेल, भोपाल (म.प्र.)

स्वामी विवेकानन्द व्यक्तित्व और कृतित्व

डॉ0उमारतन यादव*

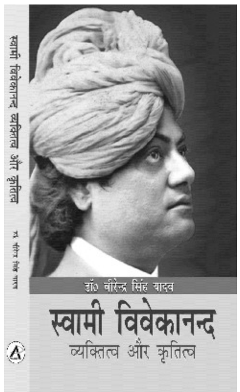

स्वामी विवेकानन्द का जीवन दर्शन मानव के लिए अत्यन्त गौरवपूर्ण व प्रेरणादायक है आपने बताया कि जीवन एक संघर्ष है इस संघर्ष में केवल समर्थ की विजय होती है तथा असमर्थ का विनाश होता है इसलिए विजय प्राप्त करके जीवित रहने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की प्रत्येक चुनौती के साथ डटकर संघर्ष करना चाहिए, वहीं विवेकानन्द जी का यह भी कहना था कि मनुष्य पवित्र तथा दैविक है और उसका स्वरूप ''सत्तचित आनन्द है''। प्रत्येक मनुष्य में आत्मा की दिव्य ज्योति विद्यमान है और हममें से प्रत्येक एक ही परमात्मा का अंश है। अतः हम सब एक ही ईश्वर की सन्तान हैं और हमारे बीच प्रेम तथा सेवा के सम्बन्ध के अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। स्वामी विवेकानन्द जी के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता उनके द्वारा शिक्षा पर दिए गए उपदेश थे। स्वामी विवेकानन्द शिक्षा द्वारा लोगों के चरित्र निर्माण के पक्ष में थे। क्योंकि आपकी दृष्टि में एक चरित्रवान व्यक्ति अनुशासित एवं आत्मनिर्भर होता है। आपका कहना था कि हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है–जिससे चरित्र का निर्माण हो।

ग्यारह अध्यायों, तीन खण्डों एवं 268 पृष्ठों में विभक्त प्रतिभा एवं वैदुश्य से विभूषित डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा संपादित प्रस्तुत पुस्तक स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व और कृतित्व को प्रस्तुत पुस्तक में विश्लेषित किया गया है।

विश्व भर में भारतीय आध्यात्म का परचम लहराने वाले स्वामी विवेकानन्द ने न केवल भारतीयों के मन में आत्म सम्मान ही जगाया बल्कि उनमें एक नवजागरण की शुरूआत भी की। सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए उनके द्वारा शुरू किया गया अभियान बहुत महत्वपूर्ण रहा है। साथ ही साथ एक भारतीय युवा के रूप में जीवन जीने का उन्होंने जो आदर्श प्रस्तुत किया । आप आज के समय में युवाओं के लिए रोल माडल हैं। स्वामी विवेकानन्द जी का मानना है कि शिक्षा व्यक्ति में अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।'' स्वामी विवेकानन्द का यह वेदान्त दर्शन पर आधारित विचार है। इसका अर्थ है कि मानव में ईश्वरीय पूर्णता पायी जाती है। इसी पूर्णता की अभिव्यक्ति का नाम शिक्षा है। अर्थात् शिक्षा द्वारा व्यक्ति अपने अन्दर निहित पूर्णता के ज्ञान की अनुभूति करता है अर्थात सब लौकिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान मनुष्य के भीतर होता है, इसकी अभिव्यक्ति ही शिक्षा है। आप पुस्तकीय शिक्षा को शिक्षा नहीं मानते क्योंकि इसमें बालक को जबरन कुछ सिखाया जाता है, इससे उसकी स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है, वह यंत्रवत बन जाता है फलतः उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। इसीलिए वे स्वाधीनता को विकास की पहली शर्त मानते हैं।

पाश्चात्य देशों की उन्नति का प्रमुख कारण आपने तकनीकी और औद्योगिक शिक्षा को माना है। स्वामी विवेकानन्द भारत की प्रचलित शिक्षा प्रणाली बदलकर उसके स्थान पर जीविकोपार्जन प्रदान करने वाली शिक्षा की व्यवस्था करना चाहते थे। आपके अनुसार वर्तमान शिक्षा व्यवस्था लोगों को नौकरीपरक व बेरोजगार बना रही है। अतः उन्हें पाश्चात्य विज्ञान अर्थात व्यावसायिक, तकनीकी, औद्योगिक तथा यांत्रिक शिक्षा दी जानी चाहिए। इससे भारतवासी आत्मनिर्भर बनेगें तथा विश्व के विकसित देशों की भाँति अपना विकास कर सकेंगे।

इस पुस्तक की मान्यता एवं समाधान यह है कि स्वामी विवेकानन्द जी परम्परागत परीक्षा प्रणाली के मूल्यांकन की प्रचलित प्रणाली के प्रबल विरोधी थे। आपने अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली का प्रबल विरोध करके और उसके स्थान पर एक नवीन शिक्षाप्रणाली वेदान्तिक साम्यवाद की भविष्यवाणी की। उनका मानव निर्माणकारी दर्शन शिक्षा की व्यापक एवं आधुनिक परिभाषा प्रस्तुत करने के साथ ही मानव की आध्यात्मिक व्याख्या करता है तथा भारत एवं पाश्चात्य वेदान्त एवं विज्ञान का समन्वयवादी दृष्टिकोण लोगों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

प्रस्तुत पुस्तक स्वामी विवेकानन्द जी के इन्हीं कुछ विचारों एवं स्थापनाओं को व्याख्यायित करती उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के विविध समकालीन चर्चाओं को उजागर करने का कार्य करती नजर आती है। आशा है कि साहित्य में रूचि एवं शोध करने वाले छात्रों को यह पुस्तक पसंद आएगी।

सम्पादक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

पुस्तक का नाम – स्वामी विवेकानन्द व्यक्तित्व और कृतित्व

प्रकाशन – अर्पण पब्लिकेशन्स, 4831/24 प्रह्लाद गली, अंसारी रोड, नई दिल्ली.110002

ISBN : 978-93-86468-66-6 मूल्य–रू 995.00 पृ0–268 संस्करण : 2018

* एसो0 प्रोफेसर – अर्थशास्त्र विभाग,बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारत का लोक सांस्कृतिक विमर्श

डॉ0 सुरेश एफ कानडे*

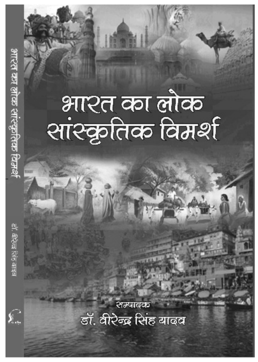

स्वतंत्रता, समानता और बंधुता भारतीय संविधान और जीवन–दर्शन की मूल भावना हैं। हमारा साहित्य–दर्शन भी इसी पर केन्द्रित है। हमारे साहित्यकार स्वतंत्रता, समानता और बंधुता के सिद्धांत पर ही चलकर स्वस्थ समाज और महान साहित्य का सृजन करते हैं। वही साहित्य चिरंजीवी होता है, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो– जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं। ''बाजारवाद' और ''अपसंस्कृति' के दौर में भी लोकसंस्कृति एवं लोक साहित्य की धारा को आज समाज में अधिक–से–अधिक प्रतिष्ठा दिलाने की आवश्यकता है। जिसके लिए निश्चय ही साहित्यकारों को आगे आना चाहिए।

बीस अध्यायों,तीन खण्डों एवं 151 पृष्ठों में विभक्त प्रतिभा एवं वैदुश्य से विभूषित डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा संपादित प्रस्तुत पुस्तक में भारत के लोक सांस्कृतिक विमर्श को विश्लेषित किया गया है।

युवा आलोचक डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव की लोक विमर्श पर यह अद्यतन पुस्तक है। जिसमें लोक को नए सिरे से परिभाषित किया गया है। सम्पादकीय में लिखा गया है कि साहित्य का मुख्य प्रयोजन मानवीय संवेदना का विस्तार और प्रचार–प्रसार करना है। साहित्य मनुष्य को मनुष्यता का पाठ सिखाता है। वह व्यक्ति को व्यक्तिगत से सार्वजनिक कर उसके अंदर की मनोदशा को विस्तार देता है। कथाकार, और साहित्य मर्मज्ञ प्रेमचंद ने साहित्य के उद्देश्य के संबंध में बहुत सारे सवालों को बहुत गंभीरता से उठाने का प्रयास किया है। उनका आरंभिक लेखन आदर्शोन्मुखी रहा है लेकिन जैसे–जैसे उनका साक्षात्कार अपने समाज के निचले तबके की समस्याओं से होना आरंभ हुआ, उनकी मान्यता में भी बदलाव आना शुरू हो गया। उन्होंने अपने निबंध 'साहित्य का उद्देश्य' में साहित्य के प्रयोजन को बहुत ही बारीकी से पकड़ा है। उन्होंने लिखा है– "साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है। अगर यह उसका स्वभाव न होता तो शायद वह साहित्यकार ही न होता। उसे अपने अंदर भी एक कमी महसूस होती है और बाहर भी। इसी कमी को पूरा करने के लिए उसकी आत्मा बेचैन रहती है। अपनी कल्पना में वह व्यक्ति और समाज को सुख और स्वच्छंदता की जिस अवस्था में देखना चाहता है उसे वह दिखाई नहीं देती। इसलिए वर्तमान मानसिक और सामाजिक अवस्थाओं से उसका दिल कुढ़ता रहता है।"

युवा आलोचक डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव का मानना है कि लोकजीवन में लोकसंस्कृति एवं लोकसाहित्य का अत्यधिक महत्व है। इसके संरक्षण एवं अनुशीलन के द्वारा समाज एवं साहित्य का विकास किया जा सकता है। साहित्य में धर्म, समाज, सदाचार आदि बातों का समावेश मिलता है। इसके अलावा साहित्य के द्वारा स्थानीय इतिहास एवं भूगोल–संबंधी जानकारी की प्राप्त होती है। लोकसंस्कृति एवं लोकसाहित्य जनता के हृदय का उद्‌गार है। लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकनृत्य इत्यादि ये भी लोकसंस्कृति के अंग माने गये हैं। इसके अलावा लोक–सुभाषित, जिसके अन्तर्गत बच्चों के गीत, मुहावरे, लोकोक्तियां, पहेलियां इत्यादि आते हैं। जिनका व्यवहार प्रतिदिन लोक–जनजीवन में समान रूप से किया जाता है।

इस सम्पादित पुस्तक में देश के विभिन्न प्रान्तों के उच्च शिक्षा जगत से सम्बद्ध प्राध्यापकों, शिक्षाविदों, बुद्धिजीवियों तथा साहित्यकारों के सार्थक चिन्तन, मनन एवं गम्भीर विचारों को रखा गया है। आशा है कि बदलते परिदृश्य में भारत की लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य की अहम भूमिका को दृष्टिगत रखते हुए विषयपरकता की दृष्टि से इस सम्पादित पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। साहित्य जगत में भारत की लोक संस्कृति एवं लोक साहित्य के सृजन पर हो रहे चिंतन में ऐसे अनेक अछूते सन्दर्भ एवं समसामयिक घटनाओं को बहुत व्यापकता एवं नई समझ के साथ प्रस्तुत पुस्तक व्याख्या करती है जो निकट भविष्य में एक नयी बहस को जन्म देगी। शोधार्थियों, अध्येयताओं एवं प्राध्यापकों के लिये प्रस्तुत पुस्तक संग्रहणीय एवं महत्वपूर्ण होगी, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

सम्पादक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

पुस्तक का नाम – भारत का लोक सांस्कृतिक विमर्श

प्रकाशन – कौटिल्य बुक्स,201–202 / 24 हरिसदन,20,अंसारी रोड दरियागंज,नई दिल्ली.110002

ISBN : 978-81-93684-7-5 मूल्य–रू–450.00 पृ0–151 संस्करण : 2018

*प्लाट नं. 48, साईं बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजडम हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर, गंगापुर रोड, नासिक–422013 (महाराष्ट्र)

PEER REVIEW BOARD KRITIKA

डॉ0 वाई0 पी0 सिंह
प्रोफेसर—हिन्दी विभाग
लखनऊ, विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0—9415914942
E-mail - yp.hindi.indology @gmail.com

डॉ0 देवेनबरा
एसोसिएट प्रोफेसर—हिन्दी विभाग
गुवाहटी कालेज बमुनिमाईदम
(BAMUNIMAIDAM), गुवाहटी—781021
दूरभाष न0—9435046970
E-mail - debenbora@gmail.com

डॉ0 मुकेश कुमार मालवीय
असिस्टेंट प्रोफेसर—विधि विभाग
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
दूरभाष न0—8004851126
E-mail - mukesh9424@gmail.com

डॉ0 किशन यादव
एसोसिएट प्रोफेसर—राजनीति विज्ञान विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
दूरभाष न0—9454054899
E-mail - dr.kishanpolsc@yahoo.com

डॉ0 नरेन्द्र प्रताप सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर—वाणिज्य विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास
विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0—9415085218
E-mail - dr.narendrasingh0801@gmail.com

डॉ0 राजेश्वर यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर—दर्शनशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0—9415789303
E-mail - rpyadavlu@gmail.com

डॉ0 आशुतोष पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफेसर—लोक प्रशासन एवं राजनीति विज्ञान विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0—9411863763
E-mail - ashuparsiya@rediffmail.com

कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एंड सोशल साइंसेज
ISSN : 0975-0002 वर्ष : 11, अंक : 21, जनवरी–जून 2018

रजिस्ट्रेशन ऑफ न्यूज पेपर्स रूल्स 1956 (सेन्ट्रल) के अन्तर्गत
'कृतिका' – हिन्दी अर्द्धवार्षिक के सम्बन्ध में स्वामित्व
तथा अन्य विवरण विषयक जानकारी

घोषणा–पत्र

(फार्म–4)

1.	प्रकाशन स्थल	:	1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
2.	प्रकाशन अवधि	:	अर्द्धवार्षिक
3.	मुद्रक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
4.	प्रकाशक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
5.	सम्पादक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.

मैं डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव एतदद्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : जनवरी 2018

हस्ताक्षर
डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

मुद्रक : महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स,
15, आजाद नगर, उरई (जालौन)

☞सम्पादक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सदस्यता पत्रक

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एंड सोशल साइंसेज
ISSN : 0975–0002 वर्ष : 11, अंक : 21, जनवरी–जून 2018
(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)
प्रधान सम्पादकीय कार्यालय – 303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर,
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, मोहान रोड, लखनऊ, उ.प्र. 226 017

पत्रांक– दिनाँक–

श्रीमान सम्पादक, कृतिका
303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर,
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, मोहान रोड, लखनऊ, उ.प्र. 226 017

महोदय,

निवेदन है कि मैं या हमारा विश्वविद्यालय/महाविद्यालय कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ हाफ इयरली "ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज, ISSN : 0975–0002, RNI: UPHIN/2008/30136 (साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका) की वार्षिक संस्थागत' सदस्य बनना चाहता है। मैं या हमारी संस्था सम्पादक कृतिका, के नाम व्यक्तिगत या संस्थागत सदस्यता शुल्क भारतीय स्टेट बैंक, मुख्य शाखा लखनऊ को ड्राप्ट या खाता सं. 30358537228, IFSC No. SBIN0000125 में नकद जमा कर रहा हूँ या रही हूँ।

नाम एवं पद का नाम ....

संस्था का नाम ....

पत्र व्यवहार का पूरा पता पिन कोड सहित ....

फोन/मो. नं. .... EMAIL..

स्थान एवं दिनांक ....

हस्ताक्षर

i/kku lEikndh; dk;ky;
Mk- ohjUn flg ;kno
303 तीसरा तल, टाईप 5, विश्वविद्यालय परिसर,
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
मोहान रोड, लखनऊ, 226017
दूरभाष–07607782917, 09415924888
Email : dr.virendrayadav@gmail.com
Email : kritika_orai@rediffmail.com
Webside :www.kritika.org.in

icU/ku
vkjk/kuk cn l
(प्रकाशक एवं वितरक)
124/152–सी ब्लाक, गोविन्दनगर,
कानपुर–208006, उ.प्र.
दूरभाष – 09935007102
Email : aradhanabooks@rediffmail.com
Webside :www.kritika.org.in

कृतिका पत्रिका की वार्षिक संस्थागत सदस्यता से तात्पर्य प्रिन्टेड उतने मूल्य की प्रति या प्रतियाँ (किसी भी अंक की)

आराधना ब्रदर्स कानपुर के नवीनतम् प्रकाशन

पुस्तक	लेखक	मूल्य
पं. दीनदयाल उपाध्याय : व्यक्तित्व एवं विचार	डॉ. लक्ष्मीकांत पाण्डेय	500/-
स्वर्ग की अदालत	डॉ. परशुराम शुक्ल	300/-
चिकित्सा विज्ञान की खोंजे	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
बुन्देलखण्ड का साहित्य, कला और संस्कृति	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
हिन्दी बाल साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन	डॉ. परशुराम शुक्ल	500/-
बाल साहित्यकारों की कहानी उन्हीं की जुबानी	डॉ. परशुराम शुक्ल	400/-
हिन्दी बालकाव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	मनोज कुमार	400/-
हिन्दी का बाल लोक साहित्य	डॉ. मीना सिंह गौर	400/-
बाल सतसई प्रबोधिनी	स्वामी विजयानन्द	600/-
सतसई काव्य परम्परा और बाल सतसई	डॉ. संगीता जगताप	550/-
हिन्दी और ओड़िया बाल कविता का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. निर्मला जेना	750/-
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी बाल कविता में वैज्ञानिक चेतना	डॉ. डी.आर. राहुल	300/-
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी बाल कविता में युगचेतना	डॉ. उमा सिरोनिया	600/-
बाल कविता में सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना	डॉ. शिरोमणि सिंह 'पथ'	400/-
हिन्दी बाल साहित्य में मनोरंजन एवं नैतिकता	डॉ. रामशंकर आर्य	400/-
बाल समस्याएँ कारण और निदान	जयजयराम आनन्द	500/-
हिन्दी बाल कविता की प्रवृत्तियाँ	डॉ. उदय सिंह जाटव	500/-
मयंक का हिन्दी बाल साहित्य	डॉ. कंचनलता यादव	500/-
हिन्दी का प्रवासी साहित्य	डॉ. कालीचरण स्नेही	400/-
डॉ. अंबेडकर : वैचारिकी एवं दलित विमर्श	डॉ. कालीचरण स्नेही	600/-
स्वयंसिद्धा	डॉ. तनूजा चौधरी	250/-
परसाई समय और सापेक्षता	डॉ. तनूजा चौधरी	250/-
मॉरिशस की कहानियों में भारतीय संस्कार–जीवन मूल्य	डॉ. तनूजा चौधरी	300/-
साठोत्तरी लेखिकाओं का स्त्री–विमर्श	डॉ. तनूजा चौधरी	500/-
हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श के विविध सरोकार	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी समस्यायें आधुनिकताबोध	डॉ. सविता मसीह	500/-
मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी	डॉ. भारती	400/-
मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य	डॉ. प्रियंका रानी	400/-
डॉ. रामकमल राय सृजन सरोकार	डॉ. निशीथ राय	300/-
मृच्छकटिकम् में मानवाधिकार	डॉ. शुभांगी गायकवाड़	500/-
सूरदास एवं अक्षर अनन्य का काव्य	डॉ. पी.एस. गोयल	500/-
संत परम्परा की खोज	डॉ. कमलेश सिंह नेगी	400/-
आधुनिक संस्कृत साहित्य में समकालीन समस्यायें	डॉ. रेखा शुक्ला	300/-
संस्कृत वांङ्मय में वर्णित भारतीय संस्कृति एवं कला	डॉ. रेखा शुक्ला	1200/-
आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी और उनकी समीक्षा दृष्टि	डॉ. अजिता दीक्षित	250/-
कथाकार भगवती चरण वर्मा के कथा साहित्य का शास्त्रीय अध्ययन	डॉ. अजिता दीक्षित	600/-

मुकुट बिहारी 'सरोज' और डॉ. सीता किशोर खरे के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. प्रगति	600/-
हिन्दी व्यंग्य लेखन में शरद जोशी का योगदान	डॉ. शिवशंकर यादव	400/-
सौन्दर्यबोध और भारतीय चिन्तन परम्परा	डॉ. पद्मा शर्मा	400/-
हिन्दी महिला उपन्यास लेखन में स्त्री आन्दोलन	डॉ. मुनेश यादव	500/-
शशिप्रभा शास्त्री के कथा साहित्य में नारी	डॉ. अनिता शर्मा	500/-
वैश्विक परिदृश्य में वैदिक ज्ञान–विज्ञान	डॉ. पुष्पा यादव	900/-
मुक्तिबोध सृजन के विविध	डॉ. वन्दना श्रीवास्तव	700/-
ज्योत्सना	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	250/-
जगत् सत्यं ब्रह्म नास्ति	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	250/-
साधना सफल है! (कहानी संग्रह)	सीताराम यादव	250/-
प्यासे केन के फूल	कुँवर वैरागी	500/-
यात्रा (परिधि से केन्द्र तक)	हरीराम गुप्ता 'निर्पेक्ष'	250/-
हिन्दी भाषा एक अबाध प्रवाह	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
आधुनिक हिन्दी कविता में लोक चेतना	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
रेणु का कथा साहित्य	डॉ. सुरेश चन्द्र मेहरोत्रा	500/-
रामचंद्रिका में वक्रोक्ति सिद्धांत का अनुशीलन	डॉ. ममता गंगवार	500/-
बुन्देलखण्ड का साहित्य, कला और संस्कृति	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
बुंदेलखण्ड के साहित्यकारों का साहित्यिक अवदान	डॉ. छाया राहुल	700/-
बुन्देलखण्ड की साहित्य सर्जना	डॉ. किरण शर्मा	350/-
आधुनिक बुन्देली काव्य	डॉ. कालीचरण स्नेही	300/-
जायसी और कबीर : सामासिक संस्कृति के संदर्भ में	डॉ. डी.आर. राहुल	600/-
समीक्षा रेखायें	डॉ. कामिनी	400/-
उरैन	डॉ. कामिनी	350/-
आलेख	डॉ. कामिनी	350/-
हाशिये पर (कहानी संग्रह)	डॉ. कामिनी	150/-
संस्कार गीत और लोक जीवन	डॉ कामिनी	200/-
सिर्फ रेत ही रेत	डॉ. कामिनी	100/-
स्थान नाम बोलते हैं	डॉ. कामिनी	75/-
दतिया जिले में पत्र–पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. कामिनी	120/-
वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों में नारी	डॉ. रामप्रकाश जाटव	350/-
चिड़ियाँ चुग गईं खेत (लघुकथा संग्रह)	डॉ. राज गोस्वागी	300/-
सुनहरी धूप (काव्य–धारा)	मंजू एस. सिंह	200/-
सबके अपने अमित...	सं. डॉ. निरंजन कुमार	300/-
गुलदस्ता	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	350/-
बंशी उठी पुकार	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	250/-
प्रदोष नृत्य	डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा	250/-
मृत्यु पर विजय	डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा	300/-
रामाश्रय (खण्डकाव्य)	डॉ. हरीश चन्द्र शर्मा	500/-

प्रेमचन्द्र युगीन उपन्यास लेखिकाएँ और उनका रचना संसार	डॉ. संध्या शर्मा	150/-
हिन्दी यात्रा साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	डॉ. संध्या शर्मा	500/-
स्वच्छन्द काव्यधारा	डॉ. मीता अरोरा	600/-
'अंधेरे में' आख्यान का स्वरूप	डॉ. मीता अरोरा	200/-
पं. श्रीवर चतुर्वेदी : व्यक्ति एवं अभिव्यक्ति	डॉ. रामकिशोर यादव	500/-
जैनेंद्र का कथालोचन	डॉ. वन्दना श्रीवास्तव	350/-
'रामायण' और 'महाभारत' में राजनीतिक विचार	डॉ. कान्ती शर्मा	500/-
स्थानवाची नामों का समाज भाषा शास्त्रीय विश्लेषण	डॉ. कमलेश प्रजापति	350/-
प्रसाद नाट्य साहित्य में हास्य–व्यंग्य	डॉ. संगीता अग्रवाल	200/-
नयी कहानी : अस्तित्व एवं स्वरूप	डॉ. संगीता अग्रवाल	250/-
शिवानी के उपन्यासों में कूर्मांचलीय लोक संस्कृति	डॉ. अलका मिश्र	300/-
महाप्राण निराला : पुनर्मूल्यांकन	डॉ. प्रदीप मिश्र	400/-
श्रृंगार शिरोमणि का रस–भाव विवेचन	डॉ. प्रदीप मिश्र	500/-
शिवानी के उपन्यासों के पात्र	डॉ. सुषमा पुरवार	400/-
कालजयी नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र	डॉ. मंजुला श्रीवास्तव	400/-
भारतीय नारी का धर्मशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. पूजा श्रीवास्तव	300/-
महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक गैलीलियो गैलिली	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक बैंजामिन फ्रैंकलिन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक आइजक न्यूटन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक सी.वी. रामन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
विज्ञान पहेलियाँ	चन्द्र प्रकाश शर्मा	200/-
मानव जीवन और पेड़ पौधे	डॉ. शिवानी शुक्ला	250/-
संतोष का फल	रघुपति सिंह	175/-
आसमान छूते विकलांग	सुखदेव सिंह सेंगर	200/-
भारत के अमर वीर	सुखदेव सिंह सेंगर	350/-
साहित्य के समुद्र गुरुदेव	सुखदेव सिंह सेंगर	250/-
तुम न आये सितारों को नींद आ गई	मंजुल मयंक	300/-
मेरी हम जिन्दगी मेरी हमशाइरी	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	200/-
सहमे सहमे अक्षर	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	300/-
अनाम सखे	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	150/-
गीत से नवगीत	डॉ. शुभा श्रीवास्तव	250/-
उर्वशी काव्य में नारी चेतना	डॉ. मीता अरोरा	200/-
उठी हाट के हम व्यापारी	रामस्वरूप	80/-
कहत ईसुरी और दास मलूका	डॉ. सीता किशोर	200/-
रहीम के आमूं सामूं	डॉ. सीता किशोर	200/-
सबका अंतरिक्ष	डॉ. सीता किशोर	150/-
इस दौर से गुज़रे हैं हम	डॉ. सीता किशोर	200/-

बुंदेलखंड की पूर्व रियासतों में पत्रपांडुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. सीता किशोर	250/-
ग्वालियर संभाग में व्यवहृत बोली रूपों का भाषा अध्ययन	डॉ. सीता किशोर	200/-
नारी स्वर	ज्ञानचन्द्र गुप्त	200/-
पुरवा	मंजु सिंह	200/-
मनन और मूल्यांकन	डॉ. विश्वम्भरनाथ	250/-
साहित्यिक एवं सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी	150/-
जन्म जन्मान्तर	मंजु सिंह	200/-
महाकवि भवभूति के नाटकों में ध्वनि तत्व	डॉ. शिवबालक द्विवेदी	225/-
पं. बनारसी दास चतुर्वेदी व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. कालीचरण 'स्नेही'	400/-
वासुदेव गोस्वामी और उनका साहित्य	डॉ. श्रीमती गीता पाण्डेय	150/-
विचार–वीथी (निबन्ध–संग्रह)	डॉ. पुरुषोत्तम बाजपेयी	75/-
अपराधी कल्याण के विविध आयाम	डॉ. ए. एन. अग्निहोत्री	300/-
भदावरी बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	डॉ. श्यामसुन्दर सौनकिया	150/-
हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी	डॉ. हरिशंकर शर्मा	140/-
संस्मरण और संस्मरणकार	डॉ. मनोरमा शर्मा	60/-
ब्रजनंदन व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. ओमप्रकाश सिंह	60/-
दिव्यांग विभूतियाँ सामाजिक सरोकार	डॉ. विजय कुमार वर्मा	300/-
दिव्यांगता एक सामाजिक यथार्थ	डॉ. विजय कुमार वर्मा	300/-
भारत की विदेश नीति	मनोज कुमार यादव	600/-
पं. दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति विचार	डॉ. लक्ष्मीकान्त पाण्डेय	500/-
पर्यावरणीय संकट एवं गाँधीवादी मूल्य	डॉ. शकुन्तला	700/-
ग्रामीण बैंकों की रोजगार सृजन में भूमिका	डॉ. नीरज यादव	600/-
टैगोर और रूसो की शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. अनीता यादव	350/-
स्वच्छ भारत अभियान (मुद्दे–समस्याएँ–संभावनाएँ)	डॉ. अरविन्द शुक्ला	595/-
स्वच्छ भारत अभियान : चुनौतियाँ एवं अवसर	डॉ. अरविन्द शुक्ला	650/-
उभरती पर्यावरणीय चिंताएँ एवं सतत् विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	600/-
पर्यावरण एवं अक्षय विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	650/-
वैश्विक पर्यावरण एवं सतत् विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	595/-
नई सदी में पर्यावरण : चिंतन के विविध परिदृश्य	मनोज कुमार यादव	995/-
भारत में समावेशी एवं सतत् विकास	डॉ. सपना, डॉ. शुक्ला	850/-
भारत में उच्च शिक्षा दशा एवं चुनौतियाँ	डॉ. उमेश शाक्य	600/-
राष्ट्रवादी–मार्क्सवादी इतिहास लेखन महात्मा गांधी	डॉ. सुप्रिया वर्मा	500/-
भारत का समाजवाद : दशा एवं दिशा	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	500/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं वैचारिक विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवादी विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं अर्थ दर्शन	डॉ. यतीन्द्र नाथ शर्मा	500/-
भारतीय राजनीतिक–सामाजिक समस्यायें	डॉ.(श्रीमती) राजेश जैन	600/-

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उ.प्र. की महिलाओं का योगदान	डॉ. संजू	400/-
राजपूत कालीन सामाजिक विषमताएँ	डॉ. प्रशांत सिंह	500/-
पंचायती राजव्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता	डॉ. अनीता	400/-
चाणक्य नीति : वर्तमान में प्रासंगिकता	डॉ. ममता गंगवार	600/-
विश्व पर्यावरण एवं राजनीतिक संघर्ष	डॉ. आर.के. त्रिपाठी	400/-
Communication Skills & Higher Education	Dr. Sapana Pandey	750/-
Environmental Issues & Sustainable Development	Dr. Arvind Shukla	600/-
Environmental Concerns & Clean India Campaign	Dr. Arvind Shukla	595/-
Swachh Bharat Campaign (Administrative Perspectives Issues & Challenges)	Dr. Arvind Shukla	595/-
Global Environment & Sustainable Development	Dr. Arvind Shukla	595/-
A Journey Into Religious Freedom	Fr. Jerom Paul	400/-
The Permanent Synod of the East	Fr. Jerom Paul	400/-
Dalit Politics in Uttar Pradesh : A Study of Bahujan Samaj Party (B.S.P.)	Dr. Ravi Ramesh Shukla	650/-
Khilafat Movement	Dr. Razia Nayab	500/-
Arun Joshi : An Exploration of the Self	Dr. Anjita Singh	500/-
Tourism Industry in Himanchal Pradesh	Dr. Tiwari	400/-
Modern English Poetry	Dr. Satish Kumar	400/-
Environmental Issues & Gandhian Value	Dr. Shakuntala	400/-
Evolution of National Consciousness in U.P.	Dr. Vijay Khare	500/-
History of Hindu Socio Religious Reform Movements in 19th Century	Dr. Vijay Khare	500/-
Cultural Aspect of Food & Nutrition	Dr. Geeta Mathur	500/-
Issues & Challenges Related to Family Dynamics in Modern Society	Dr. Geeta Mathur	1100/-
Trends Issues & Challenges in Physical Education	Dr. Madhu Gaur	995/-
Anne Sextion and Her Universe	Dr. Sapna Pandey	600/-
Speech Act analysis of Political Discourse	Dr. Kamalakar Jadhav	350/-
Critical Essays of Indian English Drama	Dr. R.T. Bedre	450/-
Socio Realism in Indian English Drama	Dr. R.T. Bedre	800/-

नोट : (1) हमारी संस्था महाविद्यालय/विश्वविद्यालय एवं सार्वजनिक पुस्तकालय हेतु समस्त विषयों में समस्त प्रकार की पुस्तकों की आपूर्ति आपकी माँग के अनुसार करती है।
(2) पुस्तकों का आदेश भेजते समय अपना नाम, पता, पिनकोड व फोन नं. लिखें या मेल करें।

आराधना ब्रदर्स प्रकाशक एवं वितरक

124/152-सी ब्लाक, गोविन्द नगर, कानपुर-208 006 (उ.प्र.)

दूरभाष : 09935007102, 09889121111, 07985242564 दूरभाष : aradhanabooks@rediffmail.com

शहरी हितग्राही सम्मेलन
पथ विक्रेता, फुटकर, किराना, ऑटो रिक्शा ड्रायवर, अन्य व्यवसायी तथा संबल योजना के हितग्राहियों का सम्मेलन
25 अगस्त, 2018, पूर्वाह्न 11.00 बजे
मोतीलाल नेहरू स्टेडियम, भोपाल
मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान
हितग्राहियों को लाभ वितरण करेंगे।
उपलब्धियाँ
2 लाख 22 हजार 733 हितग्राहियों को 500 करोड़ से अधिक ऋण राशि वितरित।
130 आश्रय स्थलों में 1 लाख से अधिक शहरी बेघरों को आश्रय।
दीनदयाल अंत्योदय रसोई योजना में 79 लाख हितग्राही लाभान्वित।
5 लाख से अधिक हितग्राही अलग-अलग योजनाओं में लाभान्वित।
भारत सरकार द्वारा मध्यप्रदेश में 5 लाख 77 हजार 416 आवासीय इकाइयाँ स्वीकृत। इनमें से 1 लाख 25 हजार इकाइयाँ निर्मित।
वर्ष 2022 तक 11 लाख 52 हजार आवासीय इकाइयाँ पूर्ण करने का लक्ष्य।
शहरी क्षेत्र की कल्याणकारी योजनाएँ
मुख्यमंत्री आर्थिक कल्याण योजना
मुख्यमंत्री स्व-रोजगार योजना
मुख्यमंत्री मानव श्रम रहित ई-रिक्शा एवं ई-लोडर योजना
हाथठेला एवं सायकिल रिक्शा चालक कल्याण योजना
मुख्यमंत्री शहरी गरीबों (पथ पर विक्रय करने वाले) के लिए कल्याण योजना
केश शिल्पी कल्याण योजना
शहरी घरेलू कामकाजी महिलाओं के कल्याण की योजना
संबल
पूरा किया विकास का वादा - आगे है अटल इरादा
/CMMadhyaPradesh
/CMMadhyaPradesh
RO No. : D83019

Industrial Training Institute
Skill India
भारत सरकार की एक महत्वाकांक्षी योजना
औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं (ITI) में DST के अंतर्गत दिनांक 31.08.2018 से प्रवेश प्रारंभ
नरेन्द्र मोदी
प्रधानमंत्री
शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश
ड्यूल सिस्टम ऑफ ट्रेनिंग (DST)
DUAL SYSTEM OF TRAINING
Skill meets Industry...
Theory & Foundation Practical
I.T.I.
Practical/ Lab training
INDUSTRY
Dual System of Training (DST)
भारत सरकार के कौशल विकास एवं उद्यमशीलता मंत्रालय द्वारा **ड्यूल सिस्टम ऑफ ट्रेनिंग** की योजना प्रारंभ की गई है। इसका उद्देश्य है औद्योगिक प्रतिष्ठानों तथा आई.टी.आई. के समन्वय से गुणवत्तायुक्त प्रशिक्षण संचालित करना। इसके अंतर्गत प्रशिक्षण का क्रियान्वयन आई.टी.आई. एवं संबंधित उद्योगों में किया जायेगा। एक वर्षीय व्यवसाय में 05 माह तथा दो वर्षीय व्यवसाय में 09 माह का प्रशिक्षण उद्योगों में संपादित होगा। प्रशिक्षण अवधि में राष्ट्रीय शिक्षुता प्रोत्साहन योजना (NAPS) के अन्तर्गत अर्द्धकुशल श्रमिक को दी जाने वाली न्यूनतम मजदूरी का 70% स्टायफण्ड भुगतान किया जायेगा। सफलतापूर्वक प्रशिक्षण प्राप्त करने एवं परीक्षा के उपरांत उत्तीर्ण होने पर राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रमाण-पत्र प्रदाय किया जावेगा।
ड्यूल सिस्टम ऑफ ट्रेनिंग के अंतर्गत प्रदेश की निम्न शासकीय औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं में दसवीं उत्तीर्ण आवेदकों के प्रवेश हेतु ऑनलाइन आवेदन आमंत्रित हैं-
• भोपाल • इन्दौर • धामनोद • खण्डवा • छिन्दवाड़ा • देवास • झाबुआ • नर्मदानगर
प्रवेश हेतु आवेदक एमपी ऑनलाइन पोर्टल https://iti.mponline.gov.in पर दिनांक 31.08.2018 से 07.09.2018 तक ऑनलाइन आवेदन करें।
प्रवेश विवरणिका एवं अधिक जानकारी के लिए लॉग इन करें http://www.mpskills.gov.in अथवा https://iti.mponline.gov.in
कौशल विकास संचालनालय, तकनीकी शिक्षा, कौशल विकास एवं रोजगार विभाग, मध्यप्रदेश शासन
RO No. : D18016